

कृष्णदास संस्कृत श्रृंखला ७८

रामायण मञ्जरी

द्वितीय भाग



कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

...

...

...

आयुतोष अवस्थी

अध्यक्ष

श्री नारायणेश्वर वेद वेदाङ्ग सङ्गिति (उ.प्र.)

निर्णयसागर प्रेस-बम्बई के संस्करण से पुनर्मुद्रित एवं प्रकाशित

श्रीक्षेमेन्द्रविरचिता

रामायणमञ्जरी

जयपुरमहाराजाश्रितमहामहोपाध्यायपण्डितदुर्गाप्रसादतनय-
साहित्योपाध्यायकेदारनाथकृपाङ्गीकृतशोधनकर्मणा
महामहोपाध्यायपण्डितशिवदत्तशर्मतनूजपण्डितभवदत्तशास्त्रिणा,
मुम्बापुरवासिपरबोपाह्वपाण्डुरङ्गात्मजकाशीनाथशर्मणा च
संशोधिता ।



(If any defect is found in this book, please return the
copy by V. P. P. for postage to the publisher
for exchange free of cost.)

कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

१९८६

प्रकाशक : कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी

संस्करण : पुनर्मुद्रित, वि० सं० २०४२

मूल्य : ₹० २८-०० (रुपये अट्ठाईस)

The Publication has been brought out with the Financial
assistance from the Govt. of India, Ministry
of Education and Culture.

© कृष्णदास अकादमी

पो० बा० नं० १११८

चौक, (चित्रा सिनेमा बिल्डिंग), वाराणसी-२२१००१

(भारत)

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन

पो० बा० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)

फोन : ६३१४५

REPRINTED AND PUBLISHED FROM THE EARLIER
EDITION OF NIRNAYASAGAR PRESS-BOMBAY

THE
RĀMĀYANA-MANJARĪ
OF
KSHEMENDRA

Edited By
PANDIT BHAVADATTA ŚĀSTRĪ
AND
KĀŚINĀTH PĀNDURANG PARAB



Krishnadas Academy

VARANASI

1986

Reprinted

1986

Price Rs. 28-00 (Rs. Twenty Eight)

The Publication has been brought out with the Financial
assistance from the Govt. of India, Ministry
of Education and Culture.

© **KRISHNADAS ACADEMY**

Oriental Publishers & Distributors,

Post Box No. 1118

Chowk, (Chitra Cinema Building), Varanasi-221001

(India)

Also can be had from

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K. 37/99, Gopal Mandir Lane

Post Box No. 1008, Varanasi-221001 (India)

Phone : 63145

रामायणमञ्जर्या विषयानुक्रमणिका ।

| | पृष्ठम् । | | पृष्ठम् । |
|----------------------------|-----------|----------------------------|-----------|
| ऋष्यशृङ्गोपाख्यानम् | १ | काकाक्षिशान्तनम् | ८९ |
| रामादिपुत्रोत्पत्तिः | ६ | लक्ष्मणकोपः | ९२ |
| ताटकावधः | ७ | कचित्कम् | ९३ |
| अरुप्रसिद्धिः | १३ | पादुकादानम् | ९६ |
| सुबाहुवधः | १४ | भरतव्रतग्रहणम् | १०४ |
| कौशिकवंशः | १६ | भरतपर्वसमाप्तिः | १०५ |
| कुमारोत्पत्तिः | १८ | अग्निदर्शनम् | १०६ |
| गङ्गावतरणम् | २० | विराधहननम् | १०८ |
| मरुदुत्पत्तिः | २३ | शरभङ्गदर्शनम् | ११० |
| अहल्याशापमुक्तिः | २५ | तापसाभयदानम् | १११ |
| विश्वामित्रोपाख्यानम् | २६ | सुतीक्ष्णाश्रमविवसनम् | ११२ |
| धनुर्भङ्गः | ४० | इल्वलोपाख्यानम् | ११५ |
| इक्ष्वाकुवंशकथनम् | ४२ | अगस्त्यदर्शनम् | ११६ |
| सीताविवाहः | ४५ | जटायुसमागमनम् | ११८ |
| रामारामसमागमः | ४७ | हेमन्तवर्णनम् | ११८ |
| अयोध्याप्रत्यागमनम् | ५१ | शूर्पनखाविरूपणम् | १२१ |
| मन्थरावाक्यानि | ५२ | खरदूषणहननम् | १२३ |
| वरयाचनम् | ५८ | रावणतर्जनम् | १२८ |
| रामप्रवासनम् | ६२ | मारीचवाक्यम् | १३१ |
| आश्रमवास्तुपूजा | ७३ | मृगदर्शनम् | १३७ |
| यज्ञदत्तवधवर्णनम् | ७४ | मारीचहननम् | १३९ |
| दशरथविपत्तिः | ७९ | लक्ष्मणप्रयाणम् | १४० |
| दशरथसंस्करणम् | ८० | सीतापहरणम् .. | १४१ |
| भरतयात्रा | ८६ | जटायुहननम् | १४८ |

| | पृष्ठम् । | | पृष्ठम् । |
|-------------------------|-----------|-------------------------|-----------|
| हविप्रदानम् | १५० | सुरसादर्शनम् | २३१ |
| रामप्रलापः | १५४ | सिंहिकावधः | २३२ |
| जटायुसक्तिया ... | १६२ | सागरलङ्घनम् | २३३ |
| कबन्धहननम् | १६४ | चन्द्रोदयः | २३४ |
| शबरीदर्शनम् | १६६ | अन्तःपुरपरिचयः | २३७ |
| पम्पासरोदर्शनम् | १६८ | अशोकवनिकाप्रवेशः | २४१ |
| वसन्तवर्णनम् | १६९ | सीतादर्शनम् | २४५ |
| सुग्रीवसख्यम् | १७१ | सीतातर्जनम् | २४६ |
| वालिवैरोपाख्यानम् | १७३ | त्रिजटाखभः | २५६ |
| सुग्रीववालियुद्धम् | १७८ | हनुमत्सीतासंभाषणम् | २५७ |
| वालिबधः | १८१ | अशोकवनिकाभङ्गः | २६४ |
| ताराप्रलापः | १८४ | किंकरवधः | २६६ |
| सुग्रीवाभिषेकः | १८७ | जम्बुमालिवधः | २६८ |
| प्रावृड्वर्णनम् | १८८ | मन्त्रितनयवधः | २६८ |
| शरद्वर्णनम् | १९० | दुर्धरादिवधः | २६९ |
| हनुमद्व्यादेशः | १९२ | अक्षवधः | २६९ |
| सुग्रीवयात्रा | २०१ | हनुमद्ग्रहणम् | २७० |
| बलागमनम् | २०२ | लङ्कादीपनम् | २७२ |
| अङ्गुलीयकदानम् | २०५ | हनुमत्पुनरागमनम् | २७९ |
| दिग्वर्णनम् | २०७ | मधुवनविलोपनम् | २८१ |
| बिलप्रवेशः | २११ | वानरप्रत्यागमनम् | २८४ |
| समुद्रदर्शनम् | २१४ | समुद्रदर्शनम् | २८५ |
| वानरप्रायोपवेशः | २१५ | बिभीषणमातृवाक्यम् | २९० |
| संपातिदर्शनम् | २१९ | बिभीषणनिष्कासनम् | २९१ |
| मैनाकदर्शनम् | २२३ | बिभीषणपरिग्रहः | ३०३ |

| | पृष्ठम् । | | पृष्ठम् । |
|---------------------------------|-----------|-------------------------|-----------|
| समुद्रक्षोभणम् | ३०५ | त्रिशिरोवधः | ३६२ |
| समुद्रदर्शनम् | ३०७ | महापार्श्ववधः | ३६२ |
| सेतुबन्धः | ३०९ | अतिकायवधः | ३६३ |
| भूषणप्रदानम् | ३११ | इन्द्रजिद्युद्धम् | ३६४ |
| चारप्रवेशः | ३११ | औषध्यानयनम् | ३६६ |
| मायाशिरोदर्शनम् | ३१६ | कुम्भवधः | ३६९ |
| सरभावाक्यम् | ३१७ | निकुम्भवधः | ३७१ |
| माल्यवद्वाक्यम् | ३१८ | मकराक्षवधः | ३७१ |
| सैन्यप्रविभागः | ३१९ | मायासीतावधः | ३७२ |
| अङ्गदवाक्यम् | ३२० | रामाश्वासनम् | ३७३ |
| समुद्रपर्व | ३२१ | इन्द्रजिद्वधः | ३७६ |
| द्वन्द्वयुद्धम् | ३२२ | रामास्त्रयुद्धम् | ३८० |
| रात्रियुद्धे इन्द्रजिज्जयः | ३२४ | लक्ष्मणविशल्यकरणम् | ३८३ |
| रामदर्शनम् | ३२७ | रावणवधः ... | ३८६ |
| सुग्रीववाक्यम् | ३३० | अन्तःपुरप्रलापः | ३९२ |
| नारदवाक्यम् | ३३३ | रावणसत्क्रिया | ३९३ |
| विशल्यकरणम् | ३३४ | विभीषणाभिषेकः | ३९४ |
| धूम्राक्षवधः | ३३४ | वह्निप्रवेशः | ३९५ |
| अकम्पनवधः | ३३६ | महापुरुषस्तवः | ४०० |
| प्रहस्तवधः | ३३७ | लोकपातदर्शनम् .. | ४०१ |
| रावणभङ्गः | ३३९ | पुनराख्यायिकम् | ४०२ |
| कुम्भकर्णप्रबोधः | ३४६ | भरतानन्दः ... | ४०४ |
| कुम्भकर्णवधः | ३४८ | भरतसमागमः | ४०५ |
| नरान्तकवधः | ३५९ | रामाभिषेकः | ४०५ |
| देवान्तकवधः | ३६१ | वैश्रवणोत्पत्तिः | ४०७ |
| महोदरवधः | ३६२ | मालिवधः | ४१० |

| | पृष्ठम् । | | पृष्ठम् । |
|-------------------------|-----------|---------------------------|-----------|
| राक्षसभङ्गः | ४१५ | नृपकपिरक्षः प्रयाणम् | ४६४ |
| पौलस्त्योत्पत्तिः | ४१६ | जनापवादः | ४६५ |
| लङ्काप्रवेशः | ४१९ | सीतापरित्यागः | ४६८ |
| रावणादिविवाहः | ४२२ | नृगशापः | ४७२ |
| इन्द्रजिज्जन्म | ४२३ | वसिष्ठनिमिशापः | ४७५ |
| कुबेरनिर्जयः | ४२४ | उर्वशीशापः | ४७६ |
| कैलासोल्लासकम् | ४२९ | मैथिलसंभवः | ४७६ |
| देववत्युपाख्यानम् | ४३१ | ययातिशापः | ४७७ |
| मरुत्तसमागमः | ४३३ | कौलपतिकम् | ४७९ |
| अनरण्यवधः | ४३४ | सौदासस्योपाख्यानम् | ४८२ |
| रावणग्रहणम् | ४३५ | लवणवधः | ४८४ |
| रावणमोक्षः | ४४० | मथुराप्रवेशः | ४८६ |
| वालिरावणसख्यम् | ४४० | शम्भुकवधः | ४८७ |
| यमविसर्गः | ४४२ | गृद्धोलूकिकम् | ४९० |
| पातालविजयः | ४४५ | श्वेतोपाख्यानम् | ४९१ |
| मान्धातृयुद्धम् | ४४९ | दण्डशापः | ४९४ |
| सोमलोकगमनम् | ४४९ | वृत्रोपाख्यानम् | ४९५ |
| दण्डकारण्यप्रदानम् | ४५० | ईडापुरुषीयम् | ४९७ |
| सेनानिवेशः | ४५१ | वसुधाप्रवेशः | ५०० |
| नलकूबरशापः | ४५३ | अश्वमेधः | ५०३ |
| सुमालिवधः | ४५६ | गान्धारविषयः | ५०४ |
| आहल्यम् | ४५७ | लक्ष्मणपुत्राभिषेकः | ५०५ |
| महापुरुषदर्शनम् | ४६० | कालवाक्यम् | ५०५ |
| हनुमज्जन्मवर्णनम् | ४६२ | लक्ष्मणत्यागः | ५०६ |
| ऋषिप्रयाणम् | ४६३ | स्वर्गारोहणम् | ५०७ |

काव्यमाला ।

काश्मीरिकमहाकविश्रीक्षेमेन्द्रविरचिता
रामायणमञ्जरी ।

—*—
बालकाण्डम् ।

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥ १ ॥
ज्येष्ठो जयति वाल्मीकिः सर्गबन्धे प्रजापतिः ।
यः सर्वहृदयालीनं काव्यं रामायणं व्यधात् ॥ २ ॥
स्वच्छप्रवाहसुभगा मुनिमण्डलसेविता ।
यस्मात्स्वर्गादिवोत्पन्ना पुण्या प्राची सरस्वती ॥ ३ ॥
नुमः सर्वोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम् ।
यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवनत्रयी ॥ ४ ॥
पुरा मुनिः सभासीनः स यदृच्छागतं मुनिम् ।
कथाप्रसङ्गे पप्रच्छ प्रणयादिव नारदम् ॥ ५ ॥
लोकेऽस्मिन्सांप्रतं वीरः श्रीमान्कः सुकृतोज्ज्वलः ।
कीर्तिर्विराजते यस्य ज्योत्स्नेव रजनीपतेः ॥ ६ ॥
भूषिता सत्त्वशुभ्रेण जगती गुणशालिना ।
केन लक्ष्मीविहारेण हारेणेव वराङ्गना ॥ ७ ॥
प्रजानां जीवितं को नु लतानामिव माधवः ।
कुरुक्षेत्रं गुणानां च रत्नानामिव सागरः ॥ ८ ॥
इति पृष्ठो मुनीन्द्रेण नारदः प्रत्यभाषत ।
मुक्तामणिर्मनोर्वशे चरितै रघुनन्दनः ॥ ९ ॥

१. 'सद्वृत्तः सद्गुणोचितः' इत्यपि पाठः केनापि पूरितः.

गुणाभिरामः श्रीरामो विरामो वैरिसंपदाम् ।
 जगद्येन हरेर्वक्षः कौस्तुभेनेव राजितम् ॥ १० ॥
 जायासमयबद्धस्य पितुर्दशरथस्य यः ।
 शिरसा विषमामाज्ञां हेममालामिवाग्रहीत् ॥ ११ ॥
 दारापहारकोपाग्नौ मुखैर्दशमुखस्य यः ।
 ददौ रक्ताज्यसंसिक्तै रसाक्ताः श्रीफलाहुतीः ॥ १२ ॥
 तस्याद्य दोष्णि विन्यस्य भरं विश्वंभरापतेः ।
 शेषः कुवलयं मूर्ध्ना धत्ते कुवलयं यथा ॥ १३ ॥
 उक्त्वेति याते देवर्षौ हर्षनिर्भरमानसः ।
 मुनीन्द्रोऽपि ययौ क्षिप्रं विस्मयावेशवश्यताम् ॥ १४ ॥
 स गत्वा तमसातीरं तीर्थे स्नात्वा कृतार्चनः ।
 चचार शिष्यसहितः पुण्यासु वनभूमिषु ॥ १५ ॥
 तस्याग्रे क्रौञ्चमिथुनादेकं मन्मथमोहितम् ।
 स ददर्श निषादेन निहतं निशितेषुणा ॥ १६ ॥
 ततः श्लोकच्छलात्तस्य शोकानलसमीरितः ।
 दयया हृदयालीनो निर्गतः करुणो रसः ॥ १७ ॥
 अहो निष्करुणेनेदं निषादेन विषादकृत् ।
 कृतं कुकृतशीलेन कर्म मर्मविदारणम् ॥ १८ ॥
 मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमालब्धाः शाश्वतीः समाः ।
 यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ १९ ॥
 इत्युक्त्वा करुणासिन्धुः समीपस्थं पुनः पुनः ।
 श्लोकं पठन्मुहुः शोकादिति शिष्यमभाषत ॥ २० ॥
 ततस्तत्र नदीतीरे स्थितः शिष्ययुतो मुनिः ।
 ददर्श श्लोकसंतोषात्स्वयं ब्रह्माणमागतम् ॥ २१ ॥
 मुनिनाभ्यर्चितस्तत्र पाद्यपूजासनादिभिः ।
 सोऽवदत्पुण्यपीयूषं दन्तकान्त्या किरन्निव ॥ २२ ॥

अहो सारस्वतः कोऽपि तरुणः करुणावतः ।
 अबतीर्य तव मुने प्रसरः सरसः स्वयम् ॥ २३ ॥
 रामस्य चरितं चारु काव्यबन्धो विधीयताम् ।
 अस्तु चैवं सुधाघौता कृतकृत्या सरस्वती ॥ २४ ॥
 लोकेष्वनेककल्पान्तस्थायि कर्णामृतं सताम् ।
 कुरु रामायणं पुण्यं यशो निजमिवोज्ज्वलम् ॥ २५ ॥
 इत्युक्त्वान्तर्हिते क्षिप्रं प्रजासृजि मुनीश्वरः ।
 कर्तुं प्रचक्रमे रामचरितं ज्ञानलोचनः ॥ २६ ॥
 उपस्पृश्योदकं मौनी योगी रामकथां पुनः ।
 प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु हृदि कर्तुं समादधे ॥ २७ ॥
 प्राप्तराज्यस्य रामस्य वृत्तं वृत्तपदोचितम् ।
 भविष्यच्चरितोपेतं सर्गबन्धे विधाय सः ॥ २८ ॥
 मुनीन्द्रः पाठयामास रामपुत्रौ वनेचरौ ।
 १गीतस्वराविष्टपदौ विभक्तमधुरस्वरौ ॥ २९ ॥
 कुशो लवश्च तौ ख्यातौ पुरो मुनिमनीषिणाम् ।
 अगायतां मुनेः काव्यं भूमिपालसभासु च ॥ ३० ॥
 कदाचिद्रूढवेशौ तौ ह्यश्वमेधमखे पितुः ।
 रामायणं रसोदारं रौघवस्यापि गायताम् ॥ ३१ ॥
 कोसलाख्ये जानपदे सरयूतीरसंश्रये ।
 अस्त्ययोध्येति नगरी रैम्या कर्मावधिर्विधेः ॥ ३२ ॥
 स्फारस्फटिकसौधांशुहासिनी निर्मिता स्वयम् ।
 मनुना मनुजेन्द्रेण मूर्ता कीर्तिरिवात्मनः ॥ ३३ ॥
 मणिमन्दिरसंभारप्रभावलयमालिता ।
 कीर्तिकल्लोलिनी कूले बिम्बितेवामरावती ॥ ३४ ॥

१. 'गीतस्वराविष्टपदौ' ग. २. 'रामस्याग्रेऽपि' ग; परंतु अटो लङि 'कुर्वारत्वेन' 'ऽप्यगा-
 यताम्' इति स्यात्. ३. 'रसा' क. ४. 'कर्म्या' ग.

सानन्दसुन्दरीवृन्दवदनैः कृतचन्द्रिका ।
 राजधानीव चन्द्रस्य पुत्रपौत्रशतैर्वृता ॥ ३५ ॥
 तस्यां दशरथो नाम बभूवेक्ष्वाकुनन्दनः ।
 भुजेन भूमिवलयं वलयं च बभार यः ॥ ३६ ॥
 भिन्नेभमुक्तातारासु स्फारस्वरणरात्रिषु ।
 यशश्चन्द्रः स्वयं भेजे राज्यश्रीरभिसारिका ॥ ३७ ॥
 गम्भीरः सत्त्वरत्नाढ्यः पुरुषोत्तमसेवितः ।
 समुद्रसदृशोऽप्यासीद्विमुद्रो यः सदर्शितुः ॥ ३८ ॥
 गजेन्द्रदानसलिलप्रवाहैर्यस्य दिग्जये ।
 यमुनालिङ्गनप्रीतिमवाप सरितां पतिः ॥ ३९ ॥
 क हारः क च कर्पूरं क च मन्दारमालिका ।
 इति यद्यशसा व्योम्नि शुभ्रे स्वर्गाङ्गना जगुः ॥ ४० ॥
 युधि पीतमरातीनां यत्खड्गेनानिशं यशः ।
 तद्वान्तं लग्नभिन्नेभकुम्भमुक्ताफलच्छलैः ॥ ४१ ॥
 त्रैलोक्यजयिनः शक्रः कथं तस्योपमास्पदम् ।
 अमात्या मुनयो यस्य वशिष्ठश्च पुरोहितः ॥ ४२ ॥
 संधिविग्रहकालज्ञाः सर्वप्रकृतिचिन्तकाः ।
 भूभारदिग्दिपाधीरा बभूवुस्तस्य मन्त्रिणः ॥ ४३ ॥
 संधिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो राष्ट्रवर्धनः ।
 अशोको धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चेति संमतः ॥ ४४ ॥
 पुत्रार्थिनं कदाचित्तं चिन्तासक्तमथाब्रवीत् ।
 अश्वमेधकृतोद्योगं सुमन्त्रो मन्त्रिणां वरः ॥ ४५ ॥
 देव चिन्तापरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः कथम् ।
 उत्ताम्यसि, भविष्यन्ति सर्वथा तनयास्तव ॥ ४६ ॥

१. 'स्फारासु' स्यात्. २. विष्णुः, पुरुषोत्तमश्च. ३. 'धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो
 राष्ट्रवर्धनः । अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥' इति रामायणे. ४. 'श्वाति'
 स्यात्; 'श्चेति संमताः' ख.

सनत्कुमारो भगवान्पुरा मुनिसभास्थितः ।
 भाविनीं त्वत्कथामूचे विमलज्ञानलोचनः ॥ ४७ ॥
 राजा दशरथः पुत्रान्पवित्रचरितव्रतान् ।
 ऋष्यशृङ्गस्य यागेन संप्राप्स्यति कुलोचितान् ॥ ४८ ॥
 विभाण्डकस्य स मुनेः कश्यपस्यात्मजो मुनिः ।
 ऋष्यशृङ्गो नृसङ्गानामनभिज्ञो मृगीसुतः ॥ ४९ ॥
 स ब्रह्मचारी विपिने हरिणानामकल्मषः ।
 ब्रह्मचारी चचारोग्रं तपस्तपनसंनिभः ॥ ५० ॥
 अस्मिन्नवसरे राज्ञो लोमपादस्य चाभवत् ।
 अवृष्टिरङ्गविषये विप्रशापसमुद्भवा ॥ ५१ ॥
 विपैत्तिशमनं तत्र स ज्ञात्वा ब्रह्मणाज्ञया ।
 ऋष्यशृङ्गो बभूवाशु तदानयनसादरः ॥ ५२ ॥
 अदृश्यं तेजसा ज्ञात्वा तमपृच्छन्नसंभृतः ।
 दिदेश चास्यानयने प्रगल्भा वारयोषितः ॥ ५३ ॥
 विलासहासकुसुमास्ता लोलालकषट्पदाः ।
 ययुस्तपोवनं तस्य रुचिराधरपल्लवाः ॥ ५४ ॥
 विभाण्डकमुनेर्भीत्या लताजालान्तरेषु ताः ।
 तस्थुस्तद्रहितं कालं तत्सुतं च समाययुः ॥ ५५ ॥
 तान्विलोक्यानभिज्ञोऽपि स जहर्ष जितेन्द्रियः ।
 सहजैवाभिलाषेषु जन्तूनां जन्मवासना ॥ ५६ ॥
 सानन्दस्तान्स विज्ञाय साधून्मुनिकुमारकान् ।
 तत्केलिविभ्रमकलाविलासरसिकोऽभवत् ॥ ५७ ॥
 अयत्नालिङ्गनैस्तुङ्गकुचकुम्भपुरःसरैः ।
 हियमाणः स शनकैर्नीतस्ताभिर्निजां पुरीम् ॥ ५८ ॥

१. 'काश्यपस्या' स्यात्. २. 'तपः पवन' ग. ३. 'विपत्प्रश' ग. ४. पुस्तकत्रयेऽपि
 त्रुटिचिह्नं न दृश्यते, तथापि त्रुटितं प्रतीयते. यद्वा 'लोमपादो' इति पाठो भवेत्.

प्राप्तेऽङ्गविषये तस्मिन्नवृष्टिप्रगवा विपत् ।
 प्रज्ञशामामृतासारघरैरिव पयोधरैः ॥ ५९ ॥
 तत्प्रीत्या लोमपादोऽसौ शान्तां दुहितरं ददौ ।
 अपुत्रस्तत्सुतां पुत्रतुल्यां जग्राह तां पुनः ॥ ६० ॥
 स राज्ञस्तस्य जामाता मुनिस्तव च धर्मतः ।
 प्रसाद्य भवता नीतः कुशलं ते विधास्यति ॥ ६१ ॥
 सुमन्त्रेणेति कथिते वशिष्ठानुमतो नृपः ।
 आनिनायाङ्गविषयमृष्यशृङ्गं वधूसखम् ॥ ६२ ॥
 इति ऋष्यशृङ्गोपाख्यानम् ॥ १ ॥
 तत्प्रसादादथ श्रीमानश्वमेधो महीपतेः ।
 आवर्तत महारम्भसंभारो भूरिदक्षिणः ॥ ६३ ॥
 तस्मिन्यज्ञे नरेन्द्राणां मुनीन्द्राणां च संघशः ।
 हृष्टानां त्रिदशानां च समाजः सुमहानभूत् ॥ ६४ ॥
 विधिना परिपूर्णेऽथ क्रतौ राजशतक्रतोः ।
 पुत्र्यामिष्टिमप्यकरोदृष्यशृङ्गस्तदर्थिनः ॥ ६५ ॥
 अत्रान्तरे दशास्येन विप्रवासितसंपदः ।
 ययुश्चतुर्मुखमुखाः सुराः शरणमच्युतम् ॥ ६६ ॥
 ते तमूचुः सुरारोतिं वरदानेन वेधसं ।
 करोति देवानसुरान्दुर्जयो देव रावणः ॥ ६७ ॥
 अवध्यः सर्वभूतानां स मनुष्यादृते युधि ।
 तस्माद्दशरथस्याद्य भगवन्त्रज पुत्रताम् ॥ ६८ ॥
 चतुर्धा योगमास्थाय विभङ्गात्मानमात्मना ।
 अवतीर्य धरां विष्णो जहि त्रैलोक्यकण्टकम् ॥ ६९ ॥
 इत्युक्ते त्रिदशैर्भीतैस्तथेत्युक्ते च विष्णुना ।
 पुत्रेष्ट्यां परिपूर्णायां राज्ञो दशरथस्य च ॥ ७० ॥

१. 'पुण्या' क-ख-ग. २. देवाधिकाराधिपानित्यर्थः; यद्वा देवान् देवाधिकार-
 च्युतानित्यर्थः.

उदतिष्ठन्महद्भूतं पावकात्कृष्णपिङ्गलम् ।
 हेमपात्रं समाधाय दोर्भ्यां पायसपूरितम् ॥ ७१ ॥
 प्राजापत्यः स पुरुषो मुनेर्वाक्यान्नुपाय तम् ।
 पुत्रीयपायसं पात्रं प्रतिपाद्य तिरोदधे ॥ ७२ ॥
 तदादाय च भूपालः पायसं मुनिशासनात् ।
 देवीभ्यः प्रददौ दिव्यं मूर्तं हर्षमिवात्मनः ॥ ७३ ॥
 ततोऽर्धं प्राप कौसल्या चतुर्भागं च कैकेयी ।
 चतुर्भागं सुमित्रा च स्वयं तेन द्विधा कृतम् ॥ ७४ ॥
 विसृष्टाखिलभूषेण पूजितः पृथिवीभुजा ।
 कान्तां शान्तां समादाय राजपुत्रीं ययौ मुनिः ॥ ७५ ॥
 अथ कालेन कौसल्या प्रागसूत सुतं सती ।
 रामं विरामं द्विषतां देवं सूर्यमिवादितिः ॥ ७६ ॥
 सुषुवे भरतं देवी कैकेयी तनयोत्तमम् ।
 प्राप लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रा पुत्रकावपि ॥ ७७ ॥
 क्रीडासु विद्याविनये विस्रम्भे चानुगोऽभवत् ।
 रामस्य लक्ष्मणो नित्यं शत्रुघ्नो भरतस्य च ॥ ७८ ॥
 दन्तैरिवेन्द्रद्विरदो वरुणः सागरैरिव ।
 तैः सुतैः शुशुभे भूपः कैटभारिर्भुजैरिव ॥ ७९ ॥
 शस्त्रास्त्रग्रामशिक्षाणां विद्यानां विशदाशयः ।
 कलानां च बभूवुस्ते संक्रान्तिमणिदर्पणाः ॥ ८० ॥
 इति रामादिपुत्रोत्पत्तिः ॥ २ ॥
 अथ राजसभासीनं प्रविश्य प्रणता नृपम् ।
 तूर्णमूचुः प्रतीहारा हेमवेत्रांशुमालिनः ॥ ८१ ॥
 देव तीव्रतपस्तेजःपुञ्जपिञ्जरिताम्बरः ।
 विश्वामित्रो दिदृक्षुस्त्वामागच्छन्द्दृश्यते मुनिः ॥ ८२ ॥

१. रामायणसप्तदशसर्गं वानरावतरणकथा कविनात्र नोपनिबद्धा.

तच्छ्रुत्वा सहसा राजा वशिष्ठसहितः स्वयम् ।
 प्रेत्युद्ययौ मुनिवरं हर्षपीयूषनिर्भरः ॥ ८३ ॥
 स पूज्यः पूजितस्तेन प्रविश्यालंकृतासनः ।
 सभायां नृपतिं प्रीत्या पप्रच्छानाभयं शनैः ॥ ८४ ॥
 ततो जगाद दशनप्रभाकुसुमितां पुनः ।
 कुर्वाणः सफलां वाणीं विनयेन नरेश्वरः ॥ ८५ ॥
 भगवन्भवतः पुण्यहर्षपीयूषवर्षिणः ।
 दर्शनं ताण्डवायैव सत्यं मित्रशिखण्डिनाम् ॥ ८६ ॥
 त्वद्दर्शनसुधासारसिक्ता सुकृतवल्लरी ।
 पुण्यपुष्पोज्ज्वला सूते प्रहर्षमतुलं फलम् ॥ ८७ ॥
 इयमेव भवान्मोधिविरतस्यामृतच्छटा ।
 यद्विवेकोदयस्फीतं दर्शनं च भवादृशम् ॥ ८८ ॥
 तपस्तीर्थाभिषेको वा महद्भिर्वा समागमः ।
 एतास्ता जन्मरजसः परिमार्जनभूमयः ॥ ८९ ॥
 उच्यतां भगवन्त्यक्ते कृत्यं तत्करवाण्यहम् ।
 त्वदाज्ञानुग्रहेणैव कृतकृत्यस्त्वयं जनः ॥ ९० ॥
 उक्तो दशरथेनेति विश्वामित्रस्तमब्रवीत् ।
 दन्तत्विषा निशानाथं दर्शयन्निव सोमपः ॥ ९१ ॥
 जन्म वंशे सहस्रांशोर्गुणाश्च विनयोज्ज्वलाः ।
 रुचिराचार भवतामेतत्समुचितं वचः ॥ ९२ ॥
 दीक्षितस्य महीपाल बाधन्ते मम राक्षसाः ।
 यज्ञं पिहितदिक्चक्राः शोणितासारवर्षिणः ॥ ९३ ॥
 तेषां विघ्नकृतां यज्ञे विघातायोग्ररक्षसाम् ।
 रामं प्रयच्छ मे वीरं बालं बलवतां वरम् ॥ ९४ ॥
 तपोवनेषु शमिनां मुनीनां विदधे विधिः ।
 तपःकैतुपरित्राणे राजन्क्षत्रियविक्रमम् ॥ ९५ ॥

बालोऽयमिति रामस्य जये मा संशयं कृथाः ।
 वसिष्ठमुख्या मुनयः प्रभावज्ञाः सुतस्य ते ॥ ९६ ॥
 इति श्रुत्वा मुनिवचो भूपतिः कम्पिताशयः ।
 उवाच भगवन्बालः कथं रक्षःक्षयक्षमः ॥ ९७ ॥
 अक्षौहिणीपरिवृते स्थिते मयि सकार्मुके ।
 शिशौ संभावना केयं घोरे समरकर्मणि ॥ ९८ ॥
 सज्जोऽहं क्रतुरक्षायै दीक्षितस्य तव स्वयम् ।
 नैववर्षसहस्राणि व्यतीतानि ममायुषः ।
 चिन्तासंतप्तमनसः पुत्रलाभमनोरथैः ॥ ९९ ॥
 सुचिरादुचितः पुत्रो जातो वयसि पश्चिमे ।
 नेश्वरोऽहं परित्यक्तुं रामं राजीवलोचनम् ॥ १०० ॥
 इति ब्रुवाणमसकृद्भूपालं पुत्रवत्सलम् ।
 उवाच कौशिकः किञ्चिदसूयारचितस्मितः ॥ १०१ ॥
 अहो नु कातरस्येव स्नेहमोहहता मतिः ।
 तव राजन्न जानीषे यत्पुत्रस्य पराक्रमम् ॥ १०२ ॥
 स्वयं किं कृत्यमित्युक्त्वा कार्यकाले विमुह्यति ।
 यथागतं व्रजाम्येष तव सत्यच्युतः सुखी ॥ १०३ ॥
 इत्युक्त्वा विरते कोपात्कम्पमाने महामुनौ ।
 विचचाल तदा पृथ्वी भेजिरे च भयं सुराः ॥ १०४ ॥
 ततो जगाद भगवान्वशिष्ठः शमिनां वरः ।
 इक्ष्वाकुवंशजो राजन्प्रतिज्ञा मा वृथा कृथाः ॥ १०५ ॥
 बहुप्रभावः पुत्रस्ते न शङ्कां कर्तुमर्हसि ।
 दुष्टक्षयात्क्षितित्राणात्क्षत्रियः किल जायते ॥ १०६ ॥
 गुप्तः स्वयं कौशिकेन मुनिना प्राज्यतेजसा ।
 ब्रह्मणेवासुरपतिर्दुर्जयोऽयं हि राघवः ॥ १०७ ॥

मुनेरस्य प्रभावेण रामः कुशलमाप्स्यति ।
 आश्रयः पुण्ययशसां तपसां तेजसां च यः ॥ १०८ ॥
 प्रजापतिर्भृशश्चाख्यो दाक्षायिण्यौ वरात्पुरा ।
 तेजोनिधिः प्राप भार्ये जयाख्यां सुप्रभां तथा ॥ १०९ ॥
 तयोः पुत्रशतं तस्य जातं विविधविग्रहम् ।
 यदस्त्रमण्डलं दिव्यं दीप्तमस्त्रविदो जगुः ॥ ११० ॥
 विश्वामित्राय निखिलं संघर्षाख्यं तमुत्कटम् ।
 अस्त्रग्रामं महावीर्यं स ददौ यशसां निधिः ॥ १११ ॥
 सोऽयं क्षिभुः सहस्राणां नेतुमर्हसि राघवम् ।
 वशिष्ठेनेति कथिते तथेत्यूचे महीपतिः ॥ ११२ ॥
 ततः कृतस्वस्त्ययनं राघवं लक्ष्मणानुगम् ।
 कौशिकाय ददौ राजा निमित्तैः शुभशंसिभिः ॥ ११३ ॥
 धन्विनौ काकपक्षाङ्गौ बद्धस्वङ्गौ मुनीश्वरः ।
 आदाय प्रययौ वीरस्तौ राघवकुमारकौ ॥ ११४ ॥
 गत्वा योजनसंख्यार्धं दक्षिणे सरयूतटे ।
 स रामाय ददौ विद्ये श्रमातङ्कजरापहे ॥ ११५ ॥
 बलामतिबलाख्यां च जयरूपबलप्रदे ।
 ते प्राप्य तृप्तिसौभाग्यज्ञानदे ब्रह्मसंभवे ॥ ११६ ॥
 महार्हतां परां प्राप्तः काकुत्स्थो हृष्टमानसः ।
 स्थित्वा तत्र निशां प्रातः सानुजोऽनुययौ मुनिम् ॥ ११७ ॥
 स दृष्ट्वा संगमे गङ्गासरय्वोः पुण्यमाश्रमम् ।
 कस्येदं तापस क्षेत्रमिति पप्रच्छ कौशिकम् ॥ ११८ ॥
 सोऽब्रवीन्मूर्तिमान्कामः पुरा देवमुमापतिम् ।
 लक्ष्यीकर्तुं कृतोद्वाहं चचार सुचिरं तपः ॥ ११९ ॥
 तपोवनेऽस्मिन्भगवान्वीक्ष्य तं त्रिपुरान्तकः ।
 दृशा चकार सहसा विशीर्णाङ्गमसंगधीः ॥ १२० ॥

१. 'तिः कृशाश्वा' रामायणे. २. 'अध्यर्धयोजनं गत्वा' रामायणे.

विन्ध्यशैलान्तिके तस्य पतितेऽङ्गचये पृथक् ।
 स्फुरीतोऽभूदङ्गविषयो विषयः सर्वसंपदाम् ॥ १२१ ॥
 तस्यै तत्संयमे धाम कामस्याभूत्तपोवनम् ।
 योऽङ्गनापाङ्गसंयोगादनङ्कोऽपि जगज्जयी ॥ १२२ ॥
 इत्युक्तं मुनिना श्रुत्वा रामः कामाश्रमे सुखम् ।
 अतिवाह्य निशामेकां प्रतस्थे मुनिपूजितः ॥ १२३ ॥
 नावाथ तीर्त्वा सरयूं शब्दं श्रुत्वा घनस्वरम् ।
 किमेतदिति पप्रच्छ मुनिं पृष्ठः स चाभ्यधात् ॥ १२४ ॥
 मनसा मानसं नाम सरः कैलासशेखरे ।
 ब्रह्मणा निर्मितं तस्मात्प्रसूता सरयूः पुरा ॥ १२५ ॥
 जाह्नवीसंगतस्यायं तत्प्रवाहस्य निःस्वनः ।
 बन्धोऽसाविति तेनोक्तो रामोऽपि प्रणनाम तम् ॥ १२६ ॥
 ततो दक्षिणतीरस्य वनमासाद्य सानुजः ।
 पप्रच्छ कौशिकं घोरसत्त्वसंपातविस्मितः ॥ १२७ ॥
 कस्येदमिति रामेण पृष्ठस्तमवदन्मुनिः ।
 करुषमौलवाभिख्यौ श्रुतौ जनपदौ भुवि ॥ १२८ ॥
 यत्र वृत्रवधादिन्द्रो वृत्रहत्यामलावृतः ।
 मुनिभिः पुण्यसलिलैः क्षुत्क्षामः क्षालितः पुरा ॥ १२९ ॥
 मलं स दृष्ट्वा पतितं कारूषाख्यं शरीरजम् ।
 स्वस्थः श्रीमान्वरं प्रादाद्देशयोर्धन्यतावहम् ॥ १३० ॥
 पुरा सुकेतोर्धक्षस्य ताटका कामरूपिणी ।
 नागायुतबला पुत्री बभूव ब्रह्मणो वरात् ॥ १३१ ॥
 तरुणीमसुरेन्द्राय सुतां सुन्दाय सुन्दरीम् ।
 ददौ तस्यां बभूवास्य मारीचो दुर्जयः सुतः ॥ १३२ ॥

१. 'तीरस्थं' स्वात्. २. 'मलदा' रामायणे. ३. 'धृष्यतावहम्'; 'वस्यतावहम्'
 इति च पाठः.

स्वपुत्राय कृतं रूपं सा कृत्वा दुन्दुभिस्वना ।
 अगस्त्यग्रामे चक्रे स मतिं मोहात्प्रधर्षणे ॥ १३३ ॥
 सा तच्छापादभून्नित्यं विकृताकारदुःसहा ।
 राक्षसत्वं च मारीचो जगाम जनकण्टकः ॥ १३४ ॥
 मालवानां करूषाणां कुर्वाणास्मिन्वने क्षयम् ।
 स्थिता प्रसारितभुजा सा भूतभयदा सदा ॥ १३५ ॥
 गोत्रजान्तकरीं घोरां जहि तां जनताहिताम् ।
 स्त्रीविचारं परित्यज्य जगतां कार्यगौरवात् ॥ १३६ ॥
 श्रूयते किल शक्रेण विलोचनमुता पुरा ।
 राक्षसी दीर्घजिह्वाख्या हता विश्वक्षयोदिता ॥ १३७ ॥
 अशक्रं लोकमिच्छन्ती दैत्यमाता बलोकटा ।
 हता सुरशरण्येन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १३८ ॥
 त्वमप्येवं जगद्धन्धुर्मुनित्राणकृतक्षणः ।
 पत्रिणा वज्रधारेण तां निपातय ताटकाम् ॥ १३९ ॥
 इत्युक्ते मुनिना रामः क्षणं ध्यात्वा तमब्रवीत् ।
 प्रमाणं सर्वधर्माणां निश्चये भवतां वचः ॥ १४० ॥
 अहं हि भगवन्पित्रा नियुक्तस्तव शासने ।
 भवता तस्य वचसा कार्यं सर्वात्मना मया ॥ १४१ ॥
 इत्युक्त्वाधिज्यमादाय धनुर्वीरपराक्रमः ।
 ज्याघोषमकरोद्वज्रशैलनिष्पेषनिःस्वनम् ॥ १४२ ॥
 त्रैलोक्यरक्षाप्रारम्भमङ्गलौऽकारकारिणा ।
 ननृतुर्धनुर्घोषेण तेन त्रिदशबर्हिणः ॥ १४३ ॥
 अथादृश्यत तत्कोपात्प्रलयाम्भोधरच्छविः ।
 कल्पितेव निरालोकैः कल्पान्तरजनीशतैः ॥ १४४ ॥
 दीप्तजिह्वाकरालेन विवृतास्येन भीषणा ।
 लोलनीलाचलेनेव ज्वालाचक्रगुहागता ॥ १४५ ॥

१. 'मुदा'; 'पुरा' इति च पाठः. २. 'गर्भे' ग.

जगद्देहार्गलादीर्घप्रसारितभुजद्रुमा ।
 कृतान्ततोरणस्तम्भसंभारभ्रान्तिकारिणी ॥ १४६ ॥
 महाद्रिकटकाकारकरालोरःकटीतटा ।
 ताटका विकटारावघटिताशेषदिकटा ॥ १४७ ॥
 तामापतन्तीं क्रोधाग्निज्वालायितशिरोरुहाम् ।
 बाणेन धननिर्घोषां जघान रघुनन्दनः ॥ १४८ ॥
 सा रामस्य शरैर्धिन्ना निपपात महीतले ।
 तमालवनमालेव छिन्ना कूलंकषैर्जलैः ॥ १४९ ॥
 इति ताटकावधः ॥ ३ ॥

तस्यां हतायां सहसा प्रसन्ने भुवनत्रये ।
 रामस्य विक्रमं शक्रः प्रशंसन्मुनिमब्रवीत् ॥ १५० ॥
 प्रयच्छ स्वच्छयशसे रामायास्त्राणि कौशिक ।
 स्वगुणैः पात्रतां नीताः किं नार्हन्ति हि साधवः ॥ १५१ ॥
 इत्युक्तस्त्रिदशेन्द्रेण मुनीन्द्रः प्रयतात्मना ।
 भृशशस्त्रादि रामाय ददौ सर्वायुधैः सह ॥ १५२ ॥
 ब्रह्मास्त्रं दण्डमस्त्रं च धर्मचक्रमशेषगम् ।
 कालचक्रं विष्णुचक्रं शाक्रं वज्रं च दारुणम् ॥ १५३ ॥
 शूलं शार्प गदे द्वे च कौमोदकशिवोदके ।
 उग्रं ब्रह्मशिरश्चास्त्रमैशीकं शङ्खमद्भुतम् ॥ १५४ ॥
 त्रिनेत्रास्त्रं धर्मपाशं कालपाशं सवारुणम् ।
 शुष्कार्द्रं पाचने देव नागास्त्रं वैष्णवं तथा ॥ १५५ ॥
 आग्नेयं शिखरं नाम वायव्यं क्रौञ्चमद्भुतम् ।
 अस्त्रं हयशिरश्चोग्रशक्ती शक्रकुमारयोः ॥ १५६ ॥
 घोरं कङ्कालमुसलं कापालं क्रिङ्किणीमपि ।
 दिव्यास्त्रं नन्दकं खड्गं गन्धर्वास्त्रं च मोहनम् ॥ १५७ ॥

१. 'कृशाश्वा' रामायणे. २. 'मादनम्' इति 'शत्रूणां मदजनकम्' इति व्याख्यातं तिलके.

प्रस्थापनं प्रमथनं वर्षणं च सञ्क्षोषणम् ।
 संतापनं विलापास्त्रं दमनं च मनोभुवः ॥ १९८ ॥
 नैषादं मानयं नाम वामनं च सँशासनम् ।
 संवर्तं सौमलं सत्यं मायास्त्रं मोघतेजसम् ॥ १९९ ॥
 सोमास्त्रं शैशिरं त्वाष्ट्रं दारुणास्त्रं भगस्य च ।
 रौद्रास्त्रं चेति दिव्यानि जग्राह रघुनन्दनः ॥ १९० ॥
 पुरः प्रत्यक्षरूपाणि प्राप्तानि च ततो मुनेः ।
 सजृम्भकरहस्यानि ससंहाराण्यशेषतः ॥ १९१ ॥
 संस्पृश्य पाणिना तानि प्रतिपूज्य विसृज्य च ।
 ब्रजन्काननमालोक्य रामः पप्रच्छ कौशिकम् ॥ १९२ ॥
 इत्यस्त्रप्राप्तिः ॥ ४ ॥

इदं मरकतश्यामतालतालीनिरन्तरम् ।
 बृहत्फुल्ललाकुञ्जमञ्जुगुञ्जद्विहङ्गमम् ॥ १९३ ॥
 मनोनयननिर्वाणं संतोषविषयं रतेः ।
 क्षेत्रं निर्विघ्नविश्रान्तेर्भगवन्कस्य काननम् ॥ १९४ ॥
 इति रामेण विनयात्पृष्टो मुनिरभाषत ।
 सिद्धाश्रमोऽयं देवस्य विष्णोर्वाभनरूपिणः ॥ १९५ ॥
 योगेन वामनो भूत्वा यः क्रान्त्वा भुवनत्रयम् ।
 जहार जगतीं कृत्स्नां त्रैलोक्यजयिनो बलेः ॥ १९६ ॥
 तदाश्रमपवित्रेऽस्मिन्कानने सिद्धसेविते ।
 यज्ञभूर्मम तद्भक्तिसुधाप्लावितचेतसः ॥ १९७ ॥
 इत्युक्ते मुनिनाभ्येत्य सिद्धाश्रमनिवासिनः ।
 सज्जोऽयं यज्ञसंभारस्तवेत्युचुस्तमग्रतः ॥ १९८ ॥
 अथ राघववाक्येन दीक्षां कौशिकनन्दनः ।
 विवेश वीतविघ्नेन मनसा व्यस्तविप्लवः ॥ १९९ ॥

१. 'समौसनम्'; 'ससौमनम्' इति च पाठः.

ततो मुनिगिरा रामः ऋतुत्राणाय सानुजः ।
 निर्निद्रः षडहोरात्रं तस्थौ स्थाणुपराक्रमः ॥ १७० ॥
 षष्ठेऽहनि मुनेर्वेद्यां ज्वलिते जातवेदसि ।
 अभवद्भीमनिर्घोषैर्व्याप्तं नक्तंचरैर्नभः ॥ १७१ ॥
 रक्तास्थिवर्षिणां तेषां भेषौघविपुलैर्वलैः ।
 ग्रस्ता हवोग्रतिमिरैर्नभूवुरभितो दिशः ॥ १७२ ॥
 तेषां नभसि गम्भीरसंरम्भैर्घोरैर्विक्रमैः ।
 अभवद्भूतभयदैर्भ्रान्तेषु भुवनत्रयी ॥ १७३ ॥
 तान्वीक्ष्य लक्ष्मणं रामः स्मितधौताधरोऽवदत् ।
 सौमित्रे यज्ञविज्ञानामिमास्तु सैन्यसंपदः ॥ १७४ ॥
 पश्य क्षपाचरव्यूहैर्मोहैरिव विकारिभिः ।
 नीतं मलिनतां व्योम मनस्तनुभृतामिव ॥ १७५ ॥
 इत्युक्त्वा मारुतं रामः प्राहिणोदस्त्रमद्भुतम् ।
 दोलाविलासं यत्पक्षपवनैर्लेभिरे दिशः ॥ १७६ ॥
 येन मारुतवेगेन क्षिप्तो मूर्छितमानसः ।
 पपात योजनशतस्यान्ते मारीचराक्षसः ॥ १७७ ॥
 आग्नेयेन चलज्ज्वालाजटिलाग्रेण राघवः ।
 ददाह सर्वदाहं च सुबाहुं रक्षसां पतिम् ॥ १७८ ॥
 हत्वा तदनुगान्सर्वान्वातास्त्रेण ब्रमाथिना ।
 निर्विघ्नं राघवश्चक्रे यज्ञक्षेत्रं महामुनेः ॥ १७९ ॥
 पतिते सुन्दतनये मारीचे जलधेस्तटे ।
 उपसुन्दसुते भग्ने सुबाहौ बलशालिनि ॥ १८० ॥
 बभूव सिद्धगन्धर्वगणकिंनरयोषिताम् ।
 नवे रामस्य चरिते मिथः कोऽपि कथारसः ॥ १८१ ॥
 इति सुबाहुवधः ॥ ९ ॥

ततः पूर्णे महायज्ञे राममूर्चमहर्षयः ।
 मखोऽयं कौशिकेनासस्वत्पराक्रमरक्षितः ॥ १८२ ॥
 मिथिलाधिपतेर्यज्ञः शतक्रतुसमश्रियः ।
 राज्यकल्पद्रुमफलं जनकस्य भविष्यति ॥ १८३ ॥
 चन्द्रचूडधनुस्तत्र दिव्यं सदसि दृश्यते ।
 संकल्पेऽपि न धर्तुं यत्प्रगल्भास्त्रिदशा अपि ॥ १८४ ॥
 तदेहि मिथिलां राम गच्छामः क्षमापतेर्मेखे ।
 दुर्धर्षे द्रक्ष्यसि धनुस्तत्र त्रिपुरवैरिणः ॥ १८५ ॥
 इत्युक्ते मुनिभिः प्रीत्या सहितैस्तैः सलक्ष्मणः ।
 विश्वामित्रं पुरस्कृत्य प्रतस्थौ मिथिलां ततः ॥ १८६ ॥
 ते व्रजन्तः समासाद्य शोणं शोणांशुमालिनि ।
 संध्यायां तत्ते तस्थुर्जपहोमकृतक्षणाः ॥ १८७ ॥
 रामस्तत्र सुखासीनं विश्वामित्रं पुरस्थितः ।
 पप्रच्छ देशः कस्यायमिति रम्यतयाहतः ॥ १८८ ॥
 तमब्रवीन्मुनिवरः पुत्रोऽभूद्ब्रह्मणः कुशः ।
 कुशनाभः कुशाम्बाख्यमसूर्तरजसं वसुम् ॥ १८९ ॥
 स प्राप तनयान्वीरान्भुजस्तम्भितभूमिपान् ।
 व्यधात्कुशाम्बः कौशाम्बीं कुशनाभो महोदयम् ॥ १९० ॥
 प्रागज्योतिषमसूर्ताख्यो वसुश्चक्रे गिरिव्रजम् ।
 घृताच्यां सुरसुन्दर्यां कन्यानामभवच्छतम् ॥ १९१ ॥
 कुशनाभस्य राजर्षेर्हरिणीहारिचक्षुषः ।
 ता यौवनवसन्तेन भूषिताः स्तवकस्तनैः ॥ १९२ ॥
 बभुर्विलासललिता लता इव सविभ्रमाः ।
 उद्यानकेलिसंसक्तास्ता विलोक्य समीरणः ॥ १९३ ॥

१. 'मुनेर्यज्ञे' क. २. 'शोभते' क. ३. 'असूर्तरजसो नाम धर्मीरण्यं महामतिः'
 रामायणे.

ययाचे संगमं रागात्र चामन्यन्त कन्यकाः ।
 सर्वान्तश्चारिणो धैर्यं नाभवत्तस्य रागिणः ॥ १९४ ॥
 अभग्नप्रणया शक्तिर्महत्त्वपि मनोभुवः ।
 कुलाभिमानात्कन्याभिः स निषिद्धः पितुर्भयात् ॥ १९५ ॥
 प्रविश्य सर्वगात्राणि क्रुद्धः कुब्जीचकार ताः ।
 प्रभञ्जनेन भग्नास्ताः पितुरेत्य न्यवेदयन् ॥ १९६ ॥
 कुब्जत्वात्कन्यकानां तत्कान्यकुब्जमभूत्पुरम् ।
 अत्रान्तरे ब्रह्मचारी सूरिर्नाम महामुनिः ॥ १९७ ॥
 ऊर्णायुपुत्र्या गन्धर्व्या तोषितः परिचर्यया ।
 वरादात्मोपमं नाम तस्मात्पुत्रमवाप सा ॥ १९८ ॥
 ब्रह्मदत्तं महीपालं प्रथितं विपुलैर्गुणैः ।
 तस्मै ताः कन्यकाः प्रादात्कुशनाभो महीपतिः ॥ १९९ ॥
 विवाहे तत्करस्पर्शपात्रस्वस्थाखिलाङ्गकाः ।
 कुशनाभोऽथ पुत्रेष्ट्यां गार्धिं पुत्रमवाप्तवान् ॥ २०० ॥
 तस्याहं तनयो राम स्वसा सत्यवती च मे ।
 ऋषीकाय पुरा दत्ता साभवत्कौशिकी नदी ॥ २०१ ॥
 तथैव पुण्यसरिता देशोऽयं कल्मषापहः ।
 विभाति धाम धर्मस्य मनोनयननन्दनः ॥ २०२ ॥
 अथावशेषा रजनी नीतास्माभिः कथारसात् ।
 निस्पन्दास्तरवोऽप्येते निद्रयेवाभिमुद्रिताः ॥ २०३ ॥
 स्नेहसुतवधूकेशपाशसंकाशरोचिषः ।
 गर्जद्गजमदौघस्य तमसः पश्य यौवनम् ॥ २०४ ॥
 उदितेयं शशाङ्कस्य शनकैर्दृश्यते कला ।
 तमोमत्तवराहस्य दंष्ट्रेव समरच्युता ॥ २०५ ॥

१. 'चूलीनाम' रामायणे. २. 'तपस्यन्तमृषिं तत्र गन्धर्वां पर्युपासते । सोमदा नाम
 भद्रं ते उर्मिलातनया तदा ॥' रामायणे. ३. 'ऋचीकाय' रामायणे.

सेयं शशिकला शर्वमौलिमैत्रीपवित्रिता ।

राजते ध्वस्तमिमिरा ध्वस्तमोहेव धीः सताम् ॥ २०६ ॥

कथयित्वेति विरते मुनौ सा यामिनी शनैः ।

जगाम कुमुदाबन्धुभीतेव अमरावली ॥ २०७ ॥

इति कौशिकवंशः ॥ ६ ॥

ततः शोणं समुत्तीर्य जाह्नवीं च शनैर्वनम् ।

ते प्राप्य गङ्गापुलिने दिनान्ते चक्रिरे स्थितिम् ॥ २०८ ॥

गङ्गावतरणं तत्र पृष्टो रामेण कौतुकात् ।

मुनिमध्ये सुखासीनो बभाषे कौशिको मुनिः ॥ २०९ ॥

बभूवतुर्दुहितरौ पुरा हिमवतो गिरेः ।

गङ्गा च देवतटिनी गौरी च भववल्लभा ॥ २१० ॥

उग्रेण तपसा देवी वरं प्राप्य पिनाकिनम् ।

विजहार चिरं दिव्यकैलासगिरिसानुषु ॥ २११ ॥

तत्र स्पर्धानुबन्धेन प्रवृत्ते रतिसंगरे ।

अश्रान्तमेवेश्वरयोर्दिव्यं वर्षशतं ययौ ॥ २१२ ॥

अथ ब्रह्ममुखा देवास्त्रस्ताल्लैलोक्यविप्लवात् ।

अतो भूतं समुद्भूतं धर्तुं शक्यति को न्विति ॥ २१३ ॥

ते गत्वा शरणं सर्वे मेघव्यवहिताः पुरा ।

महारतस्य विरतिं प्रणिपत्य ययाचिरे ॥ २१४ ॥

तानुवाच हरः प्रीत्या भगवान्भूतभावनः ।

क्षुभितं मे निजपदात्कस्तेजो धारयिष्यति ॥ २१५ ॥

इत्युक्ते चन्द्रचूडेन जगदुः प्रणताः सुराः ।

दुःसहं भवतस्तेजो धर्तुं देवी क्षमा क्षितिः ॥ २१६ ॥

सेयं भूतपरित्राणं भूतधात्री करिष्यति ।

इत्युक्ते त्रिदशैर्देवः क्षितौ वीर्यमिवासृजत् ॥ २१७ ॥

तेन व्याप्तां महीं दृष्ट्वा सुराः सगिरिसागराम् ।
 तत्संग्रहाय दहनं सानिलं समचोदयत् ॥ २१८ ॥
 तत्तेजो वह्निना व्याप्तं बभूव श्वेतपर्वतः ।
 जातरूपमयं दीप्तं तथा शरवणं महत् ॥ २१९ ॥
 ततः सुरान्गिरिसुता शशाप कुपिता पुरः ।
 अपत्यं वः स्वदारेषु न कदाचिद्भविष्यति ॥ २२० ॥
 अपत्यप्रीतिरहिता बहुभोज्या च भूरियम् ।
 यास्यत्यनेकरूपत्वमित्युक्त्वा लज्जिताभवत् ॥ २२१ ॥
 ततो देव्या सह तपश्चक्रे हिमगिरौ हरः ।
 परकार्यसुखाः सन्तः स्वसुखेषु पराङ्मुखाः ॥ २२२ ॥
 अत्रान्तरे सुरा ब्रह्मवाक्यात्सेनाधिपार्थिनः ।
 गङ्गायां जनयापत्यमित्यूचुर्जातवेदसम् ॥ २२३ ॥
 तेनाथ गर्भाधानाय प्रार्थिता व्योमवाहिनी ।
 दिव्यरूपाभवद्देवी प्रीतये त्रिदिवौकसाम् ॥ २२४ ॥
 सा वीक्ष्य दुःसहं तेजो व्यकीर्यत समन्ततः ।
 वीर्येणापूरयत्तां च विकीर्णः सर्वतोऽनलः ॥ २२५ ॥
 पूर्णेषु सर्वस्रोतःसु सा बभाषे हुताशनम् ।
 तेजस्ते नोत्सहे धर्तुं घोरं व्यथितमानसा ॥ २२६ ॥
 इत्युक्त्वा जाह्नवी वह्निवचसा हिमवत्तटे ।
 तत्याज सर्वस्रोतोभिर्गर्भमाभासुरं जवात् ॥ २२७ ॥
 धरण्यां हेम तदभूत्ताम्रं कृष्णायसं मुखात् ।
 मलं त्रपुसनागादिघातुजं विविधं तथा ।
 तत्र गर्भे च्युतं सर्वं जातरूपमभूद्भेनम् ॥ २२८ ॥
 स कुमारः शरवणे कृत्तिकाक्षीरवर्धितः ।
 कार्तियेकोऽभवद्ब्रह्मसहस्रांशुसमद्युतिः ॥ २२९ ॥

षण्णां स पुत्रको धीरः कृत्तिकानां षडाननः ।

बभूव सुरसेनासु नायकस्तारकान्तकः ॥ २३० ॥

इति कुमारोत्पत्तिः ॥ ७ ॥

बभूव सगरो नाम मनुवंश्यो महीपतिः ।

अयोध्यायां सुधासिन्धुरिव जन्मावधिः श्रियः ॥ २३१ ॥

बभूव केशिनी नाम वैदर्भी तस्य बलभा ।

सुमतिश्च सुपर्णस्य भगिनी विनतात्मजा ॥ २३२ ॥

भार्याद्वयमुपाकृत्य पूर्णं वर्षशतं तपः ।

भृगोर्वरादभिमतं स संतानमवाप्तवान् ॥ २३३ ॥

षष्ठिपुत्रसहस्राणि पुत्रं चैकमवाप्य सः ।

तमेकमसमञ्जाख्यं प्रजाद्विद्विष्टमत्यजत् ॥ २३४ ॥

अंशुमन्तं सुतं तस्य पौत्रमादाय पुत्रवत् ।

स बभूवाश्वमेधाय दीक्षितः पृथिवीपतिः ॥ २३५ ॥

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।

हृतः केनापि भूतेन तस्याश्वोऽदृश्यतां ययौ ॥ २३६ ॥

षष्ठिपुत्रसहस्राणि शासनात्तस्य वाजिनम् ।

उपलब्धुं दिशो जग्मुर्दारिताखिलभूतलाः ॥ २३७ ॥

वध्यमानेषु भूतेषु तैरश्वहरणक्रुधा ।

दारिते च महीपीठे नादृश्यत हयः कश्चित् ॥ २३८ ॥

पुनः पुत्राः सैमादिष्टास्ते निर्भिन्नमहीतलाः ।

ददृशुर्दिग्गजान्मूर्ध्ना धृतविश्वंभराभरान् ॥ २३९ ॥

विरूपाख्यं महापद्मं भद्रं सुमनसं तथा ।

ते तान्प्रदक्षिणीकृत्य गजान्कैलाससंनिभान् ॥ २४० ॥

पाताले ददृशुर्देवं कपिलं वैष्णवं महः ।

कर्तारं घोरतपसां प्रवरं सर्वतेजसाम् ॥ २४१ ॥

ते तमश्चहरं ज्ञात्वा संरम्भात्समभिद्रुताः ।
 तदृष्टिनिष्टाः प्रययुर्भस्मकूटावशेषताम् ॥ २४२ ॥
 सगरेण विसृष्टोऽथ पौत्रः साधुरयांशुमान् ।
 प्रविश्य पातालतलं दिग्द्विपेन्द्रगिरा वशी ॥ २४३ ॥
 ज्वलत्कपिलकोपेन निर्दग्धान्सगरात्मजान् ।
 तन्मातुलस्य च गिरा ज्ञात्वा ताक्ष्यस्य दुःखितः ॥ २४४ ॥
 पापापनुत्तये तेषां ज्ञात्वा मन्दाकिनीपयः ।
 चरन्तं हयमासाद्य गत्वा पित्रे न्यवेदयत् ॥ २४५ ॥
 समाप्ते विधिवद्यज्ञे सगरो भूभृतां वरः ।
 त्रिंशद्वर्षसहस्राणि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ ॥ २४६ ॥
 ततोऽंशुमानभूद्राजा सुचिरं तेजसां निधिः ।
 राज्यं दत्त्वा दिलीपाय पुत्राय गुणशालिने ॥ २४७ ॥
 द्वात्रिंशत्स सहस्राणि वर्षाणां तुहिनाचले ।
 तपः कृत्वा ययौ दिव्यं धाम धुर्यो महीभृताम् ॥ २४८ ॥
 दिलीपोऽब्दसहस्राणां राज्यं कृत्वापि विंशतिम् ।
 भगीरथाय पुत्राय श्रियं दत्त्वा दिवं ययौ ॥ २४९ ॥
 श्रुत्वा सगरपुत्राणां पूर्ववृत्तं भगीरथः ।
 ऊर्ध्वबाहुस्तपश्चक्रे गोकर्णे स्थाणुनिश्चलः ॥ २५० ॥
 ततो वर्षशतस्यान्ते तमभ्येत्य प्रजापतिः ।
 वरं गृहाणेत्यवदत्तच्छ्रुत्वा स नृपोऽभ्यधात् ॥ २५१ ॥
 अवतीर्णेन भगवन्गाङ्गेन नमसोऽम्भसा ।
 आप्लावयितुमिच्छामि भस्मीभूतान्पितामहान् ॥ २५२ ॥
 सदा निरवसादं च कुलमिक्ष्वाकुभूभृताम् ।
 उक्ते भगीरथेनेति तमूचे चतुराननः ॥ २५३ ॥
 राजन्गाङ्गावतारोऽस्तु कुलं वोऽस्तु सदोदितम् ।
 धर्तुं सुरापगावेगं किं तु शर्वः प्रसाद्यताम् ॥ २५४ ॥

दिवः सा वेगनिर्घातनिपातक्षुभितं क्षणात् ।
 दारयत्येव गङ्गायाः पातालं सप्तमं पयः ॥ २५५ ॥
 सहेत कस्तदन्यत्र देवदेवान्महेश्वरात् ।
 इत्युक्त्वा पद्मभूर्गङ्गामादिदेश तदीप्सिताम् ॥ २५६ ॥
 अथ राजा निराहारनिरुद्धप्राणधारणः ।
 वर्षं तपश्चचारैकचरणाङ्गुष्ठनिष्ठितः ॥ २५७ ॥
 ततस्तुष्टस्तमम्येत्य भगवान्भूतभृद्भवः ।
 त्वद्वाञ्छितं करोमीति बभाषे शशिशेखरः ॥ २५८ ॥
 अधिरुद्धाथ शिखरं स तुषारमहीभृतः ।
 विप्रकीर्णजटाजूटं जीमूतपटलोपमम् ॥ २५९ ॥
 देवदेवश्च प्रोवाच देवस्त्रिदशवाहिनीम् ।
 दन्तांशुभिस्तत्प्रवाहः सूत्रपातमिवाचरन् ॥ २६० ॥
 ततस्तरङ्गसंघातसंघट्टविकटा सरित् ।
 पपात मूर्ध्नि देवस्य स्फीतफेनाट्टहासिनी ॥ २६१ ॥
 सा बभ्राम जटाजूटे चिरं देवस्य धूर्जटेः ।
 गम्भीरग्रन्थविज्ञाने मुग्धस्येवाल्पिका मतिः ॥ २६२ ॥
 अप्राप्तमार्गा सा तत्र ग्राम्येव नगराङ्गना ।
 न ससादार्थमत्यन्तभ्रान्तिश्रान्तेव मूर्छिता ॥ २६३ ॥
 ततः संवत्सरे पूर्णे तपसा प्रार्थितो भवः ।
 भगीरथेन तत्याज जटां निष्पीड्य जाह्नवीम् ॥ २६४ ॥
 सा शंकरशिरःशृङ्गविभ्रष्टा जगतीं ययौ ।
 वन्द्यमाना जगद्वन्द्यैः सिद्धैः संविदितात्मभिः ॥ २६५ ॥
 स्फुटस्फटिकशैलभैरदभ्रशुभ्रपातिभिः ।
 बभौ क्षमां क्षालयन्ती सा निर्घोषोद्वेलितैर्जलैः ॥ २६६ ॥
 चलत्कुटिलकल्लोलविलाससलिलेन सा ।
 चक्रे बालानिलालोलदुकूलकलनां भुवम् ॥ २६७ ॥

परमेष्ठिमुखैर्देवैरनुयाता महर्षिभिः ।
 व्यधाद्वीचिचयैः स्वर्गसोपानपदवीं नृणाम् ॥ २६८ ॥
 तस्या विग्रहवान्हर्ष इव राजा भगीरथः ।
 पुरो ययौ मुनिगणैः सह पूर्णमनोरथः ॥ २६९ ॥
 स पातालतलं नीत्वा गङ्गां सगरजन्यनाम् ।
 तत्पुण्यसलिलस्पृष्टभस्सनां स्वर्गतिं व्यधात् ॥ २७० ॥
 स्वर्गगान्ब्रह्मणो ज्ञात्वा सकलान्सगरात्मजान् ।
 क्रियां तत्सलिलैस्तेभ्यः कृत्वान्तर्निर्वृतो नृपः ॥ २७१ ॥
 सागराश्च बभूवुस्ते खाताः सगरसूनुभिः ।
 एवं त्रिपथगा प्राप भुवं भागीरथी नदी ॥ २७२ ॥
 इति गङ्गावतरणम् ॥ ७ ॥
 ततः प्रभाते शनकैर्ब्रजन्तस्ते सकौतुकाः ।
 विशालां नगरीं प्रापुर्गङ्गापुलिनमेखलाम् ॥ २७३ ॥
 पुरीं दृष्ट्वा विशालाख्यां कान्तां सुमतिभूपतेः ।
 पप्रच्छ तत्कथां रामः कौशिकं सोऽप्यभाषत ॥ २७४ ॥
 पुरा कृतयुगे पुत्रा दितेदैत्या महाबलाः ।
 अदितेश्च सुराः सर्वे ममन्थुः क्षीरसागरम् ॥ २७५ ॥
 दण्डं मन्दारमादाय दीर्घनेत्रं च वासुकिम् ।
 क्षिप्त्वा सर्वौषधीस्तैस्मिन्नाक्रान्ते तैः सुधार्थिभिः ॥ २७६ ॥
 षष्टिकोट्यो मृगाक्षीणां दिव्यानामुदितो गणः ।
 सरसास्वप्सु जातत्वात्ताः स्वर्गेऽप्सरसः श्रुताः ॥ २७७ ॥
 ताः साधारणतां प्रापुरगृहीताः सुरासुरैः ।
 ततः समुदभूदिव्या कन्यका वारुणी सुरा ॥ २७८ ॥
 तन्त्यागादसुरा दैत्या देवास्तसंगमात्सुराः ।
 उच्चैःश्रवाः कौस्तुभश्च पीयूषं चोदितं ततः ॥ २७९ ॥

१. सर्वत्र. २. 'मालिनीम्' ग. ३. 'तापित' क; 'सुमित' ग. ४. 'नीडं' ग.
 'स्तत्र संप्राप्ते तैः' ग.

अथो धन्वन्तरिर्जातः सुधापूर्णकमण्डलुः ।
 सर्वौषाधगणैः कान्तैः सिद्धिदो भिषजां वरः ॥ २८० ॥
 ततोऽभूदुत्कटाटोपः कलाकूटः समुत्प्लवः ।
 अतीवायासितस्येव कोपस्तीक्ष्णो महोदधेः ॥ २८१ ॥
 अमृतार्थे बभूवोऽग्रः संग्रामस्त्रिदिवौकसाम् ।
 दैत्यानां च चिरं सर्वलोकक्षयपरिश्रमः ॥ २८२ ॥
 शतक्रतुस्ततः प्राप्य निहताशेषदानवः ।
 सुधां राज्ये स्थितः प्राप विजयव्यञ्जनं यशः ॥ २८३ ॥
 हतपुत्रा दितिर्दुःखाद्भर्तारं कश्यपं सती ।
 शक्रहन्तारमिच्छामि पुत्रमित्यब्रवीत्कुधा ॥ २८४ ॥
 तामुवाच कृपाविष्टः कश्यपः शास्त्रलोचनाम् ।
 तनयं शक्रहन्तारं बलज्येष्ठं त्वमाप्स्यसि ॥ २८५ ॥
 अत्यन्तशुचियुक्ता चेद्गर्भे वार्षसहस्रके ।
 इति तच्छासनं प्राप्य गर्भे च प्रयता दितिः ॥ २८६ ॥
 तपश्चचार सुचिरं वीरासुरजिगीषया ।
 छलप्रेक्षी बभूवास्याः परिचर्यापरः सदा ॥ २८७ ॥
 समित्कुशामिकुसुमाहारी तत्र शतक्रतुः ।
 ततो वर्षसहस्रान्ते कृत्वा पादपदे शिरः ॥ २८८ ॥
 निद्रां विमोहिता भेजे दितिः पुण्यैर्मरुत्पतेः ।
 गर्भे प्रविश्य शक्रोऽपि चक्रे वज्रेण सप्तधा ॥ २८९ ॥
 प्रबुद्धां रोदनेनास्य दितिं ज्ञात्वा सुराधिपः ।
 मा रोदीरिति तं गर्भे वदन्पुनरदारयत् ॥ २९० ॥
 ततः प्रभृति शक्रोऽभूद्विश्रुतः पाकशासनः ।
 स निर्गत्य दितिं दीनां प्रसाद्य मुदितोऽभवत् ॥ २९१ ॥
 तं सप्तधाकृतं बालं वातस्कन्धेषु सप्तसु ।
 विदधेऽधिपतिं शक्रो दितेः प्रणयशासनात् ॥ २९२ ॥

मा रोदीरिति शक्रोक्त्या मरुतस्ते महौजसः ।
 बभूव त्रितयो येषां विधुद्वायुरिति श्रुतः ॥ २९३ ॥
 विन्गलस्तत्सुतो राजा यस्येयं विपुला पुरी ।
 इहाद्य सुमतिर्नाम विशालकुलजो नृपः ॥ २९४ ॥
 इति मरुदुत्पत्तिः ॥ ८ ॥

इत्युक्तं मुनिना श्रुत्वा व्रजन् रामः सलक्ष्मणः ।
 संपूजितः सुमतिना ददर्श विपुलं वनम् ॥ २९५ ॥
 पुराणैरङ्कितं दृष्ट्वा तत्तपोवनलक्षणैः ।
 विश्वामित्रं स पप्रच्छ मुनिं विस्मितमानसः ॥ २९६ ॥
 शून्योऽपि रुचिरः कोऽयं दरिद्रो गुणवानिव ।
 देशस्तपोवनप्रांयस्तपस्विजनवर्जितः ॥ २९७ ॥
 राघवेनेति विनयात्पृष्टः प्रोवाच कौशिकः ।
 अत्राभवत्पुरा राम गौतमस्याश्रमो मुनेः ॥ २९८ ॥
 अहल्या नाम तस्यासीत्तपःश्रीरिव रूपिणी ।
 भार्या नवाभिलाषस्य पदं सुरपतेरपि ॥ २९९ ॥
 तां भर्त्रा रहितां दृष्ट्वा कदाचित्पाकशासनः ।
 रतियाच्चाप्रणयितो ययौ गौतमरूपभृत् ॥ ३०० ॥
 शक्रोऽयमित्यविज्ञाय तमहल्या कुतूहलात् ।
 चक्रे संपूर्णसंकल्पं तं सौभाग्यवशीकृतम् ॥ ३०१ ॥
 शीलांशुकापहरणप्रगल्भानिलविभ्रमम् ।
 अभिलाषलताबीजं ललनानां कुतूहलम् ॥ ३०२ ॥
 गौतमोऽथ समभ्येत्य शक्रं स्वसदृशं पुनः ।
 ददर्श तूर्णं गच्छन्तं लज्जाविलुलितैः पदैः ॥ ३०३ ॥

१. 'विश्वग्वायुः' ग-पुस्तके शोधितपाठः; 'दिव्यवायुः' इति रामायणे. २. 'इक्ष्वा-
 कोस्तु नरव्याघ्र पुत्रः परमधार्मिकः । अलम्बुषायामुत्पन्नो विशाल इति विश्रुतः ॥' इति
 रामायणदर्शनेन पाठोऽत्र त्रुटितः प्रतीयते. ३. 'प्रतिपन्नाम' ग. ४. 'भाजनं वा' ग.
 ५. 'तां' ग. ६. 'मिति' ग.

लज्जालतापरशुतां यशःशीतांशुमेघताम् ।

मोहश्यामातिमिरतां(?) यातः कस्य न मन्मथः ॥ ३०४ ॥

ततः शक्रस्य सहसा मुनिशापाभिभाषणात् ।

पेततुर्दुनयावस्थासुहृदौ वृषणौ भुवि ॥ ३०५ ॥

गौतमोऽर्थं समभ्येत्य शीलरत्नविनाकृताम् ।

अहल्यामशपत्कोपाद्भुजङ्गीभावदूषिताम् ॥ ३०६ ॥

चिरमस्मिन्निरालम्बा कानने भस्मशायिनी ।

अदृश्या प्राप्स्यसि शुचं रामसंदर्शनावधि ॥ ३०७ ॥

इत्युक्त्वा गौतमः प्रायादपरं तपसे वनम् ।

सुरेन्द्रो मेषवृषणो मेषादाकृष्य चाभवत् ॥ ३०८ ॥

शापात्संतारयैनां त्वमहल्यां रघुनन्दन ।

चिरगूढपरिक्लेशविनाशः सत्समागमः ॥ ३०९ ॥

कौशिकेनेति कथिते रामोऽभ्येत्य सलक्ष्मणः ।

ददर्श सर्वभूतानामदृश्यां गौतमाङ्गनाम् ॥ ३१० ॥

नीहारजालसंछन्नां कलामिव निशापतेः ।

विद्यामिव निरभासामपि नान्तरविस्मिताम् ॥ ३११ ॥

सा दृष्ट्वा राघवौ प्रीता प्रणामानतशेखरौ ।

लेभे चिन्तानलच्छेदसुचिरोच्छ्वासनिर्दृतिम् ॥ ३१२ ॥

तावभ्यर्च्य गताशङ्का त्यक्तशापा मुनेर्वधूः ।

बभौ कुसुमवर्षेण च्छाद्यमाना सुरैर्दिवि ॥ ३१३ ॥

इत्यहल्याशापमुक्तिः ॥ ९ ॥

ततो जनकराजस्य मिथिलां पृथुलश्रियम् ।

ते प्रविश्य मखक्षेत्रं ददृशुर्मुनिसेवितम् ॥ ३१४ ॥

मुनीनां दीप्ततपसां राज्ञां च भुजशालिनाम् ।

ब्रह्मक्षेत्रमयी काचित्तत्र लक्ष्मीरदृश्यत ॥ ३१५ ॥

फुल्लपद्मपलाशाक्षौ धन्विनौ रघुनन्दनौ ।
 जनः किरीटिनौ वीक्ष्य ययौ विस्मयवश्यताम् ॥ ३१६ ॥
 विलोक्य जनसंवाधं मखस्य महतीं श्रियम् ।
 एकान्ते कौशिकमुनिः स्थितिं चक्रे स राघवः ॥ ३१७ ॥
 विश्वामित्रं स्वयं प्राप्तं ज्ञात्वा जनकभूपतिः ।
 प्रत्युद्ययौ पुरस्कृत्य शतानन्दं पुरोहितम् ॥ ३१८ ॥
 स पूजयित्वा विधिवन्मुनिं मान्यं मनीषिणाम् ।
 धन्यताभरणां प्रीतिमवाप बहुमानतः ॥ ३१९ ॥
 अनामयं मुनिः पृष्ट्वा तमूचे विनयानतम् ।
 अहो विराजसे राजन्सदाचारविभूषणः ॥ ३२० ॥
 यज्ञदानोपकाराणां संपत्सूते यशस्तव ।
 पुण्यं त्रिभुवनस्यापि शुभ्रं गाङ्गमिवोदकम् ॥ ३२१ ॥
 अच्छिन्नदानाभरणः सदा धर्मफलोदयः ।
 महात्मनां भवन्त्येव पुण्याः पुण्यविभूतयः ॥ ३२२ ॥
 अहो वत विदग्धेन भवता संमुपार्जितम् ।
 कान्ताकटाक्षचटुलैरक्षयं विभवैर्यशः ॥ ३२३ ॥
 इति ब्रुवाणं जनकः कौशिकं तमभाषत ।
 दन्तांशुभिर्मुखासक्तं सत्यं संदर्शयन्निव ॥ ३२४ ॥
 भगवन्यज्ञसंभारो विभवाडम्बरः परम् ।
 सर्वयज्ञफलप्राप्तिः पवित्रं तव दर्शनम् ॥ ३२५ ॥
 मनोरथावतीर्णोऽपि धन्यतामादधाति यः ।
 स साधुसंगमः कस्य न प्रियः कुशलोदयः ॥ ३२६ ॥
 कस्येमौ धीरगम्भीरव्यञ्जनोर्जितमानसौ ।
 विक्रान्तलक्षणाकारौ सुकुमारौ कुमारकौ ॥ ३२७ ॥
 किमप्युत्सिक्ततामेति दर्शनेनानयोर्मनः ।
 ययोर्विजयवृत्तान्तं शंसतीव भुजद्वयम् ॥ ३२८ ॥

सादरं जनकेनेति पृष्टः प्रोवाच कौशिकः ।
 राज्ञो दशरथस्यैतौ सुतौ सुकृतशालिनः ॥ ३२९ ॥
 शिशू लोकपरित्राणपवित्रचरिताकृती ।
 गुणानां धाम रामोऽयं लक्ष्मणश्चास्य चानुजः ॥ ३३० ॥
 अस्य मन्मस्वरक्षायै राक्षसक्षयकारिणः ।
 याता पुष्पोज्ज्वला कीर्तिर्लोककर्णावतंसताम् ॥ ३३१ ॥
 महावंशभवं वीरं त्वामिवैष गुणोचितम् ।
 आयातस्त्वत्कृतौ द्रष्टुं धनुर्धीरं पिनाकिनः ॥ ३३२ ॥
 इत्युक्तं मुनिना श्रुत्वा जगाद जनकः पुनः ।
 धन्योऽहं यस्य मे रामः समायातः स्वयं गृहम् ॥ ३३३ ॥
 पूज्यः समस्तया लक्ष्म्या ममायं रघुनन्दनः ।
 अब्धेरिव गृहायातः प्रणयात्पुरुषोत्तमः ॥ ३३४ ॥
 इत्युक्ते मिथिलानाथः पूजयन्राघवौ मुदा ।
 समागमं मुनीन्द्रेण प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ३३५ ॥
 विश्वामित्रगिरा ज्ञात्वा शापाद्रामेण मोक्षिताम् ।
 अहल्यां जननीं प्रीतः शतानन्दोऽवदन्मुनिः ॥ ३३६ ॥
 धन्यो दशरथः श्रीमान्राजा पूर्णमनोरथः ।
 यस्य त्वं तनयो राम पुण्यकल्पतरोः फलम् ॥ ३३७ ॥
 विश्वामित्रमखत्राणपवित्रेण महीयसा ।
 यशसा तव शुभ्रेण भान्ति स्तवकिता दिशः ॥ ३३८ ॥
 त्रैलोक्यविजयोदारा कियती तस्य शक्रता ।
 श्रेयःस्ववहितः साक्षाद्भगवान्यस्य कौशिकः ॥ ३३९ ॥
 कुशसूनोः कुशख्यस्य पौत्रोऽयं गाधिनन्दनः ।
 विश्वामित्रः शशासोर्वी पुरा सप्ताब्धिमेखलाम् ॥ ३४० ॥

१. 'पूर्णपुण्यतरोः' ग. २. 'कुशस्य पुत्रो बलवान्कुशनाभः सुधाधिकः । कुशनाभ-
 मुतस्त्वासीद्वाधिरित्येव विश्रुतः ॥' इति रामायणसंवादेनोत्तरपदलोपोऽवगन्तव्यः.

स कदाचिदयं श्रीमान्सैन्येन महता वृतः ।
 विचरन्काननान्तेषु वशिष्ठाश्रममाययौ ॥ ३४१ ॥
 पूज्येन पूजितस्तेन प्रणयाच्च निमग्नितः ।
 कृच्छ्रादिव तथेत्यूचे कौशिकः प्रीतियन्त्रितः ॥ ३४२ ॥
 [वशिष्ठोऽपि समभ्येत्य कामधेनुमभाषत ।
 ससैन्योऽद्य मया राजा विश्वामित्रो निमग्नितः] ॥ ३४३ ॥
 तस्मै प्रयच्छ विविधां भोज्यरत्नांशुकश्रियम् ।
 इत्युक्ता बहुला तेन ददौ सर्वं तदर्थितम् ॥ ३४४ ॥
 अथ राजोचितैर्भोगैस्तृप्तः सबलवाहनः ।
 रत्नैश्च विविधैः प्रीतः क्षमापतिर्विस्मयं ययौ ॥ ३४५ ॥
 स ज्ञात्वा शबलां धेनुं कारणं सर्वसंपदाम् ।
 उवाच प्रीतिमासाद्य वशिष्ठं तपसां निधिम् ॥ ३४६ ॥
 कामधेनुः परं रत्नं रत्नानां भाजनं नृपः ।
 गवां शतसहस्रेण तस्मादेतां प्रयच्छ मे ॥ ३४७ ॥
 तमुवाच वशिष्ठोऽपि नाहं कोटिशतैर्गवाम् ।
 राशिभिर्वा सुवर्णस्य दास्यामि शबलां कश्चित् ॥ ३४८ ॥
 संत्यक्तुं नोत्सहे पुण्यां तपःसिद्धिमिवोत्तमाम् ।
 हव्यकव्याग्निहोत्राणां प्राणानां च समाश्रयम् ॥ ३४९ ॥
 मत्वैतत्कौशिकोऽवादीद्भजानां हेमशालिनाम् ।
 हयानां चेन्दुशुभ्राणां चायुतैः कोटिभिर्गवाम् ॥ ३५० ॥
 देहि मे शबलां ब्रह्मन्निर्वन्धोऽनुशयप्रदः ।
 इत्युक्तो भूमिपालेन वशिष्ठः पुनरभ्यधात् ॥ ३५१ ॥
 राजञ्जीवितसर्वस्वं शबलां न ददामि ते ।
 सैव मे परमं रत्नं सैव यज्ञक्रियाफलम् ॥ ३५२ ॥
 इति ब्रुवाणो न यदा कामधेनुं ददौ मुनिः ।
 तदा जहार बलवान्बलात्कुशिकनन्दनः ॥ ३५३ ॥

ह्रियमाणा वने धेनुर्भूपालेन बलीयसा ।
 दुःखिता साश्रुनयना शरणं मुनिमाययौ ॥ ३९४ ॥
 सावदद्भगवन्कस्मादकस्मादनपायिनी ।
 निर्दोषाहं त्वया त्यक्ता हव्यकव्योपयोगिनी ॥ ३९५ ॥
 एतच्छ्रुत्वा मुनिवरस्तामुवाच कृपानिधिः ।
 न मया त्यज्यसे देवि ह्रियसे प्रसभं मम ॥ ३९६ ॥
 बलवान्कौशिको राजा दुर्बला ब्राह्मणा वयम् ।
 पश्यामि वाहिनीं शस्त्रवीचीबलयसंकुलाम् ॥ ३९७ ॥
 दुःखादिति ब्रुवाणं तं शबला प्रत्यभाषत ।
 क्षात्रं बलं नातिबलं ब्रह्मतेजो महद्बलम् ॥ ३९८ ॥
 शौर्याधिकः क्षत्रियोऽयं तपस्तेजश्च तेऽधिकम् ।
 त्वदनुप्राणितबलं पश्य मामधुना विभो ॥ ३९९ ॥
 इत्युक्त्वा ससृजे वीरान्हुंकारेणैव पल्हवान् ।
 तान्युद्धे क्षपितान्दृष्ट्वा विश्वामित्रस्य सैनिकैः ॥ ४०० ॥
 योनिजान्यवनान्लेच्छाञ्छकृतश्चासृजच्छकान् ।
 काम्बोजान्दरदाञ्छूरान्बाह्निकान्सकिरातकान् ॥ ४०१ ॥
 तुरङ्गान्सासृजद्वीरान्धोरान्हेमाचलत्विषः ।
 ज्वलितानिव दिव्यास्त्रैर्विश्वामित्राभिमन्त्रितैः ॥ ४०२ ॥
 (तिलकम्)

तैर्लेच्छैर्विकृताकारैः प्रदीप्तविविधायुधैः ।
 क्षणेनाभूत्क्षितिपतिर्निहताशेषसैनिकः ॥ ४०३ ॥
 ततः शतं नरपतेः पुत्राणां भुजशालिनाम् ।
 अभ्याद्रवत्सुसंरब्धं वशिष्ठं तेजसां निधिम् ॥ ४०४ ॥
 तानाकृष्टमहाचापखड्गानापतिताञ्जवात् ।
 दृष्ट्वा वशिष्ठो विदधे हुंकारेणैव भस्मसात् ॥ ४०५ ॥

हतपुत्रो हतामात्यः सैन्यहीनो महीपतिः ।
 सोऽभून्निरुद्धकच्छायो दावदग्ध इवाचलः ॥ ३६६ ॥
 भ्राज्यं राज्यं परित्यज्य स गत्वा हिमवत्तटम् ।
 मौनी तपश्चचारोग्रं पादाङ्गुष्ठधृतिश्चिरम् ॥ ३६७ ॥
 तस्य वातभुजः काले स्वयमेत्य चेतुर्मुखः ।
 अर्धितः प्रददौ दिव्यमस्त्रग्रामं वरप्रदः ॥ ३६८ ॥
 दिव्यास्त्रबलसंपूर्णः स गत्वा पुनराश्रमम् ।
 वशिष्ठस्याकरोत्सर्वत्रस्तशिष्यजनोज्झितम् ॥ ३६९ ॥
 ब्रह्मदण्डमथादाय कालदण्डमिवोत्कटम् ।
 ददाह दिव्यान्यस्त्राणि वशिष्ठस्तस्य संगरे ॥ ३७० ॥
 ततः प्रक्षीणसर्वास्त्रो ब्राह्ममस्त्रमथासृजत् ।
 तदपि ब्रह्मदण्डेन ब्रह्मर्षिरफलं व्यधात् ॥ ३७१ ॥
 तस्य ब्रह्मास्त्रसंहारकारिणो भैरवं वपुः ।
 न सेहिरे सुरा द्रष्टुं रोमकूपोद्गतानलम् ॥ ३७२ ॥
 भग्नदर्पस्ततो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः ।
 धिवक्ष्त्रां नलमित्युक्त्वा प्रययौ तपसे पुनः ॥ ३७३ ॥
 स भार्यासहितश्चक्रे दक्षिणां दिशमाश्रितः ।
 तपस्तीव्रं ययुर्येन विस्मयं परमर्षयः ॥ ३७४ ॥
 हविष्यन्दो महिष्यन्दो दृढनेत्रो महोदयः ।
 पुत्रास्तपोवने यस्य जाताः पावकवर्चसः ॥ ३७५ ॥
 पूर्वजा हतशेषाश्च तस्याष्टौ बलवत्तराः ।
 बभूवुर्भुवि विख्यातास्तनया राज्यभागिनः ॥ ३७६ ॥
 पूर्णे वर्षसहस्रेऽथ तपःसंतापितामरम् ।
 ब्राह्मण्यकामं राजर्षिं तं ब्रह्मा स्वयमाययौ ॥ ३७७ ॥
 सोऽवदत्तपसा लोकास्त्वया राजर्षिसंमताः ।
 जिताः संयमिना लब्धं सुकृतं जन्मनः फलम् ॥ ३७८ ॥

१. 'स पुत्रयेकं राज्याय पालयेति नियुज्य च' रामायणे. २. 'वृषध्वजः' रामायणे.

इत्युक्त्वान्तर्हिते क्षिप्रं पद्मयोनौ मुनिः शुचा ।
 प्रदध्यौ मन्युसंतप्तः श्वसन्नाग इवाहतः ॥ ३७९ ॥
 अहो नु नासं ब्राह्मण्यं यत्नेनापि महीयसा ।
 तपो निष्फलतां यातं खलानामिव संगतम् ॥ ३८० ॥
 इत्युक्त्वा पुनरेवोग्रं स चकार महत्तपः ।
 निजधैर्यदृढश्चित्ते निश्चयो हि महात्मनाम् ॥ ३८१ ॥
 अस्मिन्नवसरे सत्यसुधाधौताननद्युतिः ।
 त्रिशङ्कुर्भूमिपालोऽभूदिक्ष्वाकुकुलभूषणम् ॥ ३८२ ॥
 सशरीरो दिवं गन्तुं यियक्षुः स्वपुरोहितम् ।
 वशिष्ठमाहूय परं यत्नवानभवत्कृतौ ॥ ३८३ ॥
 प्रत्याख्यातो वंशिष्ठेन तस्याशक्यतया क्रतोः ।
 वशिष्ठपुत्रानभ्येत्य चक्रे यज्ञे कृतार्थताम् ॥ ३८४ ॥
 कृताञ्जलिरुवाचेदं विपदां विनिवृत्तये ।
 गुरुणा चरणानम्रः संत्यक्तोऽहमकल्मषः ॥ ३८५ ॥
 [गुरुणा प्रतिषिद्धोऽहं युष्माञ्छरणमागतः ।
 भवद्विर्यष्टुमिच्छामि गन्तुं विग्रहवान्दिवम्] ॥ ३८६ ॥
 [उदेति मृत्युः पीयूषात्किमन्यद्विधुरे विधौ ।
 सुहृदः शत्रुतां यान्ति संश्रितश्चाविधेयताम् ॥ ३८७ ॥
 आराधिताश्च कुप्यन्ति दैवोद्धूलितसंपदाम्] ।
 [शैरण्यं शरणं यातस्त्वामहं वाञ्छितास्ये ॥ ३८८ ॥
 पापं मार्ष्टि शुभं सूते सत्यं साधुसमागमः] ।
 गुरुणा प्रतिषिद्धोऽहं युष्माञ्छरणमागतः ॥ ३८९ ॥

१. पञ्चालिखितो ग-पुस्तके. २. कोष्टकान्तर्गतपाठस्य 'कुशलायोद्यतो राजा यातः प्रत्युत शोच्यताम्' इत्यतः प्राग्योजने तु न काप्यनुपपत्तिः. ३. कोष्टकमध्यस्थपाठस्य 'इत्युक्तः कौशिकोऽवादीत्करुणापूर्णमानसः' इत्यतः प्राक्समन्वयो युक्तः प्रतिभाति.

भवद्विर्यष्टुमिच्छामि गन्तुं विग्रहवान्दिवम् ।
 गुण्माभिरपि संत्यक्तो गमिष्यामि परं गुरुम् ॥ ३९० ॥
 शतं वशिष्ठपुत्राणां श्रुत्वेति नृपमब्रवीत् ।
 अशक्यत्वात्परित्यक्तो गुरुणा सत्यवादिना ।
 परान्त्रजसि दुर्वृत्त चण्डालो भव सत्वरम् ॥ ३९१ ॥
 वशिष्ठपुत्रैरित्युक्तो गत्वा निजपुरीं नृपः ।
 अतिवाह्य निशामेकां प्रातश्चण्डालतां ययौ ॥ ३९२ ॥
 अधो नीलाम्बरो रक्तवासाः कल्मषभूषणः ।
 खलैरिवासिकठिनैरायासैः परिवेष्टितः ॥ ३९३ ॥
 तं विलोक्य श्रिया त्यक्तं घोरं निजकुलच्युतम् ।
 तत्यजुर्मन्त्रिणः सर्वे पौराश्च व्याकुलाशयम् ॥ ३९४ ॥
 अहो नु न चलत्येषा पुरुषप्रतिपन्थिनी ।
 अनित्यतेव भावानां भूतानां भवितव्यता ॥ ३९५ ॥
 अनित्या कर्मरेखेव भूतानां परिवर्तिनी ।
 अहो चटुलकलोलकुल्या कुटिलचारिणी ॥ ३९६ ॥
 नृणामुन्मूल्यत्येषा पौरुषं कर्मसंगतिः ।
 कुशलायोद्यतो राजा यातः प्रत्युत शोच्यताम् ॥ ३९७ ॥
 केवलं शरणं प्रायाद्विश्वामित्रं तपोनिधिम् ।
 निवेद्य सर्ववृत्तान्तं तस्मै कारुण्यशालिने ॥ ३९८ ॥
 ईत्युक्त्वा कौशिकोऽवादीत्करुणापूर्णमानसः ।
 एषोऽहं तव साहाय्ये सज्जः क्रतुसमीहिते ॥ ३९९ ॥
 अनेनैव शरीरेण सुरलोकं प्रयास्यसि ।
 इत्युक्त्वा यज्ञसंभारे मुनिः शिष्यानचोदयत् ॥ ४०० ॥
 सोऽभवद्यज्ञकस्तस्य बन्धो निन्द्यतनोर्नृपः ।
 आपन्नत्राणचतुरं चरितं हि महात्मनाम् ॥ ४०१ ॥
 ततः सर्वं मुनिकुलं निमग्नयितुमादरात् ।

विसृष्टा प्रययुस्तेन सर्वे तूर्णं दिशो दश ॥ ४०२ ॥
 अथ प्राप्ते मुनिगणे विश्वामित्रतपोबलात् ।
 यथोक्तमवदन्निष्ठ्यास्तमेत्य महसां निधिम् ॥ ४०३ ॥
 भगवन्मुनयः प्राप्ता वशिष्ठतनयान्विना ।
 महोदयं च दर्पान्धं तदुक्तं श्रूयतां विभो ॥ ४०४ ॥
 स याज्यो यत्र चण्डालः क्षत्रियो यत्र याजकः ।
 ब्रह्मर्षयो वयं तत्र कथं यज्ञसभासदः ॥ ४०५ ॥
 अहो नु ब्राह्मणाः सर्वे महाविप्लवकारिणा ।
 कल्पान्तेनेव गिरयो विश्वामित्रेण पातिताः ॥ ४०६ ॥
 शिष्यैरित्युक्तमाकर्ण्य कौशिकः कोपकम्पितः ।
 वशिष्ठपुत्रानशपन्निःश्वसन्सुमहोदयान् ॥ ४०७ ॥
 मृत्युदग्धाः श्वमांसादाः सप्तजन्मशतानि ते ।
 मुष्टिका नाम विकृताः प्रभविष्यन्ति निर्घृणाः ॥ ४०८ ॥
 परोदयश्च दुर्वृत्तः प्रयास्यति निषादताम् ।
 इत्युक्त्वा सत्यसंकल्पो विरराम महातपाः ॥ ४०९ ॥
 तद्भ्यां दभ्युपगते तस्मिन्यज्ञे महर्षिभिः ।
 ऋत्विङ्गणिहितारम्भः पूर्णो विधिरवर्तत ॥ ४१० ॥
 आहूता यज्ञभागाय नाजग्मुर्देवता यदा ।
 कुपितः श्रुवमुद्यम्य तदा मुनिरभाषत ॥ ४११ ॥
 राजन्मे पश्य तपसो बलमद्भुतकारिणः ।
 सशरीरो दिवं गच्छ सहसा मम तेजसा ॥ ४१२ ॥
 इत्युक्तमात्रे मुनिना दिवमाचक्रमे नृपः ।
 प्रदीप्तमन्त्रतपसां किमसाध्यं महात्मनाम् ॥ ४१३ ॥
 दृष्ट्वा त्रिदिवमारूढं त्रिशङ्कुं त्रिदशेश्वरः ।
 अधःशिराः पतेत्युक्त्वा हुंकारेणेत्यपातयत् ॥ ४१४ ॥
 ततस्त्रिशङ्कुर्निपतंस्त्रायस्वेत्यभ्यधान्मुनिम् ।
 अत्रैव तिष्ठ तिष्ठेति तमूचे कौशिकः कुधा ॥ ४१५ ॥

ततोऽसृजत्स सप्तान्यान्मुनीन्दक्षिणमार्गगान् ।
 परां नक्षत्रमालां च ग्रजापतिरिवापरः ॥ ४१६ ॥
 तं स्रष्टुमुद्यतं देवा ज्ञात्वा त्रस्ता दिवौकसः ।
 ऊचुः सानुशयं कृत्वा दैन्यव्यञ्जनमञ्जलिम् ॥ ४१७ ॥
 गुरुशापादशुचितामयं यातो महीपतिः ।
 सशरीरो दिवं गन्तुं मुने नार्हति सर्वथा ॥ ४१८ ॥
 इति ब्रुवाणान्विबुधानब्रवीत्कौशिको मुनिः ।
 त्रिशङ्कुस्वर्गगमने प्रतिज्ञा नान्यथा मम ॥ ४१९ ॥
 तिष्ठत्वत्रैव भूपालो नक्षत्रैः सह सत्कृतैः ।
 इत्युक्ता मुनिना देवास्तमूचुः शापशङ्किताः ॥ ४२० ॥
 योगसंख्याविहीनानि वैश्वानरपथाद्बहिः ।
 अक्षयान्यत्र तिष्ठन्तु नक्षत्राणि त्वदाज्ञया ॥ ४२१ ॥
 अयं तवाज्ञया राजा तिष्ठत्वत्रैव सर्वथा ।
 कीर्तिश्च तव शुभ्रेयं यशःस्तम्भ इवोज्ज्वला ॥ ४२२ ॥
 उक्त्वेति याते द्युसदां मण्डले मुनिभिः सह ।
 समाप्य कौशिको यज्ञं पुष्करं तपसे ययौ ॥ ४२३ ॥
 अत्रान्तरे नृपः श्रीमानम्बरीषाभिधोऽभवत् ।
 अयोध्यायां सुधासिन्धुरिव धर्मभृदाकरः ॥ ४२४ ॥
 यजमानस्य तस्येन्द्रः पशुं भूमिशतक्रतोः ।
 जहार तत्कृते पृथ्वीं विप्रवाक्याच्चचार सः ॥ ४२५ ॥
 स तपोवनमासाद्य भृगुतुङ्गे स्थितं मुनिम् ।
 ऋचीकं ससुतं भार्यासखं शान्तं व्यलोकयत् ॥ ४२६ ॥
 तं प्रणम्य यथावृत्तं निवेद्यास्मै प्रसाद्य च ।
 गवां शतसहस्रेण ययाचे तं पशुं सुतम् ॥ ४२७ ॥
 ऋचीकस्तमथोवाच ज्येष्ठो नार्हति विक्रयम् ।
 पुत्रो ममायं दयितः कुलमस्मिन्प्रतिष्ठितः ॥ ४२८ ॥

इत्युक्त्वा मुनिना प्रीत्या तद्भार्याप्यवदन्नृपम् ।
 कनीयाञ्छुनको नाम ममायं दयितः सुतः ॥ ४२९ ॥
 नोत्सहेऽहमिमं त्यक्तुं दयितं जीवितादपि ।
 ज्येष्ठः प्रायः प्रियः पुंसां कनीयांसश्च योषिताम् ॥ ४३० ॥
 इति मातुर्वचः श्रुत्वा शुनःशेपो मुनेः सुतः ।
 जगाद मध्यमो धीमान्भूमिपालं स्मिताननः ॥ ४३१ ॥
 न विक्रेयः पितुर्ज्येष्ठः कनीयान्मातुरीप्सितः ।
 अर्थादेवाद्य विक्रीतो मध्यमोऽहमबान्धवः ॥ ४३२ ॥
 इत्युक्ते मुनिपुत्रेण तमेव पशुमीप्सितम् ।
 गवां शतसहस्रेण निनाय वसुधाधिपः ॥ ४३३ ॥
 अयोध्याभिमुखं गच्छन्सोऽवसत्पुष्करे निशाम् ।
 तत्रादौ तु शुनःशेपो विश्वामित्रमभाषत ॥ ४३४ ॥
 भगवंस्त्वामहं प्राप्तः शरणं तपसां निधिम् ।
 ऋचेपुनाहं विक्रीतो मुनिना मध्यमः सुतः ॥ ४३५ ॥
 अस्य राज्ञोऽम्बरीषस्य यातोऽसि पशुतां क्रतौ ।
 रक्ष्यतामिति तेनोक्ते खसुतान्कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ४३६ ॥
 मद्विरा भवतामेकः पशुतां यातु भूपतेः ।
 रक्षणीयः शुनःशेपो मुनिः सर्वात्मना मम ॥ ४३७ ॥
 विश्वामित्रवचः श्रुत्वा घोरं पुत्रास्तमूचिरे ।
 परपुत्रस्य रक्षार्थं स्वपुत्रस्त्यज्यते कथम् ॥ ४३८ ॥
 मनो विकूणकः कोऽयं धर्मो दुष्कृतसंमतः ।
 श्वमांसाशनतुल्योऽयं स्वपुत्रनिधनोद्यमः ॥ ४३९ ॥
 इति पुत्रवचः श्रुत्वा विश्वामित्रः क्रुधा ज्वलन् ।
 श्वमांसवादिनः शापात्तान्निनाय श्वपाकताम् ॥ ४४० ॥
 ततोऽब्रवीच्छुनःशेपं गच्छ राज्ञो महाक्रतौ ।
 गाथाद्वयं पठित्वेदं मां स्मृत्वा शुभमाप्स्यति ॥ ४४१ ॥

इति शासनमासाद्य मुनेर्भूमिभुजा सह ।
 प्रययौ तत्क्रतुक्षेत्रं निर्भयो मुनिपुत्रकः ॥ ४४२ ॥
 सदस्यानुमतः सोऽथ पवित्रीकृतलक्षणः ।
 पवित्रपाशैराविष्टो रक्ताम्बरविलेपनः ॥ ४४३ ॥
 आसाद्य वैष्णवं रूपं मनसा कौशिकं स्मरन् ।
 पठन्गाथाद्वयं प्राप यूषं विशमनास्पदाम् ॥ ४४४ ॥
 ततः प्रीतः सहस्राक्षः फलं बहुगुणं क्रतोः ।
 दत्त्वा राज्ञे शुनःशेषं ररक्ष विपुलाशयः ॥ ४४५ ॥
 कौशिकोऽपि सहस्राब्दं पुष्करे दुष्करं तपः ।
 कृत्वापश्यद्गतस्नातः स्वयं ब्रह्माणमागतम् ॥ ४४६ ॥
 स देवैः सहितस्तस्य विना ब्राह्मण्यमुत्तमम् ।
 दत्त्वा तपःफलं दिव्यं सहसान्तरधीयत ॥ ४४७ ॥
 विश्वामित्रोऽपि तत्प्राप्त्यै पुनस्तीव्रतरं तपः ।
 सुरशङ्कास्पदं मानी चकार दृढनिश्चयः ॥ ४४८ ॥
 ततः कदाचिदभ्येत्य मेनका नाककामिनी ।
 पुष्करे विदधे स्नानं कान्तिसंदेहितोदका ॥ ४४९ ॥
 तां विलासस्मितसुधासेकपलविताधराम् ।
 चलत्कटाक्षविक्षेपरचितश्रवणोत्पलाम् ॥ ४५० ॥
 हेमकुम्भयुगेनेव स्तनभारेण भूषिताम् ।
 विपुलश्रोणिविपुलां कान्तिकल्लोलिनीमिव ॥ ४५१ ॥
 विलोक्य कौशिकमुनिर्ययौ प्रीतिविधेयताम् ।
 महतामपि चित्ताब्धिमन्दरः सर्वथा स्मरः ॥ ४५२ ॥
 (तिलकम्)

स तस्या निर्भरासङ्गप्रणये प्रेमयन्त्रितः ।
 दशवर्षायुतं कालं क्षणं मेने स्मराकुलः ॥ ४५३ ॥

ततोऽनुशयमासाद्य तपोविघ्नमवद्यताम् ।
 शरदीव नदीवेगो हियाभूदल्पको मुनिः ॥ ४९४ ॥
 प्रक्षाल्य मनसो रागं विवेकविमलोऽभवत् ।
 विसृज्य मेनकां चक्रे स चिरं विपुलं तपः ॥ ४९५ ॥
 उत्तराद्रितटे तस्य कौशिकीतीरवासिनः ।
 तपोयुक्तस्य वर्षाणां सहस्रं शनैर्ययौ ॥ ४९६ ॥
 ततो भीताः सुराः सर्वे समभ्येत्य प्रजापतिम् ।
 लभतां कौशिको ब्रह्मशब्दमित्यूचिरे जवात् ॥ ४९७ ॥
 देवैरभ्यर्थितो धाता समेत्योवाच कौशिकम् ।
 मुने नाद्यापि निर्द्वन्द्वो भवानविजितेन्द्रियः ॥ ४९८ ॥
 वशी प्राप्स्यसि कालेन ब्राह्मण्यं ब्रह्मसंमतम् ।
 इत्युक्त्वान्तर्हिते क्षिप्रं विश्वयोनौ महामुनिः ॥ ४९९ ॥
 ऊर्ध्वबाहुर्निरालम्बश्चक्रे वाताशनस्तपः ।
 ग्रीष्मे पञ्चानलः शीते सलिलान्तरमाश्रितः ॥ ४६० ॥
 तैस्योग्रतपसो भीत्या संभ्रमोऽभूद्विकसाम् ।
 सुराङ्गनां ततः शक्रः प्राहिणोत्तज्जिगीषया ॥ ४६१ ॥
 सांशापचकिता प्रायात्कौशिकस्य तपोवनम् ।
 शक्रवाक्यादनुगता मधुना मदनेन च ॥ ४६२ ॥
 ततः फुल्लताजालभ्रमद्भ्रमरमण्डले ।
 स्मरवन्दिनि सानन्दे कलालापिनि कोकिले ॥ ४६३ ॥
 विलाससरसरम्भां रम्भां संभावितस्सराम् ।
 ददर्श कौशिकः कान्तां नयनानन्दकौमुदीम् ॥ ४६४ ॥
 (युगलकम्)
 स तां दीर्घतपाः स्निग्धचक्षुषा क्षणमैक्षत ।
 शोपितेऽपि शरीरेऽस्मिन्नभिलाषो न शुष्यति ॥ ४६५ ॥
 तां ज्ञात्वा तपसो विघ्नं सहस्राक्षेण निर्मिताम् ।
 स शशापाभवद्येन सा शिला वत्सरायुतम् ॥ ४६६ ॥

१. 'मवेत्य' ग. २. 'संगतम्' ग. ३. 'तत्रो' ग.

मन्मथे मधुना सार्धं याते भग्नमनोरथे ।
 कामक्रोधविकारेण पश्चात्तापं ययौ मुनिः ॥ ४६७ ॥
 विप्रप्रसादपर्यन्तं तस्याः शापं विधाय सः ।
 निरुच्छ्वासोऽभवन्मौनी वर्षायुतमभोजनः ॥ ४६८ ॥
 स्थाणुभूते निरालम्बे क्रोधमात्सर्यवर्जिते ।
 विघ्नाः शक्रेरितास्तस्मिन्नावकाशं च लेभिरे ॥ ४६९ ॥
 तस्य वर्षसहस्रान्ते श्रितान्नव्रतपारणः ।
 विप्ररूपः स्वयं शक्रः सर्वमभ्येत्य भुक्तवान् ॥ ४७० ॥
 परं वर्षसहस्रं स निरुच्छ्वासोऽभवत्पुनः ।
 तत्तालुविवरोत्थैश्च धूमैर्द्यौः समपूर्यत ॥ ४७१ ॥
 समुद्भ्रान्ते ततो लोके सदेवासुरपन्नगे ।
 मन्दतेजसि तिग्मांशौ क्षुभिते चाब्धिमण्डले ॥ ४७२ ॥
 विदीर्णे गिरिसंघाते कम्पमाने महीतले ।
 सुरैरभ्यर्थितो ब्रह्मा स्वयं मुनिमुपाययौ ॥ ४७३ ॥

(युगलकम्)

स तस्मै क्षीणमोहाय ददौ ब्रह्मर्षितां विभुः ।
 सोऽकरोत्स्ववशं सर्वान्वेदानमरतां तथा ॥ ४७४ ॥
 ततः प्रजापतिं श्रुतं प्राञ्जलिः कौशिकोऽवदत् ।
 ब्रह्मसूनुर्वशिष्ठो मां ब्राह्मणोऽसीति भाषताम् ॥ ४७५ ॥
 ततः सुरैः समाहूतो वशिष्ठः समभ्येत्य तम् ।
 ब्रह्मर्षये स्वास्ति तुभ्यमित्युवाचास्तकिल्बिषः ॥ ४७६ ॥
 अन्तर्हिते सुरैः सार्धं सहसैव पितामहे ।
 सख्यं कृत्वा वशिष्ठेन कौशिकः सुखितोऽभवत् ॥ ४७७ ॥
 इत्येवं विविधाश्चर्यचरितो भगवानयम् ।
 धन्योऽसि बत काकुत्स्थ गोप्ता यस्य महामुनिः ॥ ४७८ ॥
 इति विश्वामित्रोपाख्यानम् ॥ १० ॥

गौतमेनेति कथिते शतानन्देन सादरम् ।
 जनकः कौशिकं प्रीत्या पुनः पुनरपूजत् ॥ ४७९ ॥
 ततोऽदिनान्ते जनकः प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।
 प्रययौ मुनिमाम्र्य तत्प्रभावं विचिन्तयन् ॥ ४८० ॥
 अथ प्रभाते भूपालः समेत्य प्रणतो मुनिम् ।
 उवाच किं कृत्यमिति प्रणयावर्जिताञ्जलिः ॥ ४८१ ॥
 विश्वामित्रस्तमवददिव्यं तन्निपुरद्विषः ।
 धनुर्वैर्यनिधिर्वीरो राघवो द्रष्टुमर्हति ॥ ४८२ ॥
 श्रुत्वैतत्कौशिकेनोक्तं जगाद जनकः पुनः ।
 प्रभावमस्य धनुषो जानीषे भगवन्स्वयम् ॥ ४८३ ॥
 निमेः षष्ठो देवरातो राजास्माकं पितामहः ।
 हस्ते न्यस्तं पुरा तस्य निजं धूर्जटिना धनुः ॥ ४८४ ॥
 दक्षयज्ञवधे देवान्विधूय प्राज्यतेजसा ।
 अभ्यधाद्भगवान्भोगे लीलाव्यापृतकार्मुकः ॥ ४८५ ॥
 यज्ञभागमकृत्वा मे ये यूयं यज्ञभागिनः ।
 तेषां वः प्रवराङ्गानि शातयत्वेष पत्रिभिः ॥ ४८६ ॥
 इति त्वादिनमीशानं प्रसाद्य त्रिदिवौकसः ।
 शातितः स्वाङ्गतेजोभिः शक्रस्तस्मै महद्भनुः ॥ ४८७ ॥
 तदेतत्तेजसां धाम गृहे नः परमार्चितम् ।
 धनुरास्ते पुरारातेः परं मन्दरगौरवम् ॥ ४८८ ॥
 हलाकृष्टमही जाता जननी कान्तिसंपदाम् ।
 लक्ष्मीर्लावण्यतोयाब्धेः सीता नामास्ति मे^१ सुता ॥ ४८९ ॥
 अधिज्यं धूर्जटिधनुः शौर्यस्य निकषोपमम् ।
 यः करिष्यति स श्लाघ्यां सीतां कीर्तिमिवाप्स्यति ॥ ४९० ॥

१. 'कृतमिति' ग. २. 'भोगी' इत्यस्य स्थाने 'भर्गो' इति शोधितं ग-पुस्तके.
 ३. 'जानकी' ग. ४. 'गोसुता' ग. ५. 'सीतां मूर्ती' ग.

दर्पप्रचण्डदोर्दण्डाः सीतापरिणयोत्सुकाः ।
 चण्डीशचापदण्डेन के नृपा न विडम्बिताः ॥ ४९१ ॥
 अस्मक्ता ग्रहणे तस्य का कथा धारणे पुनः ।
 तोलने नष्टसंकल्पा लङ्घने जलधेरिव ॥ ४९२ ॥
 ते संहता नृपतयस्तुलारोपितविक्रमाः ।
 चक्रुर्मे नगराबन्धं शङ्काकोपाकुलाशयाः ॥ ४९३ ॥
 ततः संवत्सरे पूर्णे क्षीणसैन्याब्धिना मया ।
 देवतानां वराभ्यासं चतुरङ्गं महद्बलम् ॥ ४९४ ॥
 तेन ते विदिताः सर्वे छिन्नच्छत्ररथध्वजाः ।
 स्वपुराणि ययौ भूपा ध्वस्तमानमनोरथाः ॥ ४९५ ॥
 तामिमां शौर्यशुल्कां मे कन्यां कुवलयेक्षणाम् ।
 रामः प्राप्स्यति शक्तश्चेत्कार्मुकारोपणे पणे ॥ ४९६ ॥
 इत्युक्त्वा मन्त्रिणः सर्वानादिदेश महीपतिः ।
 दयितं खण्डपरशोर्धनुरानीयतामिति ॥ ४९७ ॥
 अथाष्टचक्रशकटाकृष्टमञ्जूषिकाश्रितम् ।
 शतैः पञ्चभिरानीतं नृणां धनुरदृश्यत ॥ ४९८ ॥
 ततो जनकराजेन विनयेन निवेदितम् ।
 विश्वामित्रो धनुर्दृष्ट्वा जगाद रघुनन्दनम् ॥ ४९९ ॥
 इदं तन्निष्ठेषु लोकेषु विश्रुतं राम कार्मुकम् ।
 गृहाण क्रियतामस्य व्यापारः पुरुषोचितः ॥ ५०० ॥
 इत्युक्ते मुनिना रामस्तत्प्रणम्यैश्वरं धनुः ।
 जग्राह लीलया कुर्वन्विस्मयाकुलितं जगत् ॥ ५०१ ॥
 स तस्य शुशुभे दिव्यकार्मुकप्रणयी भुजः ।
 रक्ताङ्गदांशुवलयव्यालैः पशुपतेरिव ॥ ५०२ ॥
 क्षणादधिज्यमादाय धनुरद्भुतविक्रमः ।
 धन्विना सह दर्पेण समाकृष्य बभञ्ज तत् ॥ ५०३ ॥

भज्यमानस्य धनुषो ध्वनिराचार्यतां ददौ ।

अक्राण्डताण्डवारम्भे स्वर्गोद्यानशिखण्डिनाम् ॥ ९०४ ॥

गिरीणां सागराणां च व्याघटितनभस्तलः ।

स शब्दो घोरनिर्घोषैर्दिदेश विशरारुताम् ॥ ९०५ ॥

भुवनभ्रंशकृद्धीमश्वापभङ्गभवो ध्वनिः ।

स चक्रे शक्रकान्तानां कल्पान्तभ्रान्तिसाध्वसम् ॥ ९०६ ॥

भग्नकार्मुकभङ्गेन मन्दरारावकारिणा ।

चकम्पे लोलसप्ताब्धिमेखला वस्तुधावधूः ॥ ९०७ ॥

नृणामाविरभूद्वाहः प्रलयारम्भसंभ्रमात् ।

ऋते विदेहाधिपतेः कौशिकाच्च सराघवात् ॥ ९०८ ॥

ततः स विस्मयोत्साहहर्षप्रणयनिर्भरः ।

उवाच वाञ्छितावासिनिर्वृत्तः पार्थिवो मुनिम् ॥ ९०९ ॥

धन्या मे भगवन्पुत्री प्राप्तो रामः पतिर्यया ।

सप्तार्णवप्रणयिनी कीर्तिर्यस्य नवोदिता ॥ ९१० ॥

सदा विसदृशासङ्गकारिणो वाच्यता विधेः ।

चिरादेव निवृत्तोऽयं रामसीतासमागमः ॥ ९११ ॥

अयोध्यां यान्तु मे दूतास्तूर्णं दशरथं प्रति ।

समायात्वत्र सुकृती सूनोः परिणयोत्सवे ॥ ९१२ ॥

इत्युक्त्वा मिथिलानाथः संकल्पानिव शीघ्रगान् ।

नृपाय प्राहिणोदूतान्वाजिभिर्जवशालिभिः ॥ ९१३ ॥

तेऽपि तूर्णतरं गत्वा सभासीनं नरेश्वरम् ।

चक्रुर्विदितवृत्तान्तं हर्षपीयूषवर्षिणः ॥ ९१४ ॥

इति धनुर्भङ्गः ॥ ११ ॥

ततो दशरथः श्रीमानाययौ मुनिभिर्वृतः ।

वशिष्ठवामदेवाद्यैर्मार्कण्डेयपुरःसरैः ॥ ९१५ ॥

समुद्धूतान्धितुल्येन तस्य सैन्येन सर्पता ।
 दिशः शस्त्रप्रभाजालवीचीवलयिता बभुः ॥ ५१६ ॥
 मिथिलामथ संप्राप्तं तं राजा जनकः स्वयम् ।
 प्रत्युद्ययौ पुरस्कृत्य श्लाघ्यसंबन्धिसंपदम् ॥ ५१७ ॥
 रत्नैरभ्यर्चितस्तेन प्रवेश्येक्ष्वाकुनन्दनः ।
 बभौ मुनिसभासीनश्चतुर्भिस्तनयैः सह ॥ ५१८ ॥
 ततः प्रणम्य पूजार्हान्वशिष्ठप्रमुखान्मुनीन् ।
 प्रशंसद्भजन्म जनको जगाद जगतीपतिम् ॥ ५१९ ॥
 अहो वतावतंसत्वं प्राप्तः पुण्यवतामहम् ।
 वशिष्ठो यस्य भगवान्भवांश्चाभ्यगतो गृहान् ॥ ५२० ॥
 द्वावेव सुकृतोदारौ पितरौ पुत्रिणां वरौ ।
 पुत्रेण राघवेन त्वं विष्णुना स च कश्यपः ॥ ५२१ ॥
 विभाति भूरियशसः कस्यान्यस्य यथा तव ।
 भुवनत्रितयोद्धीतं पुत्रमानोज्ञतं शिरैः ॥ ५२२ ॥
 गृहाण राघवाय त्वं शौर्यशुल्कां सुतां मम ।
 गुरवो दूततां याताः संबन्धेऽस्मिन्मित्रो गुणाः ॥ ५२३ ॥
 जनकेनेत्यभिहितो हर्षाद्दशरथोऽवदत् ।
 बहु मन्यामहे कन्यां त्वया प्रीतिमिवार्पिताम् ॥ ५२४ ॥
 कुले सुविपुले जन्म विद्याविद्योतिता मतिः ।
 महाजनैश्च संबन्धः फलं गुरुजनाशिषाम् ॥ ५२५ ॥
 गुणसौभाग्ययोग्योऽयं भाग्यानां प्रथमोदयः ।
 रामस्य श्रेयसे सक्तो यदसौ कौशिको मुनिः ॥ ५२६ ॥
 (यैथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताडनैः ।
 तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते कुलेन शीलेन गुणेन कर्मणा ॥ ५२७ ॥)
 इत्युक्ते रघुनाथेन मुनयः प्रणयार्जिताः ।
 प्रशशंसुः परिणयं कौशिकं च तपोनिधिम् ॥ ५२८ ॥

१. 'प्रविश्य' स्यात्. २. 'राघवेण' स्यात्. ३. 'यशः' ग. ४. ख-पुस्तके नोपलभ्यते.

यथार्हं पूजितस्याथ जनकेन महीभुजः ।
 आनन्देन्दुसुधासिक्तां सुखेन रजनी ययौ ॥ ५२९ ॥
 पुनः सभामागतयोः प्रभाते भूपयोर्द्वयोः ।
 बभूवानन्तसामन्तैः संघर्ष इव संपदाम् ॥ ५३० ॥
 जनकेन विसृज्याथ शतानन्दं पुरोधसम् ।
 निजोऽनुजः समभ्यायात्समाहूतः कुशध्वजः ॥ ५३१ ॥
 मूकतां बन्दिवृन्देऽथ श्रिते वेत्रभृतां गिरा ।
 वशिष्ठो वदतां श्रेष्ठः प्रस्तावोचितमभ्यधात् ॥ ५३२ ॥
 राजन्प्रवर्ततां पुत्र्यास्तव वैवाहिको विधिः ।
 शुद्धाभिजनयोः श्लाघ्यसंबन्धो युवयोरयम् ॥ ५३३ ॥
 अव्यक्तप्रभवस्यासीन्मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
 कश्यपस्तस्य तनयो विवस्वांस्तस्य चात्मनः ॥ ५३४ ॥
 मनुर्विवस्वतः पुत्र इक्ष्वाकुर्मानवो नृपः ।
 पुत्रो विकुक्षिरैक्ष्वाको बाणस्तस्याभवत्सुतः ॥ ५३५ ॥
 पुत्रोऽनरण्यस्तस्याभूत्पृथुस्तस्मादजायत ।
 ततस्त्रिशङ्करभवद्बुधुमारस्तदात्मजः ॥ ५३६ ॥
 युवनाश्वः सुतस्तस्य मांधाता तत्सुतो नृपः ।
 सुसंधिस्तनयस्तस्य ध्रुवसंधिस्ततोऽभवत् ॥ ५३७ ॥
 तत्सूनुर्भरतो राजा तस्याभूदसितः सुतः ।
 गरेण सहजातश्च तत्पुत्रः सगरोऽभवत् ॥ ५३८ ॥
 तस्यात्मजोऽसमञ्जश्च पुत्रस्तस्यांशुमानपि ।
 दिलीपस्तस्य दायादस्तस्य पुत्रो भगीरथः ॥ ५३९ ॥
 काकुत्स्थस्तस्य तनयो रघुस्तस्यात्मजो नृपः ।
 कल्माषपादस्तत्सूनुः शङ्खनो नाम तत्सुतः ॥ ५४० ॥
 सुदर्शनस्तस्य सूनु रक्तवर्णस्तदात्मजः ।
 शीघ्रगस्तस्य पुत्रोऽथ निमिस्तस्याभवत्सुतः ॥ ५४१ ॥

तस्याम्बरीषस्तनयो नहुषस्तस्य चात्मजः ।
ययातिर्नाहुषो राजा नाभागश्च ययातिजः ॥ ९४२ ॥
अजस्तस्यात्मजो राजा पिता दशरथस्य यः ।
पुत्रा दशरथस्येमे रामपूर्वा मनस्विनः ॥ ९४३ ॥
सुतां देहि त्वमेतेभ्यो आतुस्ते सन्ति कन्यकाः ।
वशिष्टेनेति कथिते जनकोऽप्यभ्यभाषत ॥ ९४४ ॥
इतीक्ष्वाकुवंशकथनम् ॥ १२ ॥

देवरातो निमेः षष्ठो जनकानामभून्नृपः ।
सुवर्णरोमा तस्याभूद्वंशे महति भूपतिः ॥ ९४५ ॥
राज्यभाक्तस्य पुत्रोऽहं चानुजो मे कुशध्वजः ।
पितरि स्वर्गमारूढे पालितः पुत्रवन्मया ॥ ९४६ ॥
कदाचिदथ रुन्धानो मिथिलां विपुलैर्बलैः ।
सांकाश्याधिपतिर्योद्धुं सुधन्वा मामुपाययौ ॥ ९४७ ॥
स विसृज्य मदाध्मातो दूतं समरसंमुखः ।
कुलदैवतमस्माकं ययाचे शांभवं धनुः ॥ ९४८ ॥
स निर्गत्य महावीरः समरोन्माथिनां वरः ।
नीतोऽतिविग्रहरुचिर्यशोविग्रहशेषताम् ॥ ९४९ ॥
तं निहत्य सुधन्वानं सांकाश्यं नाम तत्पुरम् ।
कुशध्वजाय दत्त्वाहं हतारिर्निर्वृतोऽभवम् ॥ ९५० ॥
सीतां ददामि रामाय लक्ष्मणाय तथोर्मिलाम् ।
कुशध्वजस्य जामाता भरतोऽप्यस्तु सानुजः ॥ ९५१ ॥
इत्युक्ते भूमिपालेन महादानपुरःसरः ।
मैहारहमङ्गलोदारः प्रावर्तत महोत्सवः ॥ ९५२ ॥
गवां लक्षाणि साहस्रं ददौ भूपतिशेखरः ।
गवां लक्षाण्यविश्रान्तं दातुं दशरथे स्वयम् ॥ ९५३ ॥

१. 'पुत्रास्ते' इत्यप्युपलभ्यते. २. 'तत्' इत्यपि दृश्यते. ३. 'महार्थ' काश्मीर०.

प्रवृत्ते हेमशृङ्गाढ्या मेरुश्रीरिव भूरभूत् ।
 अत्रान्तरे समभ्यायात्पुत्रः केकयभूपतेः ॥ ९९४ ॥
 युधाजिद्भरतं द्रष्टु मातुलः प्रीतिलालसः ।
 स तत्र पूजामासाद्य लेभे हर्षमहोत्सवम् ॥ ९९५ ॥
 सुखोदग्रोत्सवव्यग्रान्धन्याः पश्यन्ति बान्धवान् ।
 ततः समाययुः कन्याश्चतस्रश्चारुलोचनाः ॥ ९९६ ॥
 मूर्ताः पुष्पशरस्येव कान्तिशक्तिरतिश्रियः ।
 अथ जग्राह जानक्या रामो राजीवलोचनः ॥ ९९७ ॥
 पाणौ हरिणशावाक्ष्याः पाणिं पल्लवकोमलम् ।
 वह्निप्रदक्षिणावृत्ते तारहारांशुहासिनी ॥ ९९८ ॥
 सा बभौ श्रीरिवालोलसुधाकलोलशालिता ।
 अधुना मधुना सार्धं विजयी जृम्भतां स्मरः ॥ ९९९ ॥
 इतीव नूपुरयुगं जगादास्याः पदे पदे ।
 साचीकृतदृशस्तस्याः पक्ष्मच्छायामयं धनुः ॥ १०० ॥
 नीलोत्पलावलीधाम रामः काम इवादधे ।
 लज्जानतमुखाम्भोजा पुलकेनेव चर्चिता ॥ १०१ ॥
 कर्णोत्पलपरागेण सा बभौ शबलस्तनी ।
 दूरे शशाङ्कशङ्कापि लज्जैव जलजोपमा ॥ १०२ ॥
 इति सीतामुखे रामः कलयन्निदधे दृशम् ।
 लज्जालोलैः स्मरस्मारैर्गूढमानन्दमन्दिरैः ॥ १०३ ॥
 लेभे शृङ्गारसाम्राज्यं रामः सीताविलोकितैः ।
 सीतानुजां निर्मलेन्दुवदनामूर्मिलाभिधाम् ॥ १०४ ॥
 विधिना लक्ष्मणः प्राप सैदृत्त इव संपदम् ।
 कुशध्वजसुतां लेभे मालवीं भरतस्ततः ॥ १०५ ॥

१. 'पाणि' शारदा०. २. 'बाल' शारदा०. ३. 'सदृत्तामिव' शारदा०.

श्रुतिकीर्तिं च शत्रुघ्नः श्रुतां कीर्तिमिवापराम् ।
 एवमेव महोत्साहोत्सवतूर्यसमन्विते ॥ ५६६ ॥
 पुरः पुष्पसमाकीर्णे पूर्णे परिणयोदये ।
 गीतनृत्याकुलवधूवदनेन्दुशताचिता ।
 रत्नदीपांशुविषदा रजनी दिनवद्ययौ ॥ ५६७ ॥

(इति सीताविवाहः समाप्तः ।)

ततः प्रभाते भगवान्विश्वामित्रः क्षिंतीश्वरौ ।
 आमन्त्र्य तपसे प्रायात्स्फटिकाचलकन्दराम् ॥ ५६८ ॥
 बहुरत्नमथासाद्य कन्याधनमनुत्तमम् ।
 आमन्त्र्य जनकं राजा प्रतस्थे तनयैः सह ॥ ५६९ ॥
 व्रजतस्तस्य मत्तेभकर्णतालानिलोत्थितैः ।
 बभूवुर्भृङ्गवल्यैः श्यामलाः सर्वतो दिशः ॥ ५७० ॥
 सुचारुचामरोदारस्वच्छच्छत्रांशुहासिनी ।
 गङ्गेव स्फीतफेनाढ्या सा राजध्वजिनी बभौ ॥ ५७१ ॥
 ततोऽभवत्समुद्भूतदुर्निमित्तपरम्परा ।
 खलसंपदिवात्युग्रा सर्वोद्वेगविधायिनी ॥ ५७२ ॥
 प्रकाशकोऽपि भगवान्सूर्योऽभूत्तमसा वृतः ।
 विद्वानिवान्यविज्ञानमात्सर्योपहताशयः ॥ ५७३ ॥
 निर्घातेन क्षितिर्ध्वस्ताधृतिश्चिरमकम्पत ।
 तनुर्विवेकहीनस्य क्रोधेनेवाजितात्मनः ॥ ५७४ ॥
 रजस्तिरस्कृता लोकाः सन्मार्गपरिपन्थिनः ।
 मदस्था इव दुर्निष्ठा बभ्रुमुर्भीषणानिलाः ॥ ५७५ ॥
 पांसुपूर्णचिताकालरजन्या घोररूपया ।
 अविद्ययेव भूतानामभवन्मोहविभ्रमः ॥ ५७६ ॥

१. 'महोत्सवो तूर्यस्वनिरन्तरे' क; 'महोत्सवोत्साहस्वनिरन्तरे' ख. २. 'सुरे'
 ख: 'मर' क. ३. 'वस्तधृति' स्यात्.

अथादृश्यत दिग्दाहदारुणोदरमम्बरम् ।
 वडवाग्निशिखोद्गारघोरं रूपमिवाम्बुधेः ॥ ९७७ ॥
 गम्भीरमोहनिस्पन्दे संदेहान्दोलिते मुहुः ।
 सैन्ये संघ इवाग्नीनां भार्गवः प्रत्यदृश्यत ॥ ९७८ ॥
 ज्वलज्ज्वलनतुल्येन कुठारेणांससङ्गिना ।
 शिखरासक्तसूर्यस्य सुमेरोस्तर्जयन्प्रभाम् ॥ ९७९ ॥
 संरम्भश्चबन्धेन जटाजूटेन बभ्रुणा ।
 लम्बविद्युलताजालभीमः सांध्य इवाम्बुदः ॥ ९८० ॥
 प्रोन्मिषद्विषमाकोपकम्पप्रस्फुरिताधरः ।
 कुर्वन्क्षत्रान्तकालानामसकृद्गणनामिद ॥ ९८१ ॥
 वहन्नर्जुनदोर्दण्डमण्डलच्छेदकोविदे ।
 खण्डधारे कुठाराग्रे मृत्युदन्तावलीमिव ॥ ९८२ ॥
 दधानस्तक्षणाधिज्यं प्राज्यमाभासुरं धनुः ।
 पार्श्वे विश्वक्षयायातपरिवेशमिवांशुमान् ॥ ९८३ ॥
 कैरेणान्दोलयन्नुद्यत्प्रभापरिकरं शरम् ।
 क्षत्रियक्षैयसंसक्तरक्तधारमिवाभितः ॥ ९८४ ॥
 वसिष्ठमुख्या मुनयस्तं वीक्ष्य भयशङ्किताः ।
 स्वस्तीति वादिनस्तूर्णं पूजामस्य प्रचक्रिरे ॥ ९८५ ॥
 भार्गवोऽपि समभ्येत्य राघवं घोरविक्रमः ।
 उवाच लोकान्महतः सहस्रालोकयन्निव ॥ ९८६ ॥
 राम चण्डीशकोदण्डे कृतं किमिति सांप्रतम् ।
 यत्त्वया तदहं मन्ये निखिलं बालचेष्टितम् ॥ ९८७ ॥
 भवता तदसंभाव्यं शांभवे चायुधे कृतम् ।
 नमः कालाय बलिने येनेदं जीर्यते जगत् ॥ ९८८ ॥

-
१. 'लम्बविद्युलताभीमो घोरः सांध्य' शा०. २. 'करेण कलयन्धोर' शोधि०.
 ३. 'क्षोभ' शा०.

दृश्यतामद्भुततरं ममेदं वैष्णवं धनुः ।
 भ्रियतां यदि वीरोऽसि वीरोऽसि यदि कृष्यताम् ॥ १८९ ॥
 अस्मिन्विज्ञातसारस्त्वं समापि समरे शिशो ।
 क्षत्रियक्षयकालाग्नेर्यास्यसि द्वन्द्वयोग्यताम् ॥ १९० ॥
 इति ब्रुवाणे सावज्ञं जमदग्नये ससंभ्रमः ।
 पुत्रप्रीत्या दशरथस्तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ १९१ ॥
 भवता वीतरागेण भगवन्ब्रह्मवादिना ।
 शस्त्रं शक्रपुरो न्यस्तं कोऽयं युद्धादरः पुनः ॥ १९२ ॥
 प्रदाय कश्यपाय त्वं महीं सगिरिसागराम् ।
 संन्यासनिरतः कस्मादकस्माद्योद्धुमागतः ॥ १९३ ॥
 क सा मुनिप्रणयिनी पुण्या संतोषशीलता ।
 क चायं युद्धनिर्वन्धः कलुषः क्षत्रियोचितः ॥ १९४ ॥
 विवेकः शमसंतोषौ क्षमा परहितोद्यमः ।
 सर्वत्र मैत्रमनसामुचितं हि महात्मनाम् ॥ १९५ ॥
 खिग्धा दृष्टिर्मनोमैत्री वाणी पीयूषवर्षिणी ।
 एतास्ताः सत्यतपसां पुण्याः संतोषभूमयः ॥ १९६ ॥
 उक्ते दशरथेनेति तमनादृत्य भार्गवः ।
 राममेवावदत्को हि क्रोधान्धः प्रभुरात्मनः ॥ १९७ ॥
 दिव्ये द्वे धनुषी राम शांभवं वैष्णवं तथा ।
 शांभवं भवता भग्नं वैष्णवं मम वर्तते ॥ १९८ ॥
 धनुःप्रभवसंघर्षाद्वैकुण्ठशितिकण्ठयोः ।
 पितामहोत्साहितयोरभवद्युद्धमुत्तमम् ॥ १९९ ॥
 ततः कार्मुकमत्युग्रमाकृष्टं त्रिपुरारिणा ।
 हुंकारेण हरिश्चक्रे चित्रार्पितमिवाचलम् ॥ २०० ॥
 सभर्गे स्तम्भिते तस्मिन्कार्मुके कैटभारिणा ।
 तत्प्रहारोद्यते विष्णौ विनयाद्वारिते सुरैः ॥ २०१ ॥

वैष्णवं मेनिरे चापं सर्वे विष्णुमिवोत्तमम् ।
 क्रुद्धो रुद्रश्च तत्याज जनकेषु निजं धनुः ॥ ६०२ ॥
 वैष्णवं भार्गवकुले विष्णुना प्रतिपादितम् ।
 ममेदं भासुरं पश्य धनुः क्षत्रकुलोचितम् ॥ ६०३ ॥
 कार्तिवीर्यापराधेन कृत्वा निर्भूमिपं जगत् ।
 महेन्द्रस्थः समाकर्ण्य धनुर्भङ्गमिहानतः ॥ ६०४ ॥
 गृहाण वैष्णवं चापं निजं दर्शय पौरुषम् ।
 ततो ममापि समरे यास्यसि प्रतिमल्लताम् ॥ ६०५ ॥
 इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्राघवः प्रत्यभापत ।
 अपराधोचितः क्रोधो न निन्द्यः क्षत्रियेषु ते ॥ ६०६ ॥
 न च जातस्तदा कश्चित्क्षत्रियो विजयोचितः ।
 योऽपराध्यति नाध्येषु न च याति पराभवम् ॥ ६०७ ॥
 क्षत्रवृत्तं रजोध्वस्तं धूमश्याम इवानलः ।
 तेजस्ते शान्तमेवैतत्संरम्भः कोऽत्र मादृशाम् ॥ ६०८ ॥
 इत्युक्त्वा सशरं त्वस्माच्चापमादाय राघवः ।
 अधिज्यं विदधे वीरस्तूर्णमद्भुतविक्रमः ॥ ६०९ ॥
 तत्समाकृष्य तरसा सह भार्गवतेजसा ।
 नीत्वा कर्णान्तमापूर्णं कीर्णांशुकपिशं शरम् ॥ ६१० ॥
 वामकेयूरकिरणाङ्कुरितोरुशरासनः ।
 दक्षिणाङ्गदरलांशुकृतकर्णावतंसकः ॥ ६११ ॥
 अत्रान्तरे पुरारातेरपेशलशरः स्मरः ।
 अयमित्यद्भुतकथां जनयन्दिव्ययोषिताम् ॥ ६१२ ॥
 तैतः सीताचलापाङ्गदृष्टिभागोत्पलाचितः ।
 उवाच रामः सासूयं स्मितपल्लविताधरः ॥ ६१३ ॥
 पूज्यो मे ब्राह्मणोऽसीति मुने मान्यो मनीषिणाम् ।
 शरीरान्तकरं घोरं शरं न विसृजामि ते ॥ ६१४ ॥

१. 'क्षत्रियचोदितम्' ख. २. 'अनुस्वरः' शोधितपाठः. ३. 'तस्य' शारदा०.

गतिं हन्मि तवानेन लोकान्वा तपसार्जितान् ।
 अमोघः सर्वथा विष्णोरयं घोरतरः शरः ॥ ६१५ ॥
 इति वादिनि काकुत्स्थे सुरा ब्रह्मपुरःसराः ।
 सदैत्यसिद्धगन्धर्वा द्रष्टुमद्भुतमाययुः ॥ ६१६ ॥
 दिवाकर इवोदग्रे मण्डलीकृतकार्मुके ।
 राघवे भार्गवो दीप इवाभूद्विगतप्रभः ॥ ६१७ ॥
 प्रतापहीनो निःस्पन्दश्चित्रन्यस्त इवाचलः ।
 मन्दमन्दस्वरो रामं सोऽवदद्विनयान्वितः ॥ ६१८ ॥
 न हन्तुमर्हसि गतिं मम राम महीयसीम् ।
 आशां सेवाप्रणयिर्नी कुलोन्नत इवेश्वरः ॥ ६१९ ॥
 न कश्यपार्पितभुवो निवासोऽयं ममोचितः ।
 महेन्द्रशैलं गच्छामि तूर्णं गगनवर्त्मना ॥ ६२० ॥
 शरेण जहि मे लोकानमोघो ह्येष दुर्जयः ।
 प्रभाव इव मूर्तस्ते न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ६२१ ॥
 धनुषोऽस्य निजं नाथं जाने त्वां विष्णुमच्युतम् ।
 नीता मधुमुखा येन दैत्याः क्रोधोपहारताम् ॥ ६२२ ॥
 इच्छामात्रेण जगतां प्रलयोदयकारिणा ।
 न मे त्वया जितस्यापि लज्जाधूसरमाननम् ॥ ६२३ ॥
 इत्युक्ते जामदग्न्येन शरं चिक्षेप राघवः ।
 मधुमास इवाशेषा यश्चक्रे विशदा दिशः ॥ ६२४ ॥
 ततः प्रदक्षिणीकृत्य रामं भृगुसुते गते ।
 हस्ते वारिपते न्यस्ते राघवेण शरासने ॥ ६२५ ॥
 हर्षव्याकोशमनसः सेना दशरथस्य सा ।
 ससर्प पवनोद्धृतध्वजपट्टाट्टहासिनी ॥ ६२६ ॥
 इति रामरामसमागमः ॥ १३ ॥
 ततो महोत्सवोत्साहप्रमोदालिङ्गिताङ्गनाम् ।
 प्रविवेश पुरीं भूरिभूषां भूमिपुरंदरः ॥ ६२७ ॥

तत्र त्रिभुवनश्लाघ्यलावण्यललिताननाम् ।
 स्त्रियोऽपि जानकीं वीक्ष्य ययुरुत्कण्ठतामिव ॥ ६२८ ॥
 कौसल्याद्यास्ततो देव्यः पुत्रान्वीक्ष्य बधूसखान् ।
 मूर्तिमद्भिरिवानन्दैर्मङ्गलैरुदिता वभुः ॥ ६२९ ॥
 सेयं सीता शशिमुखी रामोऽयं कमलेक्षणः ।
 इत्यभूत्कौतुकोदारः सर्वत्र जननिःस्वनः ॥ ६३० ॥
 इत्ययोध्याप्रत्यागमनम् ॥ १४ ॥

अथ रामस्य संभोगसुभगोऽभिनवोऽभवत् ।
 मैथिलीवदनाम्भोजमधुपस्य रसोद्भवः ॥ ६३१ ॥
 तयोर्मनोरथरथः प्रणयोदारसारथिः ।
 प्रेमोपदिष्टेन पथा विवेश हृदयं स्मरः ॥ ६३२ ॥
 नवं वयो वपुः कान्तं प्रेम प्रौढं तयोर्ययौ ।
 संपूर्णगुणसाम्राज्ये रामस्यैकातपत्रताम् ॥ ६३३ ॥
 केलिक्लान्तं वपुस्तन्व्याः पीतोच्छिष्टाधरं मुखम् ।
 स्वेदोन्मृष्टं च तिलकं रामो मेने नवं नवम् ॥ ६३४ ॥
 ततो मातामहपुरं भरतः पितुराज्ञया ।
 शत्रुघ्नानुगतः प्रायन्मातुलेनाभियुचितः ॥ ६३५ ॥
 स तत्र गुणरत्नानां महोदधिरिवापरः ।
 जग्राह सकलां विद्यां गुरुभ्यो विमलाशयः ॥ ६३६ ॥
 सच्छास्त्राभिगमात्तस्य धर्मसंक्रान्तिदर्पणम् ।
 मनो बभूव विशदं मार्जितं सुकृतैरिव ॥ ६३७ ॥
 भरते सानुजे राज्ञः कैकेयस्य पुरे स्थिते ।
 उत्कण्ठाकुलितो भेजे चिन्तां दशरथो नृपः ॥ ६३८ ॥
 रामः सर्वगुणग्रामरमणीयोऽधिकं पितुः ।
 हृदयोद्गीतचरितः प्रजानामभवत्प्रियः ॥ ६३९ ॥

१. 'रतोत्सवः' शोधित०. २. 'जगत्ये' शोधित०. ३. 'पूजितः' शारदा०

वाणी सत्यसुधाधौता विवेकाभरणं मनः ।
 प्रसादमधुरा दृष्टिः सत्त्वस्तवकिता मतिः ॥ ६४० ॥
 विनयानर्घ्यमाणिक्यमुकुटालंकृतं शिरः ।
 श्रवणासक्तशास्त्रार्थमण्डलोज्ज्वलमाननम् ॥ ६४१ ॥
 त्रैलोक्यरक्षाकेयूरलक्षणो दक्षिणो भुजः ।
 सव्यः सीतापरिष्वङ्गसंगतानङ्गमङ्गलः ॥ ६४२ ॥
 करस्त्यागाङ्गदोदारः कीर्तिप्रणयिनी तनुः ।
 यशस्तिलकिता लक्ष्मीस्तस्याभूद्रुणशालिनः ॥ ६४३ ॥
 स सदा धृतिसंपन्नां सर्वभूतभवक्षयाम् ।
 क्षमामुवाह मनसा मूर्ध्ना शेष इव क्षमाम् ॥ ६४४ ॥
 तं समग्रगुणोदारं प्रजाप्रियहिते रतम् ।
 यौवराज्याभिषेकार्हममन्यत महीपतिः ॥ ६४५ ॥
 रामाभिषेकानुमतं पृष्ठाः संसदि तेन ते ।
 ब्राह्मणा मन्त्रिणो भूपाः पौराद्याश्च वभाषिरे ॥ ६४६ ॥
 क्रियतामीप्सितं राजन्यत्ते मनसि वर्तते ।
 रामोऽर्हत्यखिलां धर्तुं क्षमामनन्तगुणो विभुः ॥ ६४७ ॥
 सुकृतासगुणौघेन गुणोपार्जितकीर्तिना ।
 कीर्तिरञ्जितलोकेन राघवेण विभाति भूः ॥ ६४८ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रहृष्टः पृथिवीपतिः ।
 आदिदेशाभिषेकाय संभारं भूरिमङ्गलैः ॥ ६४९ ॥
 चैत्रे पुष्येन्दुयोगेन कल्पिते विपुलोत्सवे ।
 आभिषेचनिकं सर्वं युक्ताः सज्जं प्रचक्रिरे ॥ ६५० ॥
 सुमन्त्रेण समाहूतस्ततो भूपतिशासनात् ।
 रामः प्रविश्य प्रणतो भेजे निर्दिष्टमासनम् ॥ ६५१ ॥
 तमुवाच नृपो मूर्ते मनोरथमिवात्मजम् ।
 मौलौ दन्तांशुभिस्तस्य सितोष्णीषमिवार्पयन् ॥ ६५२ ॥

महीयसि मनोर्वशे सद्वृत्तः सद्वृणोचितः ।
 पुत्र मुक्तामणिच्छायो जातस्त्वं भूषणं भुवः ॥ ६९३ ॥
 क्रमप्राप्तमिमां वीर महीं पाहि मदाज्ञया ।
 तुल्यपुत्रार्पणाः श्लाघ्या रघूणां हि विभूतयः ॥ ६९४ ॥
 यज्ञदानतपःशुक्लामस्पृष्टां दोषशीकरैः ।
 सत्पुत्रस्कन्धविन्यस्तां धन्याः पश्यन्ति संपदम् ॥ ६९५ ॥
 स्वयमामुक्तमुकुटं द्रष्टुमिच्छामि ते मुखम् ।
 बिम्बितं स्वमिवादशे पुनरासन्नयौवनम् ॥ ६९६ ॥
 विपरीतनिमित्तानि दृष्ट्वा मे त्वरते मनः ।
 को जानाति भवाम्भोधिबुद्बुदस्यायुषो गतिम् ॥ ६९७ ॥
 प्रातस्ते भविता श्रीमानभिषेकमहोत्सवः ।
 इत्युक्ते भूभुजा रामस्तथेति नृपमब्रवीत् ॥ ६९८ ॥
 पित्रा विसृष्टो गत्वाथ राघवोऽन्तःपुरं निजम् ।
 दत्तं स्वयं वसिष्ठेन भेजे व्रतमुपोषितः ॥ ६९९ ॥
 प्रयतः सह वैदेह्या पवित्रे कुशसंस्तरे ।
 ध्यायन्नारायणं रामस्तस्थौ निशि हुतानलः ॥ ६९० ॥
 ततो बभूव पौराणां प्रभातोदयकाङ्क्षिणाम् ।
 अभिषेकोत्सवारम्भव्यग्राणां हर्षनिःस्वनः ॥ ६९१ ॥
 गजेन्द्रतुरगोदारप्रत्यग्रश्रीविभूषितः ।
 प्रत्यासन्नामृतस्याब्धेर्जनोऽभूदुपमाक्षमः ॥ ६९२ ॥

(अथाभिषेकारम्भः ।)

प्रासादादवलोक्याथ पुरं हर्षसमाकुलम् ।
 कौमारदासी कैकेय्या मन्थरा विस्मिताभवत् ॥ ६९३ ॥
 पप्रच्छ सा समभ्येत्य धात्रीं संजातकौतुका ।
 अदृष्टपूर्वः पौराणां किमयं हर्षविप्लवः ॥ ६९४ ॥

कस्मान्महार्थान्विप्रेभ्यो राममाता प्रयच्छति ।
 इति धात्री तथा पृष्टा स्फुरितिव मुदावदत् ॥ ६६९ ॥
 रामस्य भविता प्रातर्यौवराज्यमहोत्सवः ।
 तच्छ्रुत्वा वज्रभिन्नेव दुःखिता मन्थरा ययौ ॥ ६६९ ॥
 शैशवे किल रामेण पुरा प्रणयकोपतः ।
 चरणेनाहता तत्र चिरं कोपमुवाह सा ॥ ६६७ ॥
 निर्विशन्ती विषापूर्णभुजङ्गीव विभीषणा ।
 कैकेयीमन्दिरं प्रायात्कुब्जा कुटिलचारिणी ॥ ६६८ ॥
 विबोध्य शयनासक्तां कैकेयीं सा समभ्यधात् ।
 कोपावेगसमुत्सृष्टगौरवव्याकुलाक्षरम् ॥ ६६९ ॥
 उत्तिष्ठ मूढहृदये कोऽयं निद्रादरस्तव ।
 अथ वा निर्विवेकानां दुःखं विशति नान्तरम् ॥ ६७० ॥
 अहो वतासि निःशल्या क्षीवेव प्राकृताङ्गना ।
 दूरं प्रपातपतितं नात्मानमवबुध्यसे ॥ ६७१ ॥
 सपत्नीसंगमे धृत्वा सौभाग्याभरणोद्धतम् ।
 अधुना वह दौर्भाग्यलज्जाविनतमाननम् ॥ ६७२ ॥
 मन्थराया वचः श्रुत्वा कैकेयी चकिता भृशम् ।
 किंस्वित्ते कुशलं पत्युरिति पप्रच्छ तां पुनः ॥ ६७३ ॥
 साब्रवीत्किं न जानीषि भयं महदुपस्थितम् ।
 रामस्य भविता प्रातर्यौवराज्यमहोत्सवः ॥ ६७४ ॥
 अहो नु कुटिलाचारः पतिर्दशरथस्तव ।
 कण्ठवद्धशिला यस्त्वां जलधौ क्षेप्तुमुद्यतः ॥ ६७५ ॥
 सा त्वं भूपालमहिषी भूमिपालमुता सती ।
 पुत्रराज्योजितां पश्य कौसल्यां प्रेमकारिणीम् ॥ ६७६ ॥
 सुभगे केवलैर्वाक्यैर्ललितासि महीभुजा ।
 फलेन योजिता त्वद्य कौसल्या पुण्यमाग्निनी ॥ ६७७ ॥

त्वदंशे राज्यविच्छेदमद्यैव निधनं वरम् ।
 न तत्तुल्यं नृपद्वारे दर्शनावसरे क्षणम् ॥ ६७८ ॥
 धिक्त्ववेदं वृथारूपं गुणसौभाग्यवर्जितम् ।
 हैमीव पुत्रिका पत्युर्मन्ये त्वं नाम वल्लभा ॥ ६७९ ॥
 कौसल्यातनयो राजा दासश्च भरतोऽधुना ।
 श्रुत्वेति हृदयं किं ते दीर्यते न सहस्रधा ॥ ६८० ॥
 मन्थराया वचः श्रुत्वा कैकेयी हर्षनिर्भरा ।
 उवाच हेमाभरणं दत्त्वास्यै पारितोषकम् ॥ ६८१ ॥
 दिष्ट्याभिषेको रामस्य श्रूयते गुणशालिनः ।
 स मे बहुमतः पुत्रो मन्थरे भरताधिकः ॥ ६८२ ॥
 इति ब्रुवाणां कैकेयीं मन्थरा कोपकम्पिता ।
 उत्सृज्याभरणं दूरे निःश्वस्योवाच दुःखिता ॥ ६८३ ॥
 कथं विषादावसरे नृत्यस्युन्मादिनी यथा ।
 प्रत्यासन्नविनाशानां प्राङ्मुख्यन्त्यथ वा धियः ॥ ६८४ ॥
 प्रभावः कुलमैश्वर्यं शक्तिः कीर्तिश्च शाश्वती ।
 नश्यत्येकपदे यस्य क्षयस्तस्य महोत्सवः ॥ ६८५ ॥
 शोच्या न शोचसि व्यक्तं मूढे दैवविमोहिता ।
 अभ्रपात इव प्रातर्भविता तस्य दुःसहः ॥ ६८६ ॥
 चित्रं स्निग्धासि रामेऽपि परपुत्रकवत्सता ।
 हरिणो जननीं वेत्ति न हि व्याघ्रो मृगाशनः ॥ ६८७ ॥
 रक्षणीयोऽधुना तावद्भरतो रामविक्रमात् ।
 राज्यमेतावदेवास्य यद्वृद्धं न निपात्यते ॥ ६८८ ॥
 श्रुतवत्यसि यश्चक्रे बहुमायः पुरंदरः ।
 भ्रातृणां दितिपुत्राणां नागानां वा खगेश्वरः ॥ ६८९ ॥
 वक्रं श्रुत्वेति कुब्जाया वचनं हृदयोपमम् ।
 चक्रे रामस्य कैकेयी गुणश्लाघां पुनः पुनः ॥ ६९० ॥

ततः शनैश्चरैस्तस्या वाक्यैः सा कलुषाभवत् ।
 मानसं दूषयत्येव घोरं हि खलवाग्विषम् ॥ ६९१ ॥
 कालकूटप्रकारोऽयमपरः खलसंगमः ।
 विकारः क्रियते येन क्षिप्रं सत्त्ववतामपि ॥ ६९२ ॥
 कैकेयी लोभशङ्कोत्यैः स्पृष्टा किल्बिषशीकरैः ।
 किं करोमीति पप्रच्छ मन्थरां शङ्किताशया ॥ ६९३ ॥
 साब्रवीद्देवि याचस्व पत्युः कोपपराङ्मुखी ।
 भरतस्याभिषेकं च रामस्य च विवासनम् ॥ ६९४ ॥
 चतुर्दश समा रामो वनं यातु पितुर्गिरा ।
 सुचिरं बद्धमूलश्च लभतां भरतः श्रियम् ॥ ६९५ ॥
 पुरा देवासुरयुधि शम्भरेण शतक्रतोः ।
 स्वपुरे वैजयन्ताख्ये घोरः सैन्यक्षयः कृतः ॥ ६९६ ॥
 राजा दशरथस्तत्र यातः शक्रसहायताम् ।
 शस्त्रक्षततनुर्विद्याबलात्संरक्षितस्त्वया ॥ ६९७ ॥
 कृतज्ञेन वरौ तेन दत्तौ ते प्रीतिशालिना ।
 न्यासीकृतौ त्वया तौ च तस्मिन्नेव निजेच्छया ॥ ६९८ ॥
 कुरु प्रणयिनी पत्युस्तूर्णमेव तदर्थनाम् ।
 सुतस्त्वेकेन ते राजा रामोऽन्येन वनेचरः ॥ ६९९ ॥
 प्रकोपाबद्धमौनायाः सबाष्पायितचक्षुषः ।
 करिष्यति न चावज्ञां प्रणयी तव वल्लभः ॥ ७०० ॥
 एतदाकर्ण्य कैकेयी भेजे मुखसुखं क्षणात् ।
 पश्चात्तापफलं हर्षं गुडदिग्धविषोपमम् ॥ ७०१ ॥
 प्रायेण मुग्धहृदयाः शिशवो भूमिपाः स्त्रियः ।
 ह्रियन्ते लुब्धकैर्नीचैः कुरङ्गा इव कानने ॥ ७०२ ॥
 कैकेय्या ब्राह्मणः पूर्वं मूर्खो बाल्ये विडम्बितः ।
 तच्छापादभवत्तस्या मतिः कीर्तिपराङ्मुखी ॥ ७०३ ॥

सा मन्थरां परिध्वज्य दत्त्वास्यै हेमकुण्डले ।
 मेने मत्तिमतां श्रेष्ठां बृहस्पतिवधूमिव ॥ ७०४ ॥
 विरूपमपि सा तस्याः प्रशशंस मुहुर्वपुः ।
 निन्देन गुणसंपत्तिं पश्यन्ति हि वशीकृताः ॥ ७०५ ॥
 सा ययौ तद्विरा तूर्णं कोपागारं वरार्थिनी ।
 सर्वथा खलवाक्येषु स्त्रियो मूर्खाश्च सादराः ॥ ७०६ ॥
 वियुक्तमाल्याभरणा विचेष्टन्ती महीतले ।
 सा तस्थौ म्लानवसना व्यासेवायशसा क्षणात् ॥ ७०७ ॥
 इति मन्थरावाक्यम् ॥ १६ ॥

अत्रान्तरे नरपतिर्दयितादर्शनोत्सुकः ।
 प्रविश्यान्तःपुरं कान्तां नापश्यच्चारुलोचनाम् ॥ ७०८ ॥
 स च्छत्रधारिणीवाचा ज्ञात्वा कोपगृहे स्थिताम् ।
 चकितस्तूर्णमभ्येत्य ददर्श त्यक्तभूषणाम् ॥ ७०९ ॥
 तां ग्रीष्ममारुतग्रस्तकुसुमामिव मञ्जरीम् ।
 दृष्ट्वा न लेभे भूपालभ्रमरः स्रस्तधीर्धृतिम् ॥ ७१० ॥
 सापि क्षमापालमालोक्य जग्राहाभ्यधिकां रुषम् ।
 प्रायः प्रागल्भ्यमायान्ति तरुण्यः स्थविरे वरे ॥ ७११ ॥
 सोऽब्रवीद्देवि कोऽयं ते प्रौढः कोपपरिग्रहः ।
 नाभिनन्दति येनेदं भूषणं मामिवाग्रतः ॥ ७१२ ॥
 प्रिये ब्रूहि प्रवृद्धस्य प्रकोपस्यास्य कारणम् ।
 सत्यमात्मापि मे वध्यस्त्वंत्कोपे हेतुतां गतः ॥ ७१३ ॥
 दयिते मौनमुत्सृज्य प्रसादस्मितपुष्पिता ।
 लतेव मधुरालापैः किर कर्णरसायनम् ॥ ७१४ ॥
 उच्यतां क्रियते कोऽद्य निवृत्तविभवः क्षणात् ।
 धवलौष्णीषहासिन्यास्तूर्णं वा भाजनं श्रियः ॥ ७१५ ॥

१. 'प्रकोपः प्रभुतां गतः' शारदा०.

प्रसीद वद किं देवि करवाणि तवेप्सितम् ।
 त्रैलोक्यदुर्लभं नास्ति मयि प्रणयशालिनी ॥ ७१६ ॥
 इत्युक्ते नरनाथेन कैकेयी प्रत्यभाषत ।
 चिन्तासंतप्तनिःश्वासधूसराधरपल्लवा ॥ ७१७ ॥
 पुरा मे ब्राह्मणो विद्यां प्रसादाभिमुखो ददौ ।
 यया देवासुररणे मया संरक्षितो भवान् ॥ ७१८ ॥
 तत्संतोषाद्भरौ मय्यं प्रवरौ दत्तवानसि ।
 यौ मया त्वयि निक्षिप्तौ तावेवाद्य प्रयच्छ मे ॥ ७१९ ॥
 इति श्रुत्वैव कैकेय्या सस्मितः सोत्सुको नृपः ।
 करेणोन्नम्य वदनं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ७२० ॥
 एतावतैव दयिते कोऽयं ते कोपविभ्रमः ।
 स्वाधीनौ ते वरौ सुभ्रु कर्तव्यमभिधीयताम् ॥ ७२१ ॥
 यदिच्छसि तदाद्यैव ददानि सुभगे तव ।
 जीवितेनापरेणेव रामेणापि स्फुटं शपे ॥ ७२२ ॥
 इत्युक्ते भूभुजा स्पष्टं कैकेयी कुटिलावदत् ।
 राज्ञः सत्यप्रतिज्ञस्य वचः शृण्वन्तु देवताः ॥ ७२३ ॥
 वरेणैकेन नृपतेश्चैराजिनजटाधरः ।
 चतुर्दश समा रामः प्रयातु विजनं वनम् ॥ ७२४ ॥
 अपरेण वरेणाद्य यौवराज्यं ममात्मजः ।
 लभतां भरतः श्रीमानित्युक्त्वा विरराम सा ॥ ७२५ ॥
 ततो नरपतिर्मूर्ध्नि वज्रेणेव समाहतः ।
 किमेतदिति नाज्ञासीच्चक्रारूढ इव क्षणम् ॥ ७२६ ॥
 स पपात क्षितितले कृत्तमूल इव द्रुमः ।
 अङ्गे धृत इवोर्वर्या मूर्छितो वसुधाधिपः ॥ ७२७ ॥
 पौरुषप्रतिरोधिन्यस्तर्जन्यः सर्वसंपदाम् ।
 सकला विपदस्तत्र प्रभुत्वं यत्र योषिताम् ॥ ७२८ ॥

१. 'शालिनि' स्यात्.

फलं व्यसनवृक्षस्य विनाशविषशाखिनः ।
 अयशः पथि रूढस्य मनो योषित्सु सादरम् ॥ ७२९ ॥
 गण्यन्ते पुरुषास्तावद्यावन्नायान्ति वश्यताम् ।
 धैर्यध्वंसपताकासु भ्रूमङ्गाज्ञासु योषिताम् ॥ ७३० ॥
 स समाश्रयस्य शनकैर्मेने कैकेयजां पुनः ।
 लतां मलयजस्येव करालव्यालमालिताम् ॥ ७३१ ॥
 तामुवाच रुषाक्रान्तः श्वसन्नाग इवाहतः ।
 उल्केयं वदनात्कस्मादकस्मान्निर्गता इव ॥ ७३२ ॥
 अहो बत भुजङ्गी त्वं घोरहालाहलेक्षणा ।
 सेविता प्रीतिलुब्धेन मुग्धेन सततं मया ॥ ७३३ ॥
 रामः शुभ्रैर्गुणगणैः सर्वलोकस्य संमतः ।
 पङ्कजिन्या इव शशी कथं ते द्वेष्ट्यतां गतः ॥ ७३४ ॥
 बत प्रत्यग्रपापेयं मतिस्तव समुद्यता ।
 मां शोकव्यालकलिते क्षेप्तुं मोहरसातले ॥ ७३५ ॥
 प्रियं सर्वव्यवस्थासु जीवलोकप्रकाशकम् ।
 त्यजामि सुकृतावाप्तं जीवितं कथमात्मजम् ॥ ७३६ ॥
 गुणाभरणमम्लानयशःपीयूषसागरम् ।
 परित्यक्तुं न शक्तोऽसि रामं राजीवलोचनम् ॥ ७३७ ॥
 रामं त्यजेत्यनुचितं जीवितक्रकचं वचः ।
 कथं नाम सहे हेलाक्षतवृत्तगुणं तव ॥ ७३८ ॥
 प्रसीद चरणानग्रशिरसः कुरु मे गिरम् ।
 पश्य राममवामेन चक्षुषा भरतं यथा ॥ ७३९ ॥
 इत्युक्तेऽपि सकृद्भार्या दुर्ग्रहान्न चचाल सा ।
 दैवप्रेरितचित्तानां वचोभिः का प्रतिक्रिया ॥ ७४० ॥
 साब्रवीत्सत्यसंधस्य कृतज्ञस्य महीपतेः ।
 तव दत्तापहरणं जृम्भतामयगश्चिरम् ॥ ७४१ ॥

रथ्यावस्करमार्जन्य इव पङ्ककलङ्किताः ।
 असत्यचपला वाचो न भवन्ति भवादृशाम् ॥ ७४२ ॥
 पुना राज्योद्धरां तावत्कौसल्यां न सहे विभो ।
 त्वत्तिरस्कारदुःखेऽस्मिन्भेषजं मे विषाशनम् ॥ ७४३ ॥
 खं दत्तं शिबिना मांसमलकेनेक्षणद्वयम् ।
 सत्यं सत्यप्रतिज्ञानां नानुतापः प्रतिश्रुते ॥ ७४४ ॥
 अहं प्राणपणेनापि त्वत्तः प्राप्य वरद्वयम् ।
 रामप्रवासनिःशल्यां करोमि भरतश्रियम् ॥ ७४५ ॥
 सर्वथा स्वस्ति यशसे राजन्नित्ययमञ्जलिः ।
 कृतो धर्मोऽस्त्वधर्मो वा निश्चयो मम नान्यथा ॥ ७४६ ॥
 इत्युक्त्वा साभवत्तप्तनिःश्वासैर्धूसरद्युतिः ।
 ब्रह्मशापाग्निधूमेन स्पृष्टेव मलिनानना ॥ ७४७ ॥
 विलोक्य निश्चलां राजा प्रियामप्रियभाषिणीम् ।
 हा रामेति वदन्साधुः पपात भुवि मूर्छितः ॥ ७४८ ॥
 स तामुवाच निःश्वास्य संमोहोपहतप्रभः ।
 आकृष्टः सत्यशापेन पुत्रस्नेहेन चाभितः ॥ ७४९ ॥
 नूनं भूताभिभूतासि क्षिप्ता कालेन वा मयि ।
 कुतोऽन्यथा तवाप्येष सदाचारविपर्ययः ॥ ७५० ॥
 नृशंसाः पापसंकल्पाः संश्रुतपरिपन्थिनः ।
 परप्राणापहारेण वाञ्छन्त्येवात्मनः श्रियम् ॥ ७५१ ॥
 भक्ताया मम निर्दोषः पुत्रो राज्ञा विवासितः ।
 इति ब्रुवाणां कौसल्यां किं वक्ष्यामि गतत्रपः ॥ ७५२ ॥
 वृद्धेन रागिणा राज्ञा निरस्तो गुणवान्सुतः ।
 इति लोके कथं श्रोण्याम्ययशोवर्धिनीर्गिरम् ॥ ७५३ ॥
 नूनं त्वं निर्मिता धात्रा किल्बिषैरेव केवलैः ।
 तव यन्नास्ति हृदये दारुणे करुणाकणः ॥ ७५४ ॥

व्यक्तमन्तर्विषैर्मिथ्यामधुरैः प्रणयैरहम् ।
 त्वयोपचरितः पापे येषां पाकोऽयमीदृशः ॥ ७९६ ॥
 अहो बताहमाकृष्टः कान्तरूपेण मृत्युना ।
 दुःखहालाहलोप्रेण सत्यशापमहाहिना ॥ ७९७ ॥
 धिक्कृता सर्वलोके नु शापपापकलङ्किता ।
 अकीर्तिरिव मे मूर्ता बत यातासि शोच्यताम् ॥ ७९८ ॥
 याते रामे गते धैर्यं हते मयि भृशं शुचा ।
 राज्यविस्मृतवैधव्या भव पूर्णमनोरथा ॥ ७९९ ॥
 इति प्रलपतस्तस्य नक्षत्राश्रुकणाकुला ।
 शशिशुभ्रा ययौ रात्रिः शोकेनेवातिपाण्डुरा ॥ ८०० ॥
 निशेयं क्षीयतां दीर्घा मा च मेऽस्तु दिनोदयः ।
 इति शोकाकुलो राजा चिन्तयन्न ययौ धृतिम् ॥ ८०१ ॥
 इति वरयाचनम् ॥ १७ ॥

अस्मिन्नवसरे रामः सूतमागधर्वान्दनाम् ।
 शृण्वन्गुणगणोदारा यशःकुसुमिता गिरः ॥ ८०२ ॥
 मनःशुद्धिरतो देवं सरन्विष्णुं बधूसखः ।
 शशीव रोहिणीयोगे विबभौ विमलाम्बरः ॥ ८०३ ॥
 रत्नांशुपल्लवोदारश्छत्रचामरपुष्पितः ।
 हर्षस्फीतफलो लोके बभूवोत्सवपादपः ॥ ८०४ ॥
 सुकल्पिते वसिष्ठाद्यैरभिषेकविधौ क्रमात् ।
 सुमन्त्रोऽन्तःपुरद्वारं ययौ तूर्णं महीपतेः ॥ ८०५ ॥
 सुखसुप्तं नृपं ज्ञात्वा प्रविश्य निभृतं शनैः ।
 विबुधस्तत्प्रबोधाय मधुरां गिरमादधे ॥ ८०६ ॥
 रवेरिवोदयं देव प्रतीक्ष्यन्ते प्रजास्तव ।
 राघवस्याभिषेकार्हः पुण्ययोगोऽतिवर्तते ॥ ८०७ ॥

१. 'रभिषेचनिके विधौ' शोधितः पाठः. २. 'पुण्य' शारदा०.

मूर्ध्नि श्रीमानयं धत्ते भास्वानुदयभूभृतः ।
 पूर्वदिक्कामिनीन्यस्तहैममङ्गलकुम्भताम् ॥ ७६७ ॥
 एताः कुङ्कुमपङ्केन समुत्सृष्टा इवाखिलाः ।
 सूर्योदयोत्सवे देव भान्ति पीताम्बरा दिशः ॥ ७६८ ॥
 उत्तिष्ठ पृथिवीपाल सत्पुत्रमणिदर्पणे ।
 संक्रान्तां सुकृतोदारां पश्य कीर्त्युज्ज्वलां श्रियम् ॥ ७६९ ॥
 सज्जोऽयं विपुलारम्भः संभारो मङ्गलोचितः ।
 त्वद्दर्शनसुधासारप्रतीक्षान्तरितोत्सवः ॥ ७७० ॥
 प्रणतानन्तसामन्तमौलिरत्नारुणप्रभाम् ।
 सभां संभावय विभो स्वप्रभामिव भास्करः ॥ ७७१ ॥
 इति वादिनमज्ञातवृत्तं वृत्तपरिच्युता ।
 शनैरुवाच कैकेयी सुमन्त्रं गाढमत्सरा ॥ ७७२ ॥
 पुत्रोत्सवनवोत्कण्ठहर्षावाप्तप्रजागरः ।
 अयं सत्यधनो राजा नाद्यापि प्रतिबुध्यते ॥ ७७३ ॥
 गच्छ राममिहैवास्य पुत्रं संमतमानयं ।
 उक्त्वेति देवी सासूयं क्षितिपालमुदैक्षत ॥ ७७४ ॥
 विभ्रष्टविद्यापतितो विद्याधर इवाम्बरात् ।
 विवर्णवदनो राजा शशीव दिनधूसरः ॥ ७७५ ॥
 उवाच निःश्वसन्दीर्घं जायासमययन्त्रितः ।
 करीन्द्रः करिणीयुक्त इव पाशवशीकृतः ॥ ७७६ ॥
 किं नाम सुप्तं पतितं सुमन्त्र समुदीक्षसे ।
 राम सूर्योदये यस्य रात्रिरक्षयतां गता ॥ ७७७ ॥
 मां सत्यसमयाख्येन कालपाशेन वेष्टितम् ।
 गृहीतं पश्य बलिना जायारूपेण लक्ष्मणा ॥ ७७८ ॥
 श्रुत्वेति राजवचनं शरेणेव विदारितः ।
 अपहृत्य सुमन्त्रोऽभूत्क्षणमुद्भ्रान्तमानसः ॥ ७७९ ॥

१. 'सत्य' शोधितः पाठः.

निर्बन्धात्परुषैर्वाक्यैः कैकेय्या पुनरुक्तितः ।
 उवाच विह्वलो राजा सुमन्त्रं मोहमूर्छितः ॥ ७८० ॥
 न सुप्तोऽस्मि महामात्य निद्रा शोकवतां कुतः ।
 बहिश्चरं जीवितं मे गच्छ राममिहानय ॥ ७८१ ॥
 इत्यादिष्टो नृपतिना रथेन जवशालिना ।
 सुमन्त्रः प्रययौ तूर्णं संशयाकुलिताशयः ॥ ७८२ ॥
 अभिषेकोत्सवोत्कण्ठाकुले सज्जनवर्त्मनि ।
 ब्रजन् रामस्य शुश्राव गुणालंकरणं यशः ॥ ७८३ ॥
 स राममन्दिरं प्राप्य मेरुकन्दरसुन्दरम् ।
 हेमहर्म्योद्भूतोत्तुङ्गप्रभापिङ्गीकृताम्बरम् ॥ ७८४ ॥
 सेवासानन्तसामन्तसमागमनिरन्तरः ।
 शनैः कक्ष्याः समुत्तीर्य प्रापान्तःपुरमान्तरम् ॥ ७८५ ॥
 प्रविश्यावेदितः सोऽथ ददर्श रघुनन्दनम् ।
 सीताकराञ्चितस्मेरचामरोच्छ्वासितांशुकम् ॥ ७८६ ॥
 वक्षसा चन्दनार्द्रेण स्फारिहाराट्टहासिना ।
 विराजितं निर्झरिणा तटेनेव हराचलम् ॥ ७८७ ॥
 विस्फारिधीरललितामाताम्ररुचिरां दशम् ।
 लक्ष्मीविलासहंसितं(?) सृजन्तं पद्मिनीमिव ॥ ७८८ ॥
 गुणालंकृतचारित्रं सत्त्वालंकृतमानसम् ।
 विनयालंकृतैश्वर्यं दृष्ट्वालंकरणं भुवः ॥ ७८९ ॥
 प्रणम्योवाच विनतं हर्षार्हावाससत्कृतिः ।
 सुमन्त्रस्तदुणानन्दपुलकालंकृताननः ॥ ७९० ॥
 धन्या ते जननी राम कौसल्या पुत्रमानिनी ।
 अदितेरपि या शङ्के शक्रमातुः स्पृहास्पदम् ॥ ७९१ ॥
 देवो दशरथस्तूर्णं कैकेय्या सह मन्दिरे ।
 स्थितः स्थितिमतामग्र्यं भवन्तं द्रष्टुमर्हति ॥ ७९२ ॥

श्रुत्वैतत्प्रतिगृह्णाशु शिरसा शासनं गुरोः ।
 जगाम रामो विपुलः शृण्वन्पौरजनाशिषः ॥ ७९३ ॥
 रथेन वनघोषेण गृहोद्यानशिखण्डिनाम् ।
 स ब्रजन्विदधे क्षिप्रं ताण्डवाडम्बरोत्सवम् ॥ ७९४ ॥
 स्फारालंकाररत्नाग्रविम्बितासंख्यसैनिकः ।
 विश्वाकृतिरिवोपेन्द्रः शुशुभे ससुदर्शनः ॥ ७९५ ॥
 स भूषणारुणमणिप्रभावलयितो बभौ ।
 साक्षाज्जनानुरागेण कृतास्पद इवावभौ ॥ ७९६ ॥
 सादराः सुरसुन्दर्य इव पौरवराज्जनाः ।
 पुष्पाणि ववृषुस्तस्मै वातायनविमानगाः ॥ ७९७ ॥
 तस्य लक्ष्मणहस्ताग्रसक्तचामरमारुहैः ।
 ययौ कपोलकर्पूररजोव्याजैर्दिशो यशः ॥ ७९८ ॥
 धनदोऽयं स यक्षेन्द्रः स विष्णुरयमच्युतः ।
 अयं कामः स चानङ्ग इत्यूचुः पौरयोषितः ॥ ७९९ ॥
 तासां कटाक्षविक्षेपवलयोत्पलधामभिः ।
 क्षणं बभूव रामस्य मायूरच्छत्रविभ्रमम् ॥ ८०० ॥
 पितुरन्तःपुरं प्राप्य वृद्धकञ्चुकिरक्षितम् ।
 पातालमिव रोचिष्णुरत्नांशुकपिशोदरम् ॥ ८०१ ॥
 प्रविश्यालोक्य पितरं प्रणनाम सलक्ष्मणः ।
 लिम्पन्निवास्य चरणौ चारुचूडामणित्विषा ॥ ८०२ ॥
 ततः प्रणम्य कैकेयीं चिन्तानलसमुत्थितैः ।
 धूमैरिवागतच्छायं ददर्श वसुधाधिपम् ॥ ८०३ ॥
 रामं विलोक्य नृपतिर्बाष्पाविलविलोचनः ।
 पुत्रेत्युक्त्वा परं वक्तुं न शशाक ह्रिया नतः ॥ ८०४ ॥
 तां वीक्ष्य विक्रियां राज्ञो विसंज्ञ इव राघवः ।
 किमेतदिति संभ्रान्तश्चिन्तासंतापमाययौ ॥ ८०५ ॥

सोऽब्रवीज्जननीं नम्रः कैकेयीं रचिताञ्जलिः ।
 मातः कुतोऽयं नृपतेर्गम्भीरः खेदविप्लवः ॥ ८०६ ॥
 वयमाज्ञाप्रणयिनः प्रतिकूलेषु का कथा ।
 निःसपत्नश्च विभवः खेदकारणमुच्यताम् ॥ ८०७ ॥
 विनापराधं कुपितो यद्यपुण्यैर्मयि प्रभुः ।
 तत्प्रसादय मातस्त्वं ममैनं सुतवत्सला ॥ ८०८ ॥
 राघवेनेत्यभिहिते कैकेयी सादरावदत् ।
 न विषण्णो नरपतिः कोपसंभावना कुतः ॥ ८०९ ॥
 किं त्वेष मे प्रतिश्रुत्य कृतज्ञः प्रवरौ वरौ ।
 वाच्यतामनुतापेन प्रयातः सत्यलोभयोः ॥ ८१० ॥
 अधुनास्य त्वदायत्तं सत्यवल्लीफलं यशः ।
 अयशो वा मृषावादात्साधुधिक्कारकर्तुर्मम् ॥ ८११ ॥
 श्रुत्वैतद्विगताशङ्कः समुच्छ्वसितमानसः ।
 उवाच रामः कैकेयीमौचित्यामृतसागरः ॥ ८१२ ॥
 अहो वत गुरोः कार्ये मदायत्तेऽपि संशयः ।
 निजालोकपरिच्छेद्ये रवेरिव तमःक्षये ॥ ८१३ ॥
 अहं हि शासनादस्य प्रलयानिलवर्तिनम् ।
 विशामि दहनं दीप्तं घोरं वा मकराननम् ॥ ८१४ ॥
 इति वादिनमम्लानं सत्त्वसंपूर्णमानसम् ।
 हृष्टा जगाद कैकेयी रामं कीर्तिपराब्धुस्त्री ॥ ८१५ ॥
 देवासुररणे पूर्वं मयायं रक्षितो नृपः ।
 विततार वरौ तौ च सुचिरादद्य याचितौ ॥ ८१६ ॥
 चतुर्दश समा राम तवारण्ये विवासनम् ।
 अद्यैव यौवराज्ये च भरतस्याभिषेचनम् ॥ ८१७ ॥
 अधुनैव भवान्यातु जटाचीरधरो वनम् ।
 ब्रज मुञ्च महीपालं सत्यशापपरिग्रहात् ॥ ८१८ ॥

श्रुत्वेति मातुर्वचनं रामः प्रहसिताननः ।
 जगाद दर्शयन्दन्तकान्त्या सत्त्वमिवोज्ज्वलम् ॥ ८१९ ॥
 एषोऽस्मि सज्जो विजनं वनं गन्तुमविक्रियः ।
 अविचार्यैव रामस्य कार्यं किं गुरुशासनम् ॥ ८२० ॥
 एकैव महती चिन्ता ममेयं ज्वलते हृदि ।
 यन्मां कृतागसमिव स्वयं नाभाषते नृपः ॥ ८२१ ॥
 बाष्पदुर्दिनसंसिक्तां क्षितिपः क्षमां विलोकयन् ।
 करोति मम मौनेन शोकोत्कीर्णान्तरं मनः ॥ ८२२ ॥
 भरतो मातुलगृहाद्वृत्तैर्जवनशालिभिः ।
 अभिषेकाय संभारे तूर्णमानीयतामितः ॥ ८२३ ॥
 इति ब्रुवाणं कैकेयी रामं सत्यसुधानिधिम् ।
 अद्यैव गम्यतां तूर्णमित्युवाच पुनःपुनः ॥ ८२४ ॥
 स सत्यसंकल्पहयं महोत्साहजवं क्षणात् ।
 आरूढः सत्त्वधवलं गन्तुं निश्चयमादधे ॥ ८२५ ॥
 ततः सवेगबाष्पस्य निःसंज्ञस्य महीपतेः ।
 निपीड्य चरणौ रामो निर्ययौ यशसां निधिः ॥ ८२६ ॥
 वनवासाहितधियां कोपसंरब्धचक्षुषा ।
 स लक्ष्मणेन सहितः कौसल्यामन्दिरं गम्यौ ॥ ८२७ ॥
 अभिषेकोत्सुका तत्रदेवताराधनव्रता ।
 रामेणावेदितं श्रुत्वा तद्वृत्तान्तं मुमोह सा ॥ ८२८ ॥
 प्रतिलभ्य ततः संज्ञां विललापाश्रुगद्गदा ।
 चक्रभ्रान्तिपरावृत्तिं वदन्ती सुखदुःखयोः ॥ ८२९ ॥
 अहो बत जगत्यस्मिन्बन्ध्या धन्यतराः स्त्रियः ।
 याः स्वप्नेऽपि न जानन्ति पुत्रस्नेहविषयधाम् ॥ ८३० ॥
 पूर्णपुण्यगुणप्राप्तः पुत्रलाभः सुधायते ।
 तदेति तद्वियोगोऽग्रकालकूटच्छटा न चेत् ॥ ८३१ ॥

वरं कण्टकिनी जाता जर्जरी विपिने लता ।
 न त्वेकवत्सा जननी सर्वदा दुःखभागिनी ॥ ८३२ ॥
 रामोऽपि तनयो यस्याः प्रयाति विजनं वनम् ।
 सापि जीवति दुःखेन धिक्स्त्रीणां जीवनं दृढम् ॥ ८३३ ॥
 रामो गुणगणारामः पुत्रः पित्रा विवासितः ।
 माता जीवति तन्मन्ये स्नेहः कापि तिरोहितः ॥ ८३४ ॥
 निधानं स्नेहसंपत्तिं सुखप्राप्तं तथामृतम् ।
 बत मे हतभाग्यायाः कृच्छ्रलब्धं पलायते ॥ ८३५ ॥
 इति प्रलापिनीं राजमहिषीं पतितां भुवि ।
 आश्वास्य रामो विदधे ससंज्ञां धैर्यसागरः ॥ ८३६ ॥
 ततो जगाद सौमित्रिः कोपादागतसाध्वसः ।
 कल्पान्तोत्क्रान्तमर्यादः कम्पोद्धूत इवाम्बुधिः ॥ ८३७ ॥
 व्यसिनीस्थविरो राजा यदि स्त्रीवश्यतां गतः ।
 तदस्माकं किमायातं ये त्यजामः स्वकं पदम् ॥ ८३८ ॥
 बलिनोऽपि धिया हीना मत्तप्राया नृपद्विपाः ।
 करिणीनामिव स्त्रीणां वश्या यान्ति पराभवम् ॥ ८३९ ॥
 भरतेन प्रयुक्तोऽयं यदि वक्रो नयक्रमः ।
 तत्रेदं गुरुतां याति मम वक्रतरं धनुः ॥ ८४० ॥
 स्वयं गृहोपयोग्या श्रीः क्रियतां जृम्भतां तव ।
 भुजो भार्गवमत्तेभमदकण्डूयनद्रुमः ॥ ८४१ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते ययाचे जननी पुनः ।
 वनवासनिषेधाख्यां रागं जीवितदक्षिणाम् ॥ ८४२ ॥
 ततः सत्त्वोदधिः स्फीतयशःपरिचितं वचः ।
 धर्म्यं समादधे रामः समानं स्वच्छचेतसः ॥ ८४३ ॥
 कुले महति ज्ञातस्य कार्यं मे शासनं गुरोः ।
 चिच्छेद रेणुकाकण्ठं भार्गवः पितुराज्ञया ॥ ८४४ ॥

वात्सल्यविक्रवा मातर्विषादं मा कृथा वृथा ।
 वनवासावधौ वृत्ते प्राप्तं द्रक्ष्यसि मां पुनः ॥ ८४९ ॥
 लक्ष्मण क्षमाभृतां धैर्यं गाम्भीर्यं च महोदधेः ।
 जाने तव तथाप्येष कोपतप्तोऽभिवीज्यसे ॥ ८४६ ॥
 धिक्कृतान्कुलाधमान्येषु गुरुब्राह्मणशासनात् ।
 शठेषु याति शाठ्यत्वं प्रतिषेधविकुण्ठताम् ॥ ८४७ ॥
 मनोरथासिः कैकेय्या यथा नृणां तथा पितुः ।
 भवत्येव वनं याते मयि पुण्योदयात्परम् ॥ ८४८ ॥
 क्रियतां विमलं चेतः कोपः शान्त्या च वार्यताम् ।
 औचित्यचारु चरितं सहजं हि महात्मनाम् ॥ ८४९ ॥
 तितिक्षा शोभते सैत्यवीर्यविक्रमशालिनाम् ।
 प्रभविष्णुपैदानां च महतामिव संततिः ॥ ८५० ॥
 भक्तिर्गुरौ धृतिर्दुःखे क्षमा कोपे दया कृशे ।
 एतास्ता यशसः शुभाः साम्राज्यविभवस्रजः ॥ ८५१ ॥
 क सन्तः क च दौर्जन्यं क गुणाः क च वक्रता ।
 क विवेकः क पारुष्यं दूरमेतत्परस्परम् ॥ ८५२ ॥
 सौजन्यमनसूया च क्षान्तिर्धैर्यमचापलम् ।
 इत्येष विदुषामग्रे गुणमानसमुच्चयः ॥ ८५३ ॥
 दैवमेव विजानीहि प्रवासे मम कारणम् ।
 न हि पौरुषमत्रास्ति किं वृथा कोपसंभ्रमैः ॥ ८५४ ॥
 कुर्वतां यद्विपद्यन्ते फलन्ति यदकुर्वताम् ।
 कर्माण्यद्भुतशक्तेस्तदैवस्येव विजृम्भितम् ॥ ८५५ ॥
 भरतेन सहेमां त्वं शुश्रूषानिरतः पितुः ।
 प्रसीद पालय महीं मद्विरा गतविक्रियः ॥ ८५६ ॥
 इति कोपानलज्वालासंतप्तमनुजं शनैः ।
 चकार विज्वरं रामो वाक्यपीयूषवृष्टिभिः ॥ ८५७ ॥

१. 'काठिन्यात्' शारदा०. २. 'सत्यं वीर्यं' शारदा०. ३. 'पदस्थानां' शारदा०.

ततः सत्यधृतिर्वीरो दाक्षिण्यैककृतक्षणः ।
 उवाच लक्ष्मणो राममनुयात्रासमुद्यतः ॥ ८९८ ॥
 आर्य जानीहि मां नित्यं छायारूपमिवानुगम् ।
 पौरुषं पूर्वकर्मैव न त्वां त्यक्ष्याम्यहं क्वचित् ॥ ८९९ ॥
 लक्ष्मणस्येति सुदृढं रामो विज्ञाय निश्चयम् ।
 उवाच वीरः कौसल्यां शोकसंतापमूर्छिताम् ॥ ८९० ॥
 अनुजानीहि मां मातः सदाचारानुवर्तिनी ।
 यथा ते दैवतं भर्ता तथा चायं पिता मम ॥ ८९१ ॥
 पुत्रप्रवाससंतापकटुकां वदनात्तव ।
 न शृणोति गिरं राजा यथा मातस्तथा कृथाः ॥ ८९२ ॥
 इत्युक्त्वा पादयोस्तस्याः पपात रघुनन्दनः ।
 तत्पादाब्जनखज्योत्स्नां मूर्ध्नि मालामिवोद्वहन् ॥ ८९३ ॥
 एवं कथंचिद्गुणवत्पुत्रगौरवयन्त्रिता ।
 आशीःपुरःसरां माता प्रादादाज्ञामनर्गलाम् ॥ ८९४ ॥
 ततो विनिर्ययौ मातुर्मन्दिरालक्ष्मणानुगः ।
 धैर्येण सह चेतांसि जनस्य सहसा हरन् ॥ ८९५ ॥
 स समेत्याभिषेकार्हव्रतमङ्गलशालिनीम् ।
 ददर्शान्तःपुरे सीतामुत्कण्ठाकुलिताशयाम् ॥ ८९६ ॥
 विप्रवासकथां श्रुत्वा सा भर्तुः पितुराज्ञया ।
 दुःखितापि धृतिं लेभे सह गन्तुं कृतक्षणा ॥ ८९७ ॥
 रामस्तामवदद्देवि प्रयाते मयि काननम् ।
 सेव्या भवत्या कौसल्या दुःखविस्सारणैर्नयैः ॥ ८९८ ॥
 मद्भिप्रवासयोगेऽपि न कार्याः परुषा गिरः ।
 भरतश्चोत्रगामिन्यः स हि वृत्तिप्रदो नृपः ॥ ८९९ ॥
 इति पत्युर्वचः श्रुत्वा मैथिली कोपकम्पिता ।
 उवाचोच्चकुचाघातशीर्णाश्रुकणसंततिः ॥ ९०० ॥

अहो बतार्यपुत्रस्यासदृशं श्रूयते वचः ।
 अहो प्रिया प्रणयिनी कथं त्याज्या सता सती ॥ ८७१ ॥
 हर्षोऽनुभूतः पित्रा मे मोहात्परिणये वृथा ।
 स्वकीर्तिमिव मां भर्ता त्यक्ष्यतीत्यविजानता ॥ ८७२ ॥
 स्वभाग्यभागिनः सर्वे पितृमातृसुतादयः ।
 सर्वथा पुरुषाणां तु भार्यैका भाग्यभागिनी ॥ ८७३ ॥
 रूपस्य वयसः कान्तेः सौभाग्यस्य सुखस्य च ।
 जीवितस्य च नारीणां जीवितं परमं पतिः ॥ ८७४ ॥
 सुखदुःखानुगां खैरकेलिविस्मम्भसाक्षिणीम् ।
 न मामर्हसि संत्यक्तुं चेतोवृत्तिमिवात्मनः ॥ ८७५ ॥
 विभूतिस्त्यागहीनेव सत्यहीनेव भारती ।
 विद्या प्रशमहीनेव न भाति स्त्री पतिं विना ॥ ८७६ ॥
 इति जायावचः श्रुत्वा रामः सुदृढनिश्चयम् ।
 वनदोषान्बहुविधान्घोररूपानुदाहरन् ॥ ८७७ ॥
 पादयोः पतितां सीतामनुयात्राकृतक्षणाम् ।
 तत्सौकुमार्यचकितस्तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ८७८ ॥
 प्रतिषिद्धोऽपि रामेण यत्नात्प्रणयशालिना ।
 तत्याजारण्यगमने निश्चयं नैव लक्ष्मणः ॥ ८७९ ॥
 स रामशासनाद्विव्ये जग्राह धनुषी स्वयम् ।
 अक्षय्यमायुधं चान्यद्राजा यद्वरुणो ददौ ॥ ८८० ॥
 ततः सुयज्ञमुख्येभ्यः सरत्नाभरणं धेनम् ।
 प्रददौ दृढमेवैभ्यो विप्रेभ्यो रघुनन्दनः ॥ ८८१ ॥
 ब्राह्मणाँस्त्रिजटाद्यौश्च गोसहस्रैश्च काञ्चनैः ।
 पूरयित्वा यथाकामं सर्वाशाः कल्पपादपः ॥ ८८२ ॥
 अभ्येत्य पितरं वीरः प्रलापमुखराननम् ।
 ददर्शान्तःपुरस्त्रीभिर्वृतं व्यथितमानिसम् ॥ ८८३ ॥

१. 'अक्षयं' शारदा०. २. 'वरम्' ख. ३. 'हैः सका' क. ४. 'रामः' ख.

स तमामत्रय विनयात्सानुजो जानकीसखः ।
 गन्तुं समुद्ययौ तूर्णं धैर्यादस्खलिताशयः ॥ ८८४ ॥
 प्रस्तुते राघवे गन्तुं प्रजानां मानसैः सह ।
 बाष्पाम्बुरुद्धनयनो जगाद जगतीपतिः ॥ ८८५ ॥
 धनं रत्नानि सैन्यं च राममेवानुगच्छतु ।
 लतामिवात्तकुसुमां प्राप्नोतु भरतः श्रियम् ॥ ८८६ ॥
 एतदाकर्ण्य चकिता कैकेयी तमभाषत ।
 सत्योपदिग्धमनृतं भवता वत आषितम् ॥ ८८७ ॥
 निःसारं हृतसर्वस्वं दत्त्वा राज्यं प्रतिश्रुतम् ।
 अयशोरेणुविध्वस्तं वचनं किं करिष्यसि ॥ ८८८ ॥
 रामवात्सल्यदोषेण मा सत्यमनृतं कृथाः ।
 ज्येष्ठः सुतो न किं त्यक्तः सगरेणासमञ्जसः ॥ ८८९ ॥
 शापभूताभिभूतायाः श्रुत्वेति वचनं नृपः ।
 रामेणाभ्यर्थितः सैन्यरत्नदानाद्यवर्तत ॥ ८९० ॥
 ततो जगाद सिद्धार्थो महामात्योऽतिदुःखितः ।
 ज्येष्ठपुत्रपरित्यागाद्भ्रमं वः सर्वथा कुलम् ॥ ८९१ ॥
 चिक्षेप सरयूमध्ये दारकानसमञ्जसः ।
 पौराणां तत्कुधा राज्ञा निरस्तः सगरेण सः ॥ ८९२ ॥
 रामोऽर्हति कथं नाम त्यागं गुणवतां वरः ।
 इत्युक्त्वा निःश्वसन्मन्त्री मन्त्रध्वस्त इवाभवत् ॥ ८९३ ॥
 ततश्चीराम्बरं रामः कैकेय्या स्वयमर्पितम् ।
 सह जग्राह निर्देन्यो जानक्या लक्ष्मणेन च ॥ ८९४ ॥
 विलपन्तं समाश्वास्य पितरं मातरं तथा ।
 सुमन्त्रप्रेरितेनाथ रथेन पृथुरंहसा ॥ ८९५ ॥
 रामः प्रतस्थे पौराणां शृण्वन्नाक्रन्दनिःसनम् ।
 निरीक्ष्यमाणः सांत्त्रेण पित्रा विह्वलचेतसा ॥ ८९६ ॥

दृष्टिनेष्टे ततो रामे सह स्यन्दनरेणुना ।

निपपात महीपालश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ८९७ ॥

स लब्धसंज्ञः प्रलपन्कौसल्यासहितो मुहुः ।

शुशोच निन्दन्कैकेयीं मूर्तां मृत्युमिवात्मनः ॥ ८९८ ॥

इति रामप्रवासनम् ॥ १८

रामोऽपि रजनीमेकामतीत्य तमसातटे ।

गोमतीं प्रातरुत्तीर्य सरयूं चोर्मिमालिनीम् ॥ ८९९ ॥

पौरान्प्रणयिनः सान्त्वैर्विनिवर्त्य प्रियंवदः ।

कौसलान्समतिक्रम्य रम्ये मन्दाकिनीतटे ।

इङ्गुदीपादपतले निनायाभिमते निशाम् ॥ ९०० ॥

निषादपतिना तत्र गुहेन गुणशालिना ।

पूजितः प्रणयाचारैः प्रतस्थे विगतश्रमः ॥ ९०१ ॥

ततो विसृज्य विनयात्सुमन्त्रं सुरथानुगम् ।

पितुर्धैर्यं समाश्वासन्संदेशप्रतिपादकम् ॥ ९०२ ॥

प्रीत्या गुहं समामङ्ग्य सुहृदं धृतिसागरः ।

न्यग्रोधक्षीरमाहृत्य जटा बद्ध्वा सलक्ष्मणः ॥ ९०३ ॥

नावा तरङ्गदुर्भङ्गां गङ्गामुत्तीर्य भङ्गुराम् ।

त्रस्तसीताचलापाङ्गभङ्गकर्णोत्पलामिव ॥ ९०४ ॥

न्यग्रोधमूले नलिनीतीरे नीत्वा विभावरीम् ।

गङ्गायमुनयोः संधावतिवाह्यापरां निशाम् ॥ ९०५ ॥

भरद्वाजेन मुनिणा पूजितो विनयानतः ।

तद्गिरा चित्रकूटाख्यं पुण्यं प्राप तपोवनम् ॥ ९०६ ॥

तत्र फुल्लताकुञ्जमञ्जुगुञ्जद्विहंगमम् ।

विलोक्य काननं रामो जगाद जनकात्मजाम् ॥ ९०७ ॥

इमास्ताः पुष्पहासस्य मदषट्पदनादिनः ।

मधोः स्मरसहायस्य विलासोत्सवभूमयः ॥ ९०८ ॥
 पश्येमाः कीर्णकुसुमाः पल्लवाञ्जलिभिः पुरः ।
 आतिथ्यमिव कुर्वन्ति मारुतावनता लताः ॥ ९०९ ॥
 दृष्टिसादृश्यसुहृदस्तव बालकुरङ्गकाः ।
 नेत्रत्रिभागवलनैः सृजन्तीवोत्पलस्रजः ॥ ९१० ॥
 अश्यत्परागवसना मधुपाव्यक्तभाषिणः ।
 पवनाधूर्णिता भान्ति मधुमत्ता इव द्रुमाः ॥ ९११ ॥
 इत्युक्त्वा दारुभिस्तत्र राघवो लक्ष्मणाहृतैः ।
 कृत्वाश्रमे वास्तुपूजां वैश्वदेवोचितां व्यधात् ॥ ९१२ ॥
 इत्याश्रमवास्तुपूजनम् ॥ १९ ॥
 रथेन रामशून्येन धैर्यशून्येन चेतसा ।
 सुमन्नः प्रविवेशाथ हर्षशून्यां पुरीं प्रभोः ॥ ९१३ ॥
 अरामं रथमालोक्य प्राप्तं भग्नमनोरथाः ।
 चुक्रुशुः शोकविवशाः पौरास्तद्रुणरागिणः ॥ ९१४ ॥
 प्रविश्य प्रोषितसुखं विच्छाद्यं नृपमन्दिरम् ।
 ददर्शान्तर्दशरथं सुमन्नः शोकविह्वलम् ॥ ९१५ ॥
 तं शोककृष्णपक्षेण निरीक्ष्य क्षयितप्रभम् ।
 प्रणम्य राजशशिनं सोऽभवद्व्यथितेन्द्रियः ॥ ९१६ ॥
 दृष्ट्वा सुमन्नं नृपतिर्वधूभिः परिवारितः ।
 रामं त्यक्त्वागतोऽसीति पपात विलपन्क्षितौ ॥ ९१७ ॥
 स लब्धसंज्ञः शनकैः पुत्रस्नेहविषादितः ।
 पप्रच्छ रामवृत्तान्तं सुमन्नं बाष्पगद्गदः ॥ ९१८ ॥
 स निवेद्य वनं प्राप्तं राममस्मै कृताञ्जलिः ।
 तत्संदेशं जगादाथ धैर्यप्रणयनिर्भरम् ॥ ९१९ ॥
 अयोध्याभिमुखः कृत्वा राघवः प्रणतोऽञ्जलिम् ।
 देव मद्रक्कसंक्रान्तां विज्ञप्तिं विदधे तव ॥ ९२० ॥

तात त्वच्छासनं मूर्ध्ना चिन्तामणिमिवोद्वहन् ।
 धन्यः संतोषराज्येऽस्मिन्प्रीतिं प्राप्तः परामहम् ॥ ९२१ ॥
 न धैर्यजलधे कार्यः संतापो मद्वियोगजः ।
 चतुर्दश समा विद्धि क्षणवत्क्षपिता मया ॥ ९२२ ॥
 भरतं प्रति वात्सल्यशैथिल्यं मा कृथा विभो ।
 मन्निर्विशेषं भवता संभाव्यः स च सर्वदा ॥ ९२३ ॥
 इति ब्रुवाणे काकुत्स्थे किञ्चिदागतविक्रियः ।
 सौमित्रिर्निःश्वसन्नूचे क्षितिमालोकयन्क्षणम् ॥ ९२४ ॥
 चिन्तामणिगुणं पुत्रं त्यजता वत भूभुजा ।
 कुलं स्वव्यसनेनेव यशो नीतं दरिद्रताम् ॥ ९२५ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते जानकी सास्त्रलोचना ।
 निरीक्षमाणा दयितं बाला नोवाच किञ्चन ॥ ९२६ ॥
 सुमन्त्रेणेति कथिते व्यथितः पार्थिवो भृशम् ।
 हा रामेति निगद्योच्चैर्मोहान्निःस्पन्दतां ययौ ॥ ९२७ ॥
 पुनः प्रत्यागतप्राणः श्रुत्वा रामं जटाधरम् ।
 जायासखः स संतापाद्विललापाश्रुगद्गदम् ॥ ९२८ ॥
 शोचंश्च सानुजं रामं जानकीं च विशेषतः ।
 विलापविशिशैस्तीव्रैर्नृपः कौसल्यया हतः ॥ ९२९ ॥
 चुक्रोश कृपयाविष्टः कष्टां विपदमास्थितः ।
 राहुच्छायोपगूढस्य वहन्तंशुमतः प्रभाम् ॥ ९३० ॥
 कृच्छ्रेण प्रययुस्तस्य पञ्च पञ्चत्वकाङ्क्षिणः ।
 सहस्रयामतां यातास्त्रियामास्तसचेतसः ॥ ९३१ ॥
 षष्ठेऽहनि ततो राजा शोकसंजातविक्रियः ।
 याते निशीथे कौसल्यामवदद्वाष्पगद्गदः ॥ ९३२ ॥
 वियोगविषकन्दानां धन्या धैर्यप्रमाथिनाम् ।
 रसज्ञा न भवन्त्येव सत्यं सुकृतिनो नराः ॥ ९३३ ॥

स्वयं प्ररोपितस्यैव भविष्णोः कर्मशाखिनः ।
 शुभाशुभफलस्फीतिं भुञ्जते बत जन्तवः ॥ ९३४ ॥
 स्मृतं पुराद्य कौसल्ये मया यद्वृष्टं कृतम् ।
 तस्यैवायमपथ्यस्य विपाको जीवितापहः ॥ ९३५ ॥
 धन्वी पुरा कुमारोऽहं काले जलदलाञ्छने ।
 प्रयातः सरयूकूलं मृगयाकेलिलालसः ॥ ९३६ ॥
 निशि तत्र जले मग्ना महिषक्रोडकुञ्जराः ।
 लक्ष्यज्ञेन मया विद्धाः शब्दपातदिदृक्षया ॥ ९३७ ॥
 तस्मिन्काले निरालोके ध्वनिराकर्णितो मया ।
 गजवृंहितगम्भीरो निमज्जत्कुम्भसंभवः ॥ ९३८ ॥
 तमहं शब्दमुद्दिश्य तीक्ष्णं प्राहिण्वं शरम् ।
 विद्धः स कुम्भो येनाशु चुक्रोश मुनिपुत्रकः ॥ ९३९ ॥
 हा हा बत नृशंसेन केन किल्बिषकारिणा ।
 अन्धयोर्वृद्धयोः पित्रोः पुत्रोऽयमिषुणा हतः ॥ ९४० ॥
 हते मयि हतौ नूनं तावेवै स्तस्तपस्विनौ ।
 अहमेवै तयोर्दृष्टिर्यष्टिश्च विषमेऽध्वनि ॥ ९४१ ॥
 किं करिष्यसि हा मातः क्व गमिष्यसि हा पितः ।
 कष्टं कथमहं विप्रः शरेण निधनं गतः ॥ ९४२ ॥
 इति श्रुत्वातिकरुणं मुनिसूनोरहं वचः ।
 तेन प्रत्यागतेनैव स्वेन बाणेन धारितः ॥ ९४३ ॥
 शापेनेवान्धकारेण दारिते सरयूतटे ।
 नापश्यं कृतयत्नोऽपि तं विकूजन्तमातुरम् ॥ ९४४ ॥
 अथ शोकादिवापाण्डुर्वेपमानाकृतिः शशी ।
 निशार्धशेषे शुभ्रांशुकेशो वृद्ध इवोद्ययौ ॥ ९४५ ॥

१. 'प्राप्ति' ख. २. 'मया' शारदा०. ३. 'पुरा' शारदा०. ४ 'तीर' ख.
 ५. 'वाद्य त' शारदा०; ख. ६. 'मेघ' शारदा०.

ज्योत्स्नाप्रकटिते तीरे ततोऽपश्यमहं पुरः ।
स्यूतं सुवर्णपुङ्खेन शरेण मुनिपुत्रकम् ॥ ९४६ ॥
विप्रकीर्णजटाजूटं नूतनोद्भिन्नयौवनम् ।
क्रन्दन्तं पतितं दृष्ट्वा तमहं व्यथितोऽपतम् ॥ ९४७ ॥
सोऽपि विप्लुतनेत्रो मां विलोक्य पतितं शुचा ।
उवाच मर्मविच्छेदं व्यथाशिथिलिताक्षरम् ॥ ९४८ ॥
अहो वतैकवाणेन तुल्यमेव हतस्त्वया ।
अहमन्धौ च वृद्धौ च पितरावेकपुत्रकौ ॥ ९४९ ॥
तदर्थमहमायातः समाहर्तुमितः पयः ।
मोहाद्धतस्त्वया तौ तु तृषार्तौ किं करिष्यतः ॥ ९५० ॥
राजन्वज्राग्निसंस्पर्शं तूर्णमुद्धर मे शरम् ।
संन्यासिनः सशल्यस्य नाहं मे मरणं मुनेः ॥ ९५१ ॥
इति प्रलपतस्तस्य जीवितावासचेतसः ।
मया मन्युरिवाभ्येत्य हृदयादुद्धृतः शरः ॥ ९५२ ॥
आकृष्टसायके तस्मिन्व्यावृत्तनयनः श्वसन् ।
व्यथां मयि विनिक्षिप्य द्विजस्तत्याज जीवितम् ॥ ९५३ ॥
पूर्वं तदुपदिष्टेन ततोऽहं वनवर्त्मना ।
जलकुम्भं समादाय प्रयातस्तत्पितुः पदम् ॥ ९५४ ॥
तत्रान्धौ दम्पती श्रुत्वा तौ मे शब्दं प्रसर्पतः ।
पुत्रदर्शनसोत्कण्ठौ गद्गदाक्षरमूचतुः ॥ ९५५ ॥
चिरेणागच्छता पुत्र भवता केलिशालिना ।
आवयोर्भयसंदेहदोलामारोपितं मनः ॥ ९५६ ॥
एह्येहि यज्ञदत्तास्तत्पाणिसङ्केन संस्पृश ।
न कोपितः कदाचित्त्वं चिरेण कथमागतः ॥ ९५७ ॥
इति ब्रुवाणयोरग्रे कम्पमानस्तयोरहम् ।
दुःसहं हृदि वाग्वज्रं तद्वृत्तान्तं न्यवेदयम् ॥ ९५८ ॥

ततः सत्यधृतिवीरो दाक्षिण्यैककृतक्षणः ।
 उवाच लक्ष्मणो राममनुयात्रासमुद्यतः ॥ ८५८ ॥
 आर्य जानीहि मां नित्यं छायारूपमिवानुगम् ।
 पौरुषं पूर्वकर्मैव न त्वां त्यक्ष्याम्यहं क्वचित् ॥ ८५९ ॥
 लक्ष्मणस्येति सुदृढं रामो विज्ञाय निश्चयम् ।
 उवाच वीरः कौसल्यां शोकसंतापमूर्छिताम् ॥ ८६० ॥
 अनुजानीहि मां मातः सदाचारानुवर्तिनी ।
 यथा ते दैवतं भर्ता तथा चायं पिता मम ॥ ८६१ ॥
 पुत्रप्रवाससंतापकटुकां वदनात्तव ।
 न शृणोति गिरं राजा यथा मातस्तथा कृथाः ॥ ८६२ ॥
 इत्युक्त्वा पादयोस्तस्याः पपात रघुनन्दनः ।
 तत्पादाब्जनखज्योत्स्नां मूर्ध्नि मालामिवोद्वहन् ॥ ८६३ ॥
 एवं कथंचिद्गुणवत्पुत्रगौरवयन्त्रिता ।
 आशीःपुरःसरां माता प्रादादाज्ञामनर्गलाम् ॥ ८६४ ॥
 ततो विनिर्ययौ मातुर्मन्दिराल्लक्ष्मणानुगः ।
 धैर्येण सह चेतांसि जनस्य सहसा हरन् ॥ ८६५ ॥
 स समेत्याभिषेकार्हव्रतमङ्गलशालिनीम् ।
 ददर्शान्तःपुरे सीतामुत्कण्ठाकुलिताशयाम् ॥ ८६६ ॥
 विप्रवासकथां श्रुत्वा सा भर्तुः पितुराज्ञया ।
 दुःखितापि धृतिं लेभे सह गन्तुं कृतक्षणा ॥ ८६७ ॥
 रामस्तामवदद्देवि प्रयाते मयि काननम् ।
 सेव्या भवत्या कौसल्या दुःखविस्मारणैर्नयैः ॥ ८६८ ॥
 मद्भिप्रवासयोगेऽपि न कार्याः परुषा गिरः ।
 भरतश्चोत्रगामिन्यः स हि वृत्तिप्रदो नृपः ॥ ८६९ ॥
 इति पत्युर्वचः श्रुत्वा मैथिली कोपकम्पिता ।
 उवाचोच्चकुचाघातशीर्णाश्रुकणसंततिः ॥ ८७० ॥

अहो बतार्यपुत्रस्यासदृशं श्रूयते वचः ।
 अहो प्रिया प्रणयिनी कथं त्याज्या सता सती ॥ ८७१ ॥
 हर्षोऽनुभूतः पित्रा मे मोहात्परिणये वृथा ।
 स्वकीर्तिमिव मां भर्ता त्यक्ष्यतीत्यविजानता ॥ ८७२ ॥
 स्वभाग्यभागिनः सर्वे पितृमातृसुतादयः ।
 सर्वथा पुरुषाणां तु भार्यैका भाग्यभागिनी ॥ ८७३ ॥
 रूपस्य वयसः कान्तेः सौभाग्यस्य सुखस्य च ।
 जीवितस्य च नारीणां जीवितं परमं पतिः ॥ ८७४ ॥
 सुखदुःखानुगां खैरकेलिविस्मम्भसाक्षिणीम् ।
 न मामर्हसि संत्यक्तुं चेतोवृत्तिमिवात्मनः ॥ ८७५ ॥
 विभूतिस्त्यागहीनेव सत्यहीनेव भारती ।
 विद्या प्रशमहीनेव न भाति स्त्री पतिं विना ॥ ८७६ ॥
 इति जायावचः श्रुत्वा रामः सुदृढनिश्चयम् ।
 वनदोषान्बहुविधान्घोररूपानुदाहरन् ॥ ८७७ ॥
 पादयोः पतितां सीतामनुयात्राकृतक्षणाम् ।
 तत्सौकुमार्यचकितस्तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ८७८ ॥
 प्रतिषिद्धोऽपि रामेण यत्नात्प्रणयशालिना ।
 तत्याजारण्यगमने निश्चयं नैव लक्ष्मणः ॥ ८७९ ॥
 स रामशासनाद्विव्ये जग्राह धनुषी स्वयम् ।
 अक्षय्यमायुधं चान्यद्राजा यद्वरुणो ददौ ॥ ८८० ॥
 ततः सुयज्ञमुख्येभ्यः सरत्नाभरणं धेनम् ।
 प्रददौ दृढमेवैभ्यो विप्रेभ्यो रघुनन्दनः ॥ ८८१ ॥
 ब्राह्मणाँस्त्रिजटाध्याँश्च गोसहस्रैश्च काञ्चनैः ।
 पूरयित्वा यथाकामं सर्वाशाः कल्पपादपः ॥ ८८२ ॥
 अभ्येत्य पितरं वीरः प्रलापमुखराननम् ।
 ददर्शान्तःपुरस्त्रीभिर्वृतं व्यथितमानिसम् ॥ ८८३ ॥

१. 'अक्षयं' शारदा०. २. 'वरम्' ख. ३. 'सैः सका' क. ४. 'रामः' ख.

स तमामत्रय विनयात्सानुजो ज्ञानकीसखः ।
 गन्तुं समुद्यौ तूर्णं धैर्यादस्खलिताशयः ॥ ८८४ ॥
 प्रस्तुते राघवे गन्तुं प्रजानां मानसैः सह ।
 बाष्पाम्बुरुद्धनयनो जगाद जगतीपतिः ॥ ८८५ ॥
 धनं रत्नानि सैन्यं च राममेवानुगच्छतु ।
 लतामिवात्तकुसुमां प्राप्नोतु भरतः श्रियम् ॥ ८८६ ॥
 एतदाकर्ण्य चकिता कैकेयी तमभाषत ।
 सत्योपदिग्धमनृतं भवता वत भाषितम् ॥ ८८७ ॥
 निःसारं हृतसर्वस्वं दत्त्वा राज्यं प्रतिश्रुतम् ।
 अयशोरेणुविध्वस्तं वचनं किं करिष्यसि ॥ ८८८ ॥
 रामवात्सल्यदोषेण मा सत्यमनृतं कृथाः ।
 ज्येष्ठः सुतो न किं त्यक्तः सगरेणासमञ्जसः ॥ ८८९ ॥
 शापभूताभिभूतायाः श्रुत्वेति वचनं नृपः ।
 रामेणाभ्यर्थितः सैन्यरत्नदानान्त्रयवर्तत ॥ ८९० ॥
 ततो जगाद सिद्धार्थो महामात्योऽतिदुःखितः ।
 ज्येष्ठपुत्रपरित्यागाद्भयं वः सर्वथा कुलम् ॥ ८९१ ॥
 चिक्षेप सरयूमध्ये दारकानसमञ्जसः ।
 पौराणां तत्कुधा राज्ञा निरस्तः सगरेण सः ॥ ८९२ ॥
 रामोऽर्हति कथं नाम त्यागं गुणवतां वरः ।
 इत्युक्त्वा निःश्वसन्मन्त्री मन्त्रध्वस्त इवाभवत् ॥ ८९३ ॥
 ततश्चैराम्बरं रामः कैकेय्या स्वयमर्पितम् ।
 सह जग्राह निर्देन्यो जानक्या लक्ष्मणेन च ॥ ८९४ ॥
 विलपन्तं समाश्वास्य पितरं मातरं तथा ।
 सुमन्त्रप्रेरितेनाथ रथेन पृथुरंहसा ॥ ८९५ ॥
 रामः प्रतस्थे पौराणां शृण्वन्नाक्रन्दनिःस्वनम् ।
 निरीक्ष्यमाणः सांस्त्रेण पित्रा विह्वलचेतसा ॥ ८९६ ॥

दृष्टिनष्टे ततो रामे सह स्यन्दनरेणुना ।
 निपपात महीपालश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ८९७ ॥
 स लब्धसंज्ञः प्रलपन्कौसल्यासहितो मुहुः ।
 शुशोच निन्दन्कैकेयीं मूर्तां मृत्युमिवात्मनः ॥ ८९८ ॥
 इति रामप्रवासनम् ॥ १८

रामोऽपि रजनीमेकामतीत्य तमसातटे ।
 गोमतीं प्रातरुत्तीर्य सरयूं चोर्मिमालिनीम् ॥ ८९९ ॥
 पौरान्प्रणयिनः सान्त्वैर्विनिवर्त्य प्रियंवदः ।
 कौसलान्समतिक्रम्य रम्ये मन्दाकिनीतटे ।
 इङ्गुदीपादपतले निनायाभिमतं निशाम् ॥ ९०० ॥
 निषादपतिना तत्र गुहेन गुणशालिना ।
 पूजितः प्रणयाचारैः प्रतस्थे विगतश्रमः ॥ ९०१ ॥
 ततो विसृज्य विनयात्सुमन्त्रं सुरथानुगम् ।
 पितुर्धैर्यं समाश्रासन्संदेशप्रतिपादकम् ॥ ९०२ ॥
 प्रीत्या गुहं समामन्त्र्य सुहृदं धृतिसागरः ।
 न्यग्रोधक्षीरमाहृत्य जटा बद्ध्वा सलक्ष्मणः ॥ ९०३ ॥
 नावा तरङ्गदुर्भङ्गां गङ्गामुत्तीर्य भङ्गराम् ।
 त्रस्तसीताचलापाङ्गभङ्गकर्णोत्पलामिव ॥ ९०४ ॥
 न्यग्रोधमूले नलिनीतीरे नीत्वा विभावरीम् ।
 गङ्गायमुनयोः संधावतिवाह्यापरां निशाम् ॥ ९०५ ॥
 भरद्वाजेन मुनिणा पूजितो विनयानतः ।
 तद्विरा चित्रकूटाख्यं पुण्यं प्राप तपोवनम् ॥ ९०६ ॥
 तत्र फुल्लताकुञ्जमञ्जुगुञ्जद्विहंगमम् ।
 विलोक्य काननं रामो जगाद जनकात्मजाम् ॥ ९०७ ॥
 इमास्ताः पुष्पहासस्य मदषट्पदनादिनः ।

मधोः स्मरसहायस्य विलासोत्सवभूमयः ॥ ९०८ ॥
 पश्येमाः कीर्णकुसुमाः पल्लवाञ्जलिभिः पुरः ।
 आतिथ्यमिव कुर्वन्ति मारुतावनता लताः ॥ ९०९ ॥
 दृष्टिसादृश्यसुहृदस्तव बालकुरङ्गकाः ।
 नेत्रत्रिभागवलनैः सृजन्तीवोत्पलस्रजः ॥ ९१० ॥
 अश्रुत्परागवसना मधुपाव्यक्तभाषिणः ।
 पवनाधूर्णिता भान्ति मधुमत्ता इव द्रुमाः ॥ ९११ ॥
 इत्युक्त्वा दारुभिस्तत्र राघवो लक्ष्मणाहृतैः ।
 कृत्वाश्रमे वास्तुपूजां वैश्वदेवोचितां व्यधात् ॥ ९१२ ॥
 इत्याश्रमवास्तुपूजनम् ॥ १९ ॥
 रथेन रामशून्येन धैर्यशून्येन चेतसा ।
 सुमन्नः प्रविवेशाथ हर्षशून्यां पुरीं प्रभोः ॥ ९१३ ॥
 अरामं रथमालोक्य प्राप्तं भग्नमनोरथाः ।
 चुक्रुशुः शोकविवशाः पौरास्तद्रुणरागिणः ॥ ९१४ ॥
 प्रविश्य प्रोषितसुखं विच्छायां नृपमन्दिरम् ।
 ददर्शान्तर्दशरथं सुमन्नः शोकविह्वलम् ॥ ९१५ ॥
 तं शोककृष्णपक्षेण निरीक्ष्य क्षयितप्रभम् ।
 प्रणम्य राजशशिनं सोऽभवद्व्यथितेन्द्रियः ॥ ९१६ ॥
 दृष्ट्वा सुमन्नं नृपतिर्वधूभिः परिवारितः ।
 रामं त्यक्त्वागतोऽसीति पपात विलपन्क्षितौ ॥ ९१७ ॥
 स लब्धसंज्ञः शनकैः पुत्रस्नेहविषादितः ।
 पप्रच्छ रामवृत्तान्तं सुमन्नं बाष्पगद्गदः ॥ ९१८ ॥
 स निवेद्य वनं प्राप्तं राममस्मै कृताञ्जलिः ।
 तत्संदेशं जगादाथ धैर्यप्रणयनिर्भरम् ॥ ९१९ ॥
 अयोध्याभिमुखः कृत्वा राघवः प्रणतोऽञ्जलिम् ।
 देव मद्भक्तसंक्रान्तां विज्ञप्तिं विदधे तव ॥ ९२० ॥

तात त्वच्छासनं मूर्ध्ना चिन्तामणिमिवोद्वहन् ।
 धन्यः संतोषराज्येऽस्मिन्प्रीतिं प्राप्तः परामहम् ॥ ९२१ ॥
 न धैर्यजलधे कार्यः संतापो मद्वियोगजः ।
 चतुर्दश समा विद्धि क्षणवत्क्षपिता मया ॥ ९२२ ॥
 भरतं प्रति वात्सल्यशैथिल्यं मा कृथा विभो ।
 मन्निर्विशेषं भवता संभाव्यः स च सर्वदा ॥ ९२३ ॥
 इति ब्रुवाणे काकुत्स्थे किञ्चिदागतविक्रियः ।
 सौमित्रिनिःश्वसन्नूचे क्षितिमालोकयन्क्षणम् ॥ ९२४ ॥
 चिन्तामणिगुणं पुत्रं त्यजता बत भूभुजा ।
 कुलं स्वव्यसनेनेव यशो नीतं दरिद्रताम् ॥ ९२५ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते जानकी साखलोचना ।
 निरीक्षमाणा दयितं बाला नोवाच किञ्चन ॥ ९२६ ॥
 सुमन्त्रेणेति कथिते व्यथितः पार्थिवो भृशम् ।
 हा रामेति निगद्योच्चैर्मोहान्निःस्पन्दतां ययौ ॥ ९२७ ॥
 पुनः प्रत्यागतप्राणः श्रुत्वा रामं जटाधरम् ।
 जायासखः स संतापाद्विललापाश्रुगद्गदम् ॥ ९२८ ॥
 शोचंश्च सानुजं रामं जानकीं च विशेषतः ।
 विलापविशिलैस्तीव्रैर्नृपः कौसल्यया हतः ॥ ९२९ ॥
 चुक्रोश कृपयाविष्टः कष्टां विपदमास्थितः ।
 राहुच्छायोपगूढस्य वहन्नंशुमतः प्रभाम् ॥ ९३० ॥
 कृच्छ्रेण प्रययुस्तस्य पञ्च पञ्चत्वकाङ्क्षिणः ।
 सहस्रयामतां यातास्त्रियामास्तसचेतसः ॥ ९३१ ॥
 षष्ठेऽहनि ततो राजा शोकसंजातविक्रियः ।
 याते निशीथे कौसल्यामवदद्वाष्पगद्गदः ॥ ९३२ ॥
 वियोगविषकन्दानां धन्या धैर्यप्रमाथिनाम् ।
 रसज्ञा न भवन्त्येव सत्यं सुकृतिनो नराः ॥ ९३३ ॥

स्वयं प्ररोपितस्यैव भविष्णोः कर्मशाखिनः ।
 शुभाशुभफलस्फीतिं भुञ्जते बत जन्तवः ॥ ९३४ ॥
 स्मृतं पुराद्य कौसल्ये मया यद्वष्टुतं कृतम् ।
 तस्यैवायमपथ्यस्य विपाको जीवितापहः ॥ ९३५ ॥
 धन्वी पुरा कुमारोऽहं काले जलदलान्छने ।
 प्रयातः सरयूकूलं मृगयाकेलिलालसः ॥ ९३६ ॥
 निशि तत्र जले मग्ना महिषक्रोडकुञ्जराः ।
 लक्ष्यज्ञेन मया विद्धाः शब्दपातदिदृक्षया ॥ ९३७ ॥
 तस्मिन्काले निरालोके ध्वनिराकर्णितो मया ।
 गजवृंहितगम्भीरो निमज्जत्कुम्भसंभवः ॥ ९३८ ॥
 तमहं शब्दमुद्दिश्य तीक्ष्णं प्राहिण्वं शरम् ।
 विद्धः स कुम्भो येनाशु चुक्रोश मुनिपुत्रकः ॥ ९३९ ॥
 हा हा बत नृशंसेन केन किल्बिषकारिणा ।
 अन्धयोर्वृद्धयोः पित्रोः पुत्रोऽयमिषुणा हतः ॥ ९४० ॥
 हते मयि हतौ नूनं तावेवै स्तस्तपस्विनौ ।
 अहमेवै तयोर्दृष्टिर्यष्टिश्च विषमेऽध्वनि ॥ ९४१ ॥
 किं करिष्यसि हा मातः क गमिष्यसि हा पितः ।
 कष्टं कथमहं विप्रः शरेण निधनं गतः ॥ ९४२ ॥
 इति श्रुत्वातिकरुणं मुनिसूनोरहं वचः ।
 तेन प्रत्यागतेनैव स्वेन बाणेन धारितः ॥ ९४३ ॥
 शापेनेवान्धकारेण दारिते सरयूतटे ।
 नापश्यं कृतयन्नोऽपि तं विकूजन्तमातुरम् ॥ ९४४ ॥
 अथ शोकादिवापाण्डुर्वेपमानाकृतिः शशी ।
 निशार्धशेषे शुभ्रांशुकेशो वृद्ध इवोद्ययौ ॥ ९४५ ॥

१. 'प्राप्ति' ख. २. 'मया' शारदा०. ३. 'पुरा' शारदा०. ४. 'तीरं' ख.
 ५. 'वाद्य त' शारदा०; ख. ६. 'मेघ' शारदा०.

ज्योत्स्नाप्रकटिते तीरे ततोऽपश्यमहं पुरः ।
 स्यूतं सुवर्णपुङ्खेन शरेण मुनिपुत्रकम् ॥ ९४६ ॥
 विप्रकीर्णजटाजूटं नूतनोद्धिन्नयौवनम् ।
 क्रन्दन्तं पतितं दृष्ट्वा तमहं व्यथितोऽपतम् ॥ ९४७ ॥
 सोऽपि विष्णुतनेत्रो मां विलोक्य पतितं शुचा ।
 उवाच मर्मविच्छेदं व्यथाशिथिलिताक्षरम् ॥ ९४८ ॥
 अहो बतैकबाणेन तुल्यमेव हतस्त्वया ।
 अहमन्धौ च वृद्धौ च पितरावेकपुत्रकौ ॥ ९४९ ॥
 तदर्थमहमायातः समाहर्तुमितः पयः ।
 मोहाद्धतस्त्वया तौ तु तृषातौ किं करिष्यतः ॥ ९५० ॥
 राजन्वज्राग्निसंस्पर्शं तूर्णमुद्धर मे शरम् ।
 संन्यासिनः सशल्यस्य नाहं मे मरणं मुनेः ॥ ९५१ ॥
 इति प्रलपतस्तस्य जीवितावासचेतसः ।
 मया मन्युरिवाभ्येत्य हृदयादुद्धृतः शरः ॥ ९५२ ॥
 आकृष्टसायके तस्मिन्व्यावृत्तनयनः श्वसन् ।
 व्यथां मयि विनिक्षिप्य द्विजस्तत्याज जीवितम् ॥ ९५३ ॥
 पूर्वं तदुपदिष्टेन ततोऽहं वनवर्त्मना ।
 जलकुम्भं समादाय प्रयातस्तत्पितुः पदम् ॥ ९५४ ॥
 तत्रान्धौ दम्पती श्रुत्वा तौ मे शब्दं प्रसर्पतः ।
 पुत्रदर्शनसोत्कण्ठौ गद्गदाक्षरमूचतुः ॥ ९५५ ॥
 चिरेणागच्छता पुत्र भवता केलिशालिना ।
 आवयोर्भयसंदेहदोलामारोपितं मनः ॥ ९५६ ॥
 एहेहि यज्ञदत्तास्तत्पाणिसङ्केन संस्पृश ।
 न कोपितः कदाचित्त्वं चिरेण कथमागतः ॥ ९५७ ॥
 इति ब्रुवाणयोरग्रे कम्पमानस्तयोरहम् ।
 दुःसहं हृदि वाग्वज्रं तद्वृत्तान्तं न्यवेदयम् ॥ ९५८ ॥

अहं दशरथः पापः सुकृती न सुतस्तव ।
 पुत्रः स ते गजधिया मयैव निहतः प्रियः ॥ ९५९ ॥
 अधुना क्रोधजः शापो दुःसहो मयि पात्यताम् ।
 अस्य किल्बिषशोकाग्नेरग्रे मन्ये स शीतलः ॥ ९६० ॥
 इति श्रुत्वैव गम्भीरदुःखः स्वस्थ इव क्षणम् ।
 मामुवाच मुनिर्ध्यात्वा दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ॥ ९६१ ॥
 स्वयमावेदनेनैव पापस्यास्य स्थवीयसः ।
 अविज्ञानान्न ते यातं शिरः शतसहस्रधा ॥ ९६२ ॥
 नय मां तत्र यत्रासौ शेते त्वद्वाणमारितः ।
 मम चक्षुश्च यष्टिश्च जीवितं च प्रियः सुतः ॥ ९६३ ॥
 तमहं द्रष्टुमिच्छामि सभार्यः क्षतजोक्षितम् ।
 प्राणाः संप्रस्थिताः कापि तत्संस्पर्शः कुतः पुनः ॥ ९६४ ॥
 इति ब्रुवाणः स मयानीतो जायासखः शनैः ।
 तं देशं यत्र तत्पुत्रः क्षमामिवालिङ्ग्य संस्थितः ॥ ९६५ ॥
 उन्नम्य वदनं तस्मै समेत्य भृशमाकुला ।
 जननी दुःखसंतप्ता वहन्ती जन्मवासनाम् ॥ ९६६ ॥
 अहं ते जनकः पुत्र किर कर्णसुधां गिरम् ।
 अन्धोऽहं क च यास्यामि त्वदालम्बनजीवितः ॥ ९६७ ॥
 गतिं पुण्यकृतां वत्स परमां समवाप्नुहि ।
 त्वया सहावयोर्नूनं त्रिदिवे संगमः पुनः ॥ ९६८ ॥
 इति प्रलप्य सुचिरं मुनिस्तनयवत्सलः ।
 शरीरमस्य सत्कृत्य क्रियां चक्रे यथोचिताम् ॥ ९६९ ॥
 ततो दिव्यवपुर्दिव्यं विमानं दीप्तमास्थितः ।
 उवाच द्योतयन्व्योम्नि पितरौ मुनिपुत्रकः ॥ ९७० ॥
 शुश्रूषयैव युवयोः प्राप्तोऽसि गतिमुत्तमाम् ।
 नापराधोऽस्य नृपतेरीदृशी भवितव्यता ॥ ९७१ ॥

स्वकृतैः कर्मभिर्जन्तुर्जायते परिवर्धते ।
 जीर्यते नश्यति पुनः कर्ता कश्चिन्न कस्यचित् ॥ ९७२ ॥
 इत्युक्त्वान्तर्हिते तस्मिन्मां वृद्धो मुनिरब्रवीत् ।
 अवश्यं नृप भोक्तव्यं पापस्यास्य फलं त्वया ॥ ९७३ ॥
 पुत्रशोकेन महता तप्तस्त्यक्ष्यति जीवितम् ।
 इत्युक्त्वा दुःखितो देहं सभार्यो मुनिरत्यजत् ॥ ९७४ ॥
 इति यज्ञदत्तवधवर्णनम् ॥ २० ॥

सोऽयं ममाद्य कौसल्ये फलितः शापपादपः ।
 न हि नाम चलत्येषा विहिता कर्मसंततिः ॥ ९७५ ॥
 सज्जाः संनिहिता नित्यं शुभाशुभफलोदयाः ।
 तिष्ठन्ति पुरुषस्याग्रे सद्गत्याः सुभृता इव ॥ ९७६ ॥
 एते वियोगशोकाभितापक्लेशसहिष्णवः ।
 प्राणास्तरलसंचाराः कापि गन्तुं समुद्यताः ॥ ९७७ ॥
 हा न दृष्टो मया रामः कामं कमललोचनः ।
 कुतस्तमिह विक्रान्तं द्रक्ष्यामि पुनरागतम् ॥ ९७८ ॥
 सीतैव धन्या रामस्य सततं पार्श्ववर्तिनी ।
 कीर्तिः सत्पुरुषस्येव धृतिः सत्त्ववतो यथा ॥ ९७९ ॥
 हा राम नयनानन्दसुधासंदोहबान्धव ।
 विलप्येति मुहुः प्राणांस्तत्याज जगतीपतिः ॥ ९८० ॥
 सुप्तं विज्ञाय नृपतिं कौसल्या शोकतापिता ।
 तन्निद्राभङ्गभीताभून्निःशब्दप्रविलापिनी ॥ ९८१ ॥
 प्रातः प्रबोध्यमानोऽपि सूतमागधबन्दिभिः ।
 दीर्घप्रवासरसिकः क्षमापतिर्न व्यबुध्यत ॥ ९८२ ॥
 ततस्तं विगतश्वासं प्रशान्तमिष पावकम् ।
 अपुनर्दर्शनायैव ददर्श महिषीजनः ॥ ९८३ ॥
 इति दशरथविपत्तिः ॥ २१ ॥

अस्तं प्रयातमालोक्य तं राजरजनीपतिम् ।
 शोकान्धकारसंरुद्धश्चक्रन्दान्तःपुरे जनः ॥ ९८४ ॥
 कौसल्याद्यास्ततो देव्यः प्रलापमुखराननाः ।
 चक्रुरश्रुकणैश्छिन्नहारमुक्ताफलप्रभम् ॥ ९८५ ॥
 सवृद्धबालललने शोकव्याकुलिते जने ।
 मार्कण्डेयवसिष्ठाद्या निवेद्य सह मन्त्रिभिः ॥ ९८६ ॥
 तैलद्रोण्यां विनिक्षिप्य नृपं पुत्रक्रियां विना ।
 दूतान्विससृजुर्वीरान्भरतायाश्रुगामनः ॥ ९८७ ॥
 इति क्षेमेन्द्रावेरचिते रामायणकथासारे समाप्तोऽयमयोध्याकाण्डः ।

प्राप्तेषु केकयपुरं दिनैर्दूतेषु सप्तभिः ।
 स्वैरं बन्धुसमासीनो वयस्यान्भरतोऽभ्यधात् ॥ १ ॥
 मया निशावसानेऽद्य स्वप्नो दृष्टोऽतिदारुणः ।
 फलं यस्याधिकं मन्ये जीविताधिकसंशयः ॥ २ ॥
 शुष्कं समुद्रमद्राक्षं चन्द्रं च पतितं दिवः ।
 तमोरुद्धामयोध्यां च कीर्णकेशीमिवाङ्गनाम् ॥ ३ ॥
 गुरुश्च शैलशिखरान्मया दृष्टः परिच्युतः ।
 कलशे गोमयजले तैलमञ्जलिभिः पिबन् ॥ ४ ॥
 स एव च पुनर्दृष्टो लोहपृष्ठे सिताम्बरः ।
 नारीभिः कृष्णपिङ्गाभिर्हसन्तीभिर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥
 रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ।
 पुनरालोकितस्तूर्णं प्रसर्पन्दक्षिणां दिशम् ॥ ६ ॥
 इत्येष विषमः स्वप्नः परं हृदयकम्पनः ।
 गम्भीरसंशयाशंसी न जाने किं करिष्यति ॥ ७ ॥

१. 'समाप्तमिदमयोध्यापर्व' इति शारदालिपिपुस्तके.

भरतेनेति कथिते सुहृदश्चकिता अपि ।
 ऊचुर्धातुविकारेण स्वप्नानामप्रमाणताम् ॥ ८ ॥
 तद्विरा कृतजप्योऽथ संपूजितसुरद्विजः ।
 भरतश्चिन्तयन्नेव चकम्पे स्वप्नदर्शनम् ॥ ९ ॥
 अत्रान्तरे प्रविश्याशु दूतास्ते संवृताशयाः ।
 वसिष्ठशासनं नूनं सर्वे तेऽस्मै न्यवेदयन् ॥ १० ॥
 पितुः सर्वत्र कुशलं तैर्मिथ्यैव निवेदितम् ।
 निशम्य मन्त्रं भरतो मातामहमुपाययौ ॥ ११ ॥
 पूजितो मातुलेनाथ सैन्येन महतावृतः ।
 शत्रुघ्नसहितो वीरः प्रतस्थे नगरीं पितुः ॥ १२ ॥
 समुत्तीर्य दिनैः पुण्या नदीः शैलवनानि सः ।
 ध्वस्तशोभां ददर्शारादयोध्यां विधुताशयः ॥ १३ ॥
 विपद्विवासितमुखं शुष्कम्लानजनाननाम् ।
 दूरीकृतालिवलयां शुष्काब्जामिव पद्मिनीम् ॥ १४ ॥
 निर्भूषणां निरानन्दां विच्छायां विस्मृतस्मिताम् ।
 विधवामिव तां वीक्ष्य शङ्कातङ्काकुलोऽभवत् ॥ १५ ॥
 अप्रियाख्यानचकितैर्धृतैः सर्वैरधोमुखैः ।
 राजधानीं प्रविश्याथ मातुर्मन्दिरमाययौ ॥ १६ ॥
 विलोक्य तत्र कैकेयीं पुत्रदर्शननिवृत्ताम् ।
 प्रणम्य राजलुब्धां तां पप्रच्छ जनकोत्सुकः ॥ १७ ॥
 मातर्म्लानमुखः कस्मादकस्मादापदां पदम् ।
 उग्रशोकग्रहग्रस्त इवायं लक्ष्यते जनः ॥ १८ ॥
 वेणुवीणाम्बरालीनमधुरध्वनिपेशलम् ।
 यशः शुभ्रं मृगाक्षीभिः किं तातस्य न गीयते ॥ १९ ॥
 वैत्रिणां नामभिर्भूमिपालान्सूचयतां पुँरः ।
 किं नु न श्रूयते शब्दस्तातस्यास्थानमन्दिरे ॥ २० ॥

१. 'सुखां' ख. २. 'मूक' शारदा०; ख. ३. 'वृत्तः' ख. ४. 'पुनः' ख.

भरतेनेत्यभिहिते कैकेयी प्रत्यभाषत ।

यशोवशेषतां यातस्तातः सत्यव्रतस्तव ॥ २१ ॥

राम रामेति बहुशो विलप्य विवशो निशि ।

तत्याज जीवितं राजा सह तदर्शनाशया ॥ २२ ॥

वने निष्कासितस्तेन नाम रामः सलक्ष्मणः ।

सेहे न चातिधीरोऽपि तद्वियोगविषव्यश्रमम् ॥ २३ ॥

इति दुःसहवाग्वज्रताडितो भरतस्तया ।

कृतः परशुना मूले बालस्ताल इवापतत् ॥ २४ ॥

स लब्धसंज्ञः शनकैश्चकारूढ इव क्षणम् ।

हा तात तातेति मुहुर्विललापाश्रुगद्गदः ॥ २५ ॥

प्रमृज्य नयने तसनिःश्वासग्लपिताधरः ।

पुनः पप्रच्छ जननीं निमग्नः शोकसागरे ॥ २६ ॥

आर्येण किं कृतं मातस्तातस्य वत विप्रियम् ।

स संत्यक्तः स्वयं येन तेन स्तेन इवात्मजः ॥ २७ ॥

किंस्विदुरुतरं किंचित्कृतमार्येण पातकम् ।

अथ वा रामचरिते कलङ्ककलना कुतः ॥ २८ ॥

पृष्ट्वा सानुनयेनेति भरतेन विषादिना ।

तत्त्वं जगाद जननी स्त्रीभावसरलाशया ॥ २९ ॥

त्वदर्थं याचितो राजा मया रामनिवासनम् ।

अभिषेकं च भवतः स च तत्कृतवान्कृती ॥ ३० ॥

वरप्रदानसत्येन बद्धस्य मयि भूपतेः ।

चरिष्यत्याज्ञया रामश्चतुर्दश समा वने ॥ ३१ ॥

श्रुत्वेति विप्रियं तूर्णं निन्द्यं मात्रा निवेदितम् ।

श्वपाकीगर्भसंभूतमिवात्मानममंस्त सः ॥ ३२ ॥

सोऽवदद्दुःखसंतप्तः सजुगुप्सः स्वजीविते ।

जीवयन्निव चिन्ताग्निं निःश्वासप्रबलानिलैः ॥ ३३ ॥

बत पातकपङ्केन घनेन प्रविसर्पिणा ।
 भवत्या स्वेच्छया लिप्तं कुलमात्मा यशश्च मे ॥ ३४ ॥
 ज्येष्ठो विवासितः पुत्रो दैवतं निहतः पतिः ।
 श्वश्रे निपातितश्चाहमहो युक्तं त्वया कृतम् ॥ ३५ ॥
 कुतस्त्वया कदा लुब्धो ज्ञातः पापोऽहमीदृशः ।
 यस्मै गुरुवधादिष्टं राज्यमेतत्प्रयच्छसि ॥ ३६ ॥
 हा धिक्कां पतितं पापं शापेन महता हतम् ।
 यस्यापवादजननी जननी त्वमपत्रपा ॥ ३७ ॥
 धेनोरिवैकवत्सायाः कौसल्यायाः प्रियः सुतः ।
 कथं प्रव्राजितोऽरण्यं पुत्रिण्यापि स्वयं त्वया ॥ ३८ ॥
 गवां माता पुरा देवी सुरभिर्लाङ्गलादितौ ।
 दृष्ट्वा सुतौ रुरोदार्ता पृष्ट्वा प्रोवाच वज्रिणा ॥ ३९ ॥
 कृशौ पुत्राविमौ दृष्ट्वा भुवि कार्षिकपीडितौ ।
 सीदामि परमा प्रीतिः पुत्रान्नान्यात्र देहिनाम् ॥ ४० ॥
 इत्युक्त्वा बहुपुत्रापि शुशोच सुरभिः पुरा ।
 एकपुत्रापि कौसल्या न जाने कथमास्थिता ॥ ४१ ॥
 तातस्याहं क्षये हेतुरयशोधूलिधूसरः ।
 द्रक्ष्यामि कथमर्थस्य वात्सल्याभिमुखं मुखम् ॥ ४२ ॥
 इत्युक्त्वा प्ररुरोदार्तस्तारगम्भीरनिःस्वनैः ।
 कुर्वन्भुवनकोणेषु जगत्सिंहगुहाभ्रमम् ॥ ४३ ॥
 ततो विदितवृत्तान्तः क्रुद्धो नाग इव श्वसन् ।
 जग्राहाभ्येत्य भरतं शत्रुघ्नः पतितं भुवि ॥ ४४ ॥
 सोऽब्रवील्लक्ष्मणेनैव कृतं सर्वमसांप्रतम् ।
 वीरो यः क्लेशवत्सेहे राघवस्य विवासनम् ॥ ४५ ॥
 अवध्या जननी योषिदात्महा पापमश्रुते ।
 आर्यप्रवासनस्यास्य कष्टं नास्ति प्रतिक्रिया ॥ ४६ ॥

कोपादुक्त्वेति शत्रुघ्नो विलोक्य द्वारि मन्थराम् ।
 गुल्फदेशे समादाय चकर्षाकीर्णभूषणाम् ॥ ४७ ॥
 क्रोशन्त्या वदनं तस्या विपुलं पांसुमुष्टिभिः ।
 संपूर्य चक्रे निष्पिष्टतद्भूषणभृतां भुवम् ॥ ४८ ॥
 सेयं किल्बिषकन्दानां निन्द्यानां प्रथमा मही ।
 उक्त्वेति तां स तत्याज चिरेण शरणं गताम् ॥ ४९ ॥
 ततः संस्तभ्य शोकाग्निं भरतो राममातरम् ।
 गत्वा ववन्दे बाष्पाम्बुधौततच्चरणाम्बुजः ॥ ५० ॥
 निवेदितं तया श्रुत्वा कैकेय्याश्चरितं पुनः ।
 लज्जारजःपरिम्लानं शुशोचात्मानमात्मना ॥ ५१ ॥
 तमुवाचाथ कौसल्या बाष्पव्याकुलिताक्षरम् ।
 पत्न्या पश्यति कैकेयी पुत्रं पूर्णमनोरथा ॥ ५२ ॥
 गतस्ते जनकः स्वर्गं यातः काननमग्रजः ।
 भजतामधुना राज्यं जनन्या समुपार्जितम् ॥ ५३ ॥
 अनुजानीहि मां पुत्र सुमित्रासहितां वनम् ।
 ब्रजामि लक्ष्मणारामं रामं चन्द्रमिवेक्षितुम् ॥ ५४ ॥
 श्रुत्वेति तद्वचः शोकविधुरं मधुराशयः ।
 उवाच भरतो दोषं शङ्कमान इवात्मनि ॥ ५५ ॥
 कथमङ्गे विवृद्धस्य जानीषे न ममाशयम् ।
 जनापवादिनिन्द्या श्रीः कस्य प्रीणाति मानसम् ॥ ५६ ॥
 असत्यः शास्त्ररहितोऽसत्याचारविवर्जितः ।
 यदा स्पृशतु गां वह्निं वयस्यगुरुतल्पगः ॥ ५७ ॥
 प्रजाभागकरग्राही पार्थिवः शस्त्ररक्षिता ।
 राजा गृहेऽभिरमतां भृत्ययाचकवञ्चकः ॥ ५८ ॥
 कृतघ्नः पक्षमाश्रित्य करोतु न्यायनिर्णयम् ।
 अदत्त्वा स्वयमश्नातु स्तब्धः पूज्यावमानकृत् ॥ ५९ ॥

पतितः साधुविद्वेषी शिशुगोस्त्रीद्विजान्तकः ।
 भक्त्यागी गुरुज्ञश्च स्तेनो विश्वस्तघातकः ॥ ६० ॥
 उभे संध्ये शयानश्च मूर्खो यातु प्रमातृताम् ।
 षण्मासान्वसतु ग्रामे स्वपुत्रीमुपजीव्यतु ॥ ६१ ॥
 स सर्वपातकावासः प्रयातु तमसां पदम् ।
 यस्यानुमतमार्थस्य गमनं गुणशालिनः ॥ ६२ ॥
 भरतेनेत्यभिहिते कौसल्या लज्जितावदत् ।
 पुत्र जानामि ते भावं शपथं मा कृथाः परम् ॥ ६३ ॥
 साधोर्विशुद्धसत्त्वस्य सदा तेव विवेकिनः ।
 दोषपङ्क इव व्योमः कदा केनानुमीयते ॥ ६४ ॥
 राममातुरिति श्रुत्वा भरतः शोकपीडितः ।
 वियोगं चिन्तयन्धोरं न शर्म प्रत्यपद्यत ॥ ६५ ॥
 आत्मानं कारणं ज्ञात्वा पितुर्भ्रातुश्च किल्बिषे ।
 सोऽभूदार्ततरः पीत्वा सुरां मोहादिव द्विजः ॥ ६६ ॥
 तस्य भूमौ शयानस्य मूर्छाव्यथितचेतसः ।
 लज्जानुशयतप्तस्य कृच्छ्रेण रजनी ययौ ॥ ६७ ॥
 तमाधिदुर्बलं यक्ष्मक्षीयमाणमिवोड्डपम् ।
 तस्थुः संपरिवार्यार्तं मुनिभिः सह मन्त्रिणः ॥ ६८ ॥
 ततोऽतिशोकसंतप्तं श्वासम्लानाननाम्बुजम् ।
 श्रेष्ठो मनीषिणामूचे वसिष्ठो भगवान्मुनिः ॥ ६९ ॥
 संपत्सु च कुलीनानां विपत्सु च विवेकिनाम् ।
 स्थैर्यं विनयधैर्याभ्यां गांभीर्यं च विभाव्यते ॥ ७० ॥
 मोहध्वान्तनिशीथेन शोकेनातिप्रमाथिना ।
 धृतिवल्लीकुठारेण न स्पृशन्ति मनीषिणः ॥ ७१ ॥
 शोकोद्गतिरियं पुंसः सततं परिवर्धते ।
 श्यामिका दर्पणस्येव हेमन्तस्येव यामिनी ॥ ७२ ॥

प्रकाशपरिपन्थिन्यो व्यसनापातदूतिकाः ।
 एताः परिचिता जाता न शुचः शुचिचेतसाम् ॥ ७३ ॥
 हृतान्सुदयितान्कालाप्रवहेण बलीयसा ।
 संसारासारतां ज्ञात्वा न शोचन्ति विवेकिनः ॥ ७४ ॥
 कर्तुमर्हसि धर्मेण क्रियां नैर्याणिकीं पितुः ।
 इयं विधार्यते केन गच्छन्ती जन्तुसंततिः ॥ ७५ ॥
 भवेऽस्मिन्नलनालोललोचनाञ्चलचञ्चले ।
 आयूंषि तरलान्येव यौवनानि सुखानि च ॥ ७६ ॥
 वियोगमोहकलिले वैक्लव्यव्यसनार्णवे ।
 उग्रशोकग्रहग्राहे न सज्जन्ति भवद्विधाः ॥ ७७ ॥
 भूरिद्युम्नः पुरा राजा सुकृती त्रिदिवं गतः ।
 संततैर्बन्धुवाष्पौघैः क्षीणपुण्य इव च्युतः ॥ ७८ ॥
 वसिष्ठेनेत्यभिहिते मन्त्रिभिश्च पुनः पुनः ।
 कृच्छ्रादिव पितुश्चक्रे भरतो देहसत्क्रियाम् ॥ ७९ ॥
 शास्त्रोचितेन विधिना संस्कारे पृथिवीपतेः ।
 वृत्ते निवृत्तविभवं बभूव निखिलं पुरम् ॥ ८० ॥
 कृतोदकं गताशौचं भरतं शोकमूर्छितम् ।
 उपतस्थुः प्रजानाथं चाभिषेकाय मन्त्रिणः ॥ ८१ ॥
 सोऽभिषेकसमारम्भं निवार्य विगतस्पृहः ।
 वनयात्रोत्सुकस्तस्थौ रामदर्शनलालसः ॥ ८२ ॥
 इति दशरथसंस्कारः ॥ १ ॥
 सोऽब्रवीद्भवतामग्रे रचितोऽयं मयाञ्जलिः ।
 राज्यं मे रामपादाब्जसेवारसमहोत्सवः ॥ ८३ ॥
 राज्यमर्हति काकुत्स्थस्तस्य दास्योचिता वयम् ।
 ज्येष्ठाभिगामिनी लक्ष्मीः सदैव रघुभूषणाम् ॥ ८४ ॥

व्यसनं हि तदैश्वर्यं साप्युन्नतिरधोगतिः ।
 न यत्र रामपादाञ्जरजसा रञ्जितं शिरः ॥ ८५ ॥
 विश्वरक्षामणिं तस्माज्ज्येष्ठं ज्येष्ठैर्गुणैर्युतम् ।
 रामं प्रसादयिष्यामि वनं गत्वा निजश्रिये ॥ ८६ ॥
 इति ब्रुवाणमसकृद्भरतं साश्रुलोचनम् ।
 प्रशशंसुर्वसिष्ठाद्या मुनयः सह मन्त्रिभिः ॥ ८७ ॥
 सोऽथ सर्वाः पुरस्कृत्य प्रकृतीः सुकृतोज्ज्वलाः ।
 प्रतस्थे स्थिरसंकल्पो वनं वारिजलोचनः ॥ ८८ ॥
 शनैः प्रसर्पतस्तस्य गजगण्डालिमण्डलैः ।
 चरितैरिव कैकेय्या बभूवुर्मलिना दिशः ॥ ८९ ॥
 बभूव भूमिपालानां स्वच्छच्छत्रैः सितं नभः ।
 भरतस्य गुणोदारं यशो वक्तुमिवोद्धतैः ॥ ९० ॥
 व्रजन्वाजिव्रजसुरोद्धूतधूलीपटच्छलात् ।
 स्वर्गे दशरथं द्रष्टुं वसुधेवोद्ययौ स्वयम् ॥ ९१ ॥
 रथघोषप्रवृत्तानां बर्हिणां बर्हचन्द्रकैः ।
 सकटाक्षा इव दिशो ददृशुर्भरतं पथि ॥ ९२ ॥
 स ययौ शोधितेनाग्रे वर्त्मना कारुशिल्पिभिः ।
 पुण्यैः संमार्जितेनेव सुकृती निजकर्मणा ॥ ९३ ॥
 प्रयान्तं भरतं दृष्ट्वा रामस्य विनिवर्तने ।
 तमेवानुययुः प्रीत्या प्रजास्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ ९४ ॥
 सा शस्त्रवीचिनिचया च्छत्रफेनादृहासिनी ।
 प्राप भागीरथीकूलं शनैर्भरतवाहिनी ॥ ९५ ॥
 दिनस्यान्ते संनिविष्टां तामपारां पताकिनीम् ।
 गुहो निषादाधिपतिर्दृष्ट्वा चिरमचिन्तयत् ॥ ९६ ॥
 इक्ष्वाकूणामियं सेना तुरङ्गगजगामिनी ।
 क नु सर्पति वीरेण भरतेनानुपालिता ॥ ९७ ॥

१. 'पुण्येन स्वार्जि' शारदा०.

नूनं विभवलुब्धोऽयं रामं हन्तुमुपागतः ।
 स्वजनस्नेहहारिण्यः कर्कशा हि विभूतयः ॥ ९८ ॥
 यद्ययं वक्रसंकल्पः काकुत्स्थमभिधावति ।
 अस्य स्पष्टोपदेष्टारस्तदेते राजमन्त्रिणः ॥ ९९ ॥
 इति निश्चित्य मनसा निषादाधिपतिर्गुहः ।
 उपायनं समादाय प्रययौ भरतान्तिकम् ॥ १०० ॥
 प्रणम्य भरतं तत्र यथार्हावाप्तसत्कृतिः ।
 शुश्राव तस्य संकल्पं स्थिरं रामनिवर्तने ॥ १०१ ॥
 भरतस्तद्विरा श्रुत्वा रामं चीरजटाधरम् ।
 नवीभूतमहाशोकः पपात व्यथितः क्षितौ ॥ १०२ ॥
 कौसल्याद्यास्ततोऽभ्येत्य मातरः शोकविह्वलाः ।
 तं समाश्वास्य शनैर्निःशब्दं शुशुचुर्निशि ॥ १०३ ॥
 अथापरेऽहि भरतो रामसंदर्शनोत्सुकः ।
 ययौ गुहोपदिष्टेन गङ्गामुत्तीर्य वर्त्मना ॥ १०४ ॥
 स प्रविश्य घनच्छायं प्रयागं नाम काननम् ।
 भरद्वाजाश्रमं प्राप लीलोद्यानं तपःश्रियः ॥ १०५ ॥
 विद्यावेश्मनि स प्राप निर्मिते विश्वकर्मणा ।
 दिव्यां देवोपचारार्हां भोगसंभोगसंपदाम् ॥ १०६ ॥
 गन्धर्वगणगीतेन नृत्येन सुरयोषिताम् ।
 स प्राप्य विपुलां प्रीतिं प्रतस्थे प्रातरुत्सुकः ॥ १०७ ॥
 पश्चाद्भजन्तं दृष्ट्वास्य महर्षिर्जननीजनम् ।
 तमपृच्छद्विभागेन पृष्टश्च भरतोऽभ्यधात् ॥ १०८ ॥
 इयमार्यस्य कौसल्या माता जिष्णोरिवादितिः ।
 माता यस्य न लोकेऽस्ति यशसामथ तेजसाम् ॥ १०९ ॥
 इयं सुमित्रा भगवन्वीरवृत्तिरिवोचिता ।
 यस्या लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीर्यौदार्यचितौ सुतौ ॥ ११० ॥

जनापवादजननी ममेयं जननी विभो ।
 कैकेयी दुस्तरे क्षिप्तो ययाहं शोकसागरे ॥ १११ ॥
 शोकान्तेनेति कथितं भरतेन मुनीश्वरः ।
 कारणं दैवमेवात्र न कैकेयीत्यभाषत ॥ ११२ ॥
 कानने चित्रकूटाख्ये रामं ज्ञात्वा मुनेर्गिरा ।
 स्थितं स्थितिमतामग्र्यः प्रतस्थे भरतस्ततः ॥ ११३ ॥
 स ससर्प सरत्सेनासमुद्रोत्तुङ्गवीचिभिः ।
 धूतध्वजपटैः कुर्वन्कीर्तिं पल्लवितामिव ॥ ११४ ॥
 धूमालीं चित्रकूटस्य भूभृतस्तस्य सर्पतीम् ।
 दूरादालोक्य भरतो रामाश्रममन्यत ॥ ११५ ॥
 इति भरतयात्रा ॥ २ ॥

अत्रान्तरे वनान्तेषु पश्यन्कान्ततमाः श्रियः ।
 विजहार विलासाङ्को राघवो दयितासखः ॥ ११६ ॥
 स सीतावदनाम्भोजसक्तलोचनषट्पदः ।
 उवाच दन्तकिरणैर्मूर्तिं हर्षमिवोद्धमन् ॥ ११७ ॥
 इयं श्रीर्गिरिराजस्य तारनिर्झरहारिणी ।
 भाति भूतिर्गजस्येव मनोनयनहारिणी ॥ ११८ ॥
 विकासिकुसुमस्फूर्जद्रजःपुञ्जोपजीविनः ।
 एते त्वद्वदनामोदसोदरा वान्ति वायवः ॥ ११९ ॥
 इयं विलासवसतिर्विलोलालिकुलालका ।
 शिरीषवल्ली पुंनागं त्वमिवालिङ्ग्य मां स्थिता ॥ १२० ॥
 रजोभिः कौसुमैर्दिक्षु स्फारकपूर्पपाण्डुरैः ।
 एते विभान्ति तरवः सन्तः सच्चरितैरिव ॥ १२१ ॥
 गायतीव स्मरस्यैषा शासनं नवमल्लिका ।
 बालिकाकलिकाकोटिसक्तशिञ्जानषट्पदा ॥ १२२ ॥

१. 'ईत' शारदा०; ख. २. 'यशांसि' ख.

इमाः कुसुमसंभारभूषिताः पुष्पधन्वनः ।
 व्यक्तं रतिसहायस्य भान्ति विश्रान्तिभूमयः ॥ १२३ ॥
 स्तवकस्तनसंसक्तपल्लवावर्जिताञ्जलिः ।
 ध्रुवं प्रसादयत्येषा कुसुमावनता लता ॥ १२४ ॥
 पुष्पश्रीर्मधुपालापः कलकोकिलकूजितम् ।
 सेयं मदनकन्दस्य सुधासेकपरम्परा ॥ १२५ ॥
 पश्य गङ्गामनङ्गारिजटापटलमालिकाम् ।
 आनन्दजननीमस्य गिरेर्दूतामिव श्रियम् ॥ १२६ ॥
 त्वङ्गत्तरङ्गभ्रूमङ्गमङ्गैरेषा विभाव्यते ।
 गाढं गौरीपरिष्वङ्गात्कुपितेव पिनाकिनः ॥ १२७ ॥
 लसत्कुसुमहासिन्यो विलासिन्यः सविभ्रमाः ।
 कूले नृत्यन्ति पश्यास्याः पवनाकुलिता लताः ॥ १२८ ॥
 वैदुष्यं शीलवृत्त्येव धृत्येव महतां मनः ।
 आभिजात्यं विभूत्येव भूषितं वनमेतया ॥ १२९ ॥
 एते त्रिपथगातीरतारशीकरमारुताः ।
 अमुक्तमौक्तिकलतां कुर्वन्तीव वनश्रियम् ॥ १३० ॥
 निषसाद निगद्येति चारुतीरशिलातले ।
 अङ्गे शशाङ्कवदनां जानकीं विनिवेश्य सः ॥ १३१ ॥
 मनःशिलां शिलापार्श्वे कराग्रेणावघृष्य सः ।
 ललाटे तिलकं तस्याश्चक्रे बालेन्दुसुन्दरे ॥ १३२ ॥
 सुचारुतिलकोदारं वदनं हरिणीदृशः ।
 निमेषदोषशून्याभ्यां नेत्राभ्यां स चिरं पपौ ॥ १३३ ॥
 सा कपित्रासलोलाक्षी कण्ठे जग्राह राघवम् ।
 गाढप्रियपरिष्वङ्गस्वर्वाभूतपयोधरा ॥ १३४ ॥
 तस्याः कटाक्षविक्षेपैरदूरपरिसर्पिणाम् ।
 बर्हिणां बर्हभारेण बभूव पुनरुक्तता ॥ १३५ ॥

रामस्य विपुलं वक्षः क्रान्तक्रान्ताविशेषकम् ।
 कौस्तुभाभरणोद्भासिकैटभारेरिवाबभौ ॥ १३६ ॥
 सबालकेसरदलैः कुटिलामलकावलीम् ।
 अलंचकार वैदेह्याः पुलकालंकृताकृतिः ॥ १३७ ॥
 शिलातलं परित्यज्य करेणालम्ब्य जानकीम् ।
 स चचार वनान्तेषु करीव करिणीसखः ॥ १३८ ॥
 रागिणामिव दीप्तेन ज्वलितं स्मरवह्निना ।
 रक्ताशोकवनं प्राप्य गतशोकौ ननन्दतुः ॥ १३९ ॥
 मिथो विहितनेपथ्यौ विकोशाशोकशेखरैः ।
 तौ दम्पती विबभतुः कुसुमायुधनाटके ॥ १४० ॥
 विहृत्य सुचिरं तत्र जग्मतुस्तौ स्वमाश्रमम् ।
 पुरा प्रत्युद्गतेनैत्य लक्ष्मणेनाभिनन्दितौ ॥ १४१ ॥
 मांसेन कृष्णसाराणां क्षतानां लक्ष्मणेषुभिः ।
 बलिशेषेण वैदेही पत्युर्भोज्यमकल्पयत् ॥ १४२ ॥
 मांसशेषस्य रक्षायै समादिष्टा प्रियेण सा ।
 पक्षतुण्डनखाघातैः काकेनोद्वेजिता भृशम् ॥ १४३ ॥
 इतस्ततो विलुलिता भ्रश्यत्कौशेयकांशुका ।
 प्रीतये साभवद्भर्तुर्दृष्टार्धकुचकुञ्जला ॥ १४४ ॥
 काकेन कोपिता तीव्रं सा दष्टाधरपल्लवा ।
 प्रियं प्रणयगर्भेण चक्षुषा क्षणमैक्षत ॥ १४५ ॥
 ततः प्रियापरिभवादस्थानेऽप्यात्तसंभ्रमः ।
 इषीकामभिमन्त्र्याशु चिक्षेप रघुनन्दनः ॥ १४६ ॥
 संतर्जितोऽप्यसंत्रासः पक्षी लब्धवरोऽथ सः ।
 अस्त्रेणाभिसृतो वेगाद्ब्राम भुवनत्रयम् ॥ १४७ ॥
 अनवासपरित्राणः स गत्वा तु तपोवनम् ।
 पादपीठार्पितशिरा रामं शरणमाययौ ॥ १४८ ॥

ततो रामगिरा दत्त्वा स तदस्त्राय लोचनम् ।
 चक्षुषा रक्षितस्तेन काणः काको ययौ जवात् ॥ १४९ ॥
 इति काकाक्षिशतनम् ॥ ३ ॥

अथोच्चचार गम्भीरगजगर्जितमन्थरः ।
 मन्थाद्रिजलधिधीरो घोरः पटहनिःस्वनः ॥ १५० ॥
 ह्यहेषाविशालेन घनघोषानुकारिणा ।
 कुपितास्तेन शब्देन समुत्पेतुर्मृगेश्वराः ॥ १५१ ॥
 स ययौ विपुलः शब्दो विद्याधरमहीभुजाम् ।
 त्रस्तकान्तापरिध्वङ्गहर्षपीयूषवर्षताम् ॥ १५२ ॥
 उच्चैरुच्चकुचाभोगविनश्यत्रिवलीयुताः ।
 किमेतदिति संभ्रान्ताः किनर्यो ददृशुर्दिशः ॥ १५३ ॥
 अकाण्डे कोऽयमुच्चण्डप्रलयारम्भविभ्रमः ।
 इत्येव चुकुशुस्तत्र पक्षिकोलाहलैर्दुमाः ॥ १५४ ॥
 सैन्यसंमर्दपिशुनं शब्दमाकर्ण्य राघवः ।
 तरुमारुह्य पश्यैतदिति प्रोवाच लक्ष्मणम् ॥ १५५ ॥
 सालं पुष्पितमारुह्य सौमित्रिस्तस्य शासनात् ।
 ददर्श चामरच्छत्रच्छत्रां भरतवाहिनीम् ॥ १५६ ॥
 निगीर्णा इव जीमूतसंघातमलिनैर्गजैः ।
 विलोक्य सर्वाः ककुभो रामं सौमित्रिरब्रवीत् ॥ १५७ ॥
 अयं शस्त्रास्त्रकलोलसुभटग्राहघस्सरः ।
 सैन्याम्बुधिरपर्याप्तः कानने परिसर्पति ॥ १५८ ॥
 मत्तो विभवमानेन नूनं भरत आगतः ।
 यदसौ दृश्यते दूरात्कोविदारो रथे ध्वजः ॥ १५९ ॥
 प्राज्यं राज्यमवष्टभ्य कैकेयीतनयः स्वयम् ।
 कण्टकोन्मूलनायैव नूनं त्वां योद्धुमागतः ॥ १६० ॥

अहो वतातिवक्रेण नयेनामिषदर्शिना ।
 वडिशेनेव शफरः कृष्टोऽयं न भविष्यति ॥ १६१ ॥
 ऐश्वर्यस्थैर्यकामस्य मद्विसृष्टाः प्रमादिनः ।
 भवन्त्वस्योपदेष्टारो निपातगुरवः शराः ॥ १६२ ॥
 श्रुत्वेति कोपतप्तस्य लक्ष्मणस्याग्रजो वचः ।
 उवाच भरते शङ्कां सौमित्रे मा वृथा कृथाः ॥ १६३ ॥
 भक्तिमान्भरतो नित्यमस्मासु विशदाशयः ।
 धीरस्य तस्य सद्वृत्तं न नाम परिवर्तते ॥ १६४ ॥
 कुले महति जातानां धीमतां वृद्धसेविनाम् ।
 न भवन्ति विकारिण्यः संपदो हि महात्मनाम् ॥ १६५ ॥
 प्राप्सो द्रष्टुमसावस्मान्न वाच्यः परुषं त्वया ।
 विकारेऽप्यपरित्राणमाधुर्यं हि सतां वचः ॥ १६६ ॥
 राज्ये यदि तवाप्यस्ति कोऽप्यादरलवः स्वयम् ।
 ममाज्ञया त्यजत्येव भरतस्तदसंशयम् ॥ १६७ ॥
 राघवेणेत्यभिहिते गुरुलज्जानताननः ।
 अयाचतेव विवरं प्रवेष्टुं लक्ष्मणः क्षितिम् ॥ १६८ ॥
 अवतीर्य स्वशालाग्रात्पार्श्वे भ्रातुरधोमुखः ।
 न्यषीददिति तापान्तश्चिन्तयन्वाक्यलाघवम् ॥ १६९ ॥
 इति लक्ष्मणकोपः ॥ ४ ॥
 भरतोऽपि निजां सेनां विनिवेश्य यथोचितम् ।
 सुमन्त्रशत्रुघ्नसखः प्रससर्पाग्रजोत्सुकः ॥ १७० ॥
 जननीजनमादाय भवता मम पृष्ठतः ।
 आगन्तव्यमिति प्राह सर्वमिष्टमभाषत ॥ १७१ ॥
 उपसृत्याथ रुचिरं स दृष्ट्वा भ्रातुराश्रमम् ।
 लम्बमानायुधधरं बभूवोद्भाष्पलोचनः ॥ १७२ ॥
 सानुजं राममालोक्य दूराच्चीरजटाधरम् ।
 मत्वा कारणमात्मानं विललापाश्रुगद्गदः ॥ १७३ ॥

जटाभृदिति दुःखेन हेतुरस्मीति लज्जया ।
 प्राप्तो मयेति हर्षेण सोऽभूदाकुलिताशयः ॥ १७४ ॥
 मन्दमन्दैर्मुहुः शोकादौत्सुक्यात्त्वरितैर्मुहुः ।
 स भ्रातुरन्तिकं प्राप व्रीडाविलुलितैः पदैः ॥ १७५ ॥
 रामं नत्वाश्रुसंरुद्धदृष्टिः क्षमालमशेखरः ।
 आर्यैत्युक्त्वा निपतितो नान्यद्वक्तुं शशाक सः ॥ १७६ ॥
 तं मूर्च्छितं निपतितं समादाय महाभुजः ।
 अङ्गे रामः समारोप्य बाष्पदुर्दिनवानभूत् ॥ १७७ ॥
 प्रीत्या मूर्ध्नि तमादाय पप्रच्छ स्वच्छमानसः ।
 दन्तांशुनिवहेनाग्रे हंसमालामिवावहन् ॥ १७८ ॥
 दिष्ट्या पश्यामि वत्स त्वां वात्सल्यप्रणयास्पदम् ।
 कञ्चित्तातमनामन्त्र्य नागतोऽस्यजनं वनम् ॥ १७९ ॥
 कञ्चित्स कुशली राजा राजश्रीरजनीविधुः ।
 व्योममानसहंसालीर्यस्य कीर्तिर्विराजते ॥ १८० ॥
 कुशलिन्यो जनन्यस्ताः कञ्चित्ताः कुलदेवताः ।
 पुरोधाः कुशली कञ्चित्समैत्रावरुणो मुनिः ॥ १८१ ॥
 रक्षितात्मा हितामात्यः कोशराष्ट्रविवर्धनः ।
 भृतदुर्गो मौलिवलः कञ्चित्सन्मित्रवानसि ॥ १८२ ॥
 कञ्चित्प्राप्ताभिषेकस्य मन्त्रिणस्तव संमताः ।
 प्रौढराज्यप्रवहणे संप्राप्ताः कर्णधारताम् ॥ १८३ ॥
 मन्त्रः कञ्चिदचपलैरामोदैरिव मारुतैः ।
 कीर्यते तव संमदीं सर्वे भिन्नो भिनत्ति सः ॥ १८४ ॥
 कञ्चित्सुखी प्रजाकार्यविचारपरिपन्थिनीम् ।
 निन्धां न भजसे निद्रां विवेकालोकयामिनीम् ॥ १८५ ॥
 एकोऽपि पण्डितः कञ्चित्तव रक्षामणिः श्रियः ।
 मूर्खसङ्गभरेणेयं पृथ्वी मिथ्यैव पीड्यते ॥ १८६ ॥

कच्चित्प्रयासि विदुषामुपदेशविधेयताम् ।
 कच्चिदूर्णायुपूर्णेव सभा मूर्खैर्वृता न ते ॥ १८७ ॥
 सदानिमित्तपिशुनाः क्रूरा दोषावलोकिनः ।
 राजश्रीरजनीधूकाः खलाः कच्चिन्न ते प्रियाः ॥ १८८ ॥
 दम्भारम्भसमाधाननिसङ्गनिभृता इव ।
 कच्चिन्न ते त्वां मुष्णन्ति धूर्ताः श्रीसरसीवकाः ॥ १८९ ॥
 कच्चिदाखुखुरोत्खातभुक्तबीजेव मेदिनी ।
 सुषिरीक्रियते चौरैर्नाधिकारिगणैस्तव ॥ १९० ॥
 ललभावदनाम्भोजविभ्रमभ्रमरावली ।
 कच्चिन्न सक्ता दृष्टिस्ते नान्यकार्याणि पश्यति ॥ १९१ ॥
 कच्चिदाकर्ण्य सुलभं लोभं परिभवास्पदम् ।
 केवलं त्यक्तसत्कार्यैः कदर्यैः सह पश्यसि ॥ १९२ ॥
 कच्चित्प्रजाः प्रजानाथ नोग्रदण्डेन बाधसे ।
 शरणं नास्ति लोकेषु परित्राता निहन्ति चेत् ॥ १९३ ॥
 कच्चिदधर्ममर्यादामुत्क्रम्यार्थान्समीहसे ।
 धनं धनं कदर्याणां धर्मस्तु महतां धनम् ॥ १९४ ॥
 मूढव्यसनकारिण्यो विकारिण्यः सविभ्रमाः ।
 चिरं परिचिताः कस्य वेश्या इव विभूतयः ॥ १९५ ॥
 श्रियो धर्मविरोधिन्यो धर्माः संपद्भिर्नाशनाः ।
 धर्मार्थोत्सादिनः कामा न भवन्ति महात्मनाम् ॥ १९६ ॥
 दानं प्रजापरित्राणं यजनं धर्मरञ्जनम् ।
 राज्यकल्पद्रुमस्यैता विपुलाः फलसंपदः ॥ १९७ ॥
 ब्राह्मणेषु परा भक्तिः प्रभुशक्तेर्विभूषणम् ।
 सा हि धर्मार्थकामानां राज्ञां रक्षामहौषधम् ॥ १९८ ॥
 इति कच्चित्कम् ॥ ९ ॥

१. 'सदा निमित्रपि' स्यात् । 'नितरां मित्रस्य सूर्यस्य द्वेषिणः' इति व्याख्यातव्यम्.

श्रुत्वेति वचनं भ्रातुर्भरतो विगतस्पृहः ।
 उवाच धर्महीनस्य न मे राज्यस्य कारणम् ॥ १९९ ॥
 अहो वतातिपापस्य दृढता कियती मम ।
 यस्त्वामेवंविधं दृष्ट्वा दुःसहं वक्तुमुद्यतः ॥ २०० ॥
 अयोध्यां स्वयमभ्येत्य भज राज्यं क्रमागतम् ।
 स ते यातः पिता स्वर्गं धर्ममार्गनिरर्गलम् ॥ २०१ ॥
 अहो निन्द्यतरं जन्म मम किल्बिषकारिणः ।
 योऽहं नरेन्द्रनिधने त्वत्प्रवासे च कारणम् ॥ २०२ ॥
 आर्यं त्वयि वनं याते शोकाग्निमिव शोणितम् ।
 बसन्व्यसुरभूद्भूमौ त्वामेव विलपन्नृपः ॥ २०३ ॥
 निधनेन धराभर्तुरयोध्या न विराजते ।
 सुमेरुशृङ्गभङ्गेन दारितेव वसुंधरा ॥ २०४ ॥
 गतेऽनन्तगुणे राज्ञि स्वर्गं मज्जति मेदिनी ।
 भोगेन्द्रविपुले दोष्णि यद्यार्येण न धार्यते ॥ २०५ ॥
 अधुना क्रियतामार्थं वत्सलस्य पितुः क्रिया ।
 प्रियपाणिच्युतं वारि वाञ्छन्ति पितरोऽधिकम् ॥ २०६ ॥
 श्रुत्वेति वज्रसंपातदुःसहं राघवो वचः ।
 पपात पादप इव क्षतः कूलंकषैर्जलैः ॥ २०७ ॥
 स लब्धसंज्ञः शनकैरुवाचाकुलितः शुचा ।
 हा नाथ क नु यातोऽसि त्यक्त्वास्मान्देहि नो वचः ॥ २०८ ॥
 अस्मदर्थपरित्यक्तजीवितस्याधुना तव ।
 ददातु नाम रामस्ते निःसंज्ञः कथमञ्जलिम् ॥ २०९ ॥
 हा कीर्तिनिर्झरगिरे गुरो गुणमहोदधे ।
 द्रक्ष्यामि ते क नु मुखं प्रियं श्रोष्यामि वा वचः ॥ २१० ॥
 स पिता तव सौमित्रे वैदेहि श्वशुरस्तव ।
 महीनाथो गतः स्वर्गमनाथाः सर्वथा वयम् ॥ २११ ॥

इति प्रलापमुखरे रामेऽपि धृतिसागरे ।
 सावेगं रुरुधुः सर्वे प्रसरद्वाष्पनिर्झराः ॥ २१९ ॥
 ततो रामं समाश्वास्य सुमन्त्रः सानुजं शनैः ।
 निनाय जाह्नवीकूलं पितुर्दातुं जलाञ्जलिम् ॥ २१३ ॥
 बदरेङ्गुदिपिण्याकं तत्र दर्भेषु राघवः ।
 निक्षिप्योवाच निःश्वस्य ध्यायञ्जलभृताञ्जलिः ॥ २१४ ॥
 इदं ते वन्यमशनं प्रसीद पृथिवीपते ।
 एतदर्हाः खलु वयमेतेनैव यजामहे ॥ २१५ ॥
 एवं ब्रुवाणः काकुत्स्थः सानुजो विहितोदकः ।
 गत्वाश्रमं शुचाक्रान्तो हा तातेति वदन्मुहुः ॥ २१६ ॥
 रुदतां राजपुत्राणां तत्र तेषां महास्वनम् ।
 समाकर्णाययुः सर्वे पौरमुख्याः ससैनिकाः ॥ २१७ ॥
 यथोचितेन विधिना राघवेणाभिनन्दिताः ।
 निजोचितेषु देशेषु सर्वे ते समुपाविशन् ॥ २१८ ॥
 अथाययुर्वशिष्ठेन सहिता राममातरः ।
 पश्यन्त्यो राघवप्रीत्या राघवाध्युषितं वनम् ॥ २१९ ॥
 तत्र भागीरथीतीरे रामेण विहितं पितुः ।
 बदरेङ्गुदिपिण्याकं दृष्ट्वा ताः शुशुचुर्भृशम् ॥ २२० ॥
 जननीजनमालोक्य वसिष्ठं चाप्युपागतम् ।
 प्रणनाम निजं नाम रामः स्वयमुदाहरत् ॥ २२१ ॥
 ततस्तं चरणालीनजटामण्डलमाकुलाः ।
 जनन्यः पाणिकमलैर्ललाटे जगृहुर्मुहुः ॥ २२२ ॥
 दृष्ट्वा शशाङ्कवदनां सीतां वल्कलधारिणीम् ।
 क्षणं मुमोह कौसल्या सुमित्रा धृतविग्रहा ॥ २२३ ॥
 तेषां दुःखकथासक्तचेतसां साश्रुचक्षुषाम् ।
 अवश्यायकणोद्वाष्पा प्रययौ यामिनी शनैः ॥ २२४ ॥

प्रातः समुपविष्टेऽथ वशिष्ठप्रमुखैः सह ।
 रामे सभार्ये भरते वक्तुकामे पुरःस्थिते ॥ २२५ ॥
 किं वक्ष्यतीति निःशब्दे सोत्कण्ठे स्तिमिते जने ।
 निवातनिस्तरङ्गस्य जलधेरुपमां दधे ॥ २२६ ॥
 उवाच भीर्गम्भीरजलधिध्वानधीरया ।
 गिरा गुरुजनानम्रो भ्रातरं भरतः शनैः ॥ २२७ ॥
 नेयमार्यस्य पुरतो मम वक्तुं प्रगल्भता ।
 सहजप्रणयस्यायमुत्सेको भक्तिसंभवः ॥ २२८ ॥
 यशःशेषे नरपतौ निःशेषैगुणमण्डने ।
 अशेषेयं वसुमती वोढारं त्वां समीहते ॥ २२९ ॥
 स ददौ यदि मे राज्यं राजा योषिद्वशीकृतः ।
 तत्कथं स्वस्थमनसो ममापि मतिविप्लवः ॥ २३० ॥
 तव क्रमागतं राज्यं का स्पृहा राम मादृशाम् ।
 कथं न स्कन्धमाधत्ते दिक्कुञ्जरपदे मृगः ॥ २३१ ॥
 सत्यं त्वत्पादसेनैव राज्यं विरजसो मम ।
 न राज्यं प्राप्तुमर्होऽहं सोमं शूद्र इवाध्वरे ॥ २३२ ॥
 लोकप्रदीपे कालेन शान्ते तस्मिन्महीपतौ ।
 आर्ये प्रजाः प्रतीक्ष्यन्ते सूर्यस्येव तवोदयम् ॥ २३३ ॥
 राज्यं यदि परित्यक्तं त्वया तातस्य शासनात् ।
 मयोपनीतं दासेन तदिदं प्रतिगृह्यताम् ॥ २३४ ॥
 प्रसीद पाळ्य विभो नाथहीनां महीमिमाम् ।
 विपदं विस्मरत्येष जनो राजवियोगजाम् ॥ २३५ ॥
 भरतेनेत्यभिहिते समस्तजनसंमते ।
 रामः सत्यसुधां दन्तत्विषा वर्षन्निवाभ्यधात् ॥ २३६ ॥
 संचयानां क्षयोऽवश्यं निपातोऽवश्यमुन्नतेः ।
 सङ्गानां विरहोऽवश्यमवश्यं मृत्युरायुषः ॥ २३७ ॥

१. 'मा' शा०. २. 'मग' शा०. ३. 'वे' शा०.

धनं विभूतयो योगाः प्रीतयः प्रियसंगमाः ।
 आयुषि च पतन्त्येव क्षयचक्रे शरीरिणाम् ॥ २३८ ॥
 स्वभाव एष भावानां यदभावःतिपातिनः ।
 आयुषश्च स्वभावोऽयं सर्वथा यद्विपद्यते ॥ २३९ ॥
 न मे कश्चिदुपायोऽस्ति शक्तिः संक्षयदीक्षिता ।
 अधो विधीयते येन कालस्याग्नेरिवोद्गतिः ॥ २४० ॥
 तस्यास्य तव चासक्तं ममान्येषामथात्मनः ।
 क्षयं सर्वात्मना ज्ञात्वा सन्तः स्वस्थवदास्थिताः ॥ २४१ ॥
 अभावावधयो भावा निधनावधि जीवितम् ।
 अविवेकस्त्वनवधिर्येनायं जायते भ्रमः ॥ २४२ ॥
 धर्मोपदिष्टेन पथा यातः स सुकृती दिवम् ।
 न नः शोच्यः पिता यस्य यशःपुण्यमिवाक्षयः ॥ २४३ ॥
 मया तु शासनं तस्य न त्याज्यं सत्यवर्तिना ।
 को हि सत्यधनो नाम सत्यमेव समुत्सृजेत् ॥ २४४ ॥
 राधवेणेत्यभिहिते सत्यपारं तितीर्षुणा ।
 उवाच साश्रुनयनः शोकान्तो भरतस्तथा ॥ २४५ ॥
 आर्य प्रसीद पापस्य ममाविज्ञातपातिनः ।
 मां समुद्धर कैकेय्या क्षिप्तं किल्बिषकर्दमे ॥ २४६ ॥
 ईप्सितं शासनं कार्यं गुरोरिति जनश्रुतिः ।
 प्राणत्यागप्रमाणं तु नेष्टं ते गमनं पितुः ॥ २४७ ॥
 कुटिलोऽयमसत्सेव्यः पन्थास्तव तपस्विना ।
 जनत्राणप्रणयिनी यदियं क्षत्रसंततिः ॥ २४८ ॥
 अथ चेद्वेतुनिर्बन्धः प्रजानामेव पातकैः ।
 अरण्ये विवृतास्येव तदहं त्वामनुव्रतः ॥ २४९ ॥
 इति ब्रुवाणमसकृद्भरतं दृढनिश्चयम् ।
 अपूजयञ्जनाः सर्वे कैकेय्याद्याश्च मातरः ॥ २५० ॥

१. 'भो' शा०. २. 'व' शा०. ३. 'त्तो' शा०. ४. 'त्वद्' शा०. ५. 'चराम्ये' शा०.

तमब्रवीत्सत्यसंधो रामः काममलुप्तधीः ।
 उचितं भार्षसे आतः श्रुतस्याभिजनस्य च ॥ २९१ ॥
 किं तु राजा गुरुर्वृद्धः सत्यपाशवशीकृतः ।
 पालने नियमस्यास्य प्रमाणीक्रियते मया ॥ २९२ ॥
 यथाहं शासनात्तस्य त्यक्त्वा राज्यं वने स्थितः ।
 तथा त्वयापि कर्तव्यं राज्यं आतर्ममाज्ञया ॥ २९३ ॥
 वरप्रदानसत्येन वृद्धस्य पृथिवीपतेः ।
 अस्मद्वात्सल्यमात्रेण मा कृथाः सत्यविप्लवम् ॥ २९४ ॥
 भज राज्यं क्रमायातं प्रजानामेव भूतये ।
 क्रियतां सत्यसाहाय्यं परलोकगतौ पितुः ॥ २९५ ॥
 एतदर्थं समीहन्ते पितरो बहुपुत्रताम् ।
 यद्येकोऽपि गयां गत्वा तिमिरात्तारयिष्यति ॥ २९६ ॥
 सत्यं रक्ष पितुः पुत्र सत्यं सत्ययशोनिधेः ।
 सत्यं तीर्थतपोदानयज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते ॥ २९७ ॥
 इति रामस्य वदतो व्यथिते भरते पुनः ।
 शल्यविद्ध इवावाप्ते मर्मणि क्षिप्रमूढताम् ॥ २९८ ॥
 प्रजानां हितमाशंसं जाबालिरवदन्मुनिः ।
 प्रतिज्ञापाशनिर्बन्धं रामस्य च्छेत्तुमुद्यतः ॥ २९९ ॥
 अहो नु भ्रमते नूनं परतन्त्रस्य ते मतिः ।
 शुष्कक्रियावासनया सूक्ष्ममर्थं न पश्यसि ॥ ३०० ॥
 जन्मोपकरणं माता जन्मोपकरणं पिता ।
 प्रीतिमात्रोपकरणं सुहृत्स्वजनबान्धवाः ॥ ३०१ ॥
 ममायमहमस्येति संबन्धोऽयं निरर्थकः ।
 आत्मैव सुखदुःखानां भोक्ता नान्यः शरीरिणाम् ॥ ३०२ ॥
 संसारवर्त्म पान्थानामनिशं परिसर्पताम् ।
 देहिनां पितरो नाम जन्ममात्रप्रतिक्षुवः ॥ ३०३ ॥

१. 'चितं राम्यं' ख. २. 'ब' शा०. ३. 'मन' शा०. ४. 'भ्रयः' शा०.

कथं दशरथस्यान्ते राज्यं त्यजसि निःसुखः ।
 तव तस्य च संबन्धो नेदानीं भिन्नवर्त्मनोः ॥ २६४ ॥
 अस्मिन्नल्पसुखे नित्यं बहुदुःखे च जीविते ।
 सुखलेशं समादाय वर्तते कुशलः किल ॥ २६५ ॥
 धर्माशौचशरीराणि निघृष्यन्ते यथा यथा ।
 तथा तथा भृशं तेभ्यो दुःखमेव प्रजायते ॥ २६६ ॥
 यथा कण्टकशाखादि त्यज्यते पुष्पिताद्वनात् ।
 धर्मपुष्पार्थिना तद्वत्संत्याज्यः क्लेशविस्तरः ॥ २६७ ॥
 धर्मस्कन्धः प्रवृद्धोऽयं कुटिलो ह्यतिकर्कशः ।
 सन्तस्तस्मिन्न सज्जन्ति हेलया तत्फलेप्सवः ॥ २६८ ॥
 धर्मतन्म्रमविज्ञाय निर्वन्धादात्मपीडया ।
 पाठमात्ररता एव न मूर्खाः सुखभागिनः ॥ २६९ ॥
 बहुदानसुखे राज्ये जनत्राणमहाफले ।
 बाष्पात्रसंयमैः कस्माद्विमुखोऽसि महामते ॥ २७० ॥
 समन्युर्लक्ष्यते कस्मान्न मयोक्तोऽस्ति नास्तिकम् ।
 धर्मं भजन्ते कुशला विवेक्ष्य गुरुलाघवम् ॥ २७१ ॥
 इति जाबालिवचनं निशम्य रघुनन्दनः ।
 उवाचान्तर्लसत्कोपो मुनिगौरवयन्त्रितः ॥ २७२ ॥
 भगवन्नतिवात्सल्यादस्माकं स्निग्धचक्षुषा ।
 उपपत्येव घटितं केवलं भवतोदितम् ॥ २७३ ॥
 सत्यच्युतेनाशुचिना किं मनुष्येण कारणम् ।
 पात्रेणेवास्तदीपेन कायेनेव गतासुना ॥ २७४ ॥
 पुंसः सत्यविहीनस्य सत्त्वभ्रष्टस्य किं श्रिया ।
 अन्यस्य चन्द्रकान्त्येव मालयेव गतायुषः ॥ २७५ ॥
 राजा चेद्धर्ममर्यादां लोभादुत्क्रम्य वर्तते ।
 उन्मूलोपप्लवेनैताः सर्वथा निहताः प्रजाः ॥ २७६ ॥

वैराग्यमिव वृद्धानामौचित्यं महतामिव ।
 शुचिशीलमिवार्याणां सत्यं राज्ञां विभूषणम् ॥ २७७ ॥
 न लोभात्सत्यमुर्द्वष्टुं भगवन्नहमुत्सहे ।
 प्राप्ता अपि विनश्यन्ति सत्यहीनस्य संपदः ॥ २७८ ॥
 तरङ्गभङ्गुरा भोगाः कार्पण्यमलिनं धनम् ।
 कल्पान्तस्थायि धवलं यशः सत्यं च देहिनाम् ॥ २७९ ॥
 कृतास्पदानि निम्नेषु न तिष्ठन्त्युन्नते क्वचित् ।
 अव्ययप्रलयान्त्येव सलिलानि धनानि च ॥ २८० ॥
 सन्तः संतोषविशदा व्रजन्तः सत्यवर्त्मना ।
 धनैरधमसंधार्यैर्विदार्यन्ते न धीधनाः ॥ २८१ ॥
 राज्यं विरजसामेव शोभते सत्यवादिनाम् ।
 असत्यपङ्कमलिना विभूतिः कोपयुज्यते ॥ २८२ ॥
 इति ब्रुवाणमसकृद्वसिष्ठस्तपसां निधिः ।
 उवाच रामं वात्सल्यादिक्वाकूणां परायणम् ॥ २८३ ॥
 प्रजाहितार्थमुचितं राम जाबालिनोदितम् ।
 न हि जानाति धर्मस्य गतिमेष सनातनीम् ॥ २८४ ॥
 मनुवंशक्रमायातं त्याज्यं राज्यं निजं न ते ।
 रघूणां ज्येष्ठभागिन्यः सर्वदैव विभूतयः ॥ २८५ ॥
 कुलाचारं समुत्सृज्य न स्थितिं हातुमर्हसि ।
 जन्म प्रजापरित्राणपरतन्त्रं हि भूभुजाम् ॥ २८६ ॥
 वेदाचारव्रता विप्राः सन्तः सच्चरितव्रताः ।
 कुरु मे वचनं राम जनन्याश्च कुलोचितम् ॥ २८७ ॥
 न हि मां पितुराचार्यमवमन्तुमिहार्हसि ।
 वसिष्ठस्येति वचनं रामो दृढविनिश्चयः ॥ २८८ ॥
 निशम्य सत्यं न त्याज्यं मयेत्यूचे पुनः पुनः ।
 ततो जगाद भरतः सुमन्त्रं व्यथितेन्द्रियः ॥ २८९ ॥

१. 'स्रष्टुं' शा०. २. 'न्ये' शा०. ३. 'भर्तृसेवाव्रता नाथो भृगुपालः पालनव्रताः' शा०.

कुशैः कल्पय मे शय्यां तपसार्यः प्रसीदति ।
 निराहारो निरालम्बस्त्यक्तकर्मा निराश्रयः ॥ २९० ॥
 भवाम्येष वने मौनी यावदार्यः प्रसीदति ।
 अथ वा भजताभार्यो राज्यं ज्येष्ठक्रमागतम् ॥ २९१ ॥
 अहं तु पालयाम्यस्य वनवासव्रतं स्वयम् ।
 सुमन्त्रमभिधायेति रामवक्त्रविलोकिनम् ॥ २९२ ॥
 कुशैरास्तरणं भूमौ चकार भरतः स्वयम् ।
 तमुवाचाग्रजो भ्राता न तवैतत्कुलोचितम् ॥ २९३ ॥
 ब्राह्मणो हि दहत्येव प्रायः शय्याश्रितो जगत् ।
 गच्छ मद्वचसा वत्स पाहि धर्मेरतः प्रजाः ॥ २९४ ॥
 मा भवन्तु कथाशेषा रघूणां कुलसंपदः ।
 रामस्येति वचः श्रुत्वा भरतस्य च निश्चितम् ॥ २९५ ॥
 भरतप्रेरिताः सर्वे पौरा रामं ययाचिरे ।
 ततो भाविकथाभिज्ञविमलज्ञानलोचनाः ॥ २९६ ॥
 ऊचुर्मुनीन्द्रा भरतं रामं मा दुर्ग्रहं कृथाः ।
 रामः सत्यप्रतिज्ञोऽस्तु राज्यं च भजतां भवान् ॥ २९७ ॥
 सत्यव्रतपरिभ्रष्टा क दृष्टा रघुसंततिः ।
 इत्युक्ते मुनिगन्धर्वसिद्धकिनरचारणैः ॥ २९८ ॥
 बभूव भरतः क्षिप्रं वज्रेणेव समाहतः ।
 सोऽपतत्पादयोर्भ्रातुः प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ २९९ ॥
 वात्सल्यस्याश्रुभिः कुर्वन्नभिषेकक्रिया इव ।
 रामस्तमङ्कमारोप्य बभाषे यैशसां निधिः ॥ ३०० ॥
 त्वत्स्नेहादप्यहं वत्स न सत्यं त्यक्तुमुत्सहे ।
 त्वं तु सत्येन महता कुलधर्मेण चामुना ॥ ३०१ ॥
 सप्तार्णवप्रणयिनीं शक्तः पालयितुं महीम् ।
 गच्छ मद्वचसायोध्यां वैक्लव्यं मा वृथा कृथाः ॥ ३०२ ॥

राघवैणेत्यभिहिते वशिष्ठः पुनरभ्यधात् ।
 कुलं कर्म च संकीर्णं न येषां दोषशीकरैः ।
 न तेषां जायते जातु कृच्छ्रेऽप्यनुचिता मतिः ॥ ३०३ ॥
 न लोभादनुरागाद्वा मर्यादां रघुनन्दनः ।
 महायशो भिनत्त्येष वेलाभिव महोदधिः ॥ ३०४ ॥
 भरत आतुरादाय पादुके पालय प्रजाः ।
 दैवतं सर्वकार्येषु देह्यस्मै राम पादुके ॥ ३०५ ॥
 इत्युक्ते मुनिना आतुः समादाय स पादुके ।
 जननीभिः सह प्रायात्सानुगो भरतः शनैः ॥ ३०६ ॥
 इति पादुकादानम् ॥
 पूज्यमानो मुनिगणैरौचित्यगुणगौरवात् ।
 स जाह्नवीं समुत्तीर्य पुरीं प्राप्य त्रिभिर्दिनैः ॥ ३०७ ॥
 स दृष्ट्वा निर्जेनां दूरादयोध्यां विधुताशयः ।
 उवाच सारथिं गुप्तनिःश्वासग्लपिताधरः ॥ ३०८ ॥
 अहो नु निरलंकारा नववैधव्यधूसरा ।
 इयं तातस्य नगरी शोकाक्रान्ता न शोभते ॥ ३०९ ॥
 लक्ष्मीविलासनलिनी सेयमानन्दकौमुदी ।
 वियोगास्पदतां दूरं तस्यैव स्वेच्छया विधेः ॥ ३१० ॥
 कार्पण्यमलिनीव श्रीरसत्यमलिनीव वाक् ।
 पुरीयं दृश्यते शून्या मात्सर्यमलिनेव धीः ॥ ३११ ॥
 विभूतिर्व्यसनेनेव दैन्येनेवाभिमानिता ।
 प्रीतिरप्रणयेनेव शोकेनेयं समाहिता ॥ ३१२ ॥
 अत्र विस्रम्भनिभृतामन्ये वन्यमृगद्विपाः ।
 स्वजातिदर्शनप्रीतिं लभन्ते चित्रवेश्मसु ॥ ३१३ ॥
 निर्भ्रमलम्बमानाब्जा ह्रियेवाधोमुखी स्थिता ।
 कम्पते केलिसरसी वनमातङ्गदूषिता ॥ ३१४ ॥

१. 'विपदास्पदतां' शा०. २. 'याता दुरन्तस्येच्छया' शा०.

अलक्तकार्द्रललनाचरणाङ्कासु भूमिषु ।
 दृश्यते व्याघ्रपदवी सिक्ता हरिणशोणितैः ॥ ३१५ ॥
 प्रत्यग्राग्रखुरोद्धूतकीर्णकुट्टिमचूर्णकात् ।
 भित्त्यग्रविवरात्सर्पाः कृष्यन्ते वनबर्हिभिः ॥ ३१६ ॥
 नाट्यवेश्मनिषण्णानां सिंहानां गलगर्जितैः ।
 क्रियते घोरगम्भीरमुरजास्फालनभ्रमः ॥ ३१७ ॥
 हेमरत्नगवाक्षेषु तन्तुजालवितानके ।
 तूर्णनाभैर्विरचिते शेरते घनरेणवः ॥ ३१८ ॥
 दृष्ट्वा विम्बितमात्मानं कुपितैर्वनवारणैः ।
 दन्ताघातस्फुलिङ्गाङ्काः क्रियन्ते मणिभित्तयः ॥ ३१९ ॥
 रामप्रवासपिशुनां नृपहीनामिमां पुरीम् ।
 द्रष्टुं विषादजननीं जननीमिव नोत्सहे ॥ ३२० ॥
 नन्दिग्रामे करोम्येष राघवागमनावधि ।
 भूभारचिन्ता हृदये मौलौ मूर्ध्नि च पादुके ॥ ३२१ ॥
 अभिधायेत्ययोध्यायां निधाय जननीजनम् ।
 मुनीनां संमतं प्रायान्नन्दिग्रामं स सानुजः ॥ ३२२ ॥
 जटी वल्कलभृत्तत्र ब्रह्मचारी फलाशनः ।
 उवाह वसुधां वीरः पूजयन्रामपादुके ॥ ३२३ ॥
 सिंहासने स विन्यस्य मणिकाञ्चनपादुके ।
 सततं सकलास्थाने सिषेवे छत्रचामरैः ॥ ३२४ ॥
 इति भरतव्रतग्रहणम् ॥ ७ ॥
 अथ रामोऽपि संचिन्त्य चिरं लक्ष्मणमब्रवीत् ।
 भुक्तं वनमिदं त्यक्त्वा गच्छामः काननान्तरम् ॥ ३२५ ॥
 विमलत्वाद्वनस्यास्य संचारात्पिशिताशिनाम् ।
 शनकैर्मुनयः सर्वे वनमन्यमितो गताः ॥ ३२६ ॥
 इदं च भरतानीकं मदस्यन्दनवाजिभिः ।

मृदितं तच्छृङ्खलमूत्रपरिक्लिन्नतृणं वनम् ॥ ३२७ ॥

उक्त्वेति सीतानुगतो रामः सौमित्रिणा सह ।

पवित्रचरितस्यात्रैर्जगामाश्रममश्रमः ॥ ३२८ ॥

इति भरतपर्व ॥ ८ ॥

तत्र तं तेजसां राशिमृषिं विरचिताञ्जलिः ।

प्रणनाम कृतातिथ्यस्तेन स्निग्धाभिर्भाषितः ॥ ३२९ ॥

पत्नीं पतिव्रतां तस्य वृद्धसिद्धनमस्कृताम् ।

अनसूयां गिरा पत्युर्ववन्दे जनकात्मजा ॥ ३३० ॥

दशवर्षसहस्राणि यथा तीर्थे कृतं तपः ।

फलमूलान्यनावृष्ट्यां जहुकन्यां च यासृजत् ॥ ३३१ ॥

दशरात्रायतां रात्रिं चक्रे देवहिताय या ।

- तां प्रणम्य व्रतक्षामां जराशुभ्रशिरोरुहाम् ॥ ३३२ ॥

पुण्यां पुण्यार्जितामत्रैर्मूर्तामिव तपःश्रियम् ।

जहर्ष जानकी तस्याश्चरित्रेऽभ्यधिकादरा ॥ ३३३ ॥

अनसूया जगादाथ प्रणतां तां पुरःस्थिताम् ।

शीलव्रतपताकेव कम्पमाना जरावशात् ॥ ३३४ ॥

दिष्ट्या पुत्रि त्वया प्राप्तं सतीव्रतपवित्रितम् ।

सद्यश्छिदशश्लाघ्यं वने पत्युः सपर्यया ॥ ३३५ ॥

नातः परतरं किञ्चित्कुलस्त्रीणां परं व्रतम् ।

यत्सदा भक्तिपूतेन मनसा भर्तृसेवनम् ॥ ३३६ ॥

संमुखं निहताः शूरा ज्ञाननिष्ठास्तपस्विनः ।

प्रयान्ति परमं धाम भर्तृभक्ता हि योषितः ॥ ३३७ ॥

प्रजानां दैवतं राजा पितरौ दैवतं सताम् ।

विप्राणां दैवतं वह्निर्नारीणां दैवतं पतिः ॥ ३३८ ॥

इयं सुधामयी कान्तिरिदं लीलामयं वचः ।

भर्तृभक्तिप्रणयिना शीलेन तव शोभते ॥ ३३९ ॥

गौरीव चन्द्रचूडस्य रोहिणीवामृतत्विवः ।
 संमता ह्यसि रामस्य कमला श्रीपतेरिव ॥ ३४० ॥
 सुरार्हमपरिम्लानं माल्यं वस्त्रविभूषणम् ।
 दिव्यं विलेपनं चेदं गृहाणाश्छिष्टरूपदम् ॥ ३४१ ॥
 इत्युक्त्वास्यै ददौ दिव्यं माल्याम्बरविभूषणम् ।
 प्रणता प्रीतिदायं च प्रतिजग्राह जानकी ॥ ३४२ ॥
 विस्त्रम्भप्रीतिवात्सल्यान्मुनिपत्न्याथ जानकी ।
 पृष्ट्वा जन्मकथामूचे सुधामधुरवादिनी ॥ ३४३ ॥
 पुरा जनकभूपालो मेनकां नाककामिनीम् ।
 दृष्ट्वा तत्संगमे पुत्रलाभाय विदधे मतिम् ॥ ३४४ ॥
 जाते मनोरथे तस्य वागुवाचाशरीरिणी ।
 अयोनोजमपत्यं ते भविष्यत्यचिरादिति ॥ ३४५ ॥
 ततः क्रतुक्रियारम्भे विपुले तस्य भूपतेः ।
 हेमलाङ्गलकृष्टायाः संजाताहं सुता भुवः ॥ ३४६ ॥
 कालेन वर्धमानायां मयि पित्रा स्वयंवरः ।
 धनुरारोपणपणः कल्पितो नृपसंगमे ॥ ३४७ ॥
 अशक्तास्ते नृपा रुद्रचापारोपणकर्मणि ।
 मयि शौर्याभिमाने च ययुर्भग्नमनोरथाः ॥ ३४८ ॥
 ततो यदृच्छयासेन धनुषो भङ्गकारिणा ।
 प्राप्ताहमार्यपुत्रेण सेवासौभाग्यभागिनी ॥ ३४९ ॥
 मुनिपत्नी निशम्यैतत्प्रीत्या प्रोवाच जानकीम् ।
 मधुरं ते वचः पुत्रि न तृप्तिं विदधाति मे ॥ ३५० ॥
 आसन्नेयं शशिमुखी चन्द्रिका रुचिराम्बरा ।
 तारांशुहारा त्वमिव श्यामा कुमुदहासिनी ॥ ३५१ ॥
 गम्यतामन्तिकं पत्युरित्युक्त्वा विरराम सा ।
 सीतापि प्रेयसः पार्श्वे जगाम प्रणिपत्य ताम् ॥ ३५२ ॥

विलोक्य राघवः सीतां भूषितां दिव्यभूषणैः ।
 रत्नकल्लोलशबलां पीयूषलहरीमिव ॥ ३९३ ॥
 पीताम्बरवतीं पुण्यरेणुव्याप्तां लतामिव ।
 विस्मयौत्सुक्यहर्षाणां वश्यतां तुल्यमाययौ ॥ ३९४ ॥
 इत्यत्रिदर्शनम् ॥ ९ ॥

ततः प्रातः प्रणम्यात्रिं हृष्टो रामस्तदाज्ञया ।
 विवेश दण्डकारण्यं सानुजो दयितासखः ॥ ३९५ ॥
 मुनिभिर्विहितातिथ्यो भूपातिशयविस्मितैः ।
 उवाच वासवसमः स तत्र त्रिदिवोपमे ॥ ३९६ ॥
 तमूचुर्मुनयो ज्ञात्वा रामं विश्रुतविक्रमम् ।
 त्वद्वीर्यगुप्तमधुना निर्विघ्नं तात नस्तपः ॥ ३९७ ॥
 वर्णाश्रमाणां गुरवस्तपस्त्राणात्तपस्विनाम् ।
 त्वद्विधाः पृथिवीपाल हेलया फलभागिनः ॥ ३९८ ॥
 इत्युक्त्वा मुनिभिः प्रीत्या पूजितो रघुनन्दनः ।
 स्थित्वा तत्र निशामेकां वनं प्रातर्व्यगाहत ॥ ३९९ ॥
 स वीरः सह जानक्या ब्रजन्धन्वी सलक्ष्मणः ।
 ददर्श कज्जलश्यामं निशीथमिव राक्षसम् ॥ ४०० ॥
 व्याजृम्भि पिङ्गलश्मश्रुप्रभापरिकराननम् ।
 खद्योतापूर्णपर्यन्तगुहागेहमिवाचलम् ॥ ४०१ ॥
 मलिनेनातिमहता घनशोणितवर्षिणा ।
 निजेन पातकेनेव संवीतं गजचर्मणा ॥ ४०२ ॥
 दीप्तशीलिशिखाप्रान्तप्रोतकेसरिकुञ्जरम् ।
 अकालप्रलयारम्भमिव भूतभयंकरम् ॥ ४०३ ॥
 नासापुटकुटीनिर्यन्निःश्वासप्रलयानिलैः ।
 कुर्वाणं फुलसालानां कम्पातङ्ककदर्थनाम् ॥ ४०४ ॥
 तं वीक्ष्य चकिता सीता लोलैरालोकितैर्दिशाम् ।
 चकार हरिणीनेत्रवर्गसर्गमिवासकृत् ॥ ४०५ ॥

सा भयोद्भ्रान्तनयनभ्रमद्भ्रमरविभ्रमा ।
 लतेव मारुतावर्तवलिता पतिमैक्षत ॥ ३६६ ॥
 राक्षसोऽपि भृशं क्रुद्धः शब्देनापूरयन्दिशः ।
 दोर्भ्यामादाय वैदेहीं राघवाभिमुखोऽवदत् ॥ ३६७ ॥
 धन्विनौ जटिलौ चित्रं विपरीतव्रतौ युवाम् ।
 भक्ष्यौ मे विधिनादिष्टौ स्त्रीसहायौ प्रमादिनौ ॥ ३६८ ॥
 दुर्वला मुनयो यत्र दुर्जया यत्र राक्षसाः ।
 लज्जैव योषितो यत्र धनुषश्च परिग्रहः ॥ ३६९ ॥
 इयं ते ललिता योषिन्मुनिमानसहारिणी ।
 प्रमत्तस्येव राजश्रीः प्रसह्य ह्रियते मया ॥ ३७० ॥
 राक्षसोऽहं विराधाख्यो विराधितजगत्रयः ।
 विश्रुतो मुनिमांसादः काननेऽस्मिन्कृतास्पदः ॥ ३७१ ॥
 इति संरम्भसावेगं ब्रुवाणे पिशिताशने ।
 उवाच लक्ष्मणं रामः प्रियापरिभवादितः ॥ ३७२ ॥
 सुता जनकराजस्य विवृद्धान्तःपुरे सती ।
 पश्य लक्ष्मण मे पत्नी कृप्यते घोररक्षसा ॥ ३७३ ॥
 इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा सौमित्रिः प्रत्यभाषत ।
 संरम्भः कोऽयमार्यस्य दासे तव पुरः स्थिते ॥ ३७४ ॥
 शरान्कोपाङ्कुराकारानित्युक्त्वाप्राहिणोत्खरान् ।
 ये भित्त्वा राक्षसं घोरं रक्ताङ्का विविशुः क्षितिम् ॥ ३७५ ॥
 विराधोऽप्यधिकं क्रुद्धः शूलं कालानलोल्वणम् ।
 लक्ष्मणोरसि चिक्षेप रामस्तच्चाकरोद्विधा ॥ ३७६ ॥
 शराभ्यां राक्षसं भित्त्वा शूलं शूलं दिवौकसाम् ।
 तृतीयेनास्य चिच्छेद हृदि जीवितवन्धनम् ॥ ३७७ ॥
 स बाणभिन्नहृदयः पतन्भुवि निशाचरः ।
 जगाद रुधिरोद्गारवदनो गद्गदाक्षरः ॥ ३७८ ॥

१. 'मयि' शा०. २. 'विगलद्' ख.

८ रा०

शतहृदाया जातोऽहं विराधो नाम राक्षसः ।
 वीर त्वयाद्य निहतः शापान्मुक्तस्तमोमयात् ॥ ३७९ ॥
 पुराहं तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो विभवोन्मदः ।
 रम्भासक्तः कुबेरेण शप्तस्तदभिलाषिणा ॥ ३८० ॥
 त्वत्तो वधावधिः शापः स चायं क्षपितो मया ।
 स्वस्ति तेऽस्तु व्रजाम्येष त्रिदिवं त्वत्प्रसादतः ॥ ३८१ ॥
 अन्दे क्षिप मे कायं संस्कारो ह्येष रक्षसाम् ।
 शरभङ्गमितो गत्वा पश्य श्रेयःपदं मुनिम् ॥ ३८२ ॥
 इतो योजनमुत्क्रम्य सार्धं तस्याश्रमस्थितिः ।
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणाक्षिसशरीरः स दिवं ययौ ॥ ३८३ ॥
 इति विराधवधः ॥ १० ॥
 हत्वा विराधं काकुत्स्थः परिष्वज्य च वल्लभाम् ।
 लक्ष्मणानुगतो वीरः शरभङ्गाश्रमं ययौ ॥ ३८४ ॥
 अस्मिन्नवसरे शक्रः स्यन्दनेनाभिवर्चसा ।
 शरभङ्गं समभ्येत्य बभाषे त्रिदशैः सह ॥ ३८५ ॥
 भगवन्पूततपसस्ताव स्वाधीनतां गताः ।
 सर्वे सुकृतिनां लोका ब्रह्मणः पदमागुहि ॥ ३८६ ॥
 इत्युक्त्वा राममायान्तं दूरादालोक्य सानुजम् ।
 सहस्रनेत्रस्त्रिदशानुद्धर्षविवशोऽवदत् ॥ ३८७ ॥
 अनेन सुमहत्कार्यं सुरकार्यं यशस्विना ।
 संपूर्णकृत्यं कालेन द्रक्ष्याम्येनमकिल्बिषम् ॥ ३८८ ॥
 इत्युक्त्वा मुनिमामन्त्र्य देवैः सह शचीपतिः ।
 दिवमाचक्रमे कुर्वन्प्रभाप्रावरणा दिशः ॥ ३८९ ॥
 रामोऽपि सानुगं दूरात्प्रयान्तं वीक्ष्य वज्रिणम् ।
 प्रणनाम समभ्येत्य शरभङ्गं कृताञ्जलिः ॥ ३९० ॥
 प्रस्थितो ब्रह्मसदनं गन्तुं सोऽपि महामुनिः ।
 प्रणयात्कर्तुमातिथ्यं राघवाय व्यलम्बत ॥ ३९१ ॥

सोऽब्रवीत्तपसा राम मया लोकाः सनातनाः ।
 संप्राप्तास्तान्गृहाण त्वं पूज्यत्वात्सर्वमर्हसि ॥ ३९३ ॥
 इत्युक्ते मुनिना रामो बभाषे विनयानतः ।
 दर्शनं भवतामेव ब्रह्मधाम्नोऽधिकं मम ॥ ३९४ ॥
 किं तपोभिरपर्यन्तैः किं यज्ञैर्बहुडम्बरैः ।
 किं वा जलभृतैस्तीर्थैर्दर्शने त्वादृशां सति ॥ ३९५ ॥
 निजपुण्यार्जितांलोकान्गमिष्यामि कृतोचितः ।
 उक्त्वेत्यपूजयत्तस्य विश्वकारुण्यपुण्यताम् ॥ ३९६ ॥
 सुतीक्ष्णस्याश्रमे राम मुनेर्वासस्तवोचितः ।
 शरभङ्गो निगद्येति विग्रहं त्यक्तुमुद्ययौ ॥ ३९७ ॥
 सप्तधातुमयं देहं सर्पनिर्मोकवन्मुनिः ।
 त्यक्त्वाग्नौ पावकाकारः कुमारः समपद्यत ॥ ३९८ ॥
 ततः स दिवमाक्रम्य परं शक्रपुरःसरः ।
 ब्रह्मधाम ययौ धात्रा विहितस्वागतः स्वयम् ॥ ३९९ ॥
 इति शरभङ्गदर्शनम् ॥ ११ ॥
 शरभङ्गे गते व्योम्ना तदाश्रमनिवासिनः ।
 मुनयोऽभ्याययुः सर्वे रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ४०० ॥
 वैखानसा निराहारा बालखिल्या मरीचिपाः ।
 अश्मकुण्ठाः पयोभक्षा मृगाजगरगोव्रताः ॥ ४०१ ॥
 दन्तोल्लखलिनो व्योमनिलयाः पवनाशिनः ।
 सततं सलिले मग्ना नग्नाः स्थण्डिलशायिनः ॥ ४०२ ॥
 पञ्चातपा निरालम्बा वृक्षशाखाग्रलम्बिनः ।
 अद्भ्यः धूमपाः पादाङ्गुष्ठाधाराः फलाशिनः ॥ ४०३ ॥
 तमूचुर्विनयानग्रं तमभ्येत्य तपस्विनः ।
 चण्डांशुमालाः कपिलाः कुर्वाणास्तेजसा दिशः ॥ ४०४ ॥

एते त्वां मुनयो धन्यं तपोरक्षापरिक्षमम् ।
 वर्णाश्रमगुरुं वीरं पश्यन्ति गुणगौरवात् ॥ ४०४ ॥
 दातृणां यज्ञशीलानां यतीनां तीर्थसेविनाम् ।
 रक्षणात्क्षितिपाः सत्यं फलषड्भागभागिनः ॥ ४०५ ॥
 अरक्षमाणाः क्षमापाला ब्राह्मणा ब्रह्मवर्जिताः ।
 धनिनो दानहीनाश्च भुवो भाराय केवलम् ॥ ४०६ ॥
 अल्पावशेषतां नीता वनेऽस्मिन्नाक्षसैर्वयम् ।
 तपःक्षयभयात्तेषु शापोऽस्माभिर्न चोज्झितः ॥ ४०७ ॥
 राक्षसान्क्षपय क्षिप्रं मुनिसंक्षयदीक्षितान् ।
 वयं त्वामधुना वीर शरण्यं शरणं गताः ॥ ४०८ ॥
 इति श्रुत्वा मुनिगिरं राघवो रचिताञ्जलिः ।
 उवाच सत्त्वधवलं दन्तांशुविशदं वचः ॥ ४०९ ॥
 भवन्त एव लोकेषु शरण्याः शरणार्थिनाम् ।
 किं त्वाज्ञासंविभागे वः पात्रं पुण्यवतां वरः ॥ ४१० ॥
 एषोऽहं भवतामर्थे सज्जः कण्टकशोधने ।
 स्वयं मे निश्चयो ह्येष शासनानुग्रहोऽधिकः ॥ ४११ ॥
 इत्युक्त्वा तान्समामन्त्र्य सुतीक्ष्णस्याश्रमं मुनेः ।
 जगाम रामः कामस्य रम्यं धाम शमस्य च ॥ ४१२ ॥
 इति तापसाभयदानम् ॥ १२ ॥
 सुतीक्ष्णं तीक्ष्णतपसां तीक्ष्णांशुमिव तेजसाम् ।
 निधिं प्रणम्य काकुत्स्थः स्थितिं भेजे तदाज्ञया ॥ ४१३ ॥
 तत्र तेन कृतातिथ्यः सुखं नीत्वा विभावरीम् ।
 प्रातश्चचार रम्यासु तत्तपोवनभूमिषु ॥ ४१४ ॥
 तं सज्जकार्मुकं दृष्ट्वा सायकेष्वधिकादरम् ।
 उवाच सीता संचिन्त्य राक्षसक्षयदीक्षितम् ॥ ४१५ ॥
 आर्यपुत्र कथं नाम यत्नेनैव निशाचराः ।
 मृग्यन्ते ते हि नाद्यापि निकारपदवीं श्रिताः ॥ ४१६ ॥

नोत्तरन्ति प्रकोपस्य पारं किल भवद्विधाः ।
 न यावदपराधेन सेतुर्धृतः पुरो महान् ॥ ४१७ ॥
 असत्यं शीलविरहः प्राणहिंसा च देहिनाम् ।
 प्रकृष्टं पातकं प्राहुर्न यशः कर्मदोहदम् ॥ ४१८ ॥
 जन्मापूर्वमसत्यं ते शीलध्वंसस्य का कथा ।
 सांप्रतं निर्विकारेषु हिंसा रक्षःसु नोचिता ॥ ४१९ ॥
 अधिज्यं ते धनुरिदं नायुद्धेन प्रशाम्यति ।
 अवश्यमुद्यतं शस्त्रं प्रतारयति दारुणम् ॥ ४२० ॥
 न्यासीकृतं मुनिः कश्चित्कृपाणं केनचित्पुरा ।
 ररक्ष सुचिरं हस्ते धृत्वा त्यक्तकमण्डलुः ॥ ४२१ ॥
 न्यासपालनकष्टेन स संत्यक्ताखिलक्रियः ।
 खड्गग्रहप्रसङ्गेन चक्रे मनसि शूरताम् ॥ ४२२ ॥
 स क्रूरतां गतः काले पुण्यान्निजपदाच्च्युतः ।
 अधिज्यं मा कृथाश्चापं नाथ रक्षस्व सांप्रतम् ॥ ४२३ ॥
 प्रणयादिदमुक्तोऽसि न परिज्ञानगौरवात् ।
 क्षन्तुमर्हसि मे नाथ स्त्रीस्वभावोदितं वचः ॥ ४२४ ॥
 श्रुत्वेति जानकीवाक्यं प्रहृष्टो रघुनन्दनः ।
 उवाच सीते जानीषे सर्वं वक्तुमनिन्दितम् ॥ ४२५ ॥
 रक्षोभिरभिभूतानां रक्षायै निश्चितो मया ।
 मुनीनां दीप्ततपसामयमाज्ञापरिग्रहः ॥ ४२६ ॥
 इत्युक्त्वा सानुजो रामः प्रययौ मैथिलीसखः ।
 पश्यन्निजयशःशुभ्रपुष्पस्मितसिता लताः ॥ ४२७ ॥
 स ब्रजन्दिवसस्यान्ते शिथिलत्विवि भास्करे ।
 सयौवनायां संध्यायां ददर्श विपुलं सरः ॥ ४२८ ॥
 सतां वृत्तमिव स्वच्छं वनश्रीमणिदर्पणम् ।
 मज्जत्करिकराक्षेपक्षोभशीकरदुर्दिनम् ॥ ४२९ ॥

उत्फुल्लकमलैर्व्याप्तं लोललिशबलोदरैः ।
 मुखैर्मधुमदाताग्रैर्भ्रान्ताक्षैः सुदृशामिव ॥ ४३० ॥
 पवनान्दोलितोदारफुलेन्दीवरसुन्दरम् ।
 लीलाकटाक्षशबलं केलिवेश्म रतेरिव ॥ ४३१ ॥
 विलोक्य लोलकलोलदोलारूढसरोरुहम् ।
 तत्सरः सरसस्तेषां बभूव नयनोत्सवः ॥ ४३२ ॥
 तत्र संदेहितामोदमत्तालिकुलनिःस्वनैः ।
 गीतवाद्यरवं रामः शुश्राव श्रवणामृतम् ॥ ४३३ ॥
 किमेतदिति पृष्टोऽथ मुनिस्तेन कुतूहलात् ।
 उवाचेदं वचो राम दमकर्णेः पदं मुनेः ॥ ४३४ ॥
 स हि वाताशनः स्थाणुभूतो वर्षायुतं तपः ।
 तेपे बभूवुस्त्रिदशा येन प्रभ्रंशशङ्किताः ॥ ४३५ ॥
 विघ्नायाप्सरसः पञ्च तैर्विसृष्टास्तदाश्रमम् ।
 प्रययुर्यौवनोन्मत्ता मन्दनोन्मादभूमयः ॥ ४३६ ॥
 तासां विवलितापाङ्गसंगतानङ्गविभ्रमैः ।
 दमकर्णिर्ययौ क्षिप्रं प्रौढप्रीतिविधेयताम् ॥ ४३७ ॥
 महागिरिगुहास्थैर्यमपि चेतो महात्मनाम् ।
 पातयन्त्यप्रयत्नेन तरङ्गिण्यो वराङ्गनाः ॥ ४३८ ॥
 स्मरस्य यदनायत्तं रागस्याविषयं च यत् ।
 तन्मुनेर्मानसं तासां केलिकामुकतामगात् ॥ ४३९ ॥
 स सुन्दरतरं कृत्वा नवं लीलामयं वयः ।
 ताभिस्तु सहितोऽहानि व्यगाहत महोत्सवः ॥ ४४० ॥
 तस्यास्मिन्सरसस्तीरे सुरनारीविलासिनः ।
 गीतवाद्यरसोत्सेकः सुगतः श्रूयते ध्वनिः ॥ ४४१ ॥
 अत्याश्चर्यमयं श्रुत्वा विस्मितो रघुनन्दनः ।
 चिरं तस्थौ ययुर्यावद्वने सार्धाः समा नव ॥ ४४२ ॥

ततः कथापरिचितं मनोरथपथोचितम् ।

रामः सुतीक्ष्णनिर्दिष्टमगस्त्यस्याश्रमं ययौ ॥ ४४३ ॥

इति सुतीक्ष्णाश्रमनिवासः ॥ १३ ॥

स सीतासहितो गच्छन्नगस्त्याश्रमकाननम् ।

उवाच लक्ष्मणं पश्य संतोषविषदा दिशः ॥ ४४४ ॥

आश्रमोऽयं श्रमहरस्तस्य पुण्यात्मनो मुनेः ।

नूनं यदेता जृम्भन्ते हृदयानन्दसंपदः ॥ ४४५ ॥

भृङ्गाक्षमालावलयव्यग्रपल्लवपाणयः ।

पलाशिनो वल्कलिनो भान्त्येते भुनक्तो यथा ॥ ४४६ ॥

प्रशान्तवैररजसां सिंहेभ्यफणिबर्हिणाम् ।

प्रेमप्रणयिनी चेष्टा निर्विकारैव दृश्यते ॥ ४४७ ॥

शीलवृत्तिः शमेनेव दानेनेव दयालुता ।

मुनिना दक्षिणेयं दिग्विभाति द्यौरिवेन्दुना ॥ ४४८ ॥

घोराबिल्वलवातापी पुरा दैत्यौ बभूवतुः ।

यत्प्रतापेन सातङ्का बभूव भुवनत्रयी ॥ ४४९ ॥

मायामेषाकृतिं कृत्वा सदा आतरमिल्वलः ।

ब्राह्मणेभ्यो वधायैव ददौ तन्मांसभोजनम् ॥ ४५० ॥

तृप्तानामथ विप्राणां कुक्षिं भित्त्वातिदारुणः ।

वातापी निर्ययौ क्षिप्रमित्यासीद्ब्राह्मणक्षयः ॥ ४५१ ॥

कालेनाथ मुनीन्द्रोऽसौ तेनागस्त्यो निमग्नितः ।

सिद्धं वातापिमांसेन संस्कृतं प्राप भोजनम् ॥ ४५२ ॥

एहीति हर्षादाहूते आत्रा आतरि दानवे ।

जीर्णो मयेति विहसन्नुवाचोद्गारवान्मुनिः ॥ ४५३ ॥

इल्वलं आतृनिधनात्कुद्धं क्रोधान्महामुनिः ।

ददाह दुरितच्छेदाच्चक्षुषा सूर्यतेजसा ॥ ४५४ ॥

१. 'वातापिर्नि' स्यात्. २. 'आतर्भात' शा०. ३. 'च्छेत्ता च' ख.

तस्येदमाश्रमपदं पुण्यार्हं कुम्भजन्मनः ।
 विन्ध्यो यदाज्ञयाद्यापि धत्ते भूमिसमानताम् ॥ ४९९ ॥
 प्रणम्यो भगवानेष चुलकापीतसागरः ।
 इत्युक्त्वा राघवः प्रायादगस्त्यभ्रातुराश्रमम् ॥ ४९६ ॥
 इतीश्वलोपाख्यानम् ॥ १४ ॥
 तं प्रणम्य ततो गत्वा प्रहृष्टो रघुनन्दनः ।
 अगस्त्यस्याश्रमं पुण्यं विससर्जानुजं पुनः ॥ ४९७ ॥
 विनयालक्ष्मणेनाथ शिष्यस्यावेदितो मुनेः ।
 विवेश शासनात्तस्य प्रहो दशरथात्मजः ॥ ४९८ ॥
 विधिना प्रणिपत्याथ सानुजो दयितासखः ।
 मुनीन्द्रं तद्विनिर्दिष्टमातिथ्यं प्राप राघवः ॥ ४९९ ॥
 सुखोपविष्टे पुरतः काकुत्स्थे मुनिरब्रवीत् ।
 स्वगुणैर्गुरुतां यातः सत्कारार्होऽसि राघव ॥ ४९० ॥
 पूजामभ्यागतो यस्मान्नासादयति शक्तितः ।
 परत्र मिथ्यासाक्षीव स मांसं निजमश्रुते ॥ ४९१ ॥
 अतिथिर्विमुखो यस्य याति पूजां विना गृहात् ।
 स तस्य पापं विन्यस्य पुण्यं हृत्वा पलायते ॥ ४९२ ॥
 पूज्यस्त्वमस्य जगतो राजा विरजसां वरः ।
 गृहाण वैष्णवं चापं विहितं विश्वकर्मणा ॥ ४९३ ॥
 यः सर्वदितिजेन्द्राणां ययौ निधनदूतताम् ।
 सायकं ब्रह्मदत्तं च तूणावक्ष्यसायकौ ॥ ४९४ ॥
 तप्तहेमप्रभं खड्गं जयायैव ददानि ते ।
 अभेद्यं च तनुत्राणमिदं वज्रभृतः प्रियम् ।
 रथं मातलिसूतं च कार्यकालोपयोगिनम् ॥ ४९५ ॥
 इत्युक्त्वासौ ददौ रत्नं दीप्तं सर्वं रथं विना ।
 दत्त्वा पुनरुवाचेदं प्रसादविषदाशयः ॥ ४९६ ॥
 कच्चिद्वने न खेदो वः कच्चिन्नोत्कण्ठते मनः ।
 तासु राज्यतरुस्फीतफलसंभोगभूमिषु ॥ ४९७ ॥

बालिकेयं सखी सीता सुकुमारी सुखोचिता ।
 स्नात्वा त्वद्भक्तिपीयूषैर्म्लानिं नायाति कानने ॥ ४६८ ॥
 धन्यो जनकभूपालः साध्वी यस्येयमात्मजा ।
 प्रायेण न भवन्त्येव लोके सत्यव्रताः स्त्रियः ॥ ४६९ ॥
 विभवेध्वनुरागिण्यो विरागिण्यो विपत्सु च ।
 अनार्याः कृच्छ्रसंभार्याः पुरुषाणां हि योषितः ॥ ४७० ॥
 सुबद्धा अपि शीर्यन्ते म्लानिं यान्ति क्षणेन च ।
 दूरस्था एव शोभन्ते पुष्पमाला इवाङ्गनाः ॥ ४७१ ॥
 यासामोष्ठपुटे रागः परं मलिनता हृदि ।
 गुणभ्रान्त्येव मुष्णन्ति जानीते कस्तदाशयम् ॥ ४७२ ॥
 आसन्नदोषाश्चपलाः क्रूरकर्मपरिग्रहाः ।
 एता मुहूर्तरागिण्यो घोराः संध्या इव स्त्रियः ॥ ४७३ ॥
 इयं तु लोलाभरणा भर्तृव्रतपरायणा ।
 रवेः प्रभेव ते सीता न दोषासङ्गभागिनी ॥ ४७४ ॥
 इयं वनमही सीतापादन्यासपवित्रिता ।
 सेव्यतामधुना प्राप्ता त्वद्बाहुबलपालिता ॥ ४७५ ॥
 पुरा भार्गवशापेन देशोऽयं दण्डभूभुजा ।
 त्यक्तो निरुदकच्छायो बभूवातिभयंकरः ॥ ४७६ ॥
 योजनार्धसहस्रेऽस्मिन्पादे विन्ध्यस्य दक्षिणे ।
 पर्जन्या नैव ववृषुर्ववुश्च न समीरणाः ॥ ४७७ ॥
 ततोऽहं सुरकार्यार्थी संघर्षे मेरुविन्ध्ययोः ।
 हिमाद्रिशिखराच्छून्यां प्राप्तः श्वेतामिमां पुरीम् ॥ ४७८ ॥
 प्रावृट्जलदारम्भसंभावितनवाङ्कुरा ।
 अथेयं विहिता भूमिर्मया सर्वभयोज्जिता ॥ ४७९ ॥
 कालेनाथ पुनर्घोरैर्व्याप्तेयं राक्षसैर्मही ।
 तत्र त्वद्दोष्णि संनद्धे संरम्भो न ममोचितः ॥ ४८० ॥

१. 'शिखराच्छेताप्राप्तः शून्यामिमां' ख.

इत्युक्ते मुनिना रामो धन्यतामात्मनोऽवदत् ।

दर्शनाभाषणैस्तस्य हर्षपूर्णाश्रयोऽभवत् ॥ ४८१ ॥

इत्यगस्त्यदर्शनम् ॥ १५ ॥

ततो गोदावरीतीरे रम्ये पञ्चवटीतटम् ।

जगामागस्त्यनिर्दिष्टं स्थितये रघुनन्दनः ॥ ४८२ ॥

स गच्छन्पथि रुद्धांशुं सपक्षमिव भूधरम् ।

ददर्श तेजसां राशिर्वृद्धं गृध्रं जटायुषम् ॥ ४८३ ॥

राक्षसोऽयमिति ज्ञात्वा मुनित्राणकृतक्षणः ।

अभ्यद्रवद्वधायास्य रामः सौमित्रिणा सह ॥ ४८४ ॥

सोऽब्रवीद्गृध्रराजोऽहं जटायुरिति विश्रुतः ।

विस्त्रम्भभूरभून्मित्रं राजा दशरथो मम ॥ ४८५ ॥

ज्येष्ठे प्रजासृजां सर्गे योऽभूद्दक्षः प्रजापतिः ।

बभूवुः कन्यकास्तस्य भूतसंतानमातरः ॥ ४८६ ॥

अदित्याद्यासु देवीषु संभूते कश्यपान्मुनेः ।

सुरासुरमुखे तासु विश्वसर्गे समन्ततः ॥ ४८७ ॥

असूत विनता पुत्रौ काश्यपौ तेजसां निधी ।

आदित्यसूतमरुणं गरुडं च खगेश्वरम् ॥ ४८८ ॥

अरुणस्यासि तनयः संपाती च ममाग्रजः ।

युवां सख्युः क्षितिपतेर्दिष्ट्या पश्यामि पुत्रकौ ॥ ४८९ ॥

इत्युक्त्वा गृध्रराजेन परिष्वक्तौ नृपात्मजौ ।

ननन्दतुस्तमभ्यर्च्य दयितं सुहृदं पितुः ॥ ४९० ॥

इति जटायुसमागमः ॥ १६ ॥

ततो मरकतश्यामतालतालीमनोरमाम् ।

रामे पञ्चवटीं प्राप्ते चक्रे सौमित्रिराश्रमम् ॥ ४९१ ॥

तत्र प्रसन्नमधुराः स्निग्धाः पश्यन्वनस्थलीः ।

उवाच रामः सौमित्रिं नयनानन्दनिर्भरः ॥ ४९२ ॥

एते गोदावरीतीरतारशीकरमारुताः ।

लतावधूनां कुर्वन्ति स्फारं कामलता इव ॥ ४९३ ॥

अदूरे पद्मिनी चेयं दृश्यते हंसनूपुरा ।

क्रियेत मधुपैर्यस्यां विलोलालकविभ्रमः ॥ ४९४ ॥

एताः सिद्धवधूहस्तन्यस्तसेकोचिता लताः ।

तासां भजन्ते सादृश्यं संभिन्नैः स्तवकस्तनैः ॥ ४९५ ॥

उत्कण्ठाकोमलं केलिगीतं किनरयोषिताम् ।

शृण्वन्ति वलितग्रीवाः स्तब्धकर्णाः कुरङ्गकाः ॥ ४९६ ॥

विद्याधरीणां कोऽप्येष रतिशय्यारसो नवः ।

अनिशं यान्ति मञ्जर्यो यत्पल्लवदरिद्रताम् ॥ ४९७ ॥

मञ्जुगुल्लद्विहङ्गेषु काननेषु समन्ततः ।

विश्रान्ता इव दृश्यन्ते स्वान्तसंतोषसंपदः ॥ ४९८ ॥

शुभ्राभ्रनिकराकारनिर्झरैः श्वेतपातिभिः ।

भान्ति शीकरनीहारदुकूलिन्यो वनश्रियः ॥ ४९९ ॥

वाताः ससौरभाः शीता मधुरो मधुपध्वनिः ।

शस्यश्यामा मही चेति काननेऽस्मिन्महोत्सवः ॥ ५०० ॥

इत्युक्त्वा पल्लवगृहे सं निनाय मनोहरे ।

रजनीं रजतोद्द्योतग्रहराजिविराजिताम् ॥ ५०१ ॥

प्राप्तो गोदावरीं रामः ससीतः सानुजो ययौ ।

कलहंसकुलकाणशिञ्जानरशनामिव ॥ ५०२ ॥

अथातिदारुणः प्रातः खलः क्रुद्ध इव क्षुधा ।

दुःसहो दिनपर्यन्तेऽचिरात्क्षीव इवाधमः ॥ ५०३ ॥

सुखसेव्यश्च मध्याह्ने च्युतो नीचः पदादिव ।

निरुद्धाशो घनौघेन लोभेनेव दिनेश्वरः ॥ ५०४ ॥

शीतादकृत्रिमोत्कम्पः सीत्काराचार्यतां गतः ।

रोमोद्गमगुरुः स्त्रीणां हेमन्तः प्रत्यदृश्यत ॥ ५०५ ॥

दिशो हेमन्तनीहारधूसरा वीक्ष्य लक्ष्मणः ।
 व्योम धूमान्धकारं च जगाद रघुनन्दनम् ॥ ९०६ ॥
 आर्य हेमन्तसंनाहव्याप्तस्य व्योमदन्तिनः ।
 धत्ते तुषारनिकरः करशीकरवर्षताम् ॥ ९०७ ॥
 कथावशेषसौभाग्यास्तुहिनम्लानपङ्कजाः ।
 एता विभान्ति पद्मिन्यो जरयेव वराङ्गनाः ॥ ९०८ ॥
 लज्जयेव घनच्छायो दृश्यते न च दृश्यते ।
 शशी धूसरतां यातः कुलीन इव मानुषः ॥ ९०९ ॥
 धर्मराजप्रियामाशां सेवमानो दिवाकरः ।
 शीलभ्रष्ट इव नृपः प्रयातो निष्प्रतापताम् ॥ ९१० ॥
 परिम्लानमुखच्छायाः सोच्छ्वासाः संततानिलैः ।
 याञ्जयेव महान्तोऽपि लुब्धतां यान्ति वासराः ॥ ९११ ॥
 रजन्यो दीर्घतां यातास्तमसा निष्कला अपि ।
 दुराशा इव मुग्धानां लुब्धेषु कुटिलात्मसु ॥ ९१२ ॥
 क्षीणदोषः क यातोऽसौ कालो विषदमानसः ।
 इतीव दुःखिता बाष्पं दिशो वर्षन्ति धूसराः ॥ ९१३ ॥
 संत्यक्तपत्राभरणा विस्मृतस्तवकस्मृताः ।
 मौनव्रता इवाभान्ति लताः प्रोषितषट्पदाः ॥ ९१४ ॥
 भुजोपधानास्वेतासु हिमशीतासु रात्रिषु ।
 त्वद्भक्त्या भरतः शेते दुःखेन भुवि भूपतिः ॥ ९१५ ॥
 यातास्त्रयोदश समा वर्षशेषव्रतोऽधुना ।
 मयूर इव पर्जन्यं भरतस्त्वां प्रतीक्षते ॥ ९१६ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते भरतस्त्रेहविक्रवः ।
 गोदावरीतटे स्नात्वा ययौ रामः स्वमाश्रमम् ॥ ९१७ ॥
 इति हेमन्तवर्णनम् ॥ १७ ॥

ततः शूर्पनखा नाम राक्षसी रावणस्वसा ।
 रामं यदृच्छया याता ददर्श मदनद्युतिम् ॥ ९१८ ॥
 सिंहस्कन्धं महानाहुं कान्तं कमललोचनम् ।
 शौर्यशृङ्गारयोर्योग्यमिव संकेतमन्दिरम् ॥ ९१९ ॥
 तं वधूसहितं दृष्ट्वा सा बभूवाभिलाषिणी ।
 कान्तिं रतिसनाथस्य विभ्राणं पुष्पधन्वनः ॥ ९२० ॥
 सा बभाषे विरूपाक्षी रामं राजीवलोचनम् ।
 भेरीभैरवगम्भीरस्वरा मधुरभाषिणम् ॥ ९२१ ॥
 को भवान्कानने कान्तः स्त्रीसहायो धनुर्धरः ।
 जटी श्रीमान्न च नृपो न च रक्तो न वा मुनिः ॥ ९२२ ॥
 विपरीतोऽयमाचारो यद्वने स्त्रीसहायता ।
 वेशश्च नानुरूपोऽयं यच्चापं यच्च वल्कलम् ॥ ९२३ ॥
 इति पृष्टस्तया रामः स्वभावसरलाशयः ।
 निजजन्मकथामूचे वनवासे च कारणम् ॥ ९२४ ॥
 तच्छ्रुत्वा सावदत्कामबाणसंपातकातरा ।
 दिग्दाहमिव कुर्वाणा दृक्पातैर्बभ्रुदारुणैः ॥ ९२५ ॥
 अहं शूर्पनखा नाम खरदूषणयोः स्वसा ।
 भ्रातरो मे दशग्रीवकुम्भकर्णविभीषणाः ॥ ९२६ ॥
 निःसारां मन्दसंचारां निःसहामबलामिमाम् ।
 मानुषीं त्यज संभोगे न यस्यां निर्दयोत्सवः ॥ ९२७ ॥
 सेयं निर्माल्यमालेव त्यागमर्हति ते वधूः ।
 हेमपद्ममयीं मालामिव कण्ठे कुरुष्व माम् ॥ ९२८ ॥
 देशेष्वमर्त्यसेव्येषु रमस्व सहितो मया ।
 गुल्फरज्जुरियं योषा त्यज्यतां धीमता त्वया ॥ ९२९ ॥
 इति ब्रुवाणामसकृत्सस्मितो रघुनन्दनः ।
 तामुवाच स्थितामग्रे दृश्यां निर्दिश्य लक्ष्मणम् ॥ ९३० ॥

अयं सुमुखि मे आता रतिशून्य इव स्मरः ।
 युवाकृतदारविधिरिच्छति त्वादृशीं वधूम् ॥ ९३१ ॥
 राघवेणेत्यभिहिते सा सौमित्रिमभाषत ।
 दिव्यसंभोगसुभगो भव वीर भजस्व माम् ॥ ९३२ ॥
 सोऽब्रवीदस्य दासोऽहमार्यसारण्यचारिणः ।
 अनेन रूपेण कथं दासपत्नी भविष्यसि ॥ ९३३ ॥
 आर्यस्यैवोचिता सुभ्रु भार्या सौभाग्यभागिनी ।
 भवती चारुसौन्दर्या विजयन्ती जगत्रये ॥ ९३४ ॥
 निशम्यैतद्गता रामं तं त्यक्त्वा लक्ष्मणोन्मुखी ।
 चक्रे स्मरानिलालोला सा दोलेव गतागतम् ॥ ९३५ ॥
 ततो वैलक्ष्यमापन्ना सुचिरात्स्मरमोहिता ।
 ज्ञात्वा तत्संगमे विघ्नं सीतामभ्याद्रवत्क्रुधा ॥ ९३६ ॥
 काली करालवदना सा सीतां हन्तुमुद्यता ।
 बभूवेन्दुकलालुब्धराहुच्छायानुकारिणी ॥ ९३७ ॥
 तामाकृष्य सपा रामः क्षणं लक्ष्मणमब्रवीत् ।
 दुरन्तः परिहासोऽयं न हिंसाः केलिभाजनम् ॥ ९३८ ॥
 आशीविषैः परिष्वङ्गः पिशुनैर्गुह्यमन्नम् ।
 अवश्यं भयमादत्ते परिहासश्च दुर्जनैः ॥ ९३९ ॥
 वज्राशनिविनिष्पेषनिर्घोषविषमस्वनैः ।
 पश्यास्यास्तर्जनैरेव मैथिली मोहमागता ॥ ९४० ॥
 इत्युक्तो रघुनाथेन लक्ष्मणस्तु भयाकुलः ।
 चिच्छेद करवालेन राक्षस्याः कर्णनासिकम् ॥ ९४१ ॥
 जलार्द्रभेरीगम्भीरभैरवस्वरराविणी ।
 सदा पीतं वमन्तीव मुखेनासृग्जगाम सा ॥ ९४२ ॥

नासिकारक्तसंसिक्तविस्त्रास्त्रस्रुतिनिर्झरा ।

गृहं आतुः खरस्यैत्य सा स्ववृत्तान्तमभ्यधात् ॥ ९४३ ॥

इति शूर्पनखाविरूपणम् ॥ १८ ॥

खरः खरतराकोपः स्वसुराकर्ण्य निग्रहम् ।

दिदेश राघवौ हन्तुं चतुर्दश निशाचरान् ॥ ९४४ ॥

वने शूर्पनखादिष्टवर्त्मना ते प्रहारिणः ।

अभ्येत्य ददृशुः कान्तासखं काकुत्स्थमास्थितम् ॥ ९४५ ॥

रामोऽपि राक्षसान्दृष्ट्वा पुनः शूर्पनखाग्रगान् ।

आरोप्य लीलया चापं बभूव समरोन्मुखः ॥ ९४६ ॥

उत्सृष्टानथ तैः कोपाहीसायुधपरम्पराम् ।

विच्छेद विशिलैः क्षिप्रं राघवश्चित्रलाघवः ॥ ९४७ ॥

ततश्चतुर्दश शरान्संतप्तकनकोक्षितान् ।

प्राहिणोद्यैर्बभूवुः क्षिप्रं विद्युत्परिचिता ईव ॥ ९४८ ॥

ते राक्षसान्विनिर्भिद्य स्पष्टान्विकटकङ्कटान् ।

विविशुर्वसुधां दीप्तास्तेषां जीवा इवोत्कटाः ॥ ९४९ ॥

ततो निपतितान्वीक्ष्य छिन्नपक्षानिवाचलान् ।

राक्षसान्राक्षसी भीत्या क्रन्दन्ती प्रययौ द्रुतम् ॥ ९५० ॥

खरोऽपि तद्विरा ज्ञात्वा राघवाम्निपतङ्गताम् ।

यातान्निशाचरान्वीरान्संनद्धो निर्ययौ द्रुतम् ॥ ९५१ ॥

चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।

सेनाग्रे निर्ययुस्तस्य त्रिदशत्रासकारिणः ॥ ९५२ ॥

स तप्तकाञ्चनरथध्वजकङ्कटकामुक्तः ।

बभौ दावानलव्याप्तः संचारीव मैहीधरः ॥ ९५३ ॥

अथ राक्षसैः संभारात्कम्पमाने महीतले ।

दुर्निमित्तगणः प्रायाद्धोरविप्लवतुल्यताम् ॥ ९५४ ॥

१. 'कारः' शा०. २. 'दिशः' ख. ३. 'त्कराम्' ख. ४. 'स्वयम्' ख.
५. 'महाचलः' ख. ६. 'संमर्द' ख; 'संरम्भा' शा०.

रक्षःसैन्यसमुद्रूतधूलिग्रस्ते नभस्तले ।
 विन्यस्य लक्ष्मणे सीतां रामः कवचमादधे ॥ ९९५ ॥
 आमुक्तहेमकवचः सज्जप्राज्यशरासनः ।
 सुरद्विषां पुरस्तस्थौ स धूर्जटिरिवापरः ॥ ९९६ ॥
 ततः क्षणेन रक्षोभिः पूरिते राघवाश्रमे ।
 उदभूद्धोरगम्भीरः समराम्बरदुन्दुभिः ॥ ९९७ ॥
 तेन शब्देन महता त्रस्ताः समृगपक्षिणः ।
 दुद्रुवुस्तापसास्तूर्णमपुनर्वलिताननाः ॥ ९९८ ॥
 ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा पुरतस्तेजसां निधिम् ।
 राघवं कान्तमत्युग्रं तस्थुश्चित्रार्पिता इव ॥ ९९९ ॥
 सैन्यं निश्चलमालोक्य खरः प्रोवाच दूषणम् ।
 किमयं ध्वजिनीसङ्गः परसैन्यं न दृश्यते ॥ १०० ॥
 एतदालोक्यतां तावदित्युक्तस्तेन दूषणः ।
 रथेन पृथुवेगेन सैन्यमध्याद्विनिर्ययौ ॥ १०१ ॥
 स दृष्ट्वा राममत्युग्रकोदण्डं स्थितमग्रतः ।
 चण्डांशुमिव दुर्धर्षपरिवेपं जगत्क्षये ॥ १०२ ॥
 परावर्त्य रथं तूर्णमभ्येत्य खरमब्रवीत् ।
 एष रामः स्थितो धन्वी रक्षसां गतिविघ्नकृत् ।
 येनैषां स्थगितानीव चेतांसि वचनानि च ॥ १०३ ॥
 श्रुत्वेति क्रोधहविषा खरो वह्निर्ज्वलन्निव ।
 अभ्याद्रवत्स्वयं रामं रथेन घननादिना ॥ १०४ ॥
 ततः क्षपाचराः सर्वे परिवार्य समन्ततः ।
 अदृश्यं चक्रिरे रामं प्रदीप्तायुधवर्षिणः ॥ १०५ ॥
 तस्य निर्भिद्यमानस्य घोराभिः शस्त्रवृष्टिभिः ।
 किंशुकाशोकसंकाशं शोणितेनाभवद्वपुः ॥ १०६ ॥

ततः शितशरासारैर्निर्यद्भिः किरणोत्करैः ।
 चण्डांशुरिव दुःप्रेक्ष्यः सोऽभवन्निदशद्विषाम् ॥ ५६७ ॥
 तेषां स्फुरत्प्रभापूरैः केयूरमणिकङ्कटैः ।
 हेमदीप्तशिरस्त्राणां कुण्डलैर्हेममण्डितैः ॥ ५६८ ॥
 भुजदण्डैः सकोदण्डैः सतोमरकरैः शरैः ।
 मातङ्गैर्भिन्नसर्वाङ्गैश्छिन्नकायैर्महाहयैः ॥ ५६९ ॥
 रथैरुन्मथितैश्छिन्नैश्छत्रैर्ध्वजगजैरपि ।
 चकार मेदिनीं रामश्छन्नामद्भुतविक्रमः ॥ ५७० ॥
 प्रभञ्जे रक्षसां सैन्ये दूषणो मुनिदूषणः ।
 चकारादृश्यमभ्येत्य रामं निर्विवरैः शरैः ॥ ५७१ ॥
 द्रुतशस्त्रशिलावर्षैर्दूषणाश्रमनिर्भरैः ।
 राक्षसैश्छाद्यमानोऽसौ धैर्याद्रिर्न व्यकम्पत ॥ ५७२ ॥
 जघान दूषणस्यास्य रथं रामः प्रमाथिनः ।
 सोऽप्यस्मै प्राहिणोद्धोरं गदापरिघपट्टिशम् ॥ ५७३ ॥
 ततश्चकर्त भल्लाभ्यां निर्जितारित्रजौ भुजौ ।
 रामो विरामः पापानां दूषणस्य सभूषणौ ॥ ५७४ ॥
 स पपात पृथूरस्कः कृतबाहुर्दुर्मः सृजन् ।
 उत्तिष्ठति पुनः किंस्त्रिदिति कम्पमिव क्षितेः ॥ ५७५ ॥
 दूषणे निहते धोरकोपदीप्ताः समाययुः ।
 महाकपालः स्थूलाक्षः प्रमाथी चेति दानवाः ॥ ५७६ ॥
 ते शूलपट्टिशप्रासवर्षिणस्तेजसां निधेः ।
 रामस्य पुरतश्चक्रुर्मेघलीलां रवेरिव ॥ ५७७ ॥
 ततो राघवदोर्दण्डकृष्टकोदण्डनिर्गता ।
 बाणपङ्क्तिरभूत्तेषां वीथीव यमसन्नि ॥ ५७८ ॥
 सायकानामथ शतैः शतानि पिशिताशिनाम् ।
 सहस्रैश्च सहस्राणि जघान रघुनन्दनः ॥ ५७९ ॥

क्षयक्षणे राक्षसास्तं प्राप्तमेकमनेकताम् ।
 ददृशुर्विश्वसंहारविश्वरूपमिवान्तकम् ॥ ५८० ॥
 ततः स्वयं समायातो योद्धुं क्रोधोद्धतं खरम् ।
 निवार्य त्रिशिरा नाम राक्षसो राममद्रवत् ॥ ५८१ ॥
 स ललाटे त्रिभिर्बाणैर्दीप्तैर्विव्याध राघवम् ।
 ये प्रभाजटिलास्तस्य हेममालातुलां ययुः ॥ ५८२ ॥
 ततो मनोरथमिव च्छित्त्वा तस्य रथं शरैः ।
 स शिरांस्यहरत्रीणि शिखराणि गिरेरिव ॥ ५८३ ॥
 हते त्रिशिरसि क्रूरे रामेणाश्चर्यकारिणा ।
 भग्नेषु युधि रक्षःसु स्वयमभ्याद्रवत्खरः ॥ ५८४ ॥
 ततः खरशरासारापूरिते भुवनोदरे ।
 बभूव सर्वभूतानां संहाररजनीभ्रमः ॥ ५८५ ॥
 रामबाणहताग्राणां तेषां राक्षसपत्त्रिणाम् ।
 ज्वालाभिर्विद्युदुद्दाममालाङ्गमभवन्नभः ॥ ५८६ ॥
 ततश्चकर्त रामस्य मुष्टैश्चापं खरः शरैः ।
 रत्नकाञ्चनचित्रं च कवचं विक्केचप्रभम् ॥ ५८७ ॥
 अथान्यं वैष्णवं चापमादाय रघुनन्दनः ।
 हेमप्रभापरिकरं ध्वजं चिच्छेद रक्षसः ॥ ५८८ ॥
 ध्वजस्य पततस्तस्य स्फुटैर्मणिकणाश्रुभिः ।
 रक्षःश्रीः प्ररुरोदेव नववैरिपराभवात् ॥ ५८९ ॥
 दीप्ते निपतिते तस्य ध्वजे साक्षादिवौजसि ।
 वेश्येव कृपणस्याभूद्वीर्यसाम्यात्पराङ्मुखी ॥ ५९० ॥
 ततः खरस्यातिखरैः शरैर्दशरथात्मजः ।
 दारितः प्रोन्ममाथास्य रथं साराथेकार्मुकम् ॥ ५९१ ॥
 स हताश्वं समुत्सृज्य स्यन्दनं शरविक्षतः ।
 भुवि तस्थौ गदापाणिर्निहताशेषसैनिकः ॥ ५९२ ॥

१. 'त्रिशिखो' शा०. २. 'संहारे' शा०. ३. 'मुष्टै' ख. ४. 'कनक' ख.

विषमे वर्तमानं तं विहस्योवाच राघवः ।
 विभूतिस्ते क्षयं याता पापमेवाक्षयं पुनः ॥ ५९३ ॥
 बत वाताकुलाश्चत्थदललोलाः खलश्रियः ।
 शरीरशेषतां यातो यद्भवान्क्षसां विभुः ॥ ५९४ ॥
 न रथो न गजो नाश्वो न मित्राणि न मन्त्रिणः ।
 न बान्धवा वा तिष्ठन्ति पर्यन्ते सुकृतादृते ॥ ५९५ ॥
 कानि कानि न मित्राणि स्निग्धाः के के न बान्धवाः ।
 संपद्यतिकरे पुंसां के न नाम निरन्तराः ॥ ५९६ ॥
 स्फुरन्ति तावदैश्वर्यकुसुमप्रकराः पुनः ।
 सर्वसंमार्जनी यावन्नोदेति कलुषा मतिः ॥ ५९७ ॥
 अधुना तनुशेषोऽसि क नु ते ते पदानुगाः ।
 स्वार्जितान्येव कर्माणि प्रैयान्येव सहायताम् ॥ ५९८ ॥
 यन्त्वया मुनयः पाप भक्षिताः क्षणदाचर ।
 तदेवाद्य पुरः सर्वं पातकं तव धावति ॥ ५९९ ॥
 नीचानां दुःसहायानामैश्वर्यक्रूरकर्मणाम् ।
 स्वप्नदृष्टमिवाशेषं प्रयाति स्मृतिशेषताम् ॥ ६०० ॥
 धर्मद्विषः प्रवृद्धस्य दुर्वृत्तस्य प्रमादिनः ।
 ते एते मद्भुजोत्सृष्टा गुरवो गुरवः शराः ॥ ६०१ ॥
 राघवेणेत्यभिहिते खरः क्रोधाकुलोऽवदत् ।
 प्राकृतान्राक्षसान्हत्वा मूर्खं मिथ्या प्रगल्भसे ॥ ६०२ ॥
 अहो मोहादहंकारक्षीबः खलु विकथ्यसे ।
 भवन्ति महतामेव संपदो विपदस्तथा ॥ ६०३ ॥
 अनया गिरिघातिन्या गदया वज्रवेगया ।
 शिरश्चतुरजिह्वस्य तव यातु सहस्रधा ॥ ६०४ ॥
 इत्युक्त्वास्मै गदां घोरां प्राहिणोत्कीर्णपावकाम् ।

१. 'विभूतयः' शा०. २. 'प्रभुः' ख. ३. 'गच्छन्त्यन्ते' ख. ४. 'तवैते,' 'एते ते' इति वा स्यात्

तरवस्तेजसा यस्याः प्रययुर्भस्मशेषताम् ॥ ६०५ ॥
 तामापतन्तीं कणशः काकुत्स्थः सायकैर्व्यधात् ।
 असंभृतां रिपुवधे जयाशामिव रक्षसाम् ॥ ६०६ ॥
 इयं ते प्रत्ययस्थानं मया निर्दारिता गदा ।
 किमन्यद्वलसर्वस्वं यथा दर्प इवाभवत् ॥ ६०७ ॥
 इत्युक्त्वा राघवः क्रूरैः शरैः खरमपूरयत् ।
 खरोऽपि तरुमुन्मूल्य राममेवाद्वक्त्रुधा ॥ ६०८ ॥
 स्रवद्गुधिरपूरस्य तस्य हस्तगतं तरुम् ।
 चकार रामस्तिलशो जयशेषावलम्बनम् ॥ ६०९ ॥
 अथ रक्तवसामोदमत्तोऽथ पिशिताशनः ।
 राममेवाभ्ययाद्वेगाद्राहुः सूर्यमिवोत्कटः ॥ ६१० ॥
 ततो घोरतरं रामः शरं वज्रधरप्रियम् ।
 तं ससर्जोर्जितबलः संक्षयायैव रक्षसः ॥ ६११ ॥
 निर्गन्धस्तेन सहसा निपपात निशाचरः ।
 अकस्मात्प्राप्तविभवो दुर्नयेनैव दुर्जनः ॥ ६१२ ॥
 हते नक्तंचरे तस्मिन्प्रहृष्टाः परमर्षयः ।
 अभ्येत्यापूजयन्रामं सुरसिद्धगणैः सह ॥ ६१३ ॥
 इति खरदूषणवधः ॥ १९ ॥
 ततः शूर्पनखा दृष्ट्वा रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
 कृतमेकेन रामेण घोरं कदनमाहवे ॥ ६१४ ॥
 जगाम रावणं स्मृत्वा लङ्कामातङ्कदूषिता ।
 व्योम्ना महाब्धिसुत्तीर्य शोकामर्षपुरःसरा ॥ ६१५ ॥
 सा प्रविश्य विमानाग्रसंगतं दशकन्धरम् ।
 ददर्श सचिवैः क्रूरैः सेव्यमानं सभातले ॥ ६१६ ॥
 रक्तचन्दनशोणेन लक्षितं पृथुवक्षसा ।
 नीलसंध्यारुणाभेन तटेनेवार्ज्जनाचलम् ॥ ६१७ ॥

शेषभोगानुकारेण हारेण हिमवर्चसा ।
 स्कन्धोल्लासितकैलासनिर्झरेणेव शोभितम् ॥ ६१८ ॥
 स्वर्वधूचामराधूतकिंचित्स्त्रस्तसितांशुकम् ।
 वेलापवनपर्यस्तफेनकूटमिवाम्बुधिम् ॥ ६१९ ॥
 अहंकारस्य महतो वेधसेव विनिर्मितम् ।
 निवासभवनं भूरि भुजस्तम्भविभूषणम् ॥ ६२० ॥
 वभ्रुभ्रूश्मश्रुकिरणप्रदीप्ताननकाननम् ।
 क्षयाभ्रमिव संवर्तदहनोद्गारदारुणम् ॥ ६२१ ॥
 वक्रं स्कन्धान्तरासक्ततमःसंघट्टपाटलैः ।
 स्पष्टदंष्ट्रांशुपटलैः समुद्धाटितदिक्तटम् ॥ ६२२ ॥
 मण्डितं कुण्डलैः कर्णदोलारचितताण्डवैः ।
 कल्पान्तमिव मार्तण्डमण्डलैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ६२३ ॥
 विचित्ररत्नमुकुटैराक्षिपन्तं गिरेः प्रभाम् ।
 तुङ्गशृङ्गवनोत्सङ्गनृत्यच्चित्रशिखण्डिनः ॥ ६२४ ॥
 अभिभूतेन्दुमहसा यशसा त्रिदिवौकसाम् ।
 भयपुञ्जे कृतेनेव च्छत्रव्याजेन सेवितम् ॥ ६२५ ॥
 ग्रस्तलोकेश्वरैश्चर्यैरुन्मूलितसुरोत्सवैः ।
 आसनैरायुधैर्दीप्तं विद्युद्भिरिव तोयदम् ॥ ६२६ ॥
 विधत्ते जययात्रासु यस्य प्रारम्भदुन्दुभिः ।
 त्रस्तप्रियापरिष्वङ्गसंविभागं दिवौकसाम् ॥ ६२७ ॥
 यद्भयान्निभृतं भानुरुदेत्यञ्जस्मितावधि ।
 चरन्ति च शनैर्वल्लीविलासावधयोऽनिलाः ॥ ६२८ ॥
 रणे विमानितारातिर्यशस्त्रैलोक्यपुष्पकम् ।
 यो जहार कुबेरस्य विमानाग्र्यं च पुष्पकम् ॥ ६२९ ॥

१. 'शिखरेणेव' ख. २. 'सेवितम्' ख; शा०. ३. 'विलास' ख. ४. 'विभू-
 षितम्' ख. ५. 'संरक्त' ख.

जयाय सर्वजगतां हुत्वा वहौ शिरांसि यः ।
सुरासुरप्रतापाग्निग्रासशिक्षामिवाकरोत् ॥ ६३० ॥
यत्सैनिककरालूनकल्पपादपपल्लवाः ।
क्रन्दन्तीव भयोद्भ्रान्तैर्भ्रमरैर्नन्दनश्रियः ॥ ६३१ ॥
ऐरावणोऽपि यद्धीत्या भृङ्गानां दानवर्जितः ।
कदर्य इव भृत्यानां यातो निरुपजीव्यताम् ॥ ६३२ ॥
सुन्दरीं सुन्दरी नाम तक्षकस्य प्रियां प्रियाम् ।
यो जहार विषाहारं तं दृष्ट्वा विरहादिव ॥ ६३३ ॥
दृष्ट्वा तमूचे सोच्छ्वासा छिन्ननासा निशाचरी ।
जननी दुर्निमित्तानाममङ्गलकुटुम्बिनी ॥ ६३४ ॥
अहो बत दुरारोहं शृङ्गमासाद्य संपदाम् ।
आसन्नदुःसहापातः प्रसुप्तो न विबुध्यसे ॥ ६३५ ॥
भूपतिं विभवक्षीबमविज्ञातक्षयोदयम् ।
ग्राम्यं विदग्धनारीव न संपद्भजते चिरम् ॥ ६३६ ॥
कार्यकालमतिक्रान्तं सुखासक्तो न वेत्ति यः ।
अक्षयाः संक्षयमुखे हुतास्तेन विभूतयः ॥ ६३७ ॥
दुर्दर्शनं व्यसनिनं त्यजन्ति नृपतिं प्रजाः ।
पतिं वृद्धमिवेर्ष्यालुं कामिन्यो नवयौवनाः ॥ ६३८ ॥
सर्वत्रानुसचारस्य प्रजाकार्याण्यपश्यतः ।
अन्धस्य द्यूतगोष्ठीव स्ववशा श्रीर्न भूपतेः ॥ ६३९ ॥
कवीनां प्रतिभा चक्षुः शास्त्रं चक्षुर्विपश्चिताम् ।
ज्ञानं चक्षुर्महर्षीणां चराश्चक्षुर्महीभृताम् ॥ ६४० ॥
क्लीनो यथा गृहाचारं न वेत्ति गृहिणीजितः ।
राष्ट्रवृत्तिं न जानीते रतिवश्यस्तथा नृपः ॥ ६४१ ॥
अहो बत परां कोटिमारूढोऽसि प्रमादिनः ।
विभवस्तव विभ्रष्टो दीर्यते यशसा सह ॥ ६४२ ॥

कथं नाम न जानीषे घोरं व्यसनमागतम् ।
 आसन्नककचाग्नेण लूनेयं श्रीलता तव ॥ ६४३ ॥
 राक्षसाः खरमुख्यास्ते रामेण रणशालिना ।
 नीताः सर्वे जनस्थाने दयिता बाष्पशेषताम् ॥ ६४४ ॥
 अनुद्योगहतारम्भा यस्येयं प्रभविष्णुता ।
 प्रयान्ति प्रसभं तस्य तेजांसि च यशांसि च ॥ ६४५ ॥
 मदमन्धरसंचारा विलासालसदृष्टयः ।
 दीपा इव न पश्यन्ति नृपाः स्वमपि विग्रहम् ॥ ६४६ ॥
 लोकपालान्समुत्पाद्य प्राप्य त्रैलोक्यधीरताम् ।
 चित्रं हतान्मनुष्येण नानुजान्वेत्ति सानुगः ॥ ६४७ ॥
 अल्पप्रदो बहुक्रोधः कृतवैरो निरुद्यमः ।
 प्राप्नोत्यवज्ञां नृपतिर्वैश्यारागीव निर्धनः ॥ ६४८ ॥
 छिनत्त्येवायसं शस्त्रमद्रव्यं विषयं विषम् ।
 नीचावसानप्रभवो मन्युर्मर्माणि मानिनाम् ॥ ६४९ ॥
 जितक्रोधस्य वीरस्य बन्दीकृतसुरस्त्रियः ।
 तवाप्यभग्नमानस्य मानुषेण पराभवः ॥ ६५० ॥
 लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा रामो दशरथात्मजः ।
 रक्षसां दण्डकारण्ये मन्ये कालः समुत्थितः ॥ ६५१ ॥
 सीता नाम वरारोहा दृष्टा तस्य मया बधूः ।
 सोऽपि यद्वदनेनेन्दुः प्रयातः पुनरुक्तताम् ॥ ६५२ ॥
 सा कान्तिरपरिम्लाना ते गुणा गणनोचिताः ।
 नवं च तद्वपुस्तस्याः स्त्रीणामपि विलोभनम् ॥ ६५३ ॥
 त्वदर्थं हर्तुमिच्छामि यावत्तां चारुलोचनाम् ।
 रामानुजादयं तावन्मया प्राप्तः पराभवः ॥ ६५४ ॥
 इति रावणतर्जनम् ॥ २० ॥
 इति शूर्पनखावाक्यमाकर्ण्य दशकंधरः ।
 भ्रूभङ्गैर्दशभिः कुर्वन्कम्पलोला दिशो दश ॥ ६५५ ॥

कोऽयं रामः कथं रामः किं धर्मः किंपराक्रमः ।
 इति कोपाकुलालापनिर्घोषैः पूरयन्सभाम् ॥ ६९६ ॥
 जन्म कर्म च रामस्य श्रुत्वा स्वप्ना निवेदितम् ।
 विषादामर्षसंघर्षस्वेदार्द्रवदनः श्वसन् ॥ ६९७ ॥
 ध्यात्वा मुहूर्तमाकम्पवक्त्रव्यावर्तिकुण्डलः ।
 विसृज्य सचिवान्सर्वान् रथशालां ययौ स्वयम् ॥ ६९८ ॥
 स तत्र मेघनिर्घोषैः पिशाचवदनैः खरैः ।
 युक्तं समारुह्य रथं क्षणाद्योम व्यगाहत ॥ ६९९ ॥
 स ब्रजन्रोषेदीप्तोऽपि सीतामेव विचिन्तयत् ।
 मृत्युस्थानेऽपि मूर्खाणां करोति मदनः पटम् ॥ ६६० ॥
 रथेन हेमदीप्तेन ब्रजतस्तस्य स्वे वपुः ।
 बभौ कनककूटस्य नीलाद्रेरिव सर्वतः ॥ ६६१ ॥
 स मन्दमारुतान्दोलिचन्दनागुरुपल्लवे ।
 तमालतालहिन्तालश्यामले जलधेस्तटे ॥ ६६२ ॥
 ददर्श दिव्यं न्यग्रोधं सुचन्द्रं नाम विश्रुतम् ।
 शतयोजनदीर्घाभिर्हेमशाखाभिरुज्ज्वलम् ॥ ६६३ ॥
 तस्य शाखाग्रदेशेषु वालखिल्या मरीचिपाः ।
 वैखानसाश्च मुनयश्चरन्ति विपुलं तपः ॥ ६६४ ॥
 अमृताहरणे यस्मिन्नादाय गजकच्छपौ ।
 तार्क्ष्यः कनकशैलाभः शाखायां समुपाविशत् ॥ ६६५ ॥
 चरणाक्रान्तिभग्नां तां शाखां मुनिजनावृताम् ।
 तद्रक्षायै समादाय ययौ व्योम्ना खगेश्वरः ॥ ६६६ ॥
 निषादविषयं हत्वा तया विपुलविग्रहः ।
 गत्वा जहार पीयूषं निर्जितत्रिदिवेश्वरम् ॥ ६६७ ॥
 तं दिव्यं तरुमारुह्य ददर्श दशकंधरः ।
 पारेसमुद्रमुन्निद्रतरुर्म्यं तपोवनम् ॥ ६६८ ॥

१. 'रूपः' शा०. २. 'क्रोध' शा०. ३. 'विचिन्तयन्' शा०. ४. 'नीलाग्रै' शा०.

अचिरात्संस्थितं तत्र कृष्णाजिनजटाधरम् ।
 पुराणसचिवं प्राप मारीचं रजनीचरम् ॥ ६६९ ॥
 पूजितस्तेन विनयात्तमुवाच दशाननः ।
 कुर्वन्गिरिगुहागर्भं गर्जत्पर्जन्यविभ्रमम् ॥ ६७० ॥
 सचिवो धीमतां धुर्यः कार्याणां प्रथमा गतिः ।
 भवानेव सदास्माकं श्रीरक्षापरिखाचलः ॥ ६७१ ॥
 अभग्नप्रणयो नित्यं त्रैलोक्यविजयोत्सवे ।
 त्वद्बुद्धिविभवः पूर्वं पश्चान्मम पराक्रमः ॥ ६७२ ॥
 तुल्यं द्वावेव मे यातौ जगज्जयसहायताम् ।
 मन्त्रश्च मायागम्भीरः खड्गव्यग्रश्च मे भुजः ॥ ६७३ ॥
 ममायं श्रूयतामद्य यदपूर्वं पराभवः ।
 लज्जन्ते यत्कथामात्रे मन्मुखानि परस्परम् ॥ ६७४ ॥
 आतरो मे महाशूरा जन्मस्थाने धृताः पुरा ।
 खरमुख्या हतास्तेऽद्य मनुष्येण पदातिना ॥ ६७५ ॥
 चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ।
 हतानि मम रामेण भगिनी च विरूपिता ॥ ६७६ ॥
 कान्ता तस्यास्ति दयिता सीतानाम सितस्मिता ।
 लावण्यबिन्दवो यस्याः पुपुषुः कमलेन्दवः ॥ ६७७ ॥
 मायामृगतनुं कृत्वा तां पुरो रत्नविग्रहम् ।
 हत्वा सलक्ष्मणं रामं हन्तुमिच्छामि तामहम् ॥ ६७८ ॥
 ततस्तया स रहितः क्रियाहीन इव द्विजः ।
 लुप्तशक्तिर्मम परं सुखच्छेद्यो भविष्यति ॥ ६७९ ॥
 श्रुत्वेति वक्रं मारीचः क्षपाचरपतेर्वचः ।
 तमूचे त्रासशुष्कास्यः कम्पमानः कृताञ्जलिः ॥ ६८० ॥
 बत लङ्कापते कोऽयं जातस्ते मतिविप्लवः ।
 अन्तं यास्यति यो मन्ये विभवस्य कुलस्य च ॥ ६८१ ॥

धूर्ताः प्रियं वदन्त्येव मूर्खाः शृण्वन्ति च प्रियम् ।
 न वदन्ति न शृण्वन्ति सर्वथा साधवोऽप्रियम् ॥ ६८२ ॥
 ऐश्वर्यपद्ममधुपा धूर्ता मधुरवादिनः ।
 विशन्त्येवाशयं राज्ञामवमानपराङ्मुखाः ॥ ६८३ ॥
 धूर्तानां मधुरा वाणी मधुरा वल्लभा यथा ।
 न तथेन्दुर्न मदिरा न मृगाक्षी न वल्लकी ॥ ६८४ ॥
 हितोपदेशविद्वेषकलुषाभिमुखी मतिः ।
 जनस्य जायते जातु विनाशायोद्यते विधौ ॥ ६८५ ॥
 अकार्यप्रणयी घोरो राज्ञां प्रायेण दुर्नयः ।
 महतो राज्यवृक्षस्य मूलघाती परश्वधः ॥ ६८६ ॥
 देहिनां नूतमासन्ने दुःसहव्यसनानले ।
 प्रथमं मोहधूमेन मलिनीक्रियते मतिः ॥ ६८७ ॥
 समदप्रमदापाङ्गभङ्गभङ्गुरविभ्रमाः ।
 सत्यं विभूतयो राज्ञां मतिमोहपिशाचिकाः ॥ ६८८ ॥
 म्लायन्ति क्षिप्रभोगेन निःसारविरसान्तराः ।
 वेश्या चित्रद्युतिर्माला श्रीश्च दूरमनोहरा ॥ ६८९ ॥
 कष्टं केनोपदिष्टस्ते दुःसहो मोहविभ्रमः ।
 घोरस्ते संपदां योऽयं क्षयहेतुरिवोत्थितः ॥ ६९० ॥
 अहो बत न जानीषे रामस्याद्भुतकर्मणः ।
 चारहीनः प्रमादी च यशस्त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ६९१ ॥
 विश्वामित्रमखत्राणे स शरं प्राहिणोन्मयि ।
 क्षित्तोऽहं जलधेः पारे यत्पक्षपवनैः क्षणात् ॥ ६९२ ॥
 कथं नु दयितां तस्य सीतामग्निशिखामिव ।
 शिशुदंष्ट्रामिव हरेर्मोहादादातुमिच्छसि ॥ ६९३ ॥
 चूडामणिमिवादाय शिरसा शासनं पितुः ।
 चरत्यरण्ये काकुत्स्थः क्षपयन्घोरराक्षसान् ॥ ६९४ ॥

दुरन्तमृत्युचरणे मैथिलीहरणे मया ।
 नवातङ्कहतां लङ्कां विधवामिव मा कृथाः ॥ ६९९ ॥
 ये मदत्यक्तमर्यादा न शृण्वन्ति हितं वचः ।
 तेषां मृत्युं प्रयातानां न पुनः संगमः श्रिया ॥ ६९९ ॥
 मुनिमांसाशनक्रूरो राक्षसाभ्यामहं सह ।
 कदाचिद्दण्डकारण्ये संप्राप्तो राघवाश्रमम् ॥ ६९७ ॥
 स मां सानुगमालोक्य मुनिरक्षाकृतक्षणः ।
 धनुराकृष्य दीप्ताग्रां प्राहिणोत्सायकत्रयीम् ॥ ६९८ ॥
 त्रस्तो जवादहं मुक्तस्तौ तु रात्रिचरौ हतौ ।
 आयुःशेषे कृतान्तोऽपि नूनं याति वयस्यताम् ॥ ६९९ ॥
 ततः प्रभृति संन्यस्तशस्त्रोऽयं त्यक्तकिल्बिषः ।
 त्रासात्तापसतां यातो वैराग्यं रक्षसां कुतः ॥ ७०० ॥
 तपोवनेऽस्मिन्पश्यामि सजटावल्कलान्भयात् ।
 वृक्षानपि पृथुस्कन्धान्राघवान्सशिलीमुखान् ॥ ७०१ ॥
 दिवि दिक्षु क्षितौ स्वप्ने सजने विजने पुनः ।
 सत्यं रामसहस्राणि भयात्पश्यामि तन्मयः ॥ ७०२ ॥
 राज्यं रात्रिश्च रामा च रागो राजाथ राशयः ।
 रामनौमाङ्गवर्णाङ्गास्त्रासं संजनयन्ति मे ॥ ७०३ ॥
 त्याज्या यदि न ते लक्ष्मीर्जीवितं यदि बलभम् ।
 तन्मुञ्च रामवैरेच्छां प्रमाणं यदि मद्ब्रुवः ॥ ७०४ ॥
 इति नीतिमतः पथ्यं मारीचस्येति तद्ब्रुवः ।
 श्रुत्वा बभाषे लङ्केशः किञ्चिदागतविक्रियः ॥ ७०५ ॥
 अहो बतातिवीरस्य तवाप्यसदृशं वचः ।
 श्रूयते कालजीर्णं वा सर्वमेव विपर्ययात् ॥ ७०६ ॥
 प्रतिपक्षपदे मर्त्यस्तत्रापि नयचिन्तनम् ।
 किं किं लज्जार्हमस्माभिः सीतालोभेन न श्रुतम् ॥ ७०७ ॥

१. 'तेषामुष्णीसहासिन्या' ख; 'तेषामुत्रस्य यातानां' शा०. २. 'नामाद्यवर्णा' ख

अधुनैवंविधं वृद्ध न वक्तव्यं त्वया वचः ।
 कर्तव्यमेव तु पुनर्भक्तियोगान्मथेप्सितम् ॥ ७०८ ॥
 यदि रामशरापातसंपाताद्भयमीक्षसे ।
 प्रियं कार्यमकृत्वा मे जीविताशापि ते कुतः ॥ ७०९ ॥
 तस्मात्कुरुष्वभिमतं मम प्रणयिनो' विभोः ।
 स्वामिसंमानपाथेयं धर्म्यं च निधनं सताम् ॥ ७१० ॥
 श्रुत्वेति दशकण्ठस्य मारीचः कठिनं वचः ।
 उवाच निःश्वसन्ध्यात्वा दैवस्याज्ञामकुण्ठिताम् ॥ ७११ ॥
 अहो वत दुरन्तोऽयं दुःसहस्तव दुर्ग्रहः ।
 यः शमं यास्यति व्यक्तं सहैश्वर्यसुखादिभिः ॥ ७१२ ॥
 प्रत्यासन्नविनाशानां हितविद्वेषकारिणाम् ।
 आतुराणामिवापथ्ये प्रायेणाभ्यधिका रुचिः ॥ ७१३ ॥
 स्वच्छन्दकारिणो धातुः शासनाभ्यायवर्त्मनः ।
 अष्टं कः क्षमते धर्तुं श्वभ्रादिव महागजम् ॥ ७१४ ॥
 सुचिराद्भूत शत्रूणां फलितस्ते मनोरथः ।
 ऐश्वर्यतुङ्गशृङ्गाग्रात्स्वयं निपतितोऽसि यत् ॥ ७१५ ॥
 रामोऽभिरामचरितो विरामः शत्रुसंपदाम् ।
 गुणारामः कथं नाम चरामस्तस्य विप्रियम् ॥ ७१६ ॥
 मोहादहृदयस्यान्तर्यत्नन्यस्तं हितामृतम् ।
 न राहोरिव निःशेषं मुहूर्तमपि तिष्ठति ॥ ७१७ ॥
 तस्मात्प्राणपणेनाद्य करोम्यभिमतं तव ।
 प्रत्युपस्थितनाशानां नाशायैव हि संगमः ॥ ७१८ ॥
 इतो रघुपतेर्वाणस्त्वमितो मृत्युचोदितः ।
 किं करोमि त्वदर्थं मेऽवरं रामाद्वधो वरः ॥ ७१९ ॥
 शृणु चेदं समुत्पाद्य वैरं रामेण धन्विना ।
 त्रिदिवे भुवि पाताले न ते स्थानं भविष्यति ॥ ७२० ॥

करोमीति वचः श्रुत्वा मारीचस्य दशाननः ।
 शतकर्ण इव क्षिप्रं कुम्भकर्णाग्रजोऽभवत् ॥ ७२१ ॥
 इति मारीचवाक्यम् ॥ २१ ॥
 ततः स्यन्दनमारोप्य मारीचं राक्षसेश्वरः ।
 निजव्यसनविस्तीर्णं विवेश विवशो वनम् ॥ ७२२ ॥
 दण्डकारण्यमासाद्य तालतालीनिरन्तरम् ।
 पुंनगबकुलाशोककर्णिकारवनोज्ज्वलम् ॥ ७२३ ॥
 निषण्णनिर्भयमृगाकीर्णकान्ततपोवनम् ।
 फुलवल्लीवितानाग्रगुञ्जन्मञ्जुकपिञ्जलम् ॥ ७२४ ॥
 निर्यन्निर्झरझाङ्कारश्रुतिमन्थरकुञ्जरम् ।
 संसर्पत्फेनपटलीदुकूलधवलापगम् ॥ ७२५ ॥
 संचरद्विव्यललनाचरणाङ्कितसैकतम् ।
 मुनिकन्यावलिन्यग्रपुष्पनीवारपल्लवम् ॥ ७२६ ॥
 वराहमहिषश्यामं समेधौघमिवाम्बरम् ।
 साट्टहासमिव स्फारिस्फुरत्केसरिकेसरम् ॥ ७२७ ॥
 जटालमिव संचारिचमरीचारुचामरम् ।
 बहुनेत्रमिवालोशिशखण्डिकृतताण्डवम् ॥ ७२८ ॥
 सरोमाञ्चमिवोदञ्चन्नवशष्पमुखाङ्कुरम् ।
 जातस्वेदमिवोन्मीलदवश्यायपयःकणम् ॥ ७२९ ॥
 सनिःश्वासमिव स्फूर्जत्कुसुमामोदमारुतम् ।
 साकम्पमिव सावेगविहङ्गाघूर्णितद्रुमम् ॥ ७३० ॥
 प्रहृष्टमिव सूर्याशुविकसन्नलिनीवनम् ।
 नवोन्मादमिवोत्तुङ्गप्लवङ्गवलयकुलम् ॥ ७३१ ॥
 उद्वीक्ष्य कुसुमोद्धूतरेणुश्रावरणं वनम् ।
 ऊचे क्षपाचरपतिः मारीचं प्रणयानतः ॥ ७३२ ॥
 अयं स सीताललितालोकनामृतनिर्झरः ।
 धाम कामस्य मारीच रुचिरो राघवाश्रमः ॥ ७३३ ॥

भिन्नेन्द्रनीलसच्छायनिविडैः कदलीवनैः ।
 विभालेषा शुक्रश्यामकञ्चुकीवाश्रमस्थली ॥ ७३४ ॥
 अत्र सा मन्मथमही मैथिली पृथुलोचना ।
 व्यक्तं वसति वैलक्ष्यकारिणी हारिणी दृशाम् ॥ ७३५ ॥
 अन्तर्हितो भवन्क्षिप्रं सिद्ध्यै मायामहोदधेः ।
 इत्युक्तो दशकण्ठेन मारीचः प्रययौ पुरः ॥ ७३६ ॥
 सोऽभवद्रत्नहरिणः कचस्काञ्चनमौक्तिकः ।
 समस्तकौतुकवासो रसो मूर्त इवाद्भुतः ॥ ७३७ ॥
 प्रवालशृङ्गो रत्नाभः स बभौ मौक्तिकाङ्कितः ।
 सफेनमणिकल्लोलः संचारीव महोदधिः ॥ ७३८ ॥
 रत्नान्युच्चित्य विहितः सजीवो रावणाज्ञया ।
 हस्तोपायनसारङ्ग इव रोहिणभूभृताम् ॥ ७३९ ॥
 गर्भवासे सुधाम्भोधौ संक्रान्तमणिमौक्तिकः ।
 च्युतोऽङ्कादिव चन्द्रस्य दशग्रीवभयान्मृगः ॥ ७४० ॥
 चतुरश्वारुसंचारी संचरन्नाश्रमे पुनः ।
 ययौ सितासिताताम्रो वनलक्ष्मीकटाक्षताम् ॥ ७४१ ॥
 कुसुमावचयासक्ता मैथिली तं व्यलोकयत् ।
 संसारवैचित्र्यकृतो विधातुरिव वर्णकम् ॥ ७४२ ॥
 निर्वर्ण्य तमभूत्सीता क्षिप्रमाश्चर्यनिश्चला ।
 वस्तु सातिशयं कस्य न मुष्णाति हठान्मनः ॥ ७४३ ॥
 विस्मिता राममभ्येत्य सा बभाषे सितस्मिता ।
 हसन्ती पुष्पवल्लीनां भृङ्गान्वदनसौरभैः ॥ ७४४ ॥
 आर्यपुत्र विचित्रोऽयं कनकाङ्गः कुरङ्गकः ।
 करोति नयनानन्दं मणिमद्भिन्दुसुन्दरः ॥ ७४५ ॥
 आस्तीर्णमासनं कान्तमस्य चित्रेण चर्मणा ।
 उचितं त्वत्सनाथायाः शयनं च ममेप्सितम् ॥ ७४६ ॥

इति सीतावचः श्रुत्वा दृष्ट्वा हेममयं मृगम् ।
 उवाच रामः सौमित्रिं स्मितधौताधरद्युतिः ॥ ७४७ ॥
 पश्य लक्ष्मण चित्राङ्गः सारङ्गो रत्नभूतिभिः ।
 करोति त्वचि लुब्धाया जानक्याः कौतुकोत्सवम् ॥ ७४८ ॥
 जृम्भमाणस्य पश्यास्य पद्मरागमयीमिव ।
 जिह्वां दशनमुक्तालीमैध्यनायकतां गताम् ॥ ७४९ ॥
 चतुर्भिर्विद्रुममयैः शृङ्गैः कुटिलकोटिभिः ।
 कीर्णांशुभिः करोत्येष दिशः पल्लविता इव ॥ ७५० ॥
 एषोऽहमस्य पदवीं ब्रजाम्याकृष्टकार्मुकः ।
 भवता त्वप्रमत्तेन रक्षया जनकनन्दिनी ॥ ७५१ ॥
 इत्युक्त्वा चापमाकृष्य रामः सारङ्गमाद्रवत् ।
 तूर्णं ब्रजन्तं वेगेन मनोरथमिवात्मनः ॥ ७५२ ॥
 इति मृगदर्शनम् ॥ २२

क दृष्टो हेमहरिणः का स्पृहा तस्य चर्मणि ।
 प्रायेणादीयते मोहः कर्मणा महतामपि ॥ ७५३ ॥
 कचिदन्तर्हितं क्षिप्रं कचित्प्रकटविग्रहः ।
 मेघपुञ्जावृते व्योम्नि शशीव स ययौ मृगः ॥ ७५४ ॥
 जगाम रामस्तेनाशु कृष्टो विस्मयकारिणा ।
 चित्रमायाप्रसङ्गेन संसारेणेव सक्तधीः ॥ ७५५ ॥
 तस्मै मुमोच काकुत्स्थः सायकं ब्रह्मनिर्मितम् ।
 प्राग्भिन्नहृदयो येन मृगोऽभूत्क्षणदाचरः ॥ ७५६ ॥
 तालमात्रं समुत्प्लुत्य स पपात शराहतः ।
 दंष्ट्राकरालवक्त्राग्रनिर्यद्रुधिरनिर्झरः ॥ ७५७ ॥
 मायया स समालम्ब्य रामस्य सदृशं स्वरम् ।
 हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति चुक्रोश करुणस्वरम् ॥ ७५८ ॥

आतुराक्रन्दनं श्रुत्वा लक्ष्मणो नूनमेष्यति ।
 रावणस्तद्विरहितामवाप्स्यति स मैथिलीम् ॥ ७६९ ॥
 इति ध्यात्वा विनद्योच्चैर्लक्ष्मणेत्याकुलेन्द्रियः ।
 प्राणौस्तत्याज मारीचो न च भक्तिं निजप्रभोः ॥ ७६० ॥
 इति मारीचवधः ॥ २३

रामस्तं निहतं दृष्ट्वा निशाचरमशङ्कत ।
 पूर्वं कथयति प्रायो मनः पुंसः शुभाशुभम् ॥ ७६१ ॥
 अदूरान्मैथिली श्रुत्वा पत्युरार्तस्वरं सती ।
 रक्षःपराभवत्रस्ता तूर्णं लक्ष्मणमभ्यधात् ॥ ७६२ ॥
 गच्छ जानीहि सौमित्रे मित्रं आतरमागतम् ।
 रक्षसां बहुमायानां वीरं निपतितं मुखे ॥ ७६३ ॥
 स ते गुरुः सखा बन्धुः प्रियाः प्राणा बहिश्चराः ।
 अरण्ये निःसहायोऽस्मिन्नाहृत्यरिपराभवम् ॥ ७६४ ॥
 वचः श्रुत्वेति जानक्याः सौमित्रिर्वैर्यसागरः ।
 तामूचे मा कृथाः शङ्कां मिथ्यैवार्यपराक्रमे ॥ ७६५ ॥
 रणेष्वभिमुखस्तस्य न जातोऽद्यापि किं तु ते ।
 ललनासुलभं स्नेहवैक्लव्यं जृम्भतेतराम् ॥ ७६६ ॥
 नूनं रामं न जानीषे भर्तुर्विक्रममूर्जितम् ।
 त्रायस्वेति कथं आतुस्तस्य वक्त्रे वचः स्फुरेत् ॥ ७६७ ॥
 ब्रजामि कथमार्येण कृष्णसारानुकारिणा ।
 धृतोऽहं तव रक्षायै राक्षसा हि बहुच्छलाः ॥ ७६८ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते निशम्य जनकात्मजा ।
 ऊचे त्रासाद्धि दैत्यानां कोपस्य च वशं गता ॥ ७६९ ॥
 अभग्नविक्रमस्यापि निश्चितौ न जयाजयौ ।
 निगीर्णः किं न वृत्रेण देवो वज्रधरः पुरा ॥ ७७० ॥
 आतुराक्रन्दनं श्रुत्वा कथं निःसंभ्रमो भवान् ।

आतरः शत्रवो नूनं पुंसामेकार्थभागिनः ॥ ७७१ ॥
 स्वजनाद्भयमस्तीति तत्त्वज्ञाः सत्यमूचिरे ।
 क्षयक्षणेपु जागर्ति न विज्ञातान्तरः परः ॥ ७७२ ॥
 क एवं नाम जानीते मिथ्याप्रणययन्त्रितः ।
 यद्भातापि प्रियो आतुर्विनिपातं प्रतीक्षते ॥ ७७३ ॥
 व्यक्तं स्फुरति ते कापि पापादनुचिता मतिः ।
 जानन्नपि न जानीषे येन मां भर्तृजीविताम् ॥ ७७४ ॥
 श्रुत्वेति सीतावक्त्रेन्दोः कलङ्कमिव वाच्यताम् ।
 भीतो बभूव सौमित्रिर्वज्रेणेव विदारितः ॥ ७७५ ॥
 सोऽब्रवीत्प्राञ्जलिः सीतां मातस्त्वं दैवतं मम ।
 न युक्तमुत्सहे वक्तुं वाग्बाणनिहतस्त्वया ॥ ७७६ ॥
 दृढग्रहा अप्यबलाः पेशलाः कुटिलाशयाः ।
 मित्रभ्रातृविभेदिन्यः सर्वथा कुटिलाः स्त्रियः ॥ ७७७ ॥
 गुणा जनापवादान्ताः दुष्पुत्रान्ताः कुलस्त्रियः ।
 स्त्रीभेदान्ताः सुहृत्स्नेहा दुर्नयान्ताश्च संपदः ॥ ७७८ ॥
 मातस्त्वया दुरुक्तेऽस्मिन्साक्षिणो हि वनेचराः ।
 ब्रजामि राघवं द्रष्टुं पान्तु त्वां वनदेवताः ॥ ७७९ ॥
 इत्युक्त्वा विमनास्तूर्णं परिम्लानाननः श्वसन् ।
 जगाम रामपदवीं लक्ष्मणः क्षमां विलोकयन् ॥ ७८० ॥
 इति लक्ष्मणप्रयाणम् ॥ २४ ॥
 अत्रान्तरे दशग्रीवे प्रविष्टे काननं स्वयम् ।
 भयाच्चकम्पिरे वृक्षाः प्रययौ न च मारुतः ॥ ७८१ ॥
 त्वङ्गतुङ्गततरङ्गाग्रभङ्गिन्योऽपि शनैः शनैः ।
 तरङ्गिण्यो ययुर्भीत्या मूकसारसनूपुराः ॥ ७८२ ॥
 ततः पिधाय विपुलं विग्रहं दशकंधरः ।
 भिक्षुरूपोऽभवद्बृद्धः स्नायुशेषतनुः श्वसन् ॥ ७८३ ॥

मुण्डः कमण्डलुच्छत्रदण्डाङ्कः श्रमकम्पितः ।
 योगीव ध्यानलोलाक्षः सीतामन्तर्विचिन्तयन् ॥ ७८४ ॥
 भुजङ्ग इव संछन्नः कुटिलस्तृणपल्लवैः ।
 ददर्शाम्येत्य वैदेहीं राहुः शशिकलामिव ॥ ७८५ ॥
 आसीनां पर्णशालाग्रे पीतकौशीयकांशुकाम् ।
 लतामिवानिलोदञ्चत्पुष्पकिञ्जल्कपिञ्जराम् ॥ ७८६ ॥
 तामुत्फुल्लपलाशाक्षीं संवीक्ष्य नलिनाननाम् ।
 जगाम कामस्य वशं वशीकृतजगत्रयः ॥ ७८७ ॥
 लुलितां व्याजभीत्येव सकम्पविकलाक्षराम् ।
 प्रत्यग्रमदनाकारो गद्गदां गिरमादधे ॥ ७८८ ॥
 शृङ्गारशिक्षाकरिणी हरिणी हारिलोचना ।
 का त्वं लावण्यनलिनी मलिनीकृतचन्द्रिका ॥ ७८९ ॥
 इमौ ते कुरुतः कान्तिं करौ कमलकोमलौ ।
 तारुण्यपारिजातस्य नवपल्लवविभ्रमम् ॥ ७९० ॥
 इयं ते कान्तितटिनी हारफेनावली सिता ।
 चक्रवाकयुगेनेव स्तनद्वन्द्वेन भूषिता ॥ ७९१ ॥
 क्षयक्षीणस्य शशिनो दग्धस्य च मनोभुवः ।
 धात्रा त्वं निर्मिता सुभ्रु कच्चित्संजीवनौषधिः ॥ ७९२ ॥
 रक्ताधरदलं नेत्रभ्रमरं सितकेसरम् ।
 इदं ते भाति कान्तिश्रीनिवासकमलं मुखम् ॥ ७९३ ॥
 नेदमप्सरसां रूपं गन्धर्वीणां कथैव का ।
 दूरे विद्याधरस्त्रीणां कासि कस्य कुतोऽथ वा ॥ ७९४ ॥
 अस्मिन्धोरतरव्यालरक्षःपक्षिगणे वने ।
 कथमेकैव वससि सस्तेवेन्दुद्युतिर्दिवः ॥ ७९५ ॥
 गेहे त्रैलोक्यजयिनामिदमर्हति ते वपुः ।
 उत्तुङ्गरत्नहर्म्याग्रशृङ्गोत्तुङ्गावतंसकम् ॥ ७९६ ॥

इति क्षपाचरपतेः श्रुत्वा जनकनन्दिनी ।
 चकारातिथ्यसत्कारं निर्व्याजमुनिगौरवात् ॥ ७९७ ॥
 तस्मै निजकुलं रामवृत्तान्तं च निवेद्य सा ।
 मद्भर्तुर्लप्स्यसे पूजां प्रतीक्षस्वेत्युवाच तम् ॥ ७९८ ॥
 स सीतावचनं श्रुत्वा प्रसह्य हरणोत्सुकः ।
 तामूचे दन्तकिरणैर्दंष्ट्रां प्रकटयन्निव ॥ ७९९ ॥
 अहं स विश्वविजयी वसतिः सर्वसंपदाम् ।
 द्रावणखिदशेन्द्रस्य रावणो लोकरावणः ॥ ८०० ॥
 हेमप्रकारजघना सरिन्नाथोर्मिमेखला ।
 रत्नांशुकवती लङ्का निःशङ्कायतनं मम ॥ ८०१ ॥
 अविश्रान्तोत्सवा सा श्रीस्ते भोगाश्चावियोगिनः ।
 त्वत्संगमेन मे यान्तु त्रैलोक्यस्पृहणीयताम् ॥ ८०२ ॥
 भ्रातुर्वैश्रवणस्यापि विमानं मानिनो मया ।
 अग्र्यमैश्वर्यवृक्षस्य पुष्पकं पुष्पकं हृतम् ॥ ८०३ ॥
 सुरैस्त्रैलोक्यं तृणं मन्ये न धीर्बिद्याधरीषु मे ।
 शोचामि सुभ्रु वीक्ष्य त्वामन्यस्त्रीक्षपितं व्रजः ॥ ८०४ ॥
 धिक्पुखं त्वद्विहीनानां का विभूतिस्त्वया विना ।
 अकाम एव कामोऽसौ यस्य त्वं नावलम्बनम् ॥ ८०५ ॥
 प्रसादः क्रियते सुभ्रु विहारस्तव रोचताम् ।
 मया सह विशालाक्षि लङ्कोपवनभूमिषु ॥ ८०६ ॥
 यत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते सुरगन्धर्वकिनराः ।
 प्रणयी ते जनः सोऽयं स्वदारेषु निरादरः ॥ ८०७ ॥
 श्रुत्वैतत्कोपसंतप्ता वज्रपातोपमं वचः ।
 जगाद जानकी रूक्षं सती मानेन निर्भया ॥ ८०८ ॥
 अहो बतातिविषमं विषं पातुं समीहसे ।
 यस्यामोदेन समदः सानुगो न भविष्यसि ॥ ८०९ ॥

गुणरत्नसुधाम्भोधिर्नयनानन्दवान्धवः ।
 औचित्यस्योचितं धाम श्यामः कमललोचनः ॥ ८१० ॥
 विश्वरक्षामणिर्वीरः पतिर्मे धन्विनां वरः ।
 प्रांशुः प्राज्यभुजस्तम्भस्तम्भितारिमनोरथः ॥ ८११ ॥
 भगीरथ इवानल्पसर्पत्कीर्तिसुरापगः ।
 यस्याग्रे न प्रकाशन्ते तेजांसि च तपांसि च ॥ ८१२ ॥
 प्रतापधाम्नस्तस्याहं रामस्य सहचारिणी ।
 प्रभेव भास्वतो नित्यं निशाचरकुलाशनेः ॥ ८१३ ॥
 तां स्पृष्टुमिच्छसि कथं मोहान्मां त्यक्तजीवितः ।
 जिह्वामिव गजारातेर्जृम्भमाणस्य जम्बुकः ॥ ८१४ ॥
 मोहोऽयं ते निपातो वा विपाकः कुकृतस्य वा ।
 ऐश्वर्यं कुलमात्मानं यत्स्वयं हन्तुमिच्छसि ॥ ८१५ ॥
 आसन्नदुःसहापातान्वत्तो व्यक्तं क्षपाचर ।
 संपन्मूलहताद्रृक्षाद्विहंगालीव विद्रुता ॥ ८१६ ॥
 रामस्य विप्रिये कस्त्वं मत्तेभस्येव गर्दभः ।
 शार्दूलस्येव शशकः सुपर्णस्येव वायसः ॥ ८१७ ॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा सकोपो राक्षसेश्वरः ।
 ऊचे कन्दर्पकारुण्यात्कूरोऽपि मधुराक्षरम् ॥ ८१८ ॥
 न मामर्हसि लोलाक्षि प्रत्याख्यातुं शुचिस्मिते ।
 यस्याज्ञा त्रिदशाधीशशिखाशेखरशालिनी ॥ ८१९ ॥
 अस्मिन्ममाननवने रुषा भ्रूभङ्गसंगते ।
 निपतन्ति विमानेभ्यः स्रस्तायुधधराः सुराः ॥ ८२० ॥
 नोष्णांशुस्तापमादत्ते मद्भयाद्भीरुमारुताः ।
 नोद्धतं परिसर्पन्ति विनीताः सेवका इव ॥ ८२१ ॥
 अस्तु त्रैलोक्यलक्ष्मीस्ते सपत्नी मत्परिग्रहात् ।
 त्वत्संगमसुधासिक्ता भवन्तु मम संपदः ॥ ८२२ ॥

अल्पायुषा मनुष्येण किं रामेण हतौजसा ।
 तं कञ्चुकं भुजंगीव त्यज दिव्योपभोगिनी ॥ ८२३ ॥
 श्रुत्वा तत्क्रोपताग्राक्षी कम्पिता जनकात्मजा ।
 आज्यप्रज्वलितेवाग्नेः शिखा प्रोवाच रावणम् ॥ ८२४ ॥
 विनष्टाः सर्वथा सर्वे वराकाः क्षणदाचराः ।
 येषां परोक्षे त्वद्दोषाद्विनाशोऽयमुपस्थितः ॥ ८२५ ॥
 धिगेतां गर्हितां लोके दुराचारानुजीविताम् ।
 यया सुप्ताः क्षयं यान्ति निर्दोषा अपि सेवकाः ॥ ८२६ ॥
 विमुञ्च परदारेच्छां मा गमः प्रलयं मुधा ।
 रामदर्शनपर्यन्तं जीवितं किं न शोचसि ॥ ८२७ ॥
 याते चापप्रणयितामार्थसूनोर्भुजद्रुमे ।
 पाप प्रयास्यसि क्षिप्रं दुर्नयख्यातिशेषताम् ॥ ८२८ ॥
 क्षणाद्विक्षु निरुद्धासु रामचापच्युतैः शरैः ।
 मातुरप्युदरे नूनं न ते स्थानं भविष्यति ॥ ८२९ ॥
 विद्युद्विलासिनां व्योम्नि दिगन्तव्यापिनां भुवि ।
 सर्वथा रामबाणानां पातालेऽप्यहता गतिः ॥ ८३० ॥
 करिष्यत्युपदेशं ते मृत्योर्भ्रूभङ्गभङ्गुरा ।
 चापवल्ली रघुपतेस्त्रैलोक्योत्सेकतर्जनी ॥ ८३१ ॥
 अभेद्यतां वक्षसस्ते कुलिशोल्लेखलक्ष्मणः ।
 करिष्यन्ति हैतां घोरा राघवस्य शराः खराः ॥ ८३२ ॥
 करपत्रशिलापाकवज्रकण्टकसंकटैः ।
 अवश्यमुत्खाततनू रामबाणैः प्रतुष्यसि ॥ ८३३ ॥
 इत्युक्तः परुषं रामपत्न्या नक्तंचरेश्वरः ।
 निष्पिष्य पाणिना पाणिं घोरं स्वं वपुराददे ॥ ८३४ ॥
 सोऽभूत्रिदशसंनाशकारिवक्रवनोत्कटः ।
 स्पष्टदंष्ट्रावटाट्टालघटाघटितदिक्तटः ॥ ८३५ ॥

शुभ्राभ्रविभ्रमास्तस्य ययुर्दृष्टांशुसंचयाः ।
 व्योमाब्धिमध्यविस्फारफेनकूटाट्टहासताम् ॥ ८३६ ॥
 मिथःसंघट्टसंजातस्फुलिङ्गा कुण्डलावली ।
 बभौ तस्यार्कमालेव कल्पान्तोत्काग्निवार्धिनी ॥ ८३७ ॥
 रक्तमाल्याम्बरधरः प्रदीप्तविविधायुधः ।
 सोऽभूद्वावानलालोलः ससंध्याभ्र इवाचलः ॥ ८३८ ॥
 तुषारतारस्तस्योच्चैः स्फटिकस्यन्दनिर्झरः ।
 बभार हारः करकावृष्टिशोभां घनाकृतेः ॥ ८३९ ॥
 उद्ययुर्भूरिकेयूरकान्तिकन्दलिनो भुजाः ।
 अहंपूर्विकयेवास्य जानकीहरणोत्सुकाः ॥ ८४० ॥
 सोऽब्रवीत्क्षुभिताम्भोधिघोरनिर्घोषभीषणम् ।
 दोलालीलामिव मुहुर्भूभङ्गैरादिशन्दिशाम् ॥ ८४१ ॥
 मूढे हितं न जानीषे तत्त्वेनाभिहितं मया ।
 असत्यप्रणयाः सत्यशङ्किन्यः सर्वथा स्त्रियः ॥ ८४२ ॥
 पश्य भ्रूक्षेपमात्रेण विश्वविप्लवकारिणा ।
 स्वर्गं करोमि पाताले पातालं वा सुरालये ॥ ८४३ ॥
 भजस्व जितमृत्युं मां त्यज मर्त्यं क्षणायुषम् ।
 क्लीबस्तत्याज राज्यं यः स्त्रीवाक्येन विनष्टधीः ॥ ८४४ ॥
 नद्यो निम्नानुसारिण्यः कदर्याभिरताः श्रियः ।
 नार्यो नीचानुरागिण्यो धूर्ताधीनाश्च बुद्धयः ॥ ८४५ ॥
 प्रायः प्रीतिर्विरूपेषु निर्गुणेष्वधमेषु च ।
 बालानामवलानां च नित्याभ्यासेन जायते ॥ ८४६ ॥
 सान्त्वितप्यप्रियं ब्रूषे प्रणयं नाभिमन्यसे ।
 दर्पात्परिभवन्त्येव योषितो हृदि लालिताः ॥ ८४७ ॥
 एष स्वयं प्रसह्य त्वां हराम्यधमरागिणीम् ।
 सुखभोग्याः स्त्रियः सत्यमाक्रम्यैव वशीकृताः ॥ ८४८ ॥

अतोऽन्यदुत्सहे वक्तुं घोरमप्रियवादिनि ।
 किं करोम्यतिदुर्वृत्तं मनो मममिदं त्वयि ॥ ८४९ ॥
 इत्युक्त्वा तां स जग्राह क्रोधान्धो राक्षसाधिपः ।
 उर्वोः केशेषु चाकृष्य करेण कदलीमिव ॥ ८५० ॥
 तं दृष्ट्वाञ्जनशैलाभं हरन्तं जानकीं बलात् ।
 दंष्ट्राकरालं सत्रासं दुद्रुवुर्वनदेवताः ॥ ८५१ ॥
 तस्यादृश्यत निर्घोषघोरः काञ्चनपिङ्गलः ।
 खरयुक्तो रथः स्फूर्जेद्विद्युद्दीप्त इवाम्बुदः ॥ ८५२ ॥
 स वैदेहीं समादाय स्यन्दनेन पताकिना ।
 खं विवेश भयोद्भ्रान्तां स्वर्नदीं दर्शयन्निव ॥ ८५३ ॥
 गृहीता तेन सा तन्वी बभौ तालवनत्विषा ।
 अकालकालमेधेन प्राचीव शशिनः कला ॥ ८५४ ॥
 सा श्वभ्रपतितेवोग्रभयमीलितलोचना ।
 किमेतदिति नाज्ञासीत्क्षणं मोहहतेव धीः ॥ ८५५ ॥
 कृच्छ्रेण संज्ञामासाद्य करुणं विललाप सा ।
 उद्वीवैराश्रममृगैः साश्रुमालोकिता मुहुः ॥ ८५६ ॥
 हा लक्ष्मण विमूढाहं भ्रातुस्ते दयिता सती ।
 हता त्वद्वाक्यविमुखी रक्षसा धीमतां वर ॥ ८५७ ॥
 हा नाथ ह्रियमाणां मां राक्षसेन बलीयसा ।
 त्रैलोक्यरक्षासंनद्ध प्रियां कथमुपेक्षसे ॥ ८५८ ॥
 स्वस्त्यस्तु वः कर्णिकारचूतपल्लवकेसराः ।
 रक्षसा रामरहिता हताहमब्रला बलात् ॥ ८५९ ॥
 गोदावरि नमामि त्वां गिरीणामयमञ्जलिः ।
 सर्वे शंसत रामाय रक्षसा बल्लभा हता ॥ ८६० ॥
 सत्त्वेभ्यश्च मुनिभ्यश्च नमः कीर्तिः प्रयातु वः ।
 परित्रस्तजनत्राणपवित्रकथनप्रथाम् ॥ ८६१ ॥

१. 'राक्षसेन हतां प्रियाम्' ख.

श्रुत्वैतन्नोचिरे किञ्चित्सत्रासास्त्रिदशा अपि ।

को रावणोऽग्रदहने स्वयं पतितुमीश्वरः ॥ ८६२ ॥

इति सीतापहरणम् ॥ २९

तस्याः क्रन्दितमाकर्ण्य जटायुर्गृध्रभूपतिः ।

उवाच रावणं दूरात्पादपे महति स्थितः ॥ ८६३ ॥

जनापवादकलिले पौलस्त्यकुलमुन्नतम् ।

अहो नु पातकश्चभ्रे पातितो भवता स्वयम् ॥ ८६४ ॥

लोभः परवधूवाञ्छा नृशंसत्वमसत्यता ।

शुद्धजन्मपटे पुंसामेताः कर्दमविप्रुषः ॥ ८६५ ॥

लज्जैषा यदि भूपालः परदारान्परामृशेत् ।

त्रातारो यदि हन्तारो रक्षितारो नु तत्र के ॥ ८६६ ॥

प्रभविष्णुर्न तत्कुर्यात्साधूनां संगमेषु यत् ।

प्राप्नोति पृथुधिकारगर्हाभारकदर्थनाम् ॥ ८६७ ॥

रामस्य शुद्धयशसः पत्नी धर्मनिधेः कुलात् ।

हरतस्तव वक्राणि न लज्जन्ते परस्परम् ॥ ८६८ ॥

अरुणस्यात्मजं धर्म्ये पुराणं सत्पथि स्थितम् ।

वृद्धं जटायुषं नाम गृध्रराजमवैहि माम् ॥ ८६९ ॥

त्वया हर्तुं न शक्यैषा मयि जीवति जानकी ।

अरणिर्वृषलेनेव शत्रुश्रीरिव भीरुणा ॥ ८७० ॥

अहो नु मदनान्धेन रामस्य हरता प्रियाम् ।

कण्ठे हारधिया मूढ कालव्यालः कृतस्त्वया ॥ ८७१ ॥

भुञ्जन्ते परिणामार्हं शक्यमेव च कुर्वते ।

फलोचितं च जल्पन्ति साधवो दूरदर्शिनः ॥ ८७२ ॥

अशक्यं पापमलिनं संपदुन्मूलनक्षमम् ।

जीवितान्तकरं घोरं मा कृथाः कर्म गर्हितम् ॥ ८७३ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि प्रयातानि ममायुषः ।
 श्रुतमद्यैव दृष्टं च परस्त्रीहरणं मया ॥ ८७४ ॥
 कथं मम वचः पथ्यमवधीर्यैव धावसि ।
 अधुनैव मया भग्नं पश्यन्तु त्वां नभश्चराः ॥ ८७५ ॥
 इति गृध्रपतेः श्रुत्वा वचनं रावणोऽवदत् ।
 दंष्ट्राकरालमिव खं कुर्वन्कोपस्मितांशुभिः ॥ ८७६ ॥
 चिरादन्विष्य लब्धोऽसि नूनं कालेन खेचर ।
 निर्भयो यन्ममाप्यग्रे बभाषे प्रतिभान्वितम् ॥ ८७७ ॥
 वृद्धोऽपि मां न जानासि लोकेषु प्रथितं कथम् ।
 जीर्णं शरीरमथ वा खिन्नस्त्वं त्यक्तुमिच्छसि ॥ ८७८ ॥
 येनोप्यते विसंवादिनिर्वाहविपुलं वचः ।
 तदसत्यपुरीषस्य निर्गमच्छिद्रमाननम् ॥ ८७९ ॥
 इत्युक्त्वा कोपताम्राक्षो राक्षसः पक्षिणां वरम् ।
 कर्णिकालीननाराचैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रमपूरयत् ॥ ८८० ॥
 वज्राग्रनखराभ्यां च चरणाभ्यां विदार्य तम् ।
 खगः फुल्लमिवाशोकं चकार रुधिरारुणम् ॥ ८८१ ॥
 दशग्रीवभुजोत्सृष्टा गृध्रराजं दशेषवः ।
 विविशुः पृथुशूत्काराः सनिःश्वासा इवोरगाः ॥ ८८२ ॥
 ततः कोपाकुलः पक्षी पक्षाभ्यां राक्षसप्रभोः ।
 बभञ्ज दीप्रत्नांशुपिञ्जरं सशरं धनुः ॥ ८८३ ॥
 तस्य हेममयं दीप्तं प्रतापमिव कङ्कटम् ।
 छित्त्वा जघानाशु रथं मनोरथमिवायतम् ॥ ८८४ ॥
 पपात राक्षसेन्द्रस्य छत्रं तच्चरणाहतम् ।
 पुलस्त्यवंशो मलिनो जानकीहरणादिव ॥ ८८५ ॥
 छिन्नायुधं हतरथं तमुवाच विहंगमः ।
 त्यज रामस्य महिषीं प्राणान्नक्ष सह श्रिया ॥ ८८६ ॥

नेयं श्रीः सहते शुद्धशीलमानससारसी ।
 धिक्कारमलिनं पाप प्रवादजलदागमम् ॥ ८८७ ॥
 तेषामेव विभात्येष निष्कलङ्को यशःशशी ।
 शीलं विभूषणं येषां धर्मो बन्धुर्दया प्रिया ॥ ८८८ ॥
 अनायत्तं कृतान्तस्य साधूनां जीवितं यशः ।
 सश्वासमेव मरणं शीलत्यागः शरीरिणाम् ॥ ८८९ ॥
 अवश्यं त्यक्तसद्रुतः पौलस्त्य न भविष्यसि ।
 न ह्यनासन्ननाशानामुदेति मलिना मतिः ॥ ८९० ॥
 इत्युक्त्वा निपपातास्य पृष्ठे वज्रनखः खगः ।
 स चकम्पे चिरं येन क्षितिकम्प इवाचलः ॥ ८९१ ॥
 मौलिरत्नांशुशबलैस्तमाकृष्य शिरोरुहैः ।
 चक्रे स शक्रचापाङ्क लोलाभ्रमिव भूधरम् ॥ ८९२ ॥
 वामेनाङ्गेन वैदेहीमवष्टभ्य दशाननः ।
 तलाघातेन मुष्टिभ्यां पद्भ्यां च निजघान तम् ॥ ८९३ ॥
 स रावणकराघातैस्तैरकम्पितविग्रहः ।
 तं संभ्रमाद्भुतरुषां विधेयं विदधे खगः ॥ ८९४ ॥
 ततः सीतां समुत्सृज्य संरुषद्दशकंधरः ।
 तुण्डाग्रपक्षचरणांश्चिच्छेदास्य महासिना ॥ ८९५ ॥
 कृपाणकृत्तसर्वाङ्गं विहंगं पतितं भुवि ।
 आर्ताभिसृत्य वैदेही परिष्वज्य शुशोच तम् ॥ ८९६ ॥
 एवं शरीरं तत्याज सीतार्थं गृध्रभूपतिः ।
 आपन्नत्राणसज्जानां प्राणः सत्त्ववतां तृणम् ॥ ८९७ ॥
 इति जटायुवधः ॥ २६
 क्षणशेषायुषि क्षोणीमालिङ्गचैव जटायुषि ।
 स्थिते रुधिरदिग्धाङ्गे चुक्रोश जनकात्मजा ॥ ८९८ ॥
 सा रावणेनाभिसृता संभ्रमव्याकुलांशुका ।
 वृक्षानप्यभिदुद्राव संत्रस्ता शरणैषिणी ॥ ८९९ ॥

तस्या भुजङ्गकुटिलं केशपाशं क्षपाचरः ।
 जवेनाभ्येत्य जग्राह कालपाशमिवात्मनः ॥ ९०० ॥
 तस्यां केशेषु कृष्टायां घोरेण तमसा वृताः ।
 दिशौ नीलाम्बरेणेव बभूवुः पिहिताननाः ॥ ९०१ ॥
 तां वीक्ष्य राक्षसाकृष्टां धुतपल्लवपाणयः ।
 मञ्जर्यो मधुपालापाः प्रलापिन्यश्चकम्पिरे ॥ ९०२ ॥
 मुखराभरणां व्योम्ना तामादाय जगाम सः ।
 कणन्मधुकरां वल्लीमुन्मूल्येव महानिलः ॥ ९०३ ॥
 बभौ भुजवने तस्य सीतामुखसरोरुहम् ।
 दृश्यं कचिददृश्यं च शशीव घनपञ्जरे ॥ ९०४ ॥
 रावणेन हृतां ज्ञात्वा रामस्य दयितां बलात् ।
 कृतं कार्यममन्यन्त चतुर्मुखमुखाः सुराः ॥ ९०५ ॥
 ततः पपात चरणान्मुखरो मणिनूपुरः ।
 वैदेह्या राक्षसत्रासमुक्ताक्रन्द इव क्षितौ ॥ ९०६ ॥
 हारमुक्ताफलान्यस्याः पतितानि चकाशिरे ।
 दिवः प्रक्षीणपुण्यानि नक्षत्राणीव भूतले ॥ ९०७ ॥
 तस्या विभूषणान्युग्रवेगगामिनि रावणे ।
 कुसुमानीव मञ्जर्या व्यशीर्यन्त समन्ततः ॥ ९०८ ॥
 उद्भ्रान्तभृङ्गभ्रूभङ्गाः सीतां शाखाभुजैर्मुहुः ।
 न भेतव्यमिति प्राहुर्वृक्षाः पक्षिरुतैरिव ॥ ९०९ ॥
 सिंहव्याघ्रा अपि रुषा सीताच्छायानुयायिनः ।
 दंष्ट्राकरालैर्वदनैर्दशाननमतर्जयन् ॥ ९१० ॥
 सीतापराभवामर्षमर्षणानुशयाकुलः ।
 वैलक्ष्यादिव चण्डांशुर्बभूवापाण्डुमण्डलः ॥ ९११ ॥
 दीप्तमौलिप्रभादामवेगदीर्घीकृतं बभौ ।
 दशास्यस्य गतौ हैमं मानसूत्रमिवाम्बरे ॥ ९१२ ॥

गिरिशृङ्गगतान्यत्र साधुरूपान्प्लवङ्गमान् ।
 विलोक्य सीता तत्याज भूषणान्युपलब्धये ॥ ९१३ ॥
 ततः सागरमुलङ्घ्य लङ्कां प्राप दशाननः ।
 रामचापच्युत इव क्षिप्रपाती शिलीमुखः ॥ ९१४ ॥
 रामपत्नीं समादाय राजधानीं विवेश सः ।
 स्वकुलक्षयदावाग्नेः शिखां पूर्वोद्भूतामिव ॥ ९१५ ॥
 रामस्य चरितं ज्ञातुं गूढानष्टौ स राक्षसान् ।
 विससर्ज जनस्थाने सर्वप्राणिविचिन्तकान् ॥ ९१६ ॥
 नानारत्नमयीं हेमहर्म्यामन्तःपुरावलीम् ।
 दिव्यामदर्शयत्तस्या दर्पान्धो दशक्रंधरः ॥ ९१७ ॥
 रक्षायै राक्षसीस्तस्या विधाय विकृताननाः ।
 मेने स्वाधीनतां यातां स तामन्तकमोहितः ॥ ९१८ ॥
 सोऽब्रवीद्रक्षसां विश्वजयिनां विश्रुतौजसाम् ।
 द्वाचत्वारिंशदुग्राणां कोट्यो मम पदानुगाः ॥ ९१९ ॥
 सुरकिंनरगन्धर्वविद्याधरमृगीदृशाम् ।
 सीते शतसहस्राणि कामं मम परिग्रहः ॥ ९२० ॥
 इयं मणिमयी लङ्का विमानं पुष्पकं च मे ।
 दुर्लभं त्रिदशेन्द्राणां मनोरथगतेरपि ॥ ९२१ ॥
 सोऽहं त्रिभुवनश्लाघ्यपरिवारपरिच्छदः ।
 त्वदधीनः शशिमुखि त्वदालोकनजीवितः ॥ ९२२ ॥
 यस्य मे भ्रूलतोत्क्षेपवर्तिन्यो विश्वसंपदः ।
 सोऽहं त्वदाज्ञाप्रणयी जयत्यसमसायकः ॥ ९२३ ॥
 अस्मिन्कल्पलतोद्याने रमस्व सुभगे मया ।
 इदं पीनस्तनोदग्रं न चिरं चारु यौवनम् ॥ ९२४ ॥
 त्यज रामगतामाशां नेयं प्राप्यापरैः पुरी ।
 संकल्पाः पङ्क्तवो यस्यां का तत्र मरुतां गतिः ॥ ९२५ ॥

वदनेन्दुरयं लोकलोचनानन्दबान्धवः ।
 न ते सितस्मिते भाति विषादजलदावृतः ॥ ९२६ ॥
 प्रसीद सुमुखि स्मेरास्त्वत्पादनखकान्तयः ।
 मयैताः प्रणतौ नीता मौलिमालावतंसताम् ॥ ९२७ ॥
 अशिक्षितप्रणामानां मानोन्नतिभृतां सदा ।
 शिरसां मम सुश्रोणि नवोऽयं विनयक्रमः ॥ ९२८ ॥
 श्रुत्वेति दशकण्ठस्य वैदेही दुःसहं वचः ।
 ऊचे धृत्वा तृणं मध्ये निर्भया मरणैषिणी ॥ ९२९ ॥
 दुर्वृत्त दुर्नयस्यास्य दर्पस्य विभवस्य च ।
 अवश्यं तव काकुत्स्थः क्षयदीक्षां विधास्यति ॥ ९३० ॥
 चौरस्मेव प्रलापोऽयं वध्यभूमिं श्रितस्य ते ।
 मूढ स्वस्थोऽसि मिथ्यैव मृत्योरङ्कगतः कथम् ॥ ९३१ ॥
 सुहृद्भ्रविहर क्षिप्रं कुपेत्तं च प्रसादय ।
 रामभ्रूभङ्गदृष्टानां न पुनस्तैः समागमः ॥ ९३२ ॥
 मण्डलीकृतचापस्य रामार्कस्य शरांशुभिः ।
 भविष्यति क्षयोऽवश्यं तमसामिव रक्षसाम् ॥ ९३३ ॥
 तपःक्लेशार्जितां लक्ष्मीं रक्ष राक्षसदुर्लभाम् ।
 चित्रधूम इवैश्वर्यं विनाशयति दुर्नयः ॥ ९३४ ॥
 श्रीलता मूलपरशुर्यशः शीतांशुवारिदः ।
 ऐश्वर्यजलधेरौर्वः शुभाय कस्य दुर्नयः ॥ ९३५ ॥
 एतास्तव दुराचार जीवितेन सह श्रियः ।
 दुर्नयादिष्टमार्गेण यान्ति कालोपहारताम् ॥ ९३६ ॥
 मां कोपाकुलितः क्षिप्रं भक्षय क्षणदाचर ।
 न प्राप्याहं त्वया पाप श्रपाकेनेव यज्ञभूः ॥ ९३७ ॥
 इति ब्रुवाणां वैदेहीं प्रत्युवाच दशाननः ।
 अद्यापि परुषं सीते सहते रावणो वचः ॥ ९३८ ॥

संवत्सरेण यदि मे सीते नैष्यति वश्यताम् ।
 सूदास्त्वां दारयिष्यन्ति ततो मम महानसे ॥ ९३९ ॥
 इत्युक्त्वा राक्षसस्त्रीणां व्याघ्रीणां हरिणीमिव ।
 हस्ते चिक्षेप तां तन्वीमशोकवनिकान्तरे ॥ ९४० ॥
 सा राक्षसीभिर्घोराभिस्तर्ज्यमाना वरानना ।
 निमग्ना न सै(?)माधातुमगाधे व्यसनोदधौ ॥ ९४१ ॥
 अत्रान्तरे ब्रह्मवाक्यात्स्वयं देवः सुरेश्वरः ।
 विधाय निद्रया मोहं राक्षसीनामलक्षितः ॥ ९४२ ॥
 अभ्येत्य सीतां प्रोवाच शुचिचारित्रभूषणाम् ।
 पुत्रि रामेण न चिरात्संगमस्ते भविष्यति ॥ ९४३ ॥
 इत्याश्वास्य शनैः सीतां तस्यै विग्रहधारणम् ।
 दिव्यं ददौ हविस्तृष्णाक्षुत्कृमापहरं परम् ॥ ९४४ ॥
 इति हविःप्रदानम् ॥ २७ ॥

रामोऽपि हेमहरिणाकारं हत्वा क्षपाचरम् ।
 सीतामुत्कण्ठितो द्रष्टुं शङ्कमानो न्यवर्तत ॥ ९४५ ॥
 स दुःखपिशुनं श्रुत्वा स्वरं गोमायुपक्षिणाम् ।
 अज्ञात्वापि वधूवृत्तं हा सीतेति वदन्मुहुः ॥ ९४६ ॥
 स दृष्ट्वा लक्ष्मणं दूरात्समायान्तमधोमुखम् ।
 राक्षसैर्भक्षितां सीतां निःसंशयममन्यत ॥ ९४७ ॥
 कथं त्रस्तकुरङ्गाक्षीं जानकीं विजने वने ।
 त्यक्त्वा गतोऽसि सौमित्रे जीवितं मे हतं त्वया ॥ ९४८ ॥
 इति ब्रुवाणः सावेगः शङ्कादिष्टेन वर्त्मना ।
 उपसृत्य ददर्शाशु सीतारहितमाश्रमम् ॥ ९४९ ॥
 ततः स पतितः श्वभ्रे घोरे वा मकराकरे ।
 ज्वालाकराले वह्नौ वा न किञ्चिद्बुधे क्षणात् ॥ ९५० ॥

१. 'न समेष्यसि वश्यताम्' ख-शा०. २ 'समादातु' क-शा०.

मनःसुब्रह्मचारिण्या सीतयैव विना कृतः ।
 धृत्या सोऽभून्नवोद्भूतप्रभूतव्यसनाहतः ॥ ९९१ ॥
 तस्य शोकाभिभूतस्य मोहमीलितचेतसः ।
 सीतास्मृतिरपि क्षिप्रं काप्यस्पन्ददृशो ययौ ॥ ९९२ ॥
 संज्ञामासाद्य शनकैः सवाष्पं वीक्ष्य लक्ष्मणम् ।
 ऊचे प्रिया मम त्यक्ता कथमेकाकिनी त्वया ॥ ९९३ ॥
 व्यक्तं कान्तिमयं तस्या वपुः कुसुमकोमलम् ।
 राक्षसैर्भक्षितं घोरैः शून्ये धित्ते प्रमादिताम् ॥ ९९४ ॥
 इत्युक्तः शोकतप्तेन भ्रात्रा सौमित्रिराकुलः ।
 उवाच दुःखवैलक्ष्यदैत्यानां वशमागतः ॥ ९९५ ॥
 त्वत्तुल्यस्वरमाक्रन्दं श्रुत्वा मायामृगस्य सा ।
 ब्रजेति शङ्कितमतिर्मामूचे दैवमोहिता ॥ ९९६ ॥
 आर्यस्य विक्रमज्ञेन वारितापि मयासकृत् ।
 उवाच परुषं तत्तद्येन मामविशत्तमः ॥ ९९७ ॥
 मयि त्वत्पदवीं याते तद्वाक्यशरदारिते ।
 मन्ये भवन्तमन्वेष्टुं सापि स्वयमितो गता ॥ ९९८ ॥
 इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा रामः शोकविषाकुलः ।
 चक्रारूढ इवाकाशं दिशश्च क्षणमैक्षत ॥ ९९९ ॥
 तमेवाश्रममालोक्य तानेव च महीरुहान् ।
 सीतामेकामपश्यन्स विललापाश्रुगद्गदः ॥ १०० ॥
 अयि प्रिये कदा नाम मन्युरेवंविधस्त्वया ।
 गृहीतो मयि येनासि लताजालैस्तिरोहिता ॥ १०१ ॥
 अयं ते नर्मसचिवः शुक्रः किमपि मूकताम् ।
 गतस्त्वद्विरहाद्विद्वानिव मूढसभां श्रितः ॥ १०२ ॥
 अयं स्तिमिततां यातः शिखी त्वत्केलिनर्तकः ।
 संचयस्त्वत्कटाक्षाणां राशीभूत इवानिशम् ॥ १०३ ॥

विलासगतिशिष्यस्ते नूपुरारावतस्करः ।
 न केलिकलहंसोऽयं शशीवाहि विराजते ॥ ९६४ ॥
 संत्यक्तशष्पकवलः शिशुर्लीलाकुरङ्गकः ।
 साश्रुस्त्वामीक्षते दिक्षु ग्रीवावलनविभ्रमैः ॥ ९६५ ॥
 कोऽयं कठोरः कठिने मयि मानग्रहाग्रहः ।
 गम्भीरः केन निर्वन्धो येन मौनं न मुच्यते ॥ ९६६ ॥
 अयि प्रसीद सरले किर कर्णसुधां गिरम् ।
 मिथ्या मढकलालापमानं मुञ्चन्तुं कोकिलाः ॥ ९६७ ॥
 इति शोकानलाक्रान्ते रामे तारप्रलापिनि ।
 प्रतिशब्दैर्गिरिगुहाश्चक्रुर्गुर्गद्गैरिव ॥ ९६८ ॥
 बभूवुर्भूरिमधुपालापशिञ्जानपङ्कजाः ।
 आश्रमोपान्तवाप्योऽपि प्रलापमुखरा इव ॥ ९६९ ॥
 रामं शोचन्तमालोक्य रोमन्थच्छेदनिश्चलाः ।
 हरिण्यो मुमुचुर्बाष्पं निःस्पन्दायतलोचनाः ॥ ९७० ॥
 स विचिन्वन्प्रियां वल्लीनिकुञ्जगहने वने ।
 बभ्रामोद्भ्रान्तहृदयस्खलद्गतिविशृङ्खलः ॥ ९७१ ॥
 फुल्लारविन्दवृन्देषु नीलोत्पलवनेषु च ।
 स शुशोच मुखं तन्व्या दृशश्च ललितायताः ॥ ९७२ ॥
 स किंजल्करजःपुञ्जपिञ्जरां वीक्ष्य मञ्जरीम् ।
 पीतांशुकां शशिमुखीं शङ्कमानः समाद्रवत् ॥ ९७३ ॥
 क सीतेति स पप्रच्छ चेतनाचेतनान्वने ।
 शुचः प्रियवियोगोत्था दुःसहा महतामपि ॥ ९७४ ॥
 सोऽब्रवीदेष बकुलः स्फुटं जानाति मे प्रियाम् ।
 व्यासः समस्तमधुपैर्दिग्द्वीपान्तरचारिभिः ॥ ९७५ ॥
 यत्पादनलिनन्यासस्तवाभूत्कुसुमश्रिये !
 अशोक शंस तां सीतामशोकं कुरु मामपि ॥ ९७६ ॥

भात्सर्योपहतो नूनं ममायं गजयूथपः ।
 लीलागतिसपत्नीं तां कथं कथयति प्रियाम् ॥ ९७७ ॥
 नैते वदन्ति दयितां निसर्गविजितास्त्वया ।
 चमर्यः केशपाशेन दृग्विभागैः कुरङ्गकाः ॥ ९७८ ॥
 हा प्रिये कुत्र दृश्यासि क च नः संगमस्त्वया ।
 यदेते तरलाः कापि गन्तुं प्राणा ममोद्यताः ॥ ९७९ ॥
 व्यक्तं मृगानुगेनैव भक्षिता राक्षसेन सा ।
 निगीर्णस्तन्मुखशशी सशरीरेण राहुणा ॥ ९८० ॥
 क सा विलासललिता दृष्टिर्लोलामृतच्छटा ।
 रागाब्धिफेनधवलं क च तद्विभ्रमस्मितम् ॥ ९८१ ॥
 चित्रं नवनवोल्लेखविनोदव्यसनी विधिः ।
 चित्रं बल इवाकाले तदुन्मूलनलालसः ॥ ९८२ ॥
 जाने निजासनम्भोजाज्जातं जाड्यं प्रजासृजा ।
 पुनः कर्तुमशक्यानि स्वकृतानि निहन्ति यत् ॥ ९८३ ॥
 विलासवल्ली निर्लूना हतो विभ्रमपादपः ।
 किं नाम न हतं धात्रा हरता हरिणीक्षणाम् ॥ ९८४ ॥
 अक्ष्णोः स्पन्दनमप्यासीद्यस्या विघ्नो विलोकने ।
 सा कथं सङ्घते क्रान्ता मनोरथपथं गता ॥ ९८५ ॥
 हा प्रिये क नु यातासि दर्शय क्षणमाननम् ।
 पूर्णेन्दुमिव लावण्यसुधासिन्धुसमुद्गतम् ॥ ९८६ ॥
 रतिर्विरहितेनेव शोकान्तेनेव धीरता ।
 मतिर्मोहहतेनेव हारितासि प्रिये मया ॥ ९८७ ॥
 इत्युक्त्वा मोहमापेदे रामोऽपि धृतिसागरः ।
 वियोगसारे संसारे स्नेह एव विपाशनम् ॥ ९८८ ॥
 सर्वथा गुणसंनद्धा जीवमत्स्यापहारिणी ।
 वियोगे वडिशाकृष्टिः स्नेहवृत्तिः शरीरिणाम् ॥ ९८९ ॥

१. 'पुनः' शा०. २. 'यास्यामि' शा०.

संज्ञामासाद्य शनकैरपश्यन्दयितां पुरः ।
 दिवापि निखिलं लोकं निरालोकं ददर्श सः ॥ ९९० ॥
 स निःस्पन्दतनुः स्थित्वा पङ्कमम् इव द्विपः ।
 पुनर्बभ्राम विपिने विषपीत इव स्खलन् ॥ ९९१ ॥
 धृतिं न लेभे वल्लीषु स्थलीषु नलिनीषु च ।
 कल्पवल्लीपरिभ्रष्टः स षट्पद इवाकुलः ॥ ९९२ ॥
 रम्यं घोरं समं श्वभ्रं प्रियं द्वेष्यं स्थलं जलम् ।
 ध्यानैकाग्रः स योगीव सर्वं तुल्यममन्यत ॥ ९९३ ॥
 स शशीव निशाहीनः परिम्लानाननद्युतिः ।
 विलोकयन्वनमहीं दीनः प्रोवाच लक्ष्मणम् ॥ ९९४ ॥
 संचारिणी मनोवृत्तिः क्व मे लक्ष्मण सा प्रिया ।
 गतदीपशिखापात्रं तया हीनमवेहि माम् ॥ ९९५ ॥
 सीताविरहसंतप्तं व्यक्तमुत्क्रान्तजीवितम् ।
 अरक्षितस्मरनिधिं खर्गे द्रक्ष्यति मां पिता ॥ ९९६ ॥
 रक्षश्चूर्णीकृतं तस्याः स्रस्तमेतद्विभूषणम् ।
 हेमरत्नकणैः कीर्णं पश्य पुष्पैश्च मेदिनीम् ॥ ९९७ ॥
 द्रुतविद्रुमसंकाशप्रत्यग्ररुचिरश्रुतिः ।
 सीताहेतोर्वदत्येषा युद्धं राक्षसयोरिव ॥ ९९८ ॥
 इहैव भक्षिता नून राक्षसाभ्यां मृगेक्षणा ।
 वनेऽस्मिन्निःसहायस्य धृतिर्मूर्तिमतीव मे ॥ ९९९ ॥
 इतः क्रोशान्तरे पश्य तपनीयमयं महत् ।
 छत्रं रत्नशलाकाढ्यं खस्तं सूर्यमिवाम्बरात् ॥ १००० ॥
 मणिमौक्तिकहेमाङ्कं वैडूर्यगुणमायतम् ।
 भग्नं धनुरिदं पश्य भेषसंघादिव च्युतम् ॥ १००१ ॥
 विशीर्णं पश्य विगुलं कवचं काञ्चनाचितम् ।
 संध्याभ्रमिव वातेन पातितं गिरिशेखरात् ॥ १००२ ॥

सरस्वहेमसंनाहाः पिशाचवदनाः खराः ।
 एते क्षितौ निपतिता मेघाः सेन्द्रायुधा इव ॥ १००३ ॥
 रथाक्षमात्राः कस्येमे मृत्युदण्डोपमाः शराः ।
 अमानुषं महद्युद्धं भग्नाश्च कथयन्ति ये ॥ १००४ ॥
 इह त्रस्तकुरङ्गाक्षी सा नूनं मम जीवितम् ।
 विजित्य राक्षसं युद्धे राक्षसेनैव भक्षिता ॥ १००५ ॥
 लावण्यस्य विलासस्य गुणानां मन्मथस्य च ।
 एकत्र क नु तत्तुल्यसंगमो भविता पुनः ॥ १००६ ॥
 क नु सा गजगामिन्या मदलीलालसा गतिः ।
 विलासे राजहंसानामुपदेशोपयोगिनी ॥ १००७ ॥
 पाणिपल्लविनी तस्यास्तारुण्यतरुमञ्जरी ।
 क सा विलासवसतिः स्तनस्तवकिंता तनुः ॥ १००८ ॥
 मृणालवल्लीमसृणे क ते भुजलते तनोः ।
 यैत्पुरा क्रियते कोऽपि कराभ्यां कमलभ्रमः ॥ १००९ ॥
 क तन्मनःशिलोल्लेखलीलातिलकलाञ्छनम् ।
 वदतं नवलावण्यनिधानमिव मुद्रितम् ॥ १०१० ॥
 तस्याः स्मितच्छटाचन्द्रकलालावण्यतस्करी ।
 क सा मूर्तिः स्मरस्येव शृङ्गारोद्यानकौमुदी ॥ १०११ ॥
 शोणाधरांशवस्तस्या बिम्बबन्धूकबन्धवः ।
 रागसागरसंजाताः क ते विद्रुमपल्लवाः ॥ १०१२ ॥
 मैनःप्रसादविषदाः क ते चारुदृशो दृशः ।
 विवल्लीनरत्नाङ्गाः सुधावीचिच्छटा इव ॥ १०१३ ॥
 कामकार्मुकभङ्गिन्यो भ्रूविलासकलाः क ताः ।
 नासावंशालिकच्छत्रे लीलाकुवलयस्रजः ॥ १०१४ ॥

१. 'एकता' शा०. २. 'किनी' शा०. ३. 'यत्परः' क. ४. 'कीर्तिः' शा०.
 ५. 'मानं' शा०.

अहो वतातिनैष्ठुर्यं गतस्य कठिनं विधेः ।
 तस्यामपि क्षये यस्य प्रसह्य प्रसृता मतिः ॥ १०१५ ॥
 व्रज जानीहि सौमित्रे यदि जीवति जानकी ।
 जलजाहरणे व्यग्रा जाह्नवीपुलिने स्थिता ॥ १०१६ ॥
 इति तारप्रलापस्य लक्ष्मणस्तस्य शासनात् ।
 भ्रान्त्वा मन्दाकिनीकूले न सा दृष्टेत्युवाच तम् ॥ १०१७ ॥
 रावणेन ह्वतामस्यै सीतां शंसेति खेचरैः ।
 प्रेरितापि न पौलस्त्यभयादूचे त्रिमार्गगा ॥ १०१८ ॥
 राघवोऽपि प्रियतमावियोगविषविह्वलः ।
 आयासं जीवितं मेने निवृत्तनयनोत्सवम् ॥ १०१९ ॥
 स लुप्तसर्वस्व इव भ्रष्टो मार्गादिवाध्वगः ।
 पुण्यक्षये विमानाग्रात्पतितस्त्रिदिवादिव ॥ १०२० ॥
 शोकाग्निस्तपनिःश्वासधूसराधरपलवः ।
 उवाच हारितधृतिर्गिरिं विरहमोहितः ॥ १०२१ ॥
 गुहागहनगेहेषु वैदेही यदि ते स्थिता ।
 गिरे तद्ब्रूहि वज्रोऽग्रैः शरैर्भे मा गमः क्षयम् ॥ १०२२ ॥
 कूलमञ्जुलकुञ्जे सा यदि कल्लोलिनि त्वया ।
 धृता तदेते शोषाय सज्जास्त्वयि ममेषवः ॥ १०२३ ॥
 इति ब्रुवाणो महतीं पादमुद्रां महीतले ।
 स दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य क्रुद्धः प्रोवाच लक्ष्मणम् ॥ १०२४ ॥
 मिथ्यैव भर्त्सितः शैलो हतानेन न मे प्रिया ।
 विपुलं पश्य विकृतं राक्षसस्य महत्पदम् ॥ १०२५ ॥
 सर्वाङ्गभरनिर्भग्नपादाग्रः खमितो गतः ।
 मन्ये स सीतामादाय द्वितीयं नास्ति यत्पदम् ॥ १०२६ ॥
 यमश्चेत्तु हतं विद्धि का श्लाघा रक्षसां वधे ।
 किं मे प्रयान्ति विशिखाः कालस्यापि न कालताम् ॥ १०२७ ॥

किं वा करोमि सौमित्रे तं न पश्यामि स्वेचरम् ।
 पृच्छामि निर्जने कं वा वद गच्छामि कां दिशम् ॥ १०२८ ॥
 इति वादिनमामग्नं तं शोकमकराकरे ।
 अन्तःशल्याहतमना धीरः प्रोवाच लक्ष्मणः ॥ १०२९ ॥
 तुल्यजन्मनि संसारे वैलक्षण्यमिदं सताम् ।
 दुःखेऽपि मोहतमसा यदेषां स्पृश्यते न धीः ॥ १०३० ॥
 सतां कृच्छ्रेषु पाण्डित्यमद्रव्यं दुःखभेषजम् ।
 न तत्सुखे विहारे वा विभवे चोपयुज्यते ॥ १०३१ ॥
 गुरवोऽपि निमज्जन्ति व्यसनाब्धावसाधवः ।
 मग्नाः परमधो यान्ति लघवोऽप्यबुधाः खलाः ॥ १०३२ ॥
 धैर्यं यदि न दुःखेषु नोदये विनयो यदि ।
 तदयं शिक्षितो मिथ्या विवेकः कोपयुज्यते ॥ १०३३ ॥
 यदर्थं शोचति नरस्तच्छोकाहतचेतनः ।
 विनश्यति तदग्राह्या समूलः सोऽपि नश्यति ॥ १०३४ ॥
 धृतिर्दुःखे मतिर्मोहे क्षान्तिः कोपे गुणे नतिः ।
 मतिः प्रभावे महतां सततं सहचारिणी ॥ १०३५ ॥
 निरस्य शोकवैकल्यमार्यं धैर्यमहोदधे ।
 अन्विष्यतां जनकजा विधिः सिद्धिं विधास्यति ॥ १०३६ ॥
 इत्युक्तोऽपि न तत्याज स सीताविरहव्यथाम् ।
 शाप्यति प्रौढशोकाग्निर्नोपदेशाम्बुशीकरैः ॥ १०३७ ॥
 सोऽब्रवीन्न सदाचारस्थितस्य मम मैथिली ।
 दैवेन रक्षिता मन्ये धर्मं नापेक्षते विधिः ॥ १०३८ ॥
 धर्ममार्गानुगस्येष्टं यदि नाम विपद्यते ।
 तेन नास्तिक्यशङ्कैव विदुषामपि जायते ॥ १०३९ ॥
 विधिरद्य सकामोऽस्तु मम वामः शिवोऽस्तु वः ।
 सीतामनुगते धैर्ये जीवितं गन्तुमुद्यतम् ॥ १०४० ॥

व्यक्तं मामवमन्यन्ते मृदुं देवाः कृपास्पदम् ।
 कथयन्ति न ये सीतां सर्वज्ञा लोकसाक्षिणः ॥ १०४१ ॥
 एषोऽहं त्यक्तमर्यादः शैनेः शैकलिताचलम् ।
 करोमि ध्वस्तविबुधं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १०४२ ॥
 अकिंनरमगन्धर्वमपिशाचमराक्षसम् ।
 अपन्नगमभूतं च कैरिष्याम्यखिलं जगत् ॥ १०४३ ॥
 इति ब्रुवाणः सावेगं शोकक्रोधाग्नितापितः ।
 विश्वसंक्षयसज्जोऽभूद्धनुराकृष्य राघवः ॥ १०४४ ॥
 इति रामप्रलापः ॥ २८ ॥
 आर्यं संहर कोपाग्निमिति आन्ना विबोधितः ।
 सोऽपश्यदग्रे रक्ताक्षं लूनपक्षं जटायुषम् ॥ १०४५ ॥
 तं भूधरमिवास्फारं गृध्रमालोक्य भूधरे ।
 उवाच रामः कुपितश्चापमाकृष्य लक्ष्मणम् ॥ १०४६ ॥
 गृध्ररूपमिमं घोरं पश्य लक्ष्मण राक्षसम् ।
 अनेन नूनं सा तन्वी भक्षिता हरिणेषणा ॥ १०४७ ॥
 इत्युक्त्वा दुःसहक्रोधः संधाय धनुषि क्षणात् ।
 क्षुरप्रं वज्रवदनं स गृध्रपतिमाद्रवत् ॥ १०४८ ॥
 तमापतन्तमाकृष्टशरं दृष्ट्वा विहंगमः ।
 अल्पावशेषजीवोऽपि क्षामस्वरमभाषत ॥ १०४९ ॥
 राम राम न नामाहं पापकर्मा निशाचरः ।
 गृध्रोऽहं ते पितुर्मित्रं जटायुर्वरुणात्मजः ॥ १०५० ॥
 सा प्रिया जीवितसुधा नयनानन्दकौमुदी ।
 हृता तव दशास्येन प्राणाश्च मम संगरे ॥ १०५१ ॥
 त्रातुं समुद्यतं सीतां गृध्रं मां दशकंधरः ।
 न्यवधीद्युधि विध्वस्तस्थसारथिकार्मुकः ॥ १०५२ ॥

१. 'मृदुं देवाः क्षमास्पदम्' शा०. २. 'शैनेः' स्यात्. 'त्यक्तमर्यादोऽहं शरैरचलं
 पर्वतमपि शकलिता खण्डं कर्ता' इति व्याख्या भवेत्. ३. 'शकलितः परम्' क.
 ४. 'ममास्तु विशिखैर्जगत्' शा०.

मच्चञ्चुचरणोत्कृत्तं तस्यै तच्छत्रमुत्तमम् ।
 रणोपकरणं चान्यहीतरत्नविभूषितम् ॥ १०५३ ॥
 इति तस्याकुलं श्रुत्वा रुधिरागदगददाम् ।
 गिरं रामोऽभवत्क्षिप्रं वज्रेणेव विदारितः ॥ १०५४ ॥
 स परिष्वज्य रक्ताढ्यं सीतार्थे क्षपितायुषम् ।
 रुरोद सानुजः शोचन्पितुर्मित्रं जटायुषम् ॥ १०५५ ॥
 हा सीताकरुणाक्रन्दश्रुतिसंत्यक्तजीवित ।
 हा सत्त्वसागरोदारधैर्यमानकुलाचल ॥ १०५६ ॥
 वनवासः प्रियादुःखं तत्रापि त्वद्वधश्रुतिः ।
 अहो मे भाग्यहीनस्य वज्रपातपरम्परा ॥ १०५७ ॥
 इत्युक्त्वा मोहमगमत्क्षणं रामः सलक्ष्मणः ।
 उद्गच्छत्प्राणशेषेण वीक्ष्यमाणो जटायुषा ॥ १०५८ ॥
 स शनैर्लब्धसंज्ञेन लक्ष्मणेन विबोधितः ।
 सीताहरणवृत्तान्तं पप्रच्छ खगशेखरम् ॥ १०५९ ॥
 पृष्टो गृध्रपतिस्तेन संस्तभ्य विषमव्यथाम् ।
 उवाच सा हता राम रावणेन विहायसा ॥ १०६० ॥
 वृन्दो नाम मुहूर्तोऽसौ यस्मिन्सीतां जहार सः ।
 हर्ता विपद्यते तस्मिन्हृतमासाद्यते पुनः ॥ १०६१ ॥
 अवश्यं लप्स्यसे सीतां निहत्य युधि राक्षसम् ।
 अतः परं न शक्नोमि वक्तुमुद्रतजीवितः ।
 हेमाभान्द्रिममालाङ्गान्भ्रान्तान्पश्यामि पादपान् ॥ १०६२ ॥
 इत्युक्त्वा क्षितिसंलीनग्रीवो विक्षिप्तविग्रहः ।
 प्रसार्य चरणौ प्राणानुत्ससर्ज तपोनिधिः ॥ १०६३ ॥
 तस्मिन्वीरे दिवं याते सिद्धविद्याधरामराः ।
 पुण्यपुण्यार्जितां तस्य प्रशशंसुः शरण्यताम् ॥ १०६४ ॥
 अस्मिन्नसारे संसारे विनाशेऽवश्यभाविनि ।

पुण्यभाजां भवत्येव परार्थे जीवितव्यथा ॥ १०६५ ॥

रामोऽपि तस्य संस्कृत्य शरीरं शोकविह्वलः ।

धन्याय प्रददौ तस्मै जहुकन्याजलाञ्जलिम् ॥ १०६६ ॥

इति जटायुसत्क्रिया ॥ २९ ॥

गाहमानो वनं रामः सीताविरहमोहितः ।

करिणीविरहक्षामः करीव प्रययौ शनैः ॥ १०६७ ॥

सोऽपश्यन्मार्गमावृत्य भूधराकारमुत्थितम् ।

विद्वृतास्यभुजस्तम्भनिजप्राज्यभुजद्वयम् ॥ १०६८ ॥

कनन्धमन्धतमसां वासबन्धुमकन्धरम् ।

कण्ठकोत्कटरोमाग्रसूचिव्याप्तोऽग्रविग्रहम् ॥ १०६९ ॥

तं दृष्ट्वा दानवं घोरं मूर्तं दुःखमिवात्मनः ।

बभूव सानुजः क्षिप्रं रामो विस्मयनिश्चलः ॥ १०७० ॥

घोराजगरदीर्घाभ्यां भुजाभ्यां रामलक्ष्मणौ ।

आचकर्ष स पातालगुहाकारोदराननः ॥ १०७१ ॥

वक्त्रे क्षिप्रं समाकृष्टौ तौ तेन बलिनौ बलात् ।

अचलाविव निष्कम्पौ जग्मतुस्तस्य नान्तिकम् ॥ १०७२ ॥

कौ युवामिति तौ तेन पृष्टौ विस्मयचेतसा ।

नामजातिकुलोपेतं निजवृत्तान्तमूचतुः ॥ १०७३ ॥

स तच्छ्रुत्वाब्रवीच्चित्रं पापानां निर्विवेकता ।

स्त्रीसखस्य वने वासो लोके लज्जाकरः परम् ॥ १०७४ ॥

पशुतुल्यौ मया मूर्खौ दिष्ट्वा प्राप्तौ वने युवाम् ।

अन्यत्र भोजनात्सत्यं नोपयुक्तौ भवद्विधौ ॥ १०७५ ॥

जलार्द्रदुन्दुभिध्वानं श्रुत्वैव तस्य तौ वचः ।

तदुत्तरार्हयोर्दृष्टिं चक्रतुः करवालयोः ॥ १०७६ ॥

तस्याकर्षणसज्जस्य स्कन्दमूलोपहासिना ।

चिच्छेद दक्षिणं रामो भुजं सव्यं च लक्ष्मणः ॥ १०७७ ॥

१. 'विप्लवः' शा०. २. 'उदरास्यं शिलास्तम्भनिभं' शा०. ३. 'विस्मित' ख.
४. 'श्रुत्वैतत्तस्य तौ वचः' शा०. ५. 'त्तरं तयोः' क.

स कृत्तवाहुः कुलिशच्छिन्नपक्ष इवाचलः ।
 पपात रुधिरोद्गारैर्धातुनिर्झरवानिव ॥ १०७८ ॥
 स हृष्टो राममवदत्त्वत्सदादाहं त्रिभो ।
 विमुक्तः शापजनिताद्वैरूप्यादतिदुःसहात् ॥ १०७९ ॥
 दनुर्नाम श्रियः पुत्रः पूर्वजो रूपवानहम् ।
 दिवाकरेन्दुवह्नीनामभवत्तुल्यदीधितिः ॥ १०८० ॥
 लब्धप्रभावस्तपसा युधि निर्जितवासवः ।
 आसं दर्पादकरवं मुनीनां घोररूपकृत् ॥ १०८१ ॥
 ततः स्थूलशिरा नाम कोपान्मामशपन्मुनिः ।
 कबन्धविकृतः पाप घोर एव भविष्यति ॥ १०८२ ॥
 रामेण निकृत्तभुजः स्वं रूपं प्रतिपत्स्यसे ।
 इत्यहं तेन मुनिना शप्तः कोपाकुलोऽभवम् ॥ १०८३ ॥
 शक्रोऽपि लब्धावसरः कुलिशेन जघान माम् ।
 येनाहं विशिराः क्षिप्रमिमां यातः कबन्धताम् ॥ १०८४ ॥
 आहारार्थमिमौ बाहू वक्रं चेदं ममोदरे ।
 निर्मितं सुरराजेन मांसपिण्डोपमाकृते ॥ १०८५ ॥
 सोऽहं त्वया कृत्तभुजः शापान्मुक्तोऽद्य राघव ।
 वृत्ते शरीरसंस्कारे निजं प्राप्स्यामि तद्वपुः ॥ १०८६ ॥
 लब्धज्ञानः प्रियालाभोपायं वक्ष्यामि ते ततः ।
 श्रुत्वैतद्वहिमादाय रामस्तमदहत्क्षणात् ॥ १०८७ ॥
 अथोदतिष्ठत्स चितामध्यात्कमललोचनः ।
 दिव्याम्बरधरः स्रग्वी रत्नकेयूरशोभनः ॥ १०८८ ॥
 निर्मितश्चन्द्रचूडेन पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
 रतिप्रलापकारुण्यात्पुष्पचाप इवापरः ॥ १०८९ ॥
 विमानेनार्कवर्णेन गगनं वेगशालिना ।
 गाहमानः स सहसा जगाद रघुनन्दनम् ॥ १०९० ॥

ऋष्यमूकगिरेः शृङ्गे सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
 निरस्तो वालिना भ्रात्रा मतङ्गस्याश्रमे स्थितः ॥ १०९१ ॥
 तेन सख्यं विधाय त्वं सीतामधिगमिष्यसि ।
 एष ते दक्षिणः पन्था यत्र पम्पासरो महान् ॥ १०९२ ॥
 अनावृष्टिहते काले गुर्वर्थं फलहारिणाम् ।
 पुरा मतङ्गशिष्याणां पतिताः खेदविन्दवः ॥ १०९३ ॥
 यत्र याता लताजालेष्वपरिम्लानपुष्पताम् ।
 यत्र सा सिद्धवसतिर्दृश्यते भास्वरप्रभा ॥ १०९४ ॥
 शुद्धमांसफलाहारा शीतवारिगतक्लमा ।
 तत्र दिव्यजनाकीर्णं देशे निर्वृत्तिमाप्स्यति ॥ १०९५ ॥
 तं गिरिं बदराहारो मतङ्गस्याज्ञया मुनेः ।
 शिशुनाराभिधो दैत्यः सततं परिरक्षति ॥ १०९६ ॥
 नात्र प्रवेशं लभते पापकर्मा न नास्तिकः ।
 स्वप्नदृष्टं शुभं तत्र प्रातः प्रत्यक्षमाप्स्यसि ॥ १०९७ ॥
 यस्याभिषेकरुचिरा गिरयो जङ्गमा इव ।
 मतङ्गशासनादत्र कुञ्जराननुकुर्वते ॥ १०९८ ॥
 खस्ति तेऽस्तु व्रज क्षिप्रं चेत्युक्त्वा कमलामुतः ।
 खं विवेशांशुभिः कुर्वन्कौमुदीविषदा दिशः ॥ १०९९ ॥
 इति कबन्धवधः ॥ ३० ॥
 रमणीविरहध्यानविधुरः पाण्डुरद्युतिः ।
 रामः पूर्णनिशाहीनः शशीव तनुतां ययौ ॥ ११०० ॥
 दिनमुत्फुल्लनयनं निशां वा सनिशाकराम् ।
 न स सेहे सुवदनावदनध्याननिश्चलः ॥ ११०१ ॥
 स श्रीसुतोपदिष्टेन वर्त्मना शनकैर्ब्रजन् ।
 ददर्श सिद्धशबरीं मूर्तामिव तपःश्रियम् ॥ ११०२ ॥

१. 'पीत' शा०. २. 'भवास्तत्र' ख-शा०. ३. 'प्यसे' ख; 'प्यते' शा०.

स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण विभूषितकुचस्थलाम् ।
 मुखेन्दुस्रुतलावण्यविन्दुमालाङ्कितामिव ॥ ११०३ ॥
 ललाटफलकालीनपुण्यभस्मत्रिपुण्ड्रकाम् ।
 शुभ्रां धवलसंपृक्तचन्द्रामिव विभावरीम् ॥ ११०४ ॥
 तां वल्कलवतीं दिव्यप्रभापटलपल्लवाम् ।
 कल्पवल्लीमिवा लोक्य क्लमं तत्याज राघवः ॥ ११०५ ॥
 विलोक्य सानुजं रामं पूज्यापि प्रणनाम सा ।
 वैराग्यधूतमनसामभिमानरजः कुतः ॥ ११०६ ॥
 तामूचे राघवः प्रह्वामिदं ते विमलं तपः ।
 करोत्यरागसंतोषहर्षस्तबकितं मनः ॥ ११०७ ॥
 मोहहीनां मनोवृत्तिं रागद्वेषविषोज्झिताम् ।
 कथयत्येव निर्विघ्नप्रसन्नमधुरं वपुः ॥ ११०८ ॥
 विधत्ते हृदि वैषद्यं वैमल्यं च सुलोचने ।
 पुण्यप्ररोहं च तनौ दर्शनं पुण्यचेतसाम् ॥ ११०९ ॥
 परिपूर्णतपःसिद्धिर्मनुना कथितास्ति मे ।
 यस्यास्ते गुरवः सिद्धा मुनयो मोक्षगामिनः ॥ १११० ॥
 इति रामवचः श्रुत्वा शबरी प्रत्यभाषत ।
 साधो त्वद्दर्शनफला तपःसिद्धिरियं मम ॥ ११११ ॥
 अजलं तीर्थममलमकायक्लेशदं तपः ।
 अजीवितान्ता स्वगतिः सत्यं साधुसमागमः ॥ १११२ ॥
 आश्रमोऽसौ मतङ्गस्य यत्र ते गुरवो मम ।
 प्रयाताः परमां सिद्धिं ज्ञानपूता हुतानलाः ॥ १११३ ॥
 अपरिम्लानकुसुमः प्रत्यग्रकुशपादपः ।
 देशोऽयं तत्प्रसादेन सततं परिदृश्यते ॥ १११४ ॥
 चिन्तयैव च कुर्वन्ति संनिधिं सप्तसागराः ।
 निखिलान्यपि तीर्थानि निवसन्ति तदाज्ञया ॥ १११५ ॥

वल्कलानि धृतान्यत्र स्नानधौतानि तैः पुरा ।
 पश्य नाद्यापि शुष्कानि यातैर्वर्षशतैरपि ॥ १११६ ॥
 खसि तेऽस्तु नमस्तुभ्यमेषाहं त्वदनुज्ञया ।
 ब्रजामि स्वीचितं धाम हुत्वा ज्ञानानिले तनुम् ॥ १११७ ॥
 इत्युक्त्वा सिद्धशबरी शिरसा रामशासनम् ।
 आदायाशौ तनुं हुत्वा पदं तेजोमयं ययौ ॥ १११८ ॥
 इति शबरीदर्शनम् ॥ ३१ ॥

दिव्येन वपुषा तस्यां यातायां गतिमुत्तमाम् ।
 स पम्पाभिमुखं गच्छन्नामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ १११९ ॥
 मन्ये लक्ष्मण पुण्येऽस्मिन्देशे सा मम दुर्दशा ।
 परिक्षीणा मनश्चेदं वक्ति सीतासमागमम् ॥ ११२० ॥
 कदा नु पूर्णलावण्यसुधानिःस्यन्दसुन्दरम् ।
 वदनेन्दुं मृगदृशो द्रक्ष्याम्यानन्दबान्धवम् ॥ ११२१ ॥
 इति ब्रुवाणः संतप्तः प्रौढेन विरहाग्निना ।
 उत्फुल्लकमलं रामः प्राप पम्पाभिधं सरः ॥ ११२२ ॥
 विलासवलनालोलललनालोचनानुगैः ।
 लीलालिवलयैर्व्याप्तं बालानिलचलोत्पलैः ॥ ११२३ ॥
 सुरसिद्धाङ्गनास्नानलीनकालागुरुद्रवैः ।
 दग्धमग्नस्तराङ्गारैरिव श्यामीकृतोदकम् ॥ ११२४ ॥
 भ्रमद्भिर्भ्रमरैर्जुष्टं रजन्या प्रेरितैरिव ।
 कुसुमानां प्रबोधाय प्रीतिदूतैस्तमःकणैः ॥ ११२५ ॥
 मज्जद्भिः कुञ्जरकुलैः श्रितं जलधिशङ्कया ।
 जलार्थभिरिवाम्भोधैर्वज्रिभीतैरिवाचलैः ॥ ११२६ ॥
 जलकेलिकलालोलविद्याधरमृगीदृशाम् ।
 कुचकुङ्कुमकर्पूरपिशङ्गपरिपाण्डुरम् ॥ ११२७ ॥

१. 'बान्धवम्' शा०. २. 'शतैः' शा०.

अपि नन्दनभृङ्गानामुद्धूतैः कमलानिलैः ।
 विदधानमिवामोदमहोत्सवनिमग्नणम् ॥ ११२८ ॥
 लक्ष्मीविलाससंचारनूपुरारावविभ्रमैः ।
 नादितं नलिनास्वादकषायैः कलहंसकैः ॥ ११२९ ॥
 तीरोपान्तलतालास्यगुरुभिः शीकरानिलैः ।
 आवद्धताण्डवाभोगं मुहुर्मुग्धशिखण्डिभिः ॥ ११३० ॥
 अभिजातमिवासन्नजनतापक्लमापहम् ।
 सदाचारमिवावासं श्रियो गुणगणाश्रयम् ॥ ११३१ ॥
 सतां चित्तमिव स्वच्छं साधुसङ्गमिव स्थिरम् ।
 धर्ममार्गमिवानन्तं मनोरथमिवायतम् ॥ ११३२ ॥
 सद्विवेकमिव श्लाघ्यं संभोगमिव वल्लभम् ।
 संसारमिव साश्चर्यं स्त्रीवृत्तमिव दुस्तरम् ॥ ११३३ ॥
 दर्पणं गगनस्येव सागरस्येव सोदरम् ।
 कैलासस्येव हृदयं पूर्णेन्दोरिव मन्दिरम् ॥ ११३४ ॥
 तद्विलोक्य सरो रामः प्रचलत्कमलोत्पलम् ।
 सुगन्धिवक्त्रं लोलाक्ष्याः सस्मार स्मितकेसरम् ॥ ११३५ ॥
 न तत्र लेभे काकुत्स्थः सीताविरहितो रतिम् ।
 यत्सत्यं रमणीयानां स्वस्थे मनसि रम्यता ॥ ११३६ ॥
 अचारु चारु सुखिनां चारु दुःखाय दुःखिनाम् ।
 भव्यः स्वभावो भावानां न तत्त्वेनोपलभ्यते ॥ ११३७ ॥
 प्रियाविरहसंतप्तं तं सिषेवे सशीकरैः ।
 सरःकमलकिञ्जल्कपिञ्जरैस्तीरमारुतैः ॥ ११३८ ॥
 इति पम्पासरोदर्शनम् ॥ ३२ ॥
 अथादृश्यत पञ्चेषुमैङ्गलो मधुपोत्सवः ।
 वियुक्तरमणीकालः कालः कुसुमलाञ्छनः ॥ ११३९ ॥

कान्ताकटाक्षतरला मत्ताः कुसुमरेणुभिः ।
 चेरुः शिलीमुखास्तुल्यं वसन्तस्य स्मरस्य च ॥ ११४० ॥
 मानिनीमानमातङ्गमशोककलिकारजः ।
 न सेहे नागगन्धोग्रः केसरी कुसुमाकरः ॥ ११४१ ॥
 विबभौ स्तोकसंजातस्तवकस्तनबन्धुरः ।
 भृङ्गालकाविलासिन्यो लताः किसलयाधरः ॥ ११४२ ॥
 पुष्पप्रहासिनि वने तरूणां नवयौवने ।
 निःश्वस्योवाच सौमित्रिं रामो रामाहृताशयः ॥ ११४३ ॥
 पश्य लक्ष्मण कालोऽयं दुःसहः समुपस्थितः ।
 सीतेव तनुतां याता जीविताशापि येन मे ॥ ११४४ ॥
 प्रियाप्रणयसानन्दः कालकूजितकोकिलः ।
 विडम्बयति मामेष मन्ये विरहमोहितम् ॥ ११४५ ॥
 दयितां मदमत्तोऽयं दात्यूहः परिचुम्बति ।
 ममैव मन्दभाग्यस्य दूरीभूतास्य न प्रिया ॥ ११४६ ॥
 जगर्ज मञ्जरीकुञ्जे कलं भृङ्गस्तथा तथा ।
 विलासहासिनीभोगं यातास्य कलिका यथा ॥ ११४७ ॥
 चूतवल्लीमधुकरं मालिनीधूमधूसरम् ।
 निवारयति लोलेन पश्य पल्लवपाणिना ॥ ११४८ ॥
 एक एव प्रियाहीनो रामोऽस्मि कुसुमागमे ।
 इतीव जीवञ्जीवोऽयं विरौति दयितासखः ॥ ११४९ ॥
 परागपीतकुसुमाः कुसुमापीतशेखराः ।
 शृङ्गारभरणा भान्ति किंशुकाशोकचम्पकाः ॥ ११५० ॥
 अदृश्यः पर्णकुसुमैः कर्णिकारोऽयमुन्नतः ।
 कामी च भाति दयिताकुचकुङ्कुमपिञ्जरः ॥ ११५१ ॥
 पुष्पितः सिन्धुवारोऽयं स्वैरं श्यामागमोत्सुकः ।
 ज्योत्स्नापुञ्जपुटैरेव स्थितश्चन्द्रोऽवगुण्ठितः ॥ ११५२ ॥

१. 'राग' क-ख. २. 'सि कुसुमाकरे' शा.; 'रामोऽस्ति' स्यात्.

आलिङ्गति लतासालं नदी श्लिष्यति भूधरम् ।
 अप्यादत्ते नवौत्सुक्यं चैत्रश्चित्रमचेतसाम् ॥ ११९३ ॥
 वसन्ते पुष्पसंतानसुभगामोदमन्दिराः ।
 हा प्रिये तरवो रम्या ममैते विषपादपाः ॥ ११९४ ॥
 इति पुष्पानिलामोदमूर्छितो विरहातुरः ।
 रामः शोचन्प्रियतमां बभ्राम गिरिसानुषु ॥ ११९५ ॥
 तं सानुजं धनुष्पाणिमृष्यमूकतटे स्थितः ।
 दूरादालोक्य सुग्रीवः किमप्याशङ्कितोऽभवत् ॥ ११९६ ॥
 ततस्तदनुगाः सर्वे वानराः कम्पिताङ्गकाः ।
 उत्फुत्योत्फुत्य सहसा शिखराच्छिखरं ययुः ॥ ११९७ ॥
 जवेन ब्रजतां तेषां मलयं निलयं श्रियः ।
 उरुवाताहताः पेतुर्वृक्षाः कुसुमवर्षिणः ॥ ११९८ ॥
 इति वसन्तवर्णनम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे समाप्तमारण्यपर्व ।

ततः शिखरिशृङ्गस्थः सुग्रीवः प्रणतान्पुरः ।
 उवाच हनुमन्मुख्यान्सचिवान्वालिशङ्कितः ॥ १ ॥
 शौर्याभिमानाभरणौ नवौ कमललोचनौ ।
 विजयव्यञ्जनभुजावेतौ शङ्कास्पदं मम ॥ २ ॥
 प्रयुक्तौ वालिना नूनं वीरावस्मद्वधोद्यतौ ।
 तपोवने सायुधयोः संचारः कथमन्यथा ॥ ३ ॥
 वाली नास्मासु निश्चिन्तश्छिद्रान्वेषी च सर्वथा ।
 वक्रः श्रीरक्षणे राज्ञां कर्कशो हि नयक्रमः ॥ ४ ॥
 एतौ तस्मादितो गत्वा त्वं ज्ञात्वेङ्गितचेष्टितम् ।
 पृष्ट्वा वृत्तान्तमखिलं कृत्यं जानीहि यत्क्षमम् ॥ ५ ॥
 सुग्रीवेणेत्यभिहिते हनुमान्पवनात्मजः ।
 प्रययौ ब्राह्मणवपुर्योगेन रघुनन्दनौ ॥ ६ ॥

स तावुवाच कान्तेन गम्भीरेण महौजसा ।
 कथितोदग्रवृत्तान्तरूपेणानेन कौ युवाम् ॥ ७ ॥
 विक्रमस्य गुणानां च यशसामथ तेजसाम् ।
 नयनग्राहिणी सत्यमियमात्मदशाकृतिः ॥ ८ ॥
 सूर्याचन्द्रमसौ व्योम्नि शक्रोपेन्द्रौ त्रिविष्टपे ।
 युवां परं यदि बने नरनारायणावृषी ॥ ९ ॥
 दूतोऽहं वानरपतेः सुग्रीवस्य महौजसः ।
 सचिवो हनुमान्नाम प्रीत्यर्थं समुपागतः ॥ १० ॥
 श्रुत्वैतदमृतास्वादमधुरं राघवो वचः ।
 तथ्यं स्मरन्दनोर्वाक्यं लब्धं सीताममन्यत ॥ ११ ॥
 ततो न्यवेदयत्सर्वं लक्ष्मणो रामशासनात् ।
 कुलं नाम च वैदेहीहरणं च हनूमते ॥ १२ ॥
 दनुना कथितो ह्यस्य सुग्रीवः कार्यसिद्धये ।
 सोऽयं शरण्यो लोकानां सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥ १३ ॥
 सुखं शेते भुजबलं यस्याश्रित्य शचीपतिः ।
 सीताविरहितः सोऽयं रामः संश्रयमिच्छति ॥ १४ ॥
 लक्ष्मणेनेति कथितं निशम्य पवनात्मजः ।
 ताभ्यामेव सह प्रायात्स्वाल्यं हर्षनिर्भरः ॥ १५ ॥
 ततो रामं स्थितः सालस्याविदूरे कपीश्वरः ।
 सुपुष्पितवनैकान्ते भ्रमरैरुपकूजिते ॥ १६ ॥
 तस्यैकां पर्णबहुलां शाखां छित्त्वा सुपुष्पिताम् ।
 सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसाद सराघवः ॥ १७ ॥
 तावासीनौ तथा दृष्ट्वा हनूमानपि लक्ष्मणम् ।
 सालशाखां समानीय विनीतं स न्यवेशयत् ॥ १८ ॥
 ततो विदितवृत्तान्तस्तद्गिरा प्लवगाधिपः ।
 फणीव वल्कलं जोर्णं भयं तत्याज वालिजम् ॥ १९ ॥

उपसृत्य स संप्राप्तो रामं प्रीतिपुरःसरः ।
 दंष्ट्रांशुपुष्पितमुखं प्रोवाच रचिताञ्जलिः ॥ २० ॥
 हनूमता मे कथिता गुणाभरणता तव ।
 आत्मानं बहु मन्येऽहं सफलं त्वत्समागमात् ॥ २१ ॥
 अहो नु जीवितं श्लाघ्यं ममेदं यद्भवान्मया ।
 अभिगम्याधिगम्योऽपि स्वयं सख्यं समीहते ॥ २२ ॥
 अयं मे प्रसृतः पाणिः पाणिमालम्बते तव ।
 दृशोः परिणतं पूर्वं सौगन्धं संप्रवर्तताम् ॥ २३ ॥
 सुग्रीवस्येति वचसा रामेण प्रीतिशालिना ।
 पीडिते पाणिना पाणौ हनुमान्वह्निमादधे ॥ २४ ॥
 सख्यं राघवसुग्रीवौ कृत्वा पावकसाक्षिकम् ।
 प्रहृष्टौ मित्रलाभेन तस्थुर्हृष्टमानसौ ॥ २५ ॥
 इति सुग्रीवसख्यम् ॥ १ ॥
 ततः प्रोवाच काकुत्स्थं प्रह्वः प्लवगपुंगवः ।
 दंष्ट्रांशुभिर्गुणाबद्धां प्रीतिमामन्नयन्निव ॥ २६ ॥
 प्रियावियोगतप्तस्य तव राघव दुःसहम् ।
 दुःखं ममापि संचारि करोति हृदये पदम् ॥ २७ ॥
 अधुना त्यज्यतां शोकः प्रत्ययो यदि मद्गिराम् ।
 विपुले स्कन्धपीठेऽस्मिन्भारोऽयं मे निधीयताम् ॥ २८ ॥
 सत्यं सीतां तव गिरा रसातलगतामपि ।
 उद्धरामि हतारातिर्वराह इव मेदिनीम् ॥ २९ ॥
 सीता दृष्टा हतास्माभिर्दशास्येन विहायसा ।
 क्रोशन्ती राम रामेति करुणं लक्ष्मणेति च ॥ ३० ॥
 चतुर्भिः सचिवैः सार्धं स्थितं मां वीक्ष्य सा गिरौ
 मुमोच रुचिरं वासो मात्यमाभरणानि च ॥ ३१ ॥
 रुचिरा रावणस्याङ्गात्तत्तत्स्तेयं भूषणावलिः ।
 चक्रे नीलाभसंदर्भभ्रष्टचक्रायुधभ्रमम् ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा वानरपतिश्चारु वस्त्रं सभूषणम् ।
 अदर्शयद्गुहान्यस्तं रामाय मणिभास्वरम् ॥ ३३ ॥
 राघवोऽपि तदादाय विन्यस्य निबिडं हृदि ।
 क प्रियेति विलप्योच्चैर्निपपात महीतले ॥ ३४ ॥
 चिरेण संज्ञामासाद्य बाष्पसंरुद्धलोचनः ।
 सोऽभवद्धननीहारपटच्छन्न इवांशुमान् ॥ ३५ ॥
 स शोकामर्षसंतापपिशुनं निःश्वसन्मुहुः ।
 सुग्रीवमूचे सुगतः कां दिशं दशकंधरः ॥ ३६ ॥
 सोऽब्रवीन्न दिशं तस्य स्थानं वा पापकर्मणः ।
 जाने किंतु तमन्वेष्टुमश्रान्तोऽयं ममोद्यमः ॥ ३७ ॥
 गगने भुवि पाताले स्थलेऽथ सलिलेऽपि च ।
 स्थितस्यापि दशास्यस्य मत्सेना पृष्ठपातिनी ॥ ३८ ॥
 विक्रमस्यैव कालोऽयं शोकस्यावसरोऽत्र कः ।
 त्वद्विधा यदि शोचन्ति तत्का मम धृतेर्गतिः ॥ ३९ ॥
 क विपन्निमगावेगनिष्कम्पाः साधुभूधराः ।
 क वैक्लव्यकुटुम्बिन्यो मोहध्वान्तनिशाः शुचः ॥ ४० ॥
 विवेकविषदालोकमतयः शास्त्रलोचनाः ।
 न मूढसुलभस्यास्य शोकस्यायतनं बुधाः ॥ ४१ ॥
 स्वाधीने पौरुषोत्साहे त्वदधीने रिपुक्षये ।
 आज्ञाधीनेषु चास्मासु कोऽयं चित्तविपर्ययः ॥ ४२ ॥
 इति सुग्रीववचनं निशम्य रघुनन्दनः ।
 सुखमुन्मृज्य वस्त्रेण धैर्येण च मनोमणिम् ॥ ४३ ॥
 उवाच तथ्यमुक्तोऽहं बन्धुना सुहृदा त्वया ।
 कृतं नाम सुहृत्कार्यं कुर्वते यद्भवद्विधाः ॥ ४४ ॥
 दुःखे विवेकवक्ताः सुखे विनयवादिनः ।
 पुण्यभाजां भवन्त्येव सुहृदो हृदयप्रियाः ॥ ४५ ॥

अधुना त्वदधीनं मे कृतं प्रणयवत्सल ।
 अन्वेषणे सुररिषोर्यत्नस्तूर्णं विधीयताम् ॥ ४६ ॥
 जाने तव हृतं राज्यं आप्ता निष्कृतिचेतसा ।
 तत्कृत्यसंविभागेन धन्योऽयं क्रियतां जनः ॥ ४७ ॥
 एते ममाप्रतिहता निहतारातिमण्डलाः ।
 कार्तिकेयवने जाताः शराः शिखरिभेदनाः ॥ ४८ ॥
 इति रामवचः श्रुत्वा सुग्रीवो हर्षनिर्भरः ।
 अभिनन्द्यास्य सौहार्दमुवाच प्रणयानतः ॥ ४९ ॥
 तदैव संपदां सत्यं यातो भाजनतामहम् ।
 यदैव मे गुणोदारः प्रसादाभिमुखो भवान् ॥ ५० ॥
 आर्या तव स्थिरा मैत्री गुणैकग्राहिणी सताम् ।
 खलानां दोषसाराणां प्रीतिः श्रीरिव चञ्चला ॥ ५१ ॥
 धनं परिच्छदं भोगाज्जीवितं सर्वमेव वा ।
 प्रतिपन्नास्त्यजन्त्येव परार्थे विमलाशयाः ॥ ५२ ॥
 कान्तिः सुधाकरस्येव दिनभर्तुरिव प्रभा ।
 तवेयं सहजा सैत्यं प्रणयिप्रतिपन्नता ॥ ५३ ॥
 अभग्नविक्रमो वाली विश्रुतो भुवनत्रये ।
 विकलाः किल संकल्पा यज्जये जयिनामपि ॥ ५४ ॥
 स भिनत्ति महाशैलान्बलजिज्ञासया बली ।
 अवमत्य मुहूर्तेन संध्यायां सप्त सागरान् ॥ ५५ ॥
 दुःसहो महिषाकारः पुश दुन्दुभिदानवः ।
 जगच्चचार युद्धार्थी बलिनं नाससाद च ॥ ५६ ॥
 स महोदधिमन्येत्य ययाचे युद्धमुद्धतम् ।
 तमूचे जलधिर्भीतो युद्धार्हस्ते हिमाचलः ॥ ५७ ॥
 स तुषाराचलं गत्वा शृङ्गपातैः खुराच्चनैः ।
 विषमैः कायकाशैश्च चकाराकुलशेखरम् ॥ ५८ ॥

ततोऽभिविभ्रः शैलेन्द्रः क्षणं ध्यात्वा तमब्रवीत् ।
 दुन्दुभे न क्षमस्तेऽहं नियुद्धे बलशालिनः ॥ ९९ ॥
 किष्किन्धायां कपिपतिर्वाली नामास्ति दुर्मदः ।
 युद्धश्रद्धां स ते वीर क्षणेन क्षपयिष्यति ॥ १० ॥
 इत्युक्तः शैलराजेन किष्किन्धामेत्य दुन्दुभिः ।
 तदादिष्टमुपवनं व्यधाद्भ्रमद्रुमं हरेः ॥ ११ ॥
 तत्कोपादथ तं वाली समाकृष्याचलोपमम् ।
 व्यसुं चकार यस्यैतत्कङ्कालमिह दृश्यते ॥ १२ ॥
 कस्यचित्त्वथ कालस्य दुन्दुभेः पूर्वजः सुतः ।
 स्त्रीहेतोर्वैरमापेदे मायावी नाम वालिना ॥ १३ ॥
 स रजन्यां समभ्येत्य किष्किन्धां युद्धलालसः ।
 विदधे प्रलयाम्भोदघोषैर्भुवनसंभ्रमम् ॥ १४ ॥
 ततस्तूर्णं स निष्पत्य कोपाविष्टे ममाग्रजः ।
 तं कालरूपिणं दैत्यं मया सह समाद्रवत् ॥ १५ ॥
 प्लवगेन्द्रं समालोक्य संरम्भावेगदुःसहम् ।
 त्रस्तो दुद्राव मायावी चन्द्रालोकविलोकितः ॥ १६ ॥
 वालिनाभिसृतो वेगान्मया सह मनोजवः ।
 तृणजालवृतं घोरं विवेश विपुलं वनम् ॥ १७ ॥
 मां निधाय बिलद्वारे पश्चाद्वाली विवेश च ।
 तस्मिन्प्रविष्टे विवरं साग्रः संवत्सरो ययौ ॥ १८ ॥
 ततोऽहं शङ्कितो भ्रातृवियोगव्याकुलशयः ।
 अपश्यं रुधिरावेगं सफेनं निर्गतं विलात् ॥ १९ ॥
 भ्रातरं निहतं मत्वा पतितः शोकसागरे ।
 निष्प्रतीकारवैलक्ष्यप्राणत्यागोत्सुकोऽभवम् ॥ २० ॥
 ततोऽहं सचिवैरेत्य स्थितिविप्लवशङ्कितैः ।
 राज्येऽभिषिक्तोऽस्मि ततो मुक्तभ्रातृवधव्यथः ॥ २१ ॥

कालेन हत्वा पाताले वाली मायाविनं रणे ।
 ददर्शाम्येत्य मां राज्ये स्थितं कोपानलाकुलः ॥ ७२ ॥
 स मया पूर्ववत्प्रीत्या विनयेनाभिपूजितः ।
 प्रणयं मे न जग्राह किल्बिषात्कलुषाशयः ॥ ७३ ॥
 राजा त्वमेव दासोऽहं न राज्ये मे स्पृहाभवत् ।
 इत्युक्तोऽपि मया प्रीत्या प्रसादं मयि नाययौ ॥ ७४ ॥
 मिथ्याकलङ्ककलिला लीलैः स्निग्धजनाशये ।
 सर्वथा दैवविहिता विदुःशा केन वार्यते ॥ ७५ ॥
 सोऽब्रवीत्सचिवान्सर्वान्भ्रात्रानेन दुरात्मना ।
 सक्तस्य मे रिपुवधे शिलया पिहितं बिलम् ॥ ७६ ॥
 अविज्ञाताशयेनेति साधुमध्ये विगर्हितः ।
 विर्कीत इव मूकोऽहमभवं व्यथितः परम् ॥ ७७ ॥
 कर्मणा सदृशे दोषे निर्दोषस्यापि लक्ष्यते ।
 अदृश्यैव पुनः शुद्धिः केन प्रत्युत्तरक्रिया ॥ ७८ ॥
 ततोऽहमेकवसनो हृतदारधनः पुरात् ।
 निर्वासितः परिचितैश्चतुर्भिः सचिवैः सह ॥ ७९ ॥
 सोऽहं मिथ्यानिकारेण निरस्तः शौर्यशालिना ।
 वालिना निवसाम्यस्मिन्मतङ्गाश्रमकानने ॥ ८० ॥
 पुरा स दुन्दुभिं हत्वा रक्ताद्रिं तत्कलेवरम् ।
 चिक्षेप पादाङ्गुष्ठेन योजनं विजयोजितः ॥ ८१ ॥
 तावता वक्रानिसृताः स्फारा रुधिरविन्दवः ।
 मतङ्गस्याश्रमे पेतुः पवनावर्तनर्तिताः ॥ ८२ ॥
 तच्छापाद्वानरपतेरगम्योऽयं महाचलः ।
 येनास्मिन्विगताशङ्कास्तस्मिन्नपि रिपौ वयम् ॥ ८३ ॥

१. 'पवाद' ख. २. 'लीला स्निग्धजनस्य च' क-ख. ३. 'वद कामेन' ख.
 ४. 'विक्कीड' ख.

शुष्कास्थिनिचयः कायः सौऽयमास्तेऽत्र दुन्दुभेः ।
 विभ्रष्टः शैलशिखरादिव प्रालेयसंचयः ॥ ८४ ॥
 एते सप्त महातालाः शरेणैकेन बालिना ।
 विद्धाः प्रवृद्धवयसा निःसाराश्च कृताः पुरा ॥ ८५ ॥
 माला हेममयी दत्ता पित्रा शक्रेण तस्य सा ।
 यस्याः प्रभावात्सततं युद्धेषु स गतक्लमः ॥ ८६ ॥
 सौहार्दे प्रणयादुच्चैर्वैमुख्यं मयि मा कृथाः ।
 स कथं भवता युद्धे जेतुं शक्यः शरैः सखे ॥ ८७ ॥
 सुग्रीवेणेति कथिते शुष्कं दुन्दुभिविग्रहम् ।
 पादाङ्गुष्ठेन चिक्षेप रामोऽपि दशयोजनम् ॥ ८८ ॥
 तद्दृष्ट्वा कर्म रामस्य साश्चर्यमपि वानरः ।
 उवाच भूतभयदं चिन्तयन्बालिविग्रहम् ॥ ८९ ॥
 खेदो यदि न मद्भाष्ये विस्रम्भप्रणयो यदि ।
 आद्रोऽयं बालिना क्षिप्तः शुष्कत्वे कास्य तुल्यता ॥ ९० ॥
 शरेणैकेन विद्धेषु त्वया तालेषु सप्तधु ।
 सर्वथा बालिहन्तारं जाने त्वां छिन्नसंशयः ॥ ९१ ॥
 हति बालिवैरोपाख्यानम् ॥ २ ॥
 श्रुत्वेति सुग्रीववचश्चापमाकृष्य राघवः ।
 शरं चिक्षेप निर्वृत्तघोषेणापूरयन्दिशः ॥ ९२ ॥
 स सप्त तालान्निभिद्य रामचापच्युतः शरः ।
 गिरिं भित्त्वा क्षितितलं विवेशाहिरिव श्वसन् ॥ ९३ ॥
 कृत्वातिदुष्करं कर्म हंसो भूत्वा मनोजवः ।
 राममेवाजगामाशु स कौतुककरः शरः ॥ ९४ ॥
 ततः कृत्वाञ्जलिं मूर्ध्ना क्ष्मां स्पृशन्पृथुविस्मयः ।
 परीक्षालज्जितो राममूचे हृष्टः कपीश्वरः ॥ ९५ ॥
 सप्ततालभिदा व्यक्तं विशिखेनाशुगामिना ।
 नीतं तव यशः सप्तलोककर्णवतंसताम् ॥ ९६ ॥

अधुनैव हतः क्षत्रुः सौदरव्यञ्जनः स मे ।
 निःसंशयोदयप्राप्तो मयायं त्वत्समाश्रयः ॥ ९७ ॥
 परीक्षालाघवकृतं मन्युं मे मा कृथा विभो ।
 यथोक्तकारिणः प्रीत्या व्यसनार्तेषु साधवः ॥ ९८ ॥
 पराभवोद्धृतौ यत्नः क्रियतामद्य मे त्वया ।
 भवन्तु बालिसुहृदो विषज्जविभवोत्सवाः ॥ ९९ ॥
 इति मुषाणं सुग्रीवं परिष्वज्य जयोत्सुकम् ।
 सितांशुपुष्पां काकुत्स्थः सफलां गिरमाददे ॥ १०० ॥
 अथैव गत्वा किष्किन्धां नादेनाहूय वालिनम् ।
 आकर्णाकृष्टचापस्य कुरु मे दृष्टिगोचरम् ॥ १०१ ॥
 अयं मे वह्निदीप्तोऽपि त्वत्प्रियायोद्यतः शरः ।
 यातु बालिवधूबाष्पदुर्दिने वारुणास्त्रताम् ॥ १०२ ॥
 राघवेनेत्यभिहिते सुग्रीवः प्रययौ पुरः ।
 किष्किन्धामुद्धतगतिस्त्वं रामोऽनुजगाम च ॥ १०३ ॥
 ततो ननाद मन्थाद्रिध्वानधीरं प्लवङ्गमः ।
 चिरं चकम्पिरे येन दिशः त्वस्ताम्बरा इव ॥ १०४ ॥
 तेन क्षब्देन महता प्रौढोन्मादविषाकुलः ।
 निर्ययौ मन्दिराद्वाली बिलादिव महोरगः ॥ १०५ ॥
 स सुग्रीवं पुरो दृष्ट्वा विपुलक्रोधविस्मयः ।
 गाढं भुजाभ्यां जग्राह चिरात्प्रियमिवागतम् ॥ १०६ ॥
 तयोर्युद्धमभूद्धोरं कम्पिताखिलभूतलम् ।
 जानुबन्धभुजाकर्षकरास्फालनकर्कशम् ॥ १०७ ॥
 तस्मिन्क्षितिधराम्भोषिक्षोभकारिणि संगरे ।
 भयमाविरभूद्धोरं भूतानां क्षयशङ्किनाम् ॥ १०८ ॥
 तौ निर्विशेषावालोक्त्य प्रमाणाकृतिविक्रमैः ।
 रामः सुहृद्वधभयाज्ज मुमोच शिलीमुखम् ॥ १०९ ॥

१. 'प्रभो' ख. २. 'सुहृदं' ख. ३. 'भय' ख.

ततः प्रहारभग्नाङ्गः सुग्रीवो वालिनिर्जितः ।
 जगाम जीविताकाङ्क्षी त्वरितं निजकाननम् ॥ ११० ॥
 घोराभिघाताभिहतो रुधिरोद्गारमूर्छितः ।
 ऋध्यमूकतटे श्रान्तः सोच्छ्वासो निषसाद सः ॥ १११ ॥
 ततः सानुजमायान्तं हनूमत्प्रमुखैः सह ।
 रामं जगाद सुग्रीवः क्षणमालोकयन्क्षितिम् ॥ ११२ ॥
 अहो मे हीनभाग्यस्य विफलस्त्वत्समाश्रयः ।
 विपरीतमिदं जातं पीयूषादिव मे विषम् ॥ ११३ ॥
 मिथ्या वालिवधोद्योगः किं गृहीतः स्वयं त्वया ।
 हृदये शल्यमादत्ते प्रतिश्रुतिविपर्ययः ॥ ११४ ॥
 न्यस्तस्त्वया मृत्युमुखे कस्मादहमुपेक्षितः ।
 सोऽयमालम्बनच्छेदः कृतः कृपावपातितः ॥ ११५ ॥
 इति ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो लज्जानताननः ।
 उवाच कोपमात्सर्यकारणं शृणु मे सखे ॥ ११६ ॥
 युद्धे युवां मया दृष्टौ सदृशाभरणाम्बरौ ।
 तुल्यप्रमाणवर्णाङ्गस्वरालोकनचेष्टितौ ॥ ११७ ॥
 अतोऽयं त्वद्वधभयान्मया वज्राग्रदारुणः ।
 अमोघपाती न त्यक्तः सत्यं प्राणहरः शरः ॥ ११८ ॥
 अधुना प्रत्यभिज्ञायै पुंनागकुसुमोज्ज्वलाम् ।
 मालां कुरु विशालोरस्तटव्योमसुरापगाम् ॥ ११९ ॥
 एषोऽहं धनुरप्येतदयं मृत्युकरः शरः ।
 वालिनो निधने रामः किं पुनः पुनरुच्यते ॥ १२० ॥
 इति रामस्य वचसा सुग्रीवोरसि लक्ष्मणः ।
 नागपुष्पमयीं मालां चक्रे कान्तास्मितोज्ज्वलाम् ॥ १२१ ॥
 स तया विवभौ भाविविजयव्यञ्जनस्रजा ।
 शुभ्राभ्रमालाभरणः श्रीमानिव सुराचलः ॥ १२२ ॥

१. 'मुत्सार्य' स्यात्.

ततः प्रतस्थे सुग्रीवः किष्किन्धां राघवानुगः ।
 तारेण नलनीलाम्बां सह वायुमुतेन सः ॥ १२३ ॥
 इति सुग्रीववालियुद्धम् ॥ ३ ॥
 ते व्रजन्तः समुत्तीर्य सरिद्विरिवनावनिम् ।
 ददृशुर्नीलजीमूतश्यामलं कदलीवनम् ॥ १२४ ॥
 कस्येदमिति रामेण पृष्ठः कपिपतिर्वनम् ।
 गच्छन्नेव शशंसास्य पुण्यं चारु सदाफलम् ॥ १२५ ॥
 अत्र सप्तजना नाम मुनयोऽन्तर्जलव्रताः ।
 सप्तभिर्वत्सरशतैः सशरीरा दिवं गताः ॥ १२६ ॥
 पुण्योऽयमाश्रमस्तेषामगम्यः पक्षिणामपि ।
 दृश्यते होमधूमोऽत्र दिव्यश्च श्रूयते ध्वनिः ॥ १२७ ॥
 देशः पुण्यः प्रणम्योऽयमेतदाकर्ण्य राघवः ।
 मनसा मुनिचक्रं तद्वन्दे स तपोवनम् ॥ १२८ ॥
 किष्किन्धामथ संप्राप्य काञ्चनाट्टालमालिनीम् ।
 घोरं ननाद सुग्रीवः पुष्करावर्तनिःस्वनः ॥ १२९ ॥
 तेनाकम्पितविश्वेन शब्देनाकम्पकारिणा ।
 अभूदभूतसंभूतो भूतानां कम्पविप्लवः ॥ १३० ॥
 किष्किन्धाद्रिगुहागेहसक्तकिंनरकामिनाम् ।
 बभूवोऽन्तदयितागाढलिङ्गनविभ्रमः ॥ १३१ ॥
 तं शब्दं पवनस्कन्धसंघट्टस्फालनोद्धतम् ।
 शुश्रावान्तःपुरगतो वाली मधुमदाकुलः ॥ १३२ ॥
 स तस्य ललनाकेलिवल्लरीकुसुमाकरः ।
 मदः कापि ययौ नादक्रोधाविष्कृतचेतसः ॥ १३३ ॥
 कोपेन ज्वलितः क्षिप्रं कल्पान्तहुतमुक्प्रभः ।
 बभार विश्वसंहारव्यापारपिशुनं वपुः ॥ १३४ ॥

१. 'तत्र' ख. २. 'युधः' शा०.

तं निष्पतन्तं वेगेन सुग्रीवाह्वानदुःसहम् ।
 तारा तारापतिमुखी परिष्वज्य प्रियावदत् ॥ १३५ ॥
 शुभ्रावपातसचिवं संत्यक्तक्रोधविप्लवम् ।
 केवलं धैर्यमालम्ब्य कर्तुमर्हसि सांप्रतम् ॥ १३६ ॥
 न जल्पन्ति न शृण्वन्ति न कुर्वन्त्यपरीक्षितम् ।
 विचाररुचिरा लोकाः साधवो दीर्घदर्शिनः ॥ १३७ ॥
 समः समस्तजन्तूनामपि क्रोधमदोदयः ।
 विचाराभिहतावेगः सतां न कुरुते पदम् ॥ १३८ ॥
 निरस्तः संयुगे भग्नः स तथापि तवानुजः ।
 निराशः केन दर्पेण पुनर्योद्धुमिहागतः ॥ १३९ ॥
 अवश्यं संश्रयस्तेन प्राप्तो नीतिमता स्थिरः ।
 कुतोऽन्यथा नवस्तस्य प्रसह्य त्वज्जयोधमः ॥ १४० ॥
 अभिभूतो बलवता रिपुर्बलवदाश्रयः ।
 नवप्रभावदर्पेण नाहत्वा विनिवर्तते ॥ १४१ ॥
 सुग्रीवेणाश्रितो धन्वी रामो दशरथात्मजः ।
 शौर्यशीलो दयाम्भोधिरिति मामङ्गदोऽवदत् ॥ १४२ ॥
 बलिना संधिमिच्छन्ति युध्यन्ते हीनशक्तिना ।
 सदा तुल्यमुपेक्षन्ते श्रीकामा विजिगीषवः ॥ १४३ ॥
 जितोऽपि पुनरायातः शङ्के जीवितनिःस्पृहः ।
 सहसापातिना दीपः पतङ्गेनापि हन्यते ॥ १४४ ॥
 आता संभाव्यतामेष राघवश्च प्रसाद्यताम् ।
 प्रणामेनापि भूपानां स्थाने विभवरक्षणम् ॥ १४५ ॥
 प्रियावचनमाकर्ण्य वाली विगतसाध्वसः ।
 उवाच निःश्वसन्प्रौढकोपस्मितसिताननः ॥ १४६ ॥
 भग्नग्रीवोऽपि सुग्रीवो गतश्चेत्पुनरागतः ।
 शौर्यशाली कथं वाली सहते तत्पराभवम् ॥ १४७ ॥

न नाम निधनं दुःखं जातोऽवश्यं विपद्यते ।
 सजीवमेव मरणं मानभङ्गो हि मानिनाम् ॥ १४८ ॥
 शूराः शत्रुयशःशुभ्रकर्मपाटनलम्पटाः ।
 परप्रणाममलिनं भुञ्जते विभवं कथम् ॥ १४९ ॥
 नास्ति रामेण मे युद्धं सुग्रीवः संगरे पुनः ।
 प्रयास्यत्येव भग्नङ्गः स बध्यो मम नानुजः ॥ १५० ॥
 इत्युक्त्वा वलितग्रीवः परिष्वज्य प्रियाप्रियः ।
 अपुनर्दर्शनायैव तारामामग्न्य निर्ययौ ॥ १५१ ॥
 स सुग्रीवं समासाद्य दृष्ट्वा निष्कम्पमोजसा ।
 विस्मितो मुष्टिनाभ्येत्य जघान घनगर्जितः ॥ १५२ ॥
 तन्मुष्टियुद्धमभवज्जगतां कम्पकारणम् ।
 घोरशब्दं शिलाघातैस्तयोः पर्वतयोरिव ॥ १५३ ॥
 गाढप्रहाराभिहतौ तौ स्फाररुधिरारुणौ ।
 बभतुः किंशुकाशोकौ फुल्लाविव रणाङ्गणे ॥ १५४ ॥
 ततो सालेन सुग्रीवो वालिनं हेममालिनम् ।
 अताडयत्सितौ येन सोऽपि शैल इवापतत् ॥ १५५ ॥
 तूर्णमुत्थाय सुग्रीवं कुपितः स बलोत्कटः ।
 दोर्भ्यामादाय विदधे मृत्योः कवलनोचितम् ॥ १५६ ॥
 संकटे वर्तमानं तं दूरादालोक्य राघवः ।
 रुधिरोद्धारिणं भेजे सुहृन्निधनसंशयम् ॥ १५७ ॥
 स संधाय शरं घोरं कालदंष्ट्रोत्कटाननम् ।
 स्वर्गारोहणसोपानं विससर्जाशु वालिने ॥ १५८ ॥
 स तेनाभिहतो वेगान्निपपात महीतले ।
 जगतां दुर्निमित्ताय भ्रष्टः सूर्य इवाम्बरात् ॥ १५९ ॥
 स दृष्ट्वा रुधिरष्ठीवी राघवं गद्गदस्वरः ।
 ऊचे संस्तभ्य कृच्छ्रेण जीवितच्छेदिनीं व्यथाम् ॥ १६० ॥

मामन्यरणसंसक्तं त्वया हत्वा यशस्विना ।

राम त्यक्तार्यवृत्तेन किं नाम सुकृतं कृतम् ॥ १६४ ॥

आत्मानमनुशोचामि न तारां चारुलोचनाम् ।

हते मयि हतो मन्ये प्रियः पुत्रो ममाङ्गदः ॥ १६२ ॥

इत्युक्त्वा श्वासतरलप्राणः संचारनिःस्पृहः ।

मुहूर्तं निश्चलस्तस्थौ वाली मीलितलोचनः ॥ १६३ ॥

इति वालिवधः ॥ ४ ॥

तस्मिन्निपतिते वीरे प्रवरे सत्त्वशालिनाम् ।

तं देशमाययौ रामः शनैः सौमित्रिणा सह ॥ १६४ ॥

तं वीक्ष्य वाली प्रोवाच किञ्चिदुन्मील्य लोचने ।

स्वस्तं भारमिवासक्तां हेममालां परामृशन् ॥ १६५ ॥

कुले महति जातस्य गुणिनः सत्त्वशालिनः ।

न कामादार्यै र्ययादाविध्वंसी धीः प्रवर्तते ॥ ४६६ ॥

राम एव सदाचारः सर्वभूतहिते रतः ।

कथमेकपदे नष्टमिति मे विषदं यशः ॥ १६७ ॥

औचित्यचारुचरिते शङ्का मे नाभवत्त्वयि ।

विपन्नघाती काकुत्स्थ इति कस्याशये स्पृशेत् ॥ १६८ ॥

लोकेषु रुचिरा कीर्तिराचारः पुनरीदृशः ।

दम्भध्वजानां जानाति को नु मिथ्याविनीतताम् ॥ १६९ ॥

पातकं मैथिलीलाभलोभेन भवता यदि ।

अविचार्य कृतं राम तत्रापि श्रूयतामिदम् ॥ १७० ॥

संध्यासमाधौ सप्ताब्धिचारिणा रावणः पुरा ।

कक्षायां स मया क्षिप्तः सीतां तव जहार यः ॥ १७१ ॥

सुग्रीवसेवारजसा मिथ्यैवासि कलङ्कितः ।

तमहं रावणं बद्धा किं न दद्यां तव प्रियाम् ॥ १७२ ॥

१. 'हासिनीम्' शा०. २. 'महतः' शा०. ३. 'मर्यादाध्वंसे चेतः' शा०. ४. 'ते'
शा०. ५. 'प्रच्छन्नपापी' शा०.

उचितं मैत्रिजभ्राता सुग्रीवः श्रियमश्नुते ।
 नोचितं यत्सतां मार्गाद्रान्नः प्रीत्या परिच्युतः ॥ १७३ ॥
 इत्युक्तो वानरेन्द्रेण रामः किञ्चिदधोमुखः ।
 उवाच वर्षणामन्युप्रलीनकरुणाकणः ॥ १७४ ॥
 अहो बतात्यधर्मस्य गतिं जानासि वानर ।
 भ्रातृजायारतः पाप किं साधुरिव भाषसे ॥ १७५ ॥
 अन्यस्य दोषं पश्यन्ति सुसूक्ष्ममपि तत्पराः ।
 स्वनेत्रमिव नेक्षन्ते स्वदोषं मलिना जनाः ॥ १७६ ॥
 भ्रातृजायारतवधो नाधर्मो मम रूपतः ।
 राजदण्डविशुद्धानां गतिः सुकृतिनामिव ॥ १७७ ॥
 राजानो मृगयाशीलास्त्वं च शाखामृगो मया ।
 निहतः कानने हिंस्रस्तत्र का नाम वा च्युतः ॥ १७८ ॥
 राघवेनेत्यभिहिते चिन्तयन्भवितव्यताम् ।
 वाली विगलितक्रोधः क्षम्यतामित्युवाच तम् ॥ १७९ ॥
 ततः श्रुत्वा हतं तारा वालिनं भुजशालिनम् ।
 अग्रे कृत्वाङ्गदं पुत्रं शोचन्ती तूर्णमाययौ ॥ १८० ॥
 स समभ्येत्य दयितं परिष्वज्यायतेक्षणा ।
 दुःखाब्धिमग्ना प्रोवाच सृजन्ती बाष्पदुर्दिनम् ॥ १८१ ॥
 अहो नु रामबाणेन जीवितं हरता तव ।
 अदृश्यपातिना दूराद्धारितं हृदयं मम ॥ १८२ ॥
 उन्मील्य नयने नाथ शिशुं पश्याङ्गदं सुतम् ।
 दीर्घप्रवासिनः पुत्रदर्शनं ते पुनः कुतः ॥ १८३ ॥
 सततं कण्ठनिहितां हेममालामिमां प्रियाम् ।
 स्वर्गस्त्रीसंगमव्यग्रः कथं मामिव नेक्ष्यसे ॥ १८४ ॥
 दृष्टिः प्रसादमधुरा पुत्रप्रणयिनी क ते ।
 प्रेमामृतमयः कासौ दयितासंगमोत्सवः ॥ १८५ ॥

रुमा यदि हता भार्या सुग्रीवस्य प्रिया त्वया ।
 ततः प्राणैः कृता शुद्धिर्निर्दोषा त्वहमाहता ॥ १८६ ॥
 वीर मानोज्ञतग्रीव सुग्रीवाग्नौ निवेद्य माम् ।
 आतृशोणितसंसिकां भजस्व विपुलां श्रियम् ॥ १८७ ॥
 पत्यौ समस्तसंकल्पकल्पवृक्षे तिरोहिते ।
 पिता बन्धुः सुतो आता निष्फलः किल योषिताम् ॥ १८८ ॥
 सीता यदि हता सर्वैरेकीभूतैः सुरासुरैः ।
 तत्प्राप्तिप्रवरो वाली राम किं नाश्रितस्त्वया ॥ १८९ ॥
 वैदेहीविरहे शापं वितरामि न ते सती ।
 किं तु प्राप्तामपि चिरं न सीतामुपभोक्ष्यसे ॥ १९० ॥
 अहो रागान्धमनसामनिवेकपरिप्लवः ।
 सुग्रीवः संश्रयो येषां वाली येषां बधोचितः ॥ १९१ ॥
 अहो रामस्य मोहो वा दैवं वा वालिनः परम् ।
 चूतश्छिन्नः श्रितो निम्बः पान्थेन क्रियतेऽत्र किम् ॥ १९२ ॥
 इति प्रलापिनी तारा तारेव गगनच्युता ।
 क्षितौ पपात च्छिन्नाग्रहारमुक्ताश्रुवर्षिणी ॥ १९३ ॥
 तां तथा शोकविवशां क्रोशन्तीं करुणस्वनाम् ।
 सपत्नीभिर्वृतां वृद्धः प्रोवाचान्तःपुराधिपः ॥ १९४ ॥
 कष्टं शक्रसुतो वाली शक्रतुल्यः क्षयं गतः ।
 मुग्धे किं क्रियते धात्रा देहिनो न स्थिराः कृताः ॥ १९५ ॥
 अस्मिन्नित्यमविच्छिन्ने दीर्घे संसारवर्त्मनि ।
 गच्छन्प्रियः प्रियस्यापि न मुहूर्तं प्रतीक्षते ॥ १९६ ॥
 प्रियाणामप्रियाणां च जगतो जीवितस्य च ।
 अवश्यं निधनं ज्ञात्वा कः शोकः कर्तुमर्हति ॥ १९७ ॥
 शोच्यं शोचति नामासौ यः परेण न शोच्यते ।
 शोचत्यासन्ननाशोऽपि सेयमन्धपरम्परा ॥ १९८ ॥

तरङ्गभङ्गुरा भोगा दृष्टनष्टा विभूतयः ।
 धनं यौवनमायुश्च नित्यशोकस्य किं शुचा ॥ १९९ ॥
 भूतानामनुभूतानां संभूतानां क्षयः क्षणे ।
 प्रियाणां च प्रयातानां न शोकात्पुनरागमः ॥ २०० ॥
 इति वृद्धे वदत्यस्या न शोकस्तनुतां ययौ ।
 वियोगहृतचित्तानामुपदेशः क भेषजम् ॥ २०१ ॥
 इति ताराप्रलापः ॥ ५ ॥
 वाली लोचनमुन्मील्य विलोक्याङ्गदमग्रतः ।
 रामसुग्रीवमुख्यानामुवाच शनकैः परः ॥ २०२ ॥
 न जीवितपरित्यागदुःखं स्पृशति मे मनः ।
 शोकोऽयं यन्न पश्यामि चन्द्रमन्ध इवात्मजम् ॥ २०३ ॥
 भ्रातः सुग्रीव कारुण्याज्जीर्णं मन्युं निरस्य मे ।
 पुत्रः पाल्योऽङ्गदः प्रीत्या सोऽयं भृत्यस्तवाधुना ॥ २०४ ॥
 शिरश्चरणयोः पुत्र सुग्रीवस्य कृपावतः ।
 क्षिप क्षितिपतेरस्य विनयेनैव जीवसे ॥ २०५ ॥
 हेमपद्ममयीं मालां शक्रदत्तामिमां मम ।
 दिव्यां गृहाण सुग्रीव मूर्तामिव नृपश्रियम् ॥ २०६ ॥
 एतल्लभावाद्यापि निर्गच्छन्त्यसवो मम ।
 इत्युक्त्वा तां ददौ तस्मै मालां कैमलपुष्कराम् ॥ २०७ ॥
 प्रियाप्रलपितं शृण्वन्नङ्गदन्यस्तलोचनः ।
 आलिङ्ग्यैवावर्णिं वाली ततस्तत्याज जीवितम् ॥ २०८ ॥
 अङ्गदोऽथ ससुग्रीवः प्रवरैः सह वानरैः ।
 बालिनः साग्निसंस्कारां चकार सलिलक्रियाम् ॥ २०९ ॥
 रामाज्ञया ततस्तूर्णं छन्नव्यजनलान्छनः ।
 अभिषेकोत्सवः सज्जः सुग्रीवस्य बभौ पुरः ॥ २१० ॥

अभिषिक्तेऽथ सुग्रीवे जाम्बवत्प्रमुखैः स्वयम् ।
 यौवराज्यश्रियं भेजे राघवस्य गिराङ्गदः ॥ २११ ॥
 ततः प्रावृषमालोक्य राघवः समुपस्थिताम् ।
 निःसंचारोचितं कालं ज्ञात्वा सुग्रीवमब्रवीत् ॥ २१२ ॥
 अहं वर्षाक्षयाकाङ्क्षी तटे माल्यवतो गिरेः ।
 निवसामि त्वमप्यस्मान्कृत्यकाले समेध्यसि ॥ २१३ ॥
 इति सुग्रीवमामङ्ग्य सीताविरहनिःसहः ।
 सौमित्रिणा सह ययौ रामः प्रस्रवणं गिरिम् ॥ २१४ ॥
 इति सुग्रीवाभिषेकः ॥ ६ ॥
 इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे किष्किन्धापर्व ।

ततः पयोधरव्यूहैर्विततं विबभौ नभः ।
 हरहुंकारदग्धस्य धूमैरिव मनोभुवः ॥ १ ॥
 कदलीकुञ्जगर्भेषु तालतालीवनेषु च ।
 वराहगजयूथेषु लीनेवासीद्धनच्छविः ॥ २ ॥
 ततः पुष्पभुवः कीर्णा बभुर्जलकणैर्नवैः ।
 अब्धिलब्धाम्बुभिर्मेघैर्मुक्तैर्मुक्ताफलैरिव ॥ ३ ॥
 अथ निःसूत्रसंचारहारा धाराधरश्रियः ।
 धाराधरा वने पेतुः परिहारा धृतेरिव ॥ ४ ॥
 इन्द्रायुधप्रभापुञ्जैः प्रनृत्तैश्च शिखण्डिभिः ।
 घनानां च वनानां च स्पर्धेवासीत्परस्परम् ॥ ५ ॥
 ववुर्विरहसंतापपिशुनाः शीकरानिलाः ।
 निःश्वासा इव रामस्य करुणाश्रुकणाकुलाः ॥ ६ ॥
 शिखण्डिताण्डवे गर्जत्पर्जन्यमुरजोर्जिते ।
 बभार घननीहारः प्रवेशपटविभ्रमम् ॥ ७ ॥

प्रशातपतिता वर्षविन्दुभिः सहतारकाः ।
 विद्युद्दीपैर्जलधराः समन्वेष्टुमिवोद्यताः ॥ ८ ॥
 महिषाः पल्वलोत्तीर्णा वर्षाक्षालितकर्दमाः ।
 क्षितौ बाल्यान्निपतिताश्चेरुर्मेघसुता इव ॥ ९ ॥
 द्विपाः सभृङ्गदंष्ट्राग्रभिन्नसंसक्तपुष्कराः ।
 बभ्रमुर्वर्षकलुषा मूर्ताः यद्भाकरा इव ॥ १० ॥
 कष्टं विदलितोऽस्माभिः संमदे पतितः शशी ।
 इत्येव मेघाश्चक्रन्दुः फुल्लामालोक्य केतकीम् ॥ ११ ॥
 कृत्वाभिसारिका धौतनेत्राञ्जनवृत्ताननाः ।
 प्रययुश्चन्द्रविद्वेषाद्वैरपानमिवाम्बुदाः ॥ १२ ॥
 खे बभ्राम बलाकाली दिग्वधूहसितच्छटा ।
 मेघनष्टमिवान्वेष्टुं निशानाथं कुमुद्वती ॥ १३ ॥
 श्यामां कदम्बकुसुमसितां पीनपयोधराम् ।
 प्रौढां प्रावृषमालोक्य रामः सौमित्रिमब्रवीत् ॥ १४ ॥
 दिवाकरकरापीतं देवानाममृतं परम् ।
 एते वर्षन्ति विषदा जलदा विषसंहतिम् ॥ १५ ॥
 निम्नोन्नतसमीभूते सलिलैः स्थगिताः पथि ।
 प्रोषितानां प्रियासङ्गा जयोद्योगाश्च भूभृताम् ॥ १६ ॥
 मेघजालेन संरुद्धः शोकेनाहमिवांशुमान् ।
 न दृश्यते शशिकला जानकीव सितस्मिता ॥ १७ ॥
 एष फुल्लार्जुनः श्रीमान्कदम्बरुचिरो गिरिः ।
 अभिषिक्तोऽम्बुदैः स्निग्धैः सुग्रीव इव शोभते ॥ १८ ॥
 भान्तिमेघाम्बुसंसिक्तास्तमालकबरीभराः ।
 रजोविमुक्ताः ककुभः स्नेहस्ताता इवाङ्गनाः ॥ १९ ॥
 कालः कालः प्रिया दूरे मार्गाश्च जलनिर्गमाः ।
 चिरं न सहते चेतः किमन्यज्जीवितं गतम् ॥ २० ॥

१. 'प्रसाद' शा०. २. 'द्युः' शा०. ३. 'भूताना' शा०.

यथोक्तकारी सुग्रीवः कालेऽसिञ्जलसंकुले ।
 सहसोद्योगयात्रायां मिथ्यैवायास्यते कथम् ॥ २१ ॥
 वनवासपरिक्लिष्टं तं चिरावाप्तवल्लभम् ।
 वक्तुं स्वकार्यं तात्पर्यादकाले कथमुत्सहे ॥ २२ ॥
 उपकारफलं तुल्यं देहीति विगतत्रयः ।
 यो वक्ति निजमौचित्यं लुनीते स्वकरेण सः ॥ २३ ॥
 स मे प्रियावियुक्तस्य ज्ञात्वा जीवितसंशयम् ।
 प्रियं प्रियस्य सुहृदः स्वयमेव करिष्यति ॥ २४ ॥
 इति कृच्छ्रेऽप्यनौचित्यविमुखं राघवानुजः ।
 राघवस्य वचः श्रुत्वा तथेति प्रत्यपद्यत ॥ २५ ॥

इति प्रावृद्धवर्णनम् ॥ १ ॥

निःसपन्नं निजं राज्यं प्राप्य प्लवगपुंगवः ।
 बभूव वल्लभासक्तो राज्यं संत्यज्य मन्त्रिषु ॥ २६ ॥
 तं विस्मृतसुहृत्कार्यं दयितारतिलालसम् ।
 उवाच हनुमानेत्य दंष्ट्रांशुविषदाननः ॥ २७ ॥
 साधवः पदमासाद्य विपुलं विपुलाशयाः ।
 संपदं बहु मन्यन्ते मित्रोच्छिष्टसुखोत्सवाम् ॥ २८ ॥
 रत्नभूम्यादिलाभानां मित्रलाभो महोदयः ।
 आत्मकार्यं न कुरुते मित्रकार्यं करोति यः ॥ २९ ॥
 इमां प्राणपणेनापि श्रियमिच्छन्ति मानिनः ।
 सुहृदामुपकाराय द्विषतां विग्रहाय च ॥ ३० ॥
 व्यवहारे सदाचारं मित्रं विभवसंभवे ।
 शक्तौ परोपकारं च स्मरन्ति सुकृतोचिताः ॥ ३१ ॥
 गुणः साधोर्बहुगुणः पात्रे दानमिवोज्ज्वलम् ।
 अकृतज्ञो विनष्टोऽसौ बीजमुत्तमिवोषरे ॥ ३२ ॥
 अल्पमप्युपकारं च मेरुतुल्यं स्मरन्ति ये ।
 विसरन्त्युपकारं च धन्या श्रीस्तत्समागमात् ॥ ३३ ॥

राघवेण कृतं यत्ते राघवो यत्करोति ते ।
 तत्कार्यकालो यात्येष तव लज्जाकरः परः ॥ ३४ ॥
 प्राणपीडामपि चिरं सहते विरहार्दितः ।
 स्वयं न प्रेरयत्येव सत्त्वमौचित्यसागरः ॥ ३५ ॥
 दुष्करेष्वपि कार्येषु परेषां सततोदिताः ।
 स्वकार्याभ्यर्थनादन्यमौनिनो मानिनः परम् ॥ ३६ ॥
 रामस्य कृत्यं कुरुते निःसंख्या हरिवाहिनी ।
 वयं विधेयास्त्वं नाथः किमन्यज्जृम्भतां यशः ॥ ३७ ॥
 समीरणसुतस्येति वचः श्रुत्वा कपीश्वरः ।
 संदिदेशातुलबलं नीलं सेनासु नायकम् ॥ ३८ ॥
 कपीनां विपुलं सैन्यं शैलद्वीपान्तचारिणाम् ।
 निःशेषं मे समायातु पूर्णमासी परोऽवधिः ॥ ३९ ॥
 सप्तरात्रमतिक्रम्य दृश्यते यस्य नागमः ।
 राजदण्डहतेनायं लोकस्तेन न दृश्यते ॥ ४० ॥
 इति सर्वान्समादिश्य प्लवगान्प्लवगेश्वरः ।
 विवेशान्तःपुरं कान्तासंभोगालिङ्गनोत्सुकः ॥ ४१ ॥
 अथ गौरीपतिगलश्यामले जलदागमे ।
 वृत्ते बभूव रामस्य शरद्विरहशोकदा ॥ ४२ ॥
 वृष्टिच्छेदविभक्तासु दिक्षु नीले नभस्तले ।
 कान्तिर्जगाम जनतानयनानन्दबन्धुताम् ॥ ४३ ॥
 याते जलधरासारे राम बाष्पावशेषताम् ।
 हंसा सचामरस्फारा विबभुः कमलाकराः ॥ ४४ ॥
 हंसैः सप्तच्छदैः काशैः कुमुदैश्चन्द्ररश्मिभिः ।
 दिशः शुभ्रीकृता जग्मुः काकुत्स्थस्यैव कालताम् ॥ ४५ ॥
 शिखण्डिकेकाः कैंदुतां प्रियतां हंसनिःस्वनाः ।
 ययुः स्वावसरे सर्वः प्रायेण जनरञ्जकः ॥ ४६ ॥

१. 'इति' शा०. २. 'नाम' क. ३. 'मत्ततां' क.

विबोधितेषु पद्मेषु भृङ्गमङ्गलपाठकैः ।
 श्रीः संचचार शिञ्जानकलहंसकनूपुरा ॥ ४७ ॥
 कालसिंहेन महता दारितेध्वभ्रदन्तिषु ।
 कुम्भमुक्ताप्रकरतां खे ययुस्तारतारकाः ॥ ४८ ॥
 सप्तच्छदेषु 'नीपेषु' पनसेध्वसनेषु च ।
 बन्धुजीवेषु च शरल्लीनेव समलक्ष्यत ॥ ४९ ॥
 वने मौनव्रतास्तस्थुर्वीतरागाः शिखण्डिनः ।
 सदाचारा विचार्येव संसारविशरारुताम् ॥ ५० ॥
 विसाङ्कुररसादम्बुबिम्बितेन्दुकलाकृतौ ।
 जहसुः कुंसुमैर्वाप्यो हंसमुद्धतकर्दमम् ॥ ५१ ॥
 व्याकीर्णकेशराकारकिरणार्कोरुकाणिकम् ।
 खं त्वस्तशुभ्राभ्रदलं जरत्कमलतां ययौ ॥ ५२ ॥
 गलिताम्बुदुकूलेषु तटेषु जघनेष्विव ।
 राजहंसनखोल्लेखास्तन्वीनां सरितां बभुः ॥ ५३ ॥
 दारितानां शरद्व्याध्या सूर्यांशुनखरैः खरैः ।
 रक्तं मेघवराहाणां बन्धुजीवेष्विवापतत् ॥ ५४ ॥
 कुमदोत्करसंक्रान्तरजःकर्पूरपाण्डुरः ।
 ययौ गजेषु भृङ्गौघः कर्णचामरचारुताम् ॥ ५५ ॥
 निशाः शशाङ्कविषदाः फुल्लसप्तच्छदा दिशः ।
 'बभुः' परस्परं सख्यः सनर्महसिता इव ॥ ५६ ॥
 इति शरद्वर्णनम् ॥ २ ॥
 हंसहासां शशिमुखीं फुल्लोत्पलविलोचनाम् ।
 कान्तां शरदमालोक्य रामः सौमित्रिमभ्यधात् ॥ ५७ ॥
 इयं सा साधुसेवेव संपूर्णफलशालिनी ।
 भाति सज्जनमैत्रीव शरद्विमलमानसा ॥ ५८ ॥

१. 'रूपेषु' क. २. 'विसाङ्कुरे' इति भवेत्. ३. 'कुमुदै' ख. ४. 'उद्धत्य' शा०ख.

अगस्त्यस्योदयेनैषा निर्विषं कुरुते विषम् ।
 शरत्कस्मादकस्मान्मे विषं वर्षति दुःखिनः ॥ ५९ ॥
 वरं शरन्न ते प्रावृद्धरं प्रावृण मे शरत् ।
 इति मिथ्यैव संकल्पः सर्वमार्तस्य दुःसहम् ॥ ६० ॥
 सीतासमागमोपाये सुहृत्सुचिरचिन्तितः ।
 आशाबन्ध इवाद्यापि सुग्रीवो मे न दृश्यते ॥ ६१ ॥
 गेयं कर्णे गले मालां प्रियामङ्गे मुखे सुराम् ।
 कृत्वा विहरति व्यक्तं स मत्कार्यपराङ्मुखः ॥ ६२ ॥
 लटभाभोगसौभाग्यविभवानुभवोत्सवम् ।
 परकार्यानुरोधेन त्यक्तमुत्सहते नु कः ॥ ६३ ॥
 कथं त्यजति सुग्रीवः प्रियां कण्ठावलम्बिनीम् ।
 पुनर्नैवोपयुक्तस्य ममार्थे स्वार्थपण्डितः ॥ ६४ ॥
 स्वकार्यतात्पर्यवतां परार्थश्च्युतचेतसाम् ।
 सुखार्थे त्यक्तगानानां निन्द्यं जन्म दुरात्मनाम् ॥ ६५ ॥
 अयाचितोपकाराणां प्राणैरप्युपकारिणाम् ।
 महात्मनां भवत्येव परचिन्ताकुलं मनः ॥ ६६ ॥
 पूर्वोपकारिणां पापाः सुहृदां ये पराङ्मुखाः ।
 क्रव्यादा अपि मांसेषु सत्यं तेषां पराङ्मुखाः ॥ ६७ ॥
 पदस्था विषमस्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
 आयासिता तैर्जननी गर्भभारेण केवलम् ॥ ६८ ॥
 मम प्रियाविहीनस्य मूढबुद्धेः परायणम् ।
 किष्किन्धां त्वमितो गत्वा सुग्रीवं वद लक्ष्मण ॥ ६९ ॥
 चत्वारो वार्षिका मासा याता मम वियोगिनः ।
 कथमद्यापि न वयं याताः स्मृतिपथं तव ॥ ७० ॥
 अहो नु विस्मृतवचाः सुहृत्कार्यपरिच्युतः ।
 स्त्रीणामपि मुखं स्पष्टं निर्लज्जः कथमीक्षसे ॥ ७१ ॥

१. 'तव स्मृतिपथं गताः' शा०.

वक्रस्यानैकजिह्वस्य भोगमात्राभिमानिनः ।
 कस्य नोद्वेगजननी सखे तव भुजंगता ॥ ७२ ॥
 तदेवेदं धनुर्दीप्तं स एवायं शिलीमुखः ।
 वालिनं यदि ते द्रष्टुं मतिर्जाता तदुच्यताम् ॥ ७३ ॥
 इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा लक्ष्मणस्तप्तमानसः ।
 तमुवाच ब्रजाम्येष चपलस्य कपेः पुरीम् ॥ ७४ ॥
 तमार्यं त्यक्तमर्यादं सौजन्यव्यञ्जनं शठम् ।
 वक्ष्यन्ति तव संदेशं ममैते निशितेष्ववः ॥ ७५ ॥
 इति क्रोधानलेद्धस्य लक्ष्मणस्योत्कटं वचः ।
 रामः श्रुत्वा तमवदद्विचारव्यस्तमानसः ॥ ७६ ॥
 सौमित्रे मा क्रुधस्तस्मै स एवास्त्वपवादभाक् ।
 सन्तः कृतापराधेऽपि प्रसादमधुराशयाः ॥ ७७ ॥
 प्रणयात्सुहृदित्युक्तः सकृदप्युचिताशयैः ।
 कालेन दृष्टदोषोऽपि नार्हत्येव विमाननाम् ॥ ७८ ॥
 अनार्यमार्यवृत्तेन सत्येनावृत्तकारिणम् ।
 रिपुमप्युपकारेण वशीकुर्वन्ति साधवः ॥ ७९ ॥
 अल्पेऽपि दोषे प्राणेषु दण्डो यैर्विनिपात्यते ।
 प्रकृतिस्थाः प्रसादे ये कृच्छ्रा तैः सह संगतिः ॥ ८० ॥
 दोषग्रहणदक्षाणां विरज्यन्ते सुहृज्जनाः ।
 मिथ्याभिमानस्तब्धानां लुब्धानामिव सेवकाः ॥ ८१ ॥
 इति भ्रात्रा समादिष्टः सौमित्रिर्निःश्वसन्ययौ ।
 किष्किन्धां वानरभुजस्तम्भसंभारदुर्गमाम् ॥ ८२ ॥
 संप्राप्य विद्रुमस्तम्भरत्नप्राकारतोरणाम् ।
 नगरीं सूर्यपुत्रस्य सुग्रीवस्य प्रभामिव ॥ ८३ ॥
 क्रोधोद्धतगतिः पादन्यासकम्पितभूतलः ।
 विवेश गणयन्वीरान्प्लवगान्गिरिविग्रहान् ॥ ८४ ॥

१. 'वक्रस्या' इति स्यात्. २. 'प्रायेण' शा०.

तं कोपादधिकाताम्रलोचनं सज्जकार्मुकम् ।
 संरम्भाप्तायुधास्तूर्णं कपयः पर्यवारयन् ॥ ८५ ॥
 ते तस्य क्रोधदीप्तस्य कल्पान्तदहनद्युतेः ।
 अशक्ताः संमुखे स्थातुं दुद्रुवुर्विगतप्रभाः ॥ ८६ ॥
 स ददर्श निशानाथकान्तिसंतानतस्करम् ।
 स्फाटिकं हेमहर्म्योच्चशृङ्गं सुग्रीवमन्दिरम् ॥ ८७ ॥
 द्वारान्तिकमुपेत्याथ वेणुवीणामृदुस्वनैः ।
 एकीकृतं स शुश्राव गीतं किंनरयोषिताम् ॥ ८८ ॥
 गीतमन्तःपुरे श्रुत्वा सुग्रीवस्य विलासिनः ।
 रामं च दुःखितं स्मृत्वा रुषा जज्वाल लक्ष्मणः ॥ ८९ ॥
 प्रकोपदुःसहे तस्मिन्संनद्धानां महौजसाम् ।
 वानराणां बलैर्घोरैर्निरुद्धे राजवर्त्मनि ॥ ९० ॥
 ज्याघोषं सिंहनादं च कृत्वा ब्रजन्पुनः पुनः ।
 पुरद्वारे स शुश्राव यौवैराङ्गं बालिनन्दनः ॥ ९१ ॥
 लक्ष्मणो वानरान्दृष्ट्वा वाच्यमानो महाभुजः ।
 सुग्रीवं नलनीलं च क्षयं तेषामवैत्पुरीम् ॥ ९२ ॥
 तद्वाक्यादङ्गदस्तूर्णं सुग्रीवस्य तमागतम् ।
 न्यवेदयदतिक्रुद्धं क्षयोद्यतमिवान्तकम् ॥ ९३ ॥
 क्षुभ्यत्कपिवलाम्भोधिश्छेदेन व्योमसर्पिणा ।
 तारया च सुखासक्तः सुग्रीवः प्रतिबोधितः ॥ ९४ ॥
 हनुमन्नलनीलाद्यैः सुषेणविनताङ्गदैः ।
 लक्ष्मणागमनोद्विग्नः स मन्त्रिभिरचिन्तयत् ॥ ९५ ॥
 तमूचे वायुतनयः संदेहान्दोलिताशयम् ।
 सर्वथा प्रणिपत्यैव प्रसाद्यो राघवानुजः ॥ ९६ ॥
 कान्ताप्रणयकोपेषु सुहृदां च प्रसादने ।
 शोभते महतामेव विनयावनतं शिरः ॥ ९७ ॥

पूर्वोपकारिणा यत्ते रामेण सुहृदा कृतम् ।
 अल्पा प्रतिकृतिस्तस्य तदर्थे जीवितव्ययः ॥ ९८ ॥
 उपकारकणस्तावत्सत्यं भारायते सताम् ।
 यावत्प्रत्युपकारेण न स तेनैव तारितः ॥ ९९ ॥
 श्रुत्वैतन्मारुतसुतेनोक्तं तपननन्दनः ।
 उवाच सत्यमुचितं कथितं भवता हितम् ॥ १०० ॥
 इदं तु नाभिजानामि यत्क्रुद्धः किंल लक्ष्मणः ।
 न मयोक्तं कृतं वापि मोहात्किंचिदसांप्रतम् ॥ १०१ ॥
 छिद्रप्रवेशिभिर्नूनं द्विजिह्वैरेष मे सुहृत् ।
 भेदप्रणिहितैर्जिह्वैर्वाग्विषेणाकुलीकृतः ॥ १०२ ॥
 सत्योपलितैरनृतैर्वाक्यैः प्रत्ययकारिभिः ।
 दोषदृश्यैकवेशैश्च पैशुन्यं कुर्वते खलाः ॥ १०३ ॥
 तूर्णमन्विध्यतां तावत्सौमित्रेः क्रोधकारणम् ।
 न ह्यविज्ञातविषये प्रवर्तन्ते प्रतिक्रियाः ॥ १०४ ॥
 रामात्तदनुजाद्वापि न भयं विद्यते मम ।
 अदोषे कुपितः किं तु तीव्रशोककरः सुहृत् ॥ १०५ ॥
 अतिकृच्छ्रेण लभ्यन्ते रक्ष्यन्ते च प्रयत्नतः ।
 कष्टैर्नेष्टानि साध्यन्ते मित्राणि च धनानि च ॥ १०६ ॥
 अवज्ञोपेक्षिते प्रेम्णि संधानं दुष्करं पुनः ।
 जतुलेशेन संश्लेषः कथं नु स्फुटिते मणौ ॥ १०७ ॥
 नुत्यत्यतिशयाकृष्टं हठाश्लिष्टे विपद्यते ।
 सौहार्दं कष्टसंधार्यं मृणालीनालपेशलम् ॥ १०८ ॥
 एतदेव महद्दुःखं ममान्तःशल्यदुःसहम् ।
 यत्त्रैयत्नार्जितं मित्रं मिथ्यादोषेण नश्यति ॥ १०९ ॥
 इदं दहति मे चेतो यदयुक्तोपकारिणः ।
 जीवतापि न रामस्य पापेनोपकृतं मया ॥ ११० ॥

इति सुग्रीववचनं निशम्योवाच मारुतिः ।
 प्रेमबन्धनसूत्रालीमिव दंष्ट्रांशुभिः सृजन् ॥ १११ ॥
 मित्रोपकारविरहव्याकुलस्य गुणोचिता ।
 तवैषा शोभते चिन्ता यशःप्रणयदूतिका ॥ ११२ ॥
 श्लथाम्बुजस्तनी प्रायः शरद्वलितयौवना ।
 दृश्यते न च रामस्य यात्राकाले तवोद्यमः ॥ ११३ ॥
 प्रियाविरहतस्तेन प्रणयात्कुपितेन ते ।
 आता विसृष्टो रामेण वीतक्रोधो विधीयताम् ॥ ११४ ॥
 इत्युक्तो मन्त्रिणां मध्ये मन्त्रज्ञेन हनूमता ।
 तथेत्यूचे कपिपातः कालातिक्रमलज्जितः ॥ ११५ ॥
 अन्तःपुरं प्रविश्याथ लक्ष्मणः शुभलक्ष्मणम् ।
 ददर्श रम्यपर्यङ्के सुग्रीवं दयितासखम् ॥ ११६ ॥
 कान्ताकरतलाधूतचामरोदञ्चितांशुकम् ।
 सुमेरुमिव संसर्पिचन्द्रांशुधवलाम्बुदम् ॥ ११७ ॥
 विराजमानं हारेण जाह्नवीनिर्झरत्विषा ।
 मन्दरं सागरोत्तीर्णमिव फेनावलीयुतम् ॥ ११८ ॥
 दिव्याभरणसंभारप्रभापटलपाटलम् ।
 बालार्कमिव संक्रान्तकामिनीकुचकुङ्कुमम् ॥ ११९ ॥
 वल्लभालिङ्गनालम्बकपोलागुरुपल्लवम् ।
 पारिजातमिव स्फारिसौरभाहृतषट्पदम् ॥ १२० ॥
 विलासमारुतालोलललनावल्लरीयुतम् ।
 उद्यानमिव कामस्य मन्दरोद्दामशेखरम् ॥ १२१ ॥
 तं भोगसुभगं दृष्ट्वा आतुर्दुःखेन पीडितः ।
 भूयो जगाम सौमित्रिः कोपात्कालामितुल्यताम् ॥ १२२ ॥
 तं विलोक्यैव सुग्रीवः कृतातिथ्यं पुरोधसा ।
 कान्तासखः समुत्तस्थौ संरम्भगलितांशुकः ॥ १२३ ॥

तं न सेहे हरिर्द्रष्टुं संवित्कालव्यतिक्रमात् ।
 चिरं प्रणामव्याजेन वैलक्ष्यविनताननः ॥ १२४ ॥
 रुमया सहिता तारा प्रणनाम कृताञ्जलिः ।
 नमत्कर्णोत्पलरजोलेखाशबलितस्तनी ॥ १२५ ॥
 स्वमेव वदनं पश्यन्संक्रान्तं मणिकुट्टिमे ।
 ऊचे हरीन्द्रः सौमित्रिमासनं गृह्यतामिति ॥ १२६ ॥
 तं लक्ष्मणोऽवदद्भूताः कृतार्था एव सत्कृतिम् ।
 भजन्ते पूजयोच्छिष्टैः किं दूतैः कार्यनिष्फलैः ॥ १२७ ॥
 शृणु तावत्कपिपते यत्प्रियाविरहादितः ।
 संविद्यतिक्रमकुद्धस्त्वामाह रघुनन्दनः ॥ १२८ ॥
 हन्तोचिता तवैवेयं शाखामृग कृतघ्नता ।
 येनात्मसुखलुब्धेन विप्रलब्धः सुहृज्जनः ॥ १२९ ॥
 कुलं स्वजनमात्मानं सुकृतं च निहन्ति यत् ।
 तदसत्यं कथं नाम तव वल्लभतां गतम् ॥ १३० ॥
 ऐश्वर्यविषसंदर्भमूर्छामीलितलोचनः ।
 प्रियानपि न पश्यन्ति सुहृत्स्वजनबान्धवान् ॥ १३१ ॥
 कृतघ्नः सर्वभूतानां बध्यः सर्वात्मना कपे ।
 न स्मरत्यचलं स्फूर्जमुपकारं निगीर्य यः ॥ १३२ ॥
 अस्ति विप्रवधादीनां पापानां महतामपि ।
 निष्कृतिर्न कृतघ्नानामित्युवाच प्रजापतिः ॥ १३३ ॥
 धौता हरजटाजूटभ्रष्टगङ्गाजलैरपि ।
 कृतघ्नधारणमलं मही मन्ये न मुञ्चति ॥ १३४ ॥
 इति त्वामाह सुग्रीव रामः सत्यपराक्रमः ।
 येन वालिवधे न्यस्तः शोकः कोपपदे द्विषाम् ॥ १३५ ॥
 अहो नु स्त्रीप्रधानस्य समदस्य प्रमादिनः ।
 विस्मृतं मित्रकार्ये ते मूर्खस्येव सुभाषितम् ॥ १३६ ॥

संत्यक्तसर्वकार्याणां प्रशान्तनिजतेजसाम् ।
 स्त्रीप्रणामपरिस्नानमानं धिग्जन्म रागिणाम् ॥ १३७ ॥
 गीतेनेव कुरङ्गस्य पतङ्गस्येव तेजसा ।
 स्त्रीसङ्गेन तवासन्नः सत्यं नाशः प्लवङ्गम ॥ १३८ ॥
 सर्वेषां योषितः सन्ति भोगाः कस्य न बलभाः ।
 किं तु त्वत्सदृशः कोऽस्ति यातं कालं न वेत्ति यः ॥ १३९ ॥
 इति कोपाकुलालापे ब्रुवाणे राघवानुजे ।
 तारा ताराधिपमुखी तमूचे बल्लुनादिनी ॥ १४० ॥
 नायं लक्ष्मण कोपस्य वचसः परुषस्य च ।
 अर्हः सुहृत्कपिपतिः सर्वथा प्रणयी तव ॥ १४१ ॥
 तवेन्दुसुन्दरादस्मान्मुखात्कमललोचन ।
 वचःस्फुलिङ्गाः पतिताः सत्यं नः कर्मविप्लवात् ॥ १४२ ॥
 नासत्यवादी न शठो न कृतघ्नो न दुर्जनः ।
 सुग्रीवो रामकार्ये तु योगीव ध्याननिश्चलः ॥ १४३ ॥
 अत्युन्नतो महाभोगः श्रीमान्खगुणचामरः ।
 रामेणैव यशःस्तम्भः कल्पस्थायीकृतः पदे ॥ १४४ ॥
 चन्द्रिकाभरणे हर्म्ये कान्ताकुचपुरःसरः ।
 सुखं न शेते सुग्रीवस्तप्तः काकुत्स्थचिन्तया ॥ १४५ ॥
 पुरा जितेन्द्रियः सोऽपि विश्वामित्रस्तपोनिधिः ।
 प्रयातं विपुलं कालं न मेने मेनकारतः ॥ १४६ ॥
 विवशास्त्रिदशा यत्र मुनयो यत्र मोहिताः ।
 प्रियासमागमे तस्मिन्मनः कस्य न लीयते ॥ १४७ ॥
 रिपुक्षयसहायस्ते भ्रातस्ते दयितः सुहृत् ।
 यथा रामस्तथैवायं पूज्यः श्रीमान्कपीश्वरः ॥ १४८ ॥
 हत्वा दशास्यं समरे सीतामाहृत्य दुर्लभाम् ।
 एष प्रदास्यति क्षिप्रं रामस्य प्रीत्युपायनम् ॥ १४९ ॥

को वा रामस्य साहाय्ये पुरः समुपयुज्यते ।
 तथापि प्रणयस्यैषा वचसि प्रभविष्णुता ॥ १५० ॥
 सप्ताब्धिवेलाविश्रान्तशासनस्यास्य शासनात् ।
 जगत्कपिमयं सर्वं रामकार्ये भविष्यति ॥ १५१ ॥
 इति तारावचः श्रुत्वा मधुरं मधुराशयः ।
 मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रसादं सहसा ययौ ॥ १५२ ॥
 न कस्य गाढसौहार्दं प्रेम प्रणयपेशलम् ।
 ललनावदनाम्भोजनिर्गतं वाङ्मधु प्रियम् ॥ १५३ ॥
 प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा लक्ष्मणं वानरेश्वरः ।
 भयं चिन्तां च तत्याज न तु लज्जामनङ्गजाम् ॥ १५४ ॥
 स माल्यं कण्ठसंसक्तं रतिसंभोगलक्षणम् ।
 छित्त्वा जगाद प्रणतः सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥ १५५ ॥
 नष्टं यशश्च राज्यं च येन मे पुनराहृतम् ।
 कृतं नाद्यापि तत्कार्यं धिक्कां निष्फलजीवितम् ॥ १५६ ॥
 गुणौघैस्तस्य देवस्य शक्तः कर्तुं प्रतिक्रियाम् ।
 यस्य सप्तार्णवव्यापि सप्ततालभिदो यशः ॥ १५७ ॥
 युधि हेलाहतेनैव विराधेनाविराधितौ ।
 प्राज्यौ यस्य भुजस्तम्भौ कबन्धवधवान्धवौ ॥ १५८ ॥
 तस्य संग्रामसाहाय्ये व्यग्रस्य मम केवलम् ।
 भक्तिमात्रोपकरणं तथाप्येष समुद्यमः ॥ १५९ ॥
 मोहाद्यतिक्रमो यश्च स मम क्षम्यतां त्वया ।
 न कस्यानेकदोषोऽपि सुहृत्काय इव प्रियः ॥ १६० ॥
 इति श्रुत्वा कपिपतेर्वचनं राघवानुजः ।
 तमूचे सत्त्वसारस्य सर्वमेतत्तवोचितम् ॥ १६१ ॥
 ममार्यं शोकतप्तस्य क्षन्तव्यं परुषं त्वया ।
 सद्भिः पदप्रहारोऽपि व्यसनार्तस्य सद्यते ॥ १६२ ॥

आर्यस्य दैवनिर्दिष्टः सुवृत्तो विषदाशयः ।
 दर्पणः सुखदुःखेषु त्वं सुहृत्संमुखः सदा ॥ १६३ ॥
 सहायेन त्वयावश्यं सुहृदा रघुनन्दनः ।
 अवाप्स्यति हतारातिः सीतां कीर्तिमिव प्रियाम् ॥ १६४ ॥
 सखे तूर्णमितो गत्वा प्रौढकोपानलाकुलः ।
 यत्नेनाश्वास्यतामार्यस्त्वया निर्दिष्टकारिणा ॥ १६५ ॥
 प्रेमपात्रेण सुहृदा दर्शनामृतवर्षिणा ।
 दुःखदाहं त्यजत्येव प्रियेणाश्वासितं मनः ॥ १६६ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते तथेत्युक्त्वा हरीश्वरः ।
 परिवृत्याननं किञ्चिदुवाच पवनात्मजम् ॥ १६७ ॥
 कुलाचलेषु सर्वेषु समुद्रेषु वनेषु च ।
 दिक्षु द्वीपेषु गगने निर्मनुष्यासु भूमिषु ॥ १६८ ॥
 ये शैलजलदप्रख्या वसन्ति हरियूथपाः ।
 तूर्णनायान्तु ते दूतैस्त्वद्विसृष्टैर्मदाज्ञया ॥ १६९ ॥
 राजाज्ञादूषका ये तु नायान्ति मदमोहिताः ।
 शरीरे दुःसहस्तेषां दण्डः क्षिप्रं निपात्यताम् ॥ १७० ॥
 इत्युक्ते प्लवगेन्द्रेण हनूमद्वाक्यचोदिताः ।
 कपीनां भीमवेगानां कोट्यस्तूर्णं दिशो ययुः ॥ १७१ ॥
 इति हनुमद्वादेशः ॥ ३ ॥
 उदयास्ताचलशिरःशिखरेभ्यो महीयसाम् ।
 कपीनां दश तिस्रश्च कोट्यस्तूर्णं समाययुः ॥ १७२ ॥
 स्फुरत्केसरताराणां हरीणां हरितेजसाम् ।
 शतानि सप्तकोटीनामाययुः स्फटिकाचलात् ॥ १७३ ॥
 हिमाद्रिवासिनां दिव्यफलमूलरसाशिनाम् ।
 क्षिप्रं कोटीसहस्राणां सहस्रं समुपाययौ ॥ १७४ ॥
 भीमानां भीमवेगानां दीप्ताङ्गारकवर्चसाम् ।
 सहस्रं कपिकोटीनामाययौ विन्ध्यभूधरात् ॥ १७५ ॥

तं न सेहे हरिर्द्रष्टुं संवित्कालव्यतिक्रमात् ।
 चिरं प्रणामव्याजेन वैलक्ष्यविनताननः ॥ १२४ ॥
 रुमया सहिता तारा प्रणनाम कृताञ्जलिः ।
 नमत्कर्णोत्पलरजोलेशाशवलितस्तनी ॥ १२५ ॥
 स्वमेव वदनं पश्यन्संक्रान्तं मणिकुट्टिमे ।
 ऊचे हरीन्द्रः सौमित्रिमासनं गृह्यतामिति ॥ १२६ ॥
 तं लक्ष्मणोऽवदद्भूताः कृतार्था एव सत्कृतिम् ।
 भजन्ते पूजयोच्छिष्टैः किं दूतैः कार्यनिष्फलैः ॥ १२७ ॥
 शृणु तावत्कपिपते यत्प्रियाविरहादितः ।
 संविद्यतिक्रमकुद्धस्त्वामाह रघुनन्दनः ॥ १२८ ॥
 हन्तोचिता तवैवेयं शाखामृग कृतघ्नता ।
 येनात्मसुखलब्धेन विप्रलब्धः सुहृज्जनः ॥ १२९ ॥
 कुलं खजनमात्मानं सुकृतं च निहन्ति यत् ।
 तदसत्यं कथं नाम तव वल्लभतां गतम् ॥ १३० ॥
 ऐश्वर्यविषसंदर्भमूर्छामीलितलोचनः ।
 प्रियानपि न पश्यन्ति सुहृत्स्वजनबान्धवान् ॥ १३१ ॥
 कृतघ्नः सर्वभूतानां बध्यः सर्वात्मना कपे ।
 न स्मरत्यचलं स्फूर्जमुपकारं निगीर्य यः ॥ १३२ ॥
 अस्ति विप्रवधादीनां पापानां महतामपि ।
 निष्कृतिर्न कृतघ्नानामित्युवाच प्रजापतिः ॥ १३३ ॥
 धौता हरजटाजूटभ्रष्टगङ्गाजलैरपि ।
 कृतघ्नधारणमलं मही मन्ये न मुञ्चति ॥ १३४ ॥
 इति त्वामाह सुग्रीव रामः सत्यपराक्रमः ।
 येन वालिवधे न्यस्तः शोकः कोपपदे द्विषाम् ॥ १३५ ॥
 अहो नु स्त्रीप्रधानस्य समदस्य प्रमादिनः ।
 विस्मृतं मित्रकार्ये ते मूर्खस्येव सुभाषितम् ॥ १३६ ॥

संत्यक्तसर्वकार्याणां प्रशान्तनिजतेजसाम् ।
 स्त्रीप्रणामपरिस्नानमानं धिग्जन्म रागिणाम् ॥ १३७ ॥
 गीतेनेव कुरङ्गस्य पतङ्गस्येव तेजसा ।
 स्त्रीसङ्गेन तवासन्नः सत्यं नाशः प्लवङ्गम ॥ १३८ ॥
 सर्वेषां योषितः सन्ति भोगाः कस्य न बल्लभाः ।
 किं तु त्वत्सदृशः कोऽस्ति यातं कालं न वेत्ति यः ॥ १३९ ॥
 इति कोपाकुलालापे ब्रुवाणे राघवानुजे ।
 तारा ताराधिपमुखी तमूचे वल्गुनादिनी ॥ १४० ॥
 नायं लक्ष्मण कोपस्य वचसः परुषस्य च ।
 अर्हः सुहृत्कपिपतिः सर्वथा प्रणयी तव ॥ १४१ ॥
 तवेन्दुसुन्दरादस्मान्मुखात्कमललोचन ।
 वचःस्फुलिङ्गाः पतिताः सत्यं नः कर्मविप्लवात् ॥ १४२ ॥
 नासत्यवादी न शठो न कृतघ्नो न दुर्जनः ।
 सुग्रीवो रामकार्ये तु योगीव ध्याननिश्चलः ॥ १४३ ॥
 अत्युन्नतो महाभोगः श्रीमान्स्वगुणचामरः ।
 रामेणैव यशःस्तम्भः कल्पस्थायीकृतः पदे ॥ १४४ ॥
 चन्द्रिकाभरणे हर्म्ये कान्ताकुचपुरःसरः ।
 सुखं न शेते सुग्रीवस्तप्तः काकुत्स्थचिन्तया ॥ १४५ ॥
 पुरा जितेन्द्रियः सोऽपि विश्वामित्रस्तपोनिधिः ।
 प्रयातं विपुलं कालं न मेने मेनकारतः ॥ १४६ ॥
 विवशास्त्रिदशा यत्र मुनयो यत्र मोहिताः ।
 प्रियासमागमे तस्मिन्मनः कस्य न लीयते ॥ १४७ ॥
 रिपुक्षयसहायस्ते भ्रातस्ते दयितः सुहृत् ।
 यथा रामस्तथैवायं पूज्यः श्रीमान्कपीश्वरः ॥ १४८ ॥
 हत्वा दशास्यं समरे सीतामाहृत्य दुर्लभाम् ।
 एष प्रदास्यति क्षिप्रं रामस्य प्रीत्युपायनम् ॥ १४९ ॥

को वा रामस्य साहाय्ये पुरः समुपयुज्यते ।
 तथापि प्रणयस्यैषा वचसि प्रभविष्णुता ॥ १५० ॥
 सप्ताब्धिवेलाविश्रान्तशासनस्यास्य शासनात् ।
 जगत्कपिमयं सर्वं रामकार्यं भविष्यति ॥ १५१ ॥
 इति तारावचः श्रुत्वा मधुरं मधुराशयः ।
 मृदुस्वभावः सौमित्रिः प्रसादं सहसा ययौ ॥ १५२ ॥
 न कस्य गाढसौहार्दं प्रेम प्रणयपेशलम् ।
 ललनावदनाम्भोजनिर्गतं वाङ्माधु प्रियम् ॥ १५३ ॥
 प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा लक्ष्मणं वानरेश्वरः ।
 भयं चिन्तां च तत्याज न तु लज्जामनङ्गजाम् ॥ १५४ ॥
 स माल्यं कण्ठसंसक्तं रतिसंभोगलक्षणम् ।
 छित्त्वा जगाद प्रणतः सौमित्रिं मित्रवत्सलः ॥ १५५ ॥
 नष्टं यशश्च राज्यं च येन मे पुनराहृतम् ।
 कृतं नाद्यापि तत्कार्यं धिक्कां निष्फलजीवितम् ॥ १५६ ॥
 गुणौघैस्तस्य देवस्य शक्तः कर्तुं प्रतिक्रियाम् ।
 यस्य सप्तार्णवव्यापि सप्ततालभिदो यशः ॥ १५७ ॥
 युधि हेलाहतेनैव विराधेनाविराधितौ ।
 प्राज्यौ यस्य भुजस्तम्भौ कबन्धवधवान्धवौ ॥ १५८ ॥
 तस्य संग्रामसाहाय्ये व्यग्रस्य मम केवलम् ।
 भक्तिमात्रोपकरणं तथाप्येष समुद्यमः ॥ १५९ ॥
 मोहाद्भक्तिक्रमो यश्च स मम क्षम्यतां त्वया ।
 न कस्यानेकदोषोऽपि सुहृत्काय इव प्रियः ॥ १६० ॥
 इति श्रुत्वा कपिपतेर्वचनं राघवानुजः ।
 तमूचे सत्त्वसारस्य सर्वमेतत्तवोचितम् ॥ १६१ ॥
 ममार्य शोकतप्तस्य क्षन्तव्यं परुषं त्वया ।
 सद्भिः पदप्रहारोऽपि व्यसनार्तस्य सद्यते ॥ १६२ ॥

आर्यस्य दैवनिर्दिष्टः सुवृत्तो विषदाशयः ।
 दर्पणः सुखदुःखेषु त्वं सुहृत्संमुखः सदा ॥ १६३ ॥
 सहायेन त्वयावश्यं सुहृदा रघुनन्दनः ।
 अवाप्स्यति हतारातिः सीतां कीर्तिमिव प्रियाम् ॥ १६४ ॥
 सखे तूर्णमितो गत्वा प्रौढकोपानलाकुलः ।
 यत्नेनाश्वास्यतामार्यस्त्वया निर्दिष्टकारिणा ॥ १६५ ॥
 प्रेमपात्रेण सुहृदा दर्शनामृतवर्षिणा ।
 दुःखदाहं त्यजत्येव प्रियेणाश्वासितं मनः ॥ १६६ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते तथेत्युक्त्वा हरीश्वरः ।
 परिवृत्याननं किञ्चिदुवाच पवनात्मजम् ॥ १६७ ॥
 कुलाचलेषु सर्वेषु समुद्रेषु वनेषु च ।
 दिक्षु द्वीपेषु गगने निर्मनुष्यासु भूमिषु ॥ १६८ ॥
 ये शैलजलदप्रख्या वसन्ति हरियूथपाः ।
 तूर्णमायान्तु ते दूतैस्त्वद्विसृष्टैर्मदाज्ञया ॥ १६९ ॥
 राजाज्ञादूषका ये तु नायान्ति मदमोहिताः ।
 शरीरे दुःसहस्तेषां दण्डः क्षिप्रं निपात्यताम् ॥ १७० ॥
 इत्युक्ते प्लवगेन्द्रेण हनूमद्वाक्यचोदिताः ।
 कपीनां भीमवेगानां कोट्यस्तूर्णं दिशो ययुः ॥ १७१ ॥
 इति हनुमद्व्यदेशः ॥ ३ ॥
 उदयास्ताचलशिरःशिखरेभ्यो महीयसाम् ।
 कपीनां दश तिस्रश्च कोट्यस्तूर्णं समाययुः ॥ १७२ ॥
 स्फुरत्केसरताराणां हरीणां हरितेजसाम् ।
 शतानि सप्तकोटीनामाययुः स्फटिकाचलात् ॥ १७३ ॥
 हिमाद्रिवासिनां दिव्यफलमूलरसाशिनाम् ।
 क्षिप्रं कोटीसहस्राणां सहस्रं समुपाययौ ॥ १७४ ॥
 भीमानां भीमवेगानां दीप्ताङ्गारकवर्चसाम् ।
 सहस्रं कपिकोटीनामाययौ विन्ध्यभूधरात् ॥ १७५ ॥

क्षीरोदकच्छकूलेभ्यस्तमालवनगन्धिनाम् ।
 निःसंख्या कपिवीराणां प्रवाहिन्यः समाययुः ॥ १७६ ॥
 निरुद्धभास्करालोके प्रसर्पितबलार्णवे ।
 हनूमत्प्रेरिता दूतास्ते प्रापुस्तुहिनाचलम् ॥ १७७ ॥
 दिव्यान्नरसनिष्पन्दे यज्ञे माहेश्वरे पुरा ।
 फलमूलानि जातानि ते तत्र ददृशुर्मुदा ॥ १७८ ॥
 सुधाखादानि दिव्यानि क्षुत्क्लमापहराणि ते ।
 समादाय ययुस्तूर्णं तानि सुग्रीवमण्डलम् ॥ १७९ ॥
 निवेद्य वानरेन्द्राय ते तद्विव्यमुपायनम् ।
 प्रथमं वानरचमूं शशंसुः समुपागताम् ॥ १८० ॥
 प्रस्तुतोऽथ गिरौ रामं द्रष्टुं हनुमतो गिरा ।
 भीतभीतोऽभवत्क्षिप्रं दोलालोलाशयः कपिः ॥ १८१ ॥
 ततः प्लवगसैन्येन महता प्लवगेश्वरः ।
 आरुह्य रत्नशिबिकां प्रतस्थे राघवाचलम् ॥ १८२ ॥
 स मात्यवन्तमासाद्य सेनासंच्छादिताम्बरः ।
 ससर्प राभाभिमुखं पञ्चाभेव कृताञ्जलिः ॥ १८३ ॥
 लक्ष्मणेन युतं दृष्ट्वा सुग्रीवं हनूमन्मुखैः ।
 सैन्येन च समायान्तं रामस्तत्याज विक्रियाम् ॥ १८४ ॥
 कृतागसि पुरः प्राप्ते सतां मन्युर्विलीयते ।
 दर्शनान्तं हि महतां प्रियेषु कलुषं मनः ॥ १८५ ॥
 इति सुग्रीवयात्रा ॥ ४
 निवारितसितच्छत्रं दूरविश्रान्तचामरम् ।
 मौलिरत्नप्रभासूत्रैरिव बद्धोन्नताञ्जलिम् ॥ १८६ ॥
 गाढं दोर्भ्यां परिष्वज्य राघवः सुहृदं प्रियम् ।
 समाभाष्य च सामात्यमूचे विश्रम्यतामिति ॥ १८७ ॥

ततः सुखोपविष्टं तं जर्गाद रघुनन्दनः ।
 अपि विस्मृतमित्रस्य सुखिनः कुशलं तव ॥ १८८ ॥
 त्यक्तस्वपरकार्याणां चिरसक्ता विभूतयः ।
 राज्ञां भोगाभिभूतानां न भवन्ति भवादृशाम् ॥ १८९ ॥
 प्रणयेनैतदुक्तोऽसि क्रियतामधुनोचितम् ।
 अनुद्वीर्णो हि वचसा मन्युर्नैवोपशाम्यति ॥ १९० ॥
 इति रामस्य वचनं वीतक्रोधो निशम्य सः ।
 लब्धाश्वासोऽपि वैलक्ष्यादतिनम्राननोऽवदत् ॥ १९१ ॥
 हेलावितीर्णराज्यस्य प्रत्याहृतयशःश्रियः ।
 मानद त्वत्प्रसादस्य सर्वदस्यः किमुच्यते ॥ १९२ ॥
 असेवाप्रतिपन्नस्य प्रीत्या पूर्वोपकारिणः ।
 ये शठा नोपयुज्यन्ते भारैर्मज्जति तैर्मही ॥ १९३ ॥
 वयस्यस्यातिदर्पोऽयं भक्तस्येति किमद्भुतम् ।
 अधुना मम भृत्यस्य दृश्यतां कार्यगौरवम् ॥ १९४ ॥
 इदं प्लवगसैन्यं मे सहसैव समागतम् ।
 अतोऽप्यतिगुणं भूरि क्रमेण समुपैष्यति ॥ १९५ ॥
 इमे सेनाग्रगा वीरा वयं भृत्याः प्रभुर्भवान् ।
 हत्वा दशास्यं त्रैलोक्यजयाय क्रियतां मतिः ॥ १९६ ॥
 इत्याकर्ण्य हरीन्द्रस्य विनयाभरणं वचः ।
 तं प्रत्युवाच काकुत्स्थः परिष्वज्य कृताञ्जलिम् ॥ १९७ ॥
 नैतच्चित्रं तव सखे गुणिनः सत्त्वशालिनः ।
 स्वभाव एव महतां परकार्यार्थमुद्यमः ॥ १९८ ॥
 द्युतिरिन्दोः प्रभार्कस्य दीप्तिर्वहेर्धृतिर्भुवः ।
 सतां च प्रकृतिः सत्यं परकार्यरतं मनः ॥ १९९ ॥
 तदैव जानकी लब्धा निहताश्च मयाहिताः ।
 यदैव दक्षिणेन त्वं मम धात्रार्पितः सुहृत् ॥ २०० ॥

इत्यादरेण सानन्दं ब्रुवाणे रघुनन्दने ।
 अपारः कपिसैन्याब्धिरपरोऽपि समाययौ ॥ २०१ ॥
 बालार्कवर्णैर्हेमाभैः शरवर्णैः शशिप्रभैः ।
 कोटिसहस्रैर्दशभिर्मेरुकन्दरवासिभिः ॥ २०२ ॥
 वीरः शतबलिर्नाम कपिः श्रीमानदृश्यत ।
 पिता सुषेणस्तारायाः कोटीनां कोटिभिर्वृतः ॥ २०३ ॥
 समाययौ जगद्धापी सुमेरुरिव जङ्गमः ।
 पिता हनुमतः श्रीमान्केसरी स्फारकेसरः ॥ २०४ ॥
 गवाक्षः पनसो धीमान्सन्नादः शरभो गजः ।
 रुमण्वानृषभो वीरो गवयो गन्धमादनः ॥ २०५ ॥
 वीरौ च मैन्दद्विविदौ कोटीनां कोटिभिर्वृतः ।
 मेघागममिवाकाले दर्शयन्तः समाययुः ॥ २०६ ॥
 वीरः पद्मसहस्रेण वृतः शङ्कुशतेन च ।
 युवराजोऽङ्गदः श्रीमान्प्रत्यदृश्यत दुर्जयः ॥ २०७ ॥
 वृतः कोटीसहस्राभ्यां तारस्तारानुजो बली ।
 हनुमांश्च महाभागः सैन्यानां प्रस्थितः पुरः ॥ २०८ ॥
 इन्द्रजानुः कपिवरः कपिकोट्या वृतो वरः ।
 वृतो द्वादशकोटीभिर्वीरो दधिमुखः कपिः ॥ २०९ ॥
 वृतः खर्वसहस्रेण कुमुदः कुमुदप्रभुः ।
 एकविंशतिकोटीनामीश्वरश्च दरीमुखः ॥ २१० ॥
 विजयो दुन्दुभो रम्भः संपाती जाम्बवान्नलः ।
 शतार्चिः शरगुल्मश्च वेगदर्शी महाहनुः ॥ २११ ॥
 सुनेत्रोल्कामुखौ चेति वानराः कामरूपिणः ।
 प्रत्यदृश्यन्त शैलाभाः प्रकम्पगुरवो भुवः ॥ २१२ ॥

रचिताञ्जलयः सर्वे सुग्रीवं प्रणिपत्य ते ।
 तदादिष्टेषु देशेषु ससैन्याः समुपाविशन् ॥ २१३ ॥
 इति बलागमनम् ॥ ५ ॥
 ततः शासनमादाय राघवस्य हरीश्वरः ।
 उवाच विनतं नाम वीरं वानरयूथपम् ॥ २१४ ॥
 पूर्वा दिशमितो गत्वा त्वमाखण्डलमण्डिताम् ।
 जानीहि रावणहृतां विचिन्त्य जनकात्मजाम् ॥ २१५ ॥
 यमुनां यमुनाद्रिं च जाह्नवीं सरयूमपि ।
 कौशिकीं तमसां नन्दां गोमतीं मागधीं पुरीम् ॥ २१६ ॥
 विदेहपुण्ड्रवङ्गाङ्गकिरातशकबन्धुरान् ।
 कर्णप्रावरणान्कालमुख्यान्पवनराक्षसान् ॥ २१७ ॥
 अन्तर्जलचरान्घोरात्समुद्रद्वीपसंश्रयान् ।
 सुवर्णकुड्यपर्यन्तं जम्बूद्वीपस्य भूधरान् ॥ २१८ ॥
 शिविरं नाम गगनासङ्गिशृङ्गं सुरालयम् ।
 कालोदकं च जलधिं यत्रालक्ष्याः क्षपाचराः ॥ २१९ ॥
 छायाग्रहं ब्रह्मशप्ताः कुर्वन्ति किल देहिनाम् ।
 ब्रह्मस्वहारिणः पूर्वं विप्रास्ते नरकं गताः ॥ २२० ॥
 वसन्ति तमसि स्फारे सदा क्षुत्क्षामकुक्षयः ।
 ततो रक्तजलं नाम समुद्रं घोरदर्शनम् ॥ २२१ ॥
 गृहं विहगराजस्य विशालं कूटशाल्मलिम् ।
 गोशृङ्गं च महानीलमब्धिमध्यात्समुत्थितम् ॥ २२२ ॥
 यत्र शृङ्गनिभा भीमा मन्देहा नाम राक्षसाः ।
 शृङ्गेभ्यः सलिले प्रातर्लभन्ते च पतन्ति च ॥ २२३ ॥
 ततः शशाङ्कधवलं क्षीरोदममृतास्पदम् ।
 यस्य मध्येऽशुमान्नाम जातो रजतभूधरः ॥ २२४ ॥
 रजताम्भोजनलिनी रम्यो रजतपादपः ।
 दिव्यां सुदर्शनां नाम हेमहंससरोजिनीम् ॥ २२५ ॥

तां सेवन्ते सदा सिद्धः सयक्षोरगकिंनराः ।
 ततो घृतोदधिं गत्वा यत्रासौ बडवानलः ॥ २२६ ॥
 पयः प्राश्नात्यविरतं क्रोशतां जलवासिनाम् ।
 हैमं तस्योत्तरे कूले योजनानि चतुर्दश ॥ २२७ ॥
 गिरिं सहस्रशिरसं शेषेणासेवितं स्वयम् ।
 उदयाद्रिं ततो गत्वा शृङ्गं सौमनसं ततः ॥ २२८ ॥
 वालखिल्यैः परिवृतं त्रिविक्रमपदाङ्कितम् ।
 विचित्रं निखिलं सीता भवद्भिर्दृश्यतां सती ॥ २२९ ॥
 अतः परमगम्यैव प्राची दिक्षितमिरावृता ।
 मासः परोऽवधिः सीतान्वेषणेऽस्मिन्मयोदितः ॥ २३० ॥
 शरीरपरमो दण्डस्तदतिक्रमकारिणाम् ।
 इत्युक्त्वा विनतं पूर्वा विसज्य दिशमाशुक्लत् ॥ २३१ ॥
 सोऽब्रवीज्जाम्बवन्मुख्यान्सनीलाङ्गदवायुजान् ।
 भवद्भिर्दृश्यतामाशा दक्षिणा मम दक्षिणैः ॥ २३२ ॥
 नर्मदालिङ्गितो विन्ध्यस्ततो वेगवती नदी ।
 कृष्णवर्णा सवरदा देविका वायुमत्यपि ॥ २३३ ॥
 मेकलोत्कलिका जम्बूर्वाहिनी वेत्रवत्यपि ।
 दशार्णा निषधाद्याश्च देशाः पुण्ड्रककोसलाः ॥ २३४ ॥
 श्रीखण्डशैलो मलयाः कावेरीवलयोचितः ।
 स पाण्ड्यविषयः श्रीमानगम्याश्रममण्डितः ॥ २३५ ॥
 ततो विधातुरादेशादतरङ्गो महोदधिः ।
 हेमशृङ्गस्तटे यस्य महेन्द्रः शक्रसेवितः ॥ २३६ ॥
 समुद्रादुद्गतश्चान्यो गिरिश्चन्द्रार्कयोः सुहृत् ।
 यस्येन्दुः सेवते शृङ्गं रौप्यं हैमं च भास्करः ॥ २३७ ॥
 पारसमुद्रं विद्युत्त्वान्विश्वकर्मकृतो गिरिः ।
 उशीरभोजनामा च ततोऽद्रिः काञ्चनद्रुमः ॥ २३८ ॥

१. 'विदित्वा' ख. २. 'निखिले' शा०.

देहान्तकाले पश्यन्ति तान्वृक्षान्सर्वजन्तवः ।
 पितृलोकस्ततो घोरः कान्ता यमपुरी ततः ॥ २३९ ॥
 यस्यां कनकवैडूर्यस्तम्भभूरिप्रभां सभाम् ।
 धर्मासनगतः श्रीमानध्यास्ते भगवान्यमः ॥ २४० ॥
 महर्षेः पुण्यतपसस्तृणाङ्गेराश्रमस्ततः ।
 कल्पवृक्षैः परिवृतः स्वर्गेणोपेत्य सेवितः ॥ २४१ ॥
 विचित्य ज्ञायतां तूर्णं देशेष्वेतेषु मैथिली ।
 अतः परमनालोकमसूर्यमजनं जगत् ॥ २४२ ॥
 मासोऽस्मिन्नवधिः कार्ये वध्यो मे तद्व्यतिक्रमी ।
 हनुमत्स्कन्धविन्यस्तं रामकार्यमिदं महत् ॥ २४३ ॥
 ममावश्यं सफलतां यशसा सह यास्यति ।
 सुग्रीवस्येति वचनं दृशैकविनिवेशितम् ॥ २४४ ॥
 श्रुत्वा रामः प्रियालाभे बबन्धाशां हनूमति ।
 स तस्मै निजनामाङ्कं प्रत्ययाय मृगीदृशः ॥ २४५ ॥
 पिङ्गरत्नप्रभासङ्गैर्वितताराङ्गुलीयकम् ।
 वायुपुत्रस्तदादाय सहाङ्गदपुरःसरैः ।
 प्रणम्य रामसुग्रीवौ प्रययौ दक्षिणां दिशम् ॥ २४६ ॥
 इत्यङ्गुलीयकदानम् ॥ ६ ॥
 ततः सुषेणं सुग्रीवः श्वशुरं सैन्यनायकम् ।
 उवाचान्विध्यतामाशा सीतार्थे पश्चिमा त्वया ॥ २४७ ॥
 खराष्ट्राभीरबाह्लिकामद्रशूर्पानकादिषु ।
 पुन्नागकेतकवने शङ्खतालीवनेषु च ॥ २४८ ॥
 सिन्धुककयकौ वीरसृङ्गयेषु महोदधौ ।
 मरीचिपत्तने पुण्ये सिन्धुद्वीपे जले स्थले ॥ २४९ ॥
 कन्दरासु सुमेरोश्च सिन्धुसागरसंगमे ।
 शतशृङ्गे गिरौ सिंहैः सपक्षैरुत्कटैर्वृते ॥ २५० ॥

१. 'दृशैव विनिवेदितम्' शा०. २. 'शङ्खनाडीवनेषु च' शा०.

स्त्रीराज्ये मरुदेशेषु पुण्ये पञ्चनदे ततः ।
 काश्मीरमण्डले तक्षशिलायां शैकले पुरे ॥ २५१ ॥
 आरट्टवाहिकाम्बोजखशचीनवनेषु च ।
 मणिमत्पर्वतोद्देशे पश्चिमाब्धौ तथा परे ॥ २५२ ॥
 पारियात्रस्य शिखरे गन्धर्वगणदुर्जये ।
 समुद्रपादसंजाते चक्रवर्त्यचलोत्तमे ॥ २५३ ॥
 यत्र चक्रं सहस्रारं दृश्यते वज्रमण्डलम् ।
 सहस्रवर्तकलिले यस्मिन्देशे जनार्दनः ॥ २५४ ॥
 हत्वा पञ्चजनं तीव्रं हयग्रीवं च दुःसहम् ।
 अवाप पाञ्चजन्याख्यं शङ्खं च दीप्तिमत् ॥ २५५ ॥
 वराहशैले विपुले तस्मिन्प्राग्ज्योतिषे पुरे ।
 यस्मिन्स नरको नाम घोरो वसति दानवः ॥ २५६ ॥
 ततः सहस्रधाराङ्के गिरौ हेमद्रुमेषु च ।
 पर्वतानां सहस्रेषु हेमवल्लीतृणेषु च ॥ २५७ ॥
 अद्रेः कनकशृङ्गस्य शेखरे भास्करप्रभे ।
 रत्नप्रासादभवने वरुणेन कृतास्पदे ॥ २५८ ॥
 हेमताले च विपुले शैलाभे स्कन्दशेखरे ।
 अस्ताचले सहस्रांशुतापप्रोद्धूतपावके ॥ २५९ ॥
 द्रष्टव्या रावणहृता भवता जनकात्मजा ।
 एतावान्दृश्यते लोको निरालोकस्ततः परः ॥ २६० ॥
 जानकीविचये मासः सर्वेषामवधिर्मतः ।
 इत्युक्त्वा कपिभूपालः सुषेणं पश्चिमां दिशम् ॥ २६१ ॥
 विसृज्याग्रे शतबलं प्रोवाच हरियूथपम् ।
 उत्तरां त्वमितो गत्वा दिशं धनदपालिताम् ॥ २६२ ॥
 विचित्य सानुगस्तूर्णं जानीहि जनकात्मजाम् ।
 तङ्गनानृषिकान्मलेच्छांस्तुक्खारान्रमणाञ्छकान् ॥ २६३ ॥

१. 'कानने वने' शा० शोधितः, क-पुस्तके च. २. 'नीच' ख. ३. 'तुरुष्का' शा०.

.दरदान्शैलकुञ्जांश्च दिव्यं धाम हिमाचलम् ।
 देवदारुवनोपेतं भूर्जलोभ्रकुटाचिंतम् ॥ २६४ ॥
 कालशैलं हेमगर्भं भूधरं च सुदर्शनम् ।
 दिव्यं देवसमं नाम गिरिधातुरसाकरम् ॥ २६५ ॥
 अतश्चाभूतसंचारं खं नदीनैदवर्जितम् ।
 शतयोजनविस्तीर्णं संतप्तं सूर्यरश्मिभिः ॥ २६६ ॥
 तदतीत्य ततश्चन्द्रसहस्रपरिपाण्डुरम् ।
 चन्द्रकान्तभयोत्तुङ्गशृङ्गं स्फटिकभूधरम् ॥ २६७ ॥
 पुरी यत्र कुबेरस्य निर्मिता विश्वकर्मणा ।
 ततस्त्रिकुभं नाम गिरिं हेमाद्रिमानसम् ॥ २६८ ॥
 नदी नागहदा नाम यस्मात्पुण्या परिस्तुता ।
 यस्य शृङ्गत्रयं हेमवैडूर्यरजतोर्जितम् ॥ २६९ ॥
 अग्नित्रयमभूदग्निहोत्रिणो विश्वकर्मणः ।
 सर्वभूताहुतिस्तत्र सर्वमेघो महामखः ॥ २७० ॥
 रुद्रेणाकारि येनाभूत्स भूतेशो महेश्वरः ।
 यस्माच्च कुहटा नाम प्रवृत्ता पावना नदी ॥ २७१ ॥
 ततः क्रौञ्चगिरिं घोरं बिलं सिद्धर्षिसेवितम् ।
 सर्वस्य स्वकृतं धाम मैनाकं वैर्त्मशेखरम् ॥ २७२ ॥
 किंनरीणां निजोद्यानं पुण्यं सप्तर्षिसेवितम् ।
 श्रीमान्यत्र कुबेरस्य विभवो मूर्तिमानिव ॥ २७३ ॥
 गजः करेणुभिः सार्धं हेमाब्जं गाहते सरः ।
 ततस्तमालतालीसलवङ्गतगरोचितम् ॥ २७४ ॥
 सुदर्शना हेमनदी रुचिरं गन्धमादनम् ।
 ततः कालागुरुश्यामं मन्दराद्रिं शुचिहृदम् ॥ २७५ ॥
 कालकूटामृतस्फारैर्लिप्तं मन्थोद्धतैरिव ।
 यत्र सा घृतपिण्डोदे सरसि ब्रह्मसेविते ॥ २७६ ॥

१. 'न्वितम्' ख. २. 'वन' शा०. ३. दन्त्यादिरपि शिववाची. ४. 'रज' ख.

सशब्दा सादृहासेव दिवः पतति जाह्नवी ।
 नदी वैतरणी यत्र मांसपङ्कास्थिनिर्भरा ॥ २७७ ॥
 रक्तोदका यक्षरक्षःसेविता केशशैवला ।
 पिशाचोरगगन्धर्वशरीरशकलाकुला ॥ २७८ ॥
 स मन्दरमतिक्रम्य धूमकेतुं महीधरम् ।
 हैमं शरवनं यत्र कार्तिकेयस्य जन्मभूः ॥ २७९ ॥
 उदीच्यां स्वशरा यत्र कपिला वेत्रनिघ्नगा ।
 शैलोदा नाम तटिनी ततो यस्यास्तटद्वये ॥ २८० ॥
 वेणवः कीचका नाम व्याक्षेपैस्तारयन्ति ये ।
 कुरूनथोत्तरान्दिव्यां नीलां प्राणहरां नदीम् ॥ २८१ ॥
 पारे स्वर्गोपमा यस्याः समा मणिमयी मही ।
 हेमपद्माश्च पद्मिन्यः कल्पवृक्षाश्च पुष्पिताः ॥ २८२ ॥
 यत्र चैत्ररथाभिख्ये वने क्षीरघृतापगाः ।
 दिव्यभोगाश्च ललना नित्यसौभाग्ययौवनाः ॥ २८३ ॥
 गुहां गुहसहस्राढ्यां ततश्च तिमिरावतीम् ।
 यस्यामप्सरसो लीना दृश्यन्ते विविधाद्भुताः ॥ २८४ ॥
 तस्य देशस्य रम्यत्वाद्विस्मृतत्रिदशागमाः ।
 सुरवारविलासिन्यः शप्तास्ताः शतमन्युना ॥ २८५ ॥
 अहन्यहनि नश्यन्ति प्रातः प्रातर्भवन्ति च ।
 तस्यां गुहायां घोरायां वसन्ति स्मृतिवर्जिताः ॥ २८६ ॥
 ततः सोमगिरिं सोमप्रभै रुद्रैः कृतास्पदम् ।
 कौतुकाद्ब्रह्मभवनं शृङ्गैर्द्रष्टुमिवोद्धतम् ॥ २८७ ॥
 तपोवनं मनोर्यत्र ब्रह्मसूनोः प्रजापतेः ।
 शशिस्थानं ततो गत्वा सर्वकामफलप्रदम् ॥ २८८ ॥
 यत्र सा राक्षसी घोरा महोलूखलमेखला ।
 तं तं विचित्य देशं च ज्ञातव्या जनकात्मजा ॥ २८९ ॥

१. 'उदेत्य स्वशिरो यत्र कपिलावर्तपाथसि' शा० ख.

मासावधिव्यपगमे वध्यास्ते चिरकारिणः ।
 इत्यादिश्योत्तरामाशां वीरं शतबलिं विभुः ।
 विसृज्य तूर्णमभवन्निर्वृत्तो वानरेश्वरः ॥ २९० ॥
 इति दिग्दर्शनम् ॥ ७ ॥
 छादिताशावकाशेषु गतेषु जवशालिषु ।
 प्लवगेष्वथ सुग्रीवं प्रोवाच रघुनन्दनः ॥ २९१ ॥
 अतो बताखिलो लोकः कथं दृष्टस्त्वया सखे ।
 लोकानेतान्विजानाति सूर्यस्त्वं वा तदात्मजः ॥ २९२ ॥
 इति पृष्ठो वयस्येन व्याजहार कपीश्वरः ।
 यदाहं वालिना भ्रात्रा वैरेणाभिसृतः पुरा ॥ २९३ ॥
 ततो मनोजवस्तूर्णं देशेष्वेतेषु विद्रुतः ।
 इति सुग्रीववचनं रामः श्रुत्वा प्रियोत्सुकः ॥ २९४ ॥
 यातानां कपिवीराणां दिनसंख्यापरोऽभवत् ।
 याते ततः शनैर्मासे विचित्य विनतः कपिः ॥ २९५ ॥
 पूर्वं दिशं जनकजामदृष्ट्वैव समाययौ ।
 प्रत्यागतः शतबलिस्तथैवान्विष्य चोत्तराम् ॥ २९६ ॥
 सुषेणः पश्चिमामाशामनुचित्य न्यवर्तत ।
 तेषु प्राप्तेष्वनालोक्य मैथिलीं रघुनन्दनः ॥ २९७ ॥
 तद्व्यावृत्तां बबन्धाशमेकीभूतां हनूमति ।
 अङ्गदानुगतास्तेऽपि प्लवगा हनुमन्मुखाः ॥ २९८ ॥
 रामकार्यदृढोत्साहाः प्रापुर्विन्ध्यभुवं पुनः ।
 दुर्गेषु गिरिजालेषु गुहासु गहनेषु च ॥ २९९ ॥
 विचित्य सीतां विविशुस्ते वनं निर्मृगद्विपम् ।
 निर्जने निर्दुर्मे तस्मिन्कानने विपुलं तपः ॥ ३०० ॥
 घोरो मुनिश्चचारोग्र्यं दण्डिनामातिकोपनः ।
 नष्टस्तस्मिन्वने तस्य दशवर्षः सुतः पुरा ॥ ३०१ ॥

तच्छापादभवत्सर्वं तन्निर्जलमृगद्रुमम् ।
 कृच्छ्रेणोत्तीर्य तं देशं वनमन्यत्प्रविश्य ते ॥ ३०२ ॥
 ददृशुर्घोरमसुरं मारीचतनयं पुरः ।
 तमुद्रतं महाकायं हन्तुकामं प्लवङ्गमान् ॥ ३०३ ॥
 अङ्गदस्तूर्णमाहूय जघानोरसि मुष्टिना ।
 महता वज्रवेगेन बलिना बालिसूनुना ॥ ३०४ ॥
 पपात रुधिरोद्गारगद्गदोग्रस्वरोऽसुरः ।
 तस्मिन्हते तदन्विष्य ते वनं बहुगह्वरम् ॥ ३०५ ॥
 उपविश्य परिश्रान्ता रामकार्यमचिन्तयन् ।
 तानूचे हनुमान्वीरः कृत्स्नेयं विचिता मही ॥ ३०६ ॥
 न तु दृष्ट्वा जनकजा मिथ्यैवायं परिश्रमः ।
 परीक्षितानि यत्नेन द्विधा कृत्वा तृणान्यपि ॥ ३०७ ॥
 सीता नासादितास्माभिः संपद्वाग्यच्युतैरिव ।
 क्रियते किं वृथैवायं निष्फलः कालसंक्षयः ॥ ३०८ ॥
 प्राणव्ययेनापि जनैरप्राप्यं प्राप्यते कुतः ।
 इति वायुसुतेनोक्ते विचार्यावददङ्गदः ॥ ३०९ ॥
 विपुलोद्योगिनामेताः स्वाधीनाः कार्यसिद्धयः ।
 उत्साहशक्तिहीनेभ्यः सिद्धोऽप्यर्थः पलाय्यते ॥ ३१० ॥
 अदृष्टेष्वन्यदेशेषु द्रष्टव्या जानकी पुनः ।
 निष्फलागमनक्रुद्धः सुग्रीवः केन सद्यते ॥ ३११ ॥
 अङ्गदेनेत्यभिहिते सोत्साहाः कपियूथपाः ।
 हृष्टाः सर्वे तथेत्युक्त्वा विन्ध्यमारुरुहृर्गिरिम् ॥ ३१२ ॥
 घने रोध्रवने तस्य सप्तच्छदवनेषु च ।
 विचित्य सीतां जग्मुस्ते कन्दरासु दरेषु च ॥ ३१३ ॥
 ते गत्वा दूरमध्वानं श्रमतृष्णानिपीडिताः ।
 तुल्यं जलं च सीतां च यत्नेन द्रष्टुमुद्यताः ॥ ३१४ ॥

ततः स्निग्धद्रुमच्छन्नं गम्भीरं ददृशुर्विलम् ।
 सूचितं हंसचक्राह्वैर्निर्गच्छद्भिर्निरन्तरैः ॥ ३१५ ॥
 प्रविश्य जललुब्धास्ते सुघोरतिमिरं बिलम् ।
 परस्परमवष्टभ्य निःसंज्ञा योजनं ययुः ॥ ३१६ ॥
 तृषार्तास्ते समासाद्य कृच्छ्रेणालोकिनीभुवम् ।
 मणिहेममयं दिव्यं ददृशुर्भास्वरं पुरम् ॥ ३१७ ॥
 तत्र हेमाब्जिनीरम्ये कचत्काञ्चनपादपे ।
 दृष्ट्वा हेमासनासीनां तापसीं विस्मयं ययुः ॥ ३१८ ॥
 कृष्णाजिनकृतासङ्गप्रोत्तुङ्गकुचकुञ्जला ।
 स्वमुखेन्दुप्रणयिना निशीथेनेव सेविता ॥ ३१९ ॥
 रुद्राक्षमालिकाव्यग्रं बिभ्रती पाणिपङ्कजम् ।
 अलिमालावलयितकल्पवल्लीव पल्लवम् ॥ ३२० ॥
 लावण्यशीकरासारैर्नयनामृतवर्षिणी ।
 सहसास्तंगतस्येन्दोरिव प्रव्रजिता द्युतिः ॥ ३२१ ॥
 विस्मितैर्हनुमन्मुख्यैस्तद्दर्शनगतक्लमैः ।
 कासि कस्येति पृष्ट्वैव वभाषे मृदुभाषिणी ॥ ३२२ ॥
 मयो मायानिधिः पूर्वं तपसा दानवेश्वरः ।
 प्रजापतिवरात्प्राप सर्वमौशनसं धनम् ॥ ३२३ ॥
 इह हेममयोद्यानं कृत्वा हेममयं परम् ।
 व्रतैरमरतां प्राप्तुं स चिरं यत्नवानभूत् ॥ ३२४ ॥
 अथाप्सरसि हेमायां प्रसक्तं रक्तमानसम् ।
 निनाय नष्टनियमवश्यतां तत्पुरंदरः ॥ ३२५ ॥
 हेमायाः सुरसुन्दर्यास्ततस्तुष्टः प्रजापतिः ।
 इदं हेमपुरं दिव्यं प्रददौ रत्नमन्दिरम् ॥ ३२६ ॥
 अहं तु मेरुसावर्णेर्मनोः पुत्री स्वयंप्रभा ।
 इदं रक्षयामि भवनं हेमाया दयितासखी ॥ ३२७ ॥

इह मूलफलं दिव्यं भक्षयित्वा गतक्लमाः ।
 वदन्तु निजवृत्तान्तं भवन्तस्तत्त्वमूचितम् ॥ ३२८ ॥
 इति स्वयंप्रभावाक्यं श्रुत्वा प्लवगपुंगवाः ।
 भुक्त्वा पीत्वा च सुखिनः स्ववृत्तान्तं न्यवेदयन् ॥ ३२९ ॥
 ततो विस्मृतमार्गास्ते मासमात्रं बिले स्थिताः ।
 ययुः स्वयंप्रभादेशात्कपयो मीलितेक्षणाः ॥ ३३० ॥
 शक्रवज्राहतिकृताद्विलात्तस्मात्प्लवङ्गमान् ।
 स्वयमुत्तार्य कारुण्यात्सा स्वं प्रत्याययौ पदम् ॥ ३३१ ॥
 इति बिलप्रवेशः ॥ ८ ॥
 निजहस्ताग्रसंरुद्धलोचनास्ते विनिर्गताः ।
 उन्मील्य नेत्रे शनकैः समुद्रं ददृशुः पुरः ॥ ३३२ ॥
 स्फटिकस्तम्भसंभारप्रभैः कल्लोलबाहुभिः ।
 प्रभञ्जनसमुद्भूतैर्नभोगातमिवोद्धतम् ॥ ३३३ ॥
 तरङ्गतटसंघट्टविस्फुटः शुक्तिसंपुटैः ।
 सतारकमिव व्योम हसन्तं व्यक्तमौक्तिकैः ॥ ३३४ ॥
 प्रतिबिम्बितशुभ्राभ्रव्यूहेन धवलोदरम् ।
 पुत्रं मैनाकमन्वेष्टुं मग्नेनेव हिमाद्रिणा ॥ ३३५ ॥
 जलद्विपकरोदीर्णशीकरासारदुर्दिनैः ।
 कुर्वाणमौर्वतप्तस्य निर्वापणमिवाम्भसः ॥ ३३६ ॥
 विस्फुरन्मकरस्फारस्फालितैर्वीचिसंचयैः ।
 दिशां दिशन्तमालोलदुगूलवलनामिव ॥ ३३७ ॥
 मुक्तांशुकुसुमैश्चित्ररत्नच्छायाग्रपल्लवैः ।
 तरङ्गैरुद्धतैर्व्याप्तं पारिजातशतैरिव ॥ ३३८ ॥
 आपूरितं नदीवृन्दैर्निगीर्णं वडवाग्निना ।
 नोत्सिक्तं न परिक्षीणमाशयं महतामिव ॥ ३३९ ॥
 सुधासहोदरैर्व्याप्तं शङ्खैः शीतांशुबान्धवैः ।
 यशोभिरिव रामस्य हृदयानुप्रवेशिभिः ॥ ३४० ॥

शूकारघोरनिर्घोषसलिलावर्तमण्डलैः ।
 कुर्वाणमिव कल्पान्तप्रारम्भोकारविभ्रमम् ॥ ३४१ ॥
 पयोभिर्गगनालम्रैः क्षणेन श्वभ्रपातिभिः ।
 संपदामिव सुव्यक्तं दर्शयन्तमनित्यताम् ॥ ३४२ ॥
 लोलफेनदुकूलाभिः सकम्पैर्वीचिमारुतैः ।
 तरङ्गिणीभिः प्रौढाभिर्विहितालिङ्गनोत्सवम् ॥ ३४३ ॥
 स्फूर्जत्फेनानिलस्फारपरिवृतोदकैः क्षणम् ।
 व्योमीकृतनिजाकारं सरिन्नाथीकृताम्बरम् ॥ ३४४ ॥
 अपारमल्लवं सारं संसारमिव दुस्तरम् ।
 अनेकाश्चर्यमालोक्य ते घोरं मकराकरम् ॥ ३४५ ॥
 उपविश्यातिनिर्विण्णाः पाणिन्यस्ताननाः क्षणम् ।
 न लेभेरे कपिवराश्चिन्ताब्धिपतिता धृतिम् ॥ ३४६ ॥
 इति समुद्रदर्शनम् ॥
 तानङ्गदोऽब्रवीद्वृष्टा हेमन्तं प्रत्युपस्थितम् ।
 मासोऽस्माकं विलेयातः सुग्रीवेन धृतोऽवधिः ॥ ३४७ ॥
 अधुना निष्फलक्लेशविनष्टोत्साहसंपदाम् ।
 इहैव नस्तपो मन्ये साधुवादोचितं सताम् ॥ ३४८ ॥
 इयान्क्लेशो धृतोऽस्माभिर्भर्तृपिण्डोपजीविभिः ।
 संसारोच्छित्तये कस्मान्न कृतस्त्यक्तविप्लवैः ॥ ३४९ ॥
 सन्तः संतोषशृङ्गस्थास्तृष्णाकल्लोलिनीजले ।
 उन्मग्नांश्च निमग्नांश्च पश्यन्ति जनसंततिम् ॥ ३५० ॥
 अथ वा यदि नास्त्येव विवेकः साधुसंमतः ।
 तत्सुग्रीवभयं घोरं येनपैति तदुच्यताम् ॥ ३५१ ॥
 स हि तीक्ष्णः प्रकृत्यैव रामेण च विवर्धितः ।
 प्राणेष्वेवापराधेऽस्मिन्व्यक्तं नः प्रहरिष्यति ॥ ३५२ ॥
 यौवराज्यमिदं दत्तं न तेन स्वेच्छया मम ।
 किं नु रामस्य वचसा यन्नितेनैतदर्पितम् ॥ ३५३ ॥

अद्य लब्धान्तरः स्पष्टं लोकप्रत्ययकारिणा ।
 कार्यनैष्फल्यदोषेण मय्येव प्रहरिष्यति ॥ ३५४ ॥
 प्राप्यः सदा प्रणामेन प्रभुर्वक्त्रावलोकिताम् ।
 सत्यं विभवमानोऽयमवमानशतैः समः ॥ ३५५ ॥
 स जातः प्रथिता यस्य पुण्याः संतोषसंपदः ।
 नान्यवक्त्रावलोकित्यस्तरुण्यो वा विभूतयः ॥ ३५६ ॥
 सत्सु निर्झरझङ्काररम्येषु फलशालिषु ।
 वनेषु विभवोग्राणां भ्रूभङ्गः संहते कथम् ॥ ३५७ ॥
 धिक्सेवां क्षमतां लक्ष्मीः स्वजनेष्वयमञ्जलिः ।
 स्तब्धग्रीवस्य न सहे सुग्रीवस्योत्कटं वचः ॥ ३५८ ॥
 वियोगरोगैः किं भोगैः किं विप्रियमयैः प्रियैः ।
 किं कान्ताभिः क्षणान्ताभिर्यदि मानोन्नतं मनः ॥ ३५९ ॥
 उद्वेगमध्या दुःखान्ता विचारविरसाः सदा ।
 आयान्त्य एव शोभन्ते वेश्या इव विभूतयः ॥ ३६० ॥
 अधुना सर्वदुःखानां कारणं निलयं शुचः ।
 शरीरं पातकमिव क्षपयाम्युचितैर्व्रतैः ॥ ३६१ ॥
 इत्यङ्गदवचः श्रुत्वा वानराः साश्रुलोचनाः ।
 प्रशंसन्तोऽस्य संतोषं प्रत्यभाषत चिन्तितम् ॥ ३६२ ॥
 उक्तं च सदृशं सत्त्वाभिमानस्य त्वयोचितम् ।
 श्रमे बन्ध्ये विधौ वामे वैराग्यं शोभते सताम् ॥ ३६३ ॥
 युवराज तवैवासौ दोषेऽस्मिन्कपिभूपतिः ।
 प्रधानदण्डकृत्सत्यं विनाशाय भविष्यति ॥ ३६४ ॥
 तदैव निहतान्सान्विद्धि सिद्धिनिराकृतान् ।
 कालस्त्रिशूलं स यदा भ्रूभङ्गं दर्शयिष्यति ॥ ३६५ ॥

१. 'सह्यते' ख. २. 'उक्तं सत्त्वाभिमानस्य राजपुत्रद्वयोचितम्' शा० शोधितम्.
 ३. 'त्वयोदितम्' ख.

इति तेषां भयान्तानां वचनं वालिनन्दनः ।
 श्रुत्वा जगाद युष्माभिस्त्यज्यतामेष संभ्रमः ॥ ३६६ ॥
 अस्मिन्नेव बिले दुर्गे निवसामः सुसंभृताः ।
 न रामः प्रभवत्यत्र न सुग्रीवो न लक्ष्मणः ॥ ३६७ ॥
 अविलङ्घ्यश्च देशोऽयं बहुमूलफलोदकः ।
 शक्रोऽप्यत्र जयायैति याति भग्नमनोरथः ॥ ३६८ ॥
 श्रुत्वैतदङ्गदवचः शङ्कितः पवनात्मजः ।
 सुग्रीवगुणरक्तेन चेतसाचिन्तयत्क्षणम् ॥ ३६९ ॥
 अहो नु हारितं राज्यं सुग्रीवेण सहानुगैः ।
 [आपूर्यमाणं शश्वच्च तेजोवृद्धिपराक्रमैः ॥ ३७० ॥
 शशिनं शुक्लपक्षादौ वर्धमानमिव श्रिया ।
 बृहस्पतिसमं बुद्ध्या विक्रमे सदृशं पितुः ॥ ३७१ ॥
 शुश्रूषमाणं ताराया गुरोरिव पुरंदरम् ।
 भर्तुरर्थे पराक्रान्तो युक्तः शास्त्रविशारदः ॥ ३७२ ॥
 स चतुर्णामुपायानां तृतीयं मण्डदर्शनम् ।
 चतुर्दशगुणैर्युक्तं वाङ्मदं प्रति वायुजः ॥ ३७३ ॥]
 यस्याङ्गदोऽपि दुर्गेऽस्मिन्प्रतिपक्षदशां श्रितः ।
 बुद्धिमानेष नीतिज्ञः शूरः सप्रतिभो युवा ॥ ३७४ ॥
 आश्रयो गुणरत्नानां धैर्याब्धिर्वेधसा कृतः ।
 चतुर्दशगुणः सूनुः शक्रपुत्रस्य वालिनः ।
 कस्य शङ्कास्पदं नायं दुर्गमित्रबलोचितः ॥ ३७५ ॥
 हनूमानिति संचिन्त्य तं वञ्चयितुमुद्यतः ।
 ऊचे तदनुरक्तानां भेदाकृष्टिसहं वचः ॥ ३७६ ॥
 वीर वानरराज्येऽस्मिन्नार्हस्त्वत्सदृशोऽस्ति कः ।

१. 'निवासः सत्सु संवृतः' शा०. २. कोष्ठकान्तर्गताः श्लोकाः ख-पुस्तके शारदालिपिपूर्वपाठे च न सन्ति.

वेधसा कुलशैलानां सारेणैवासि निर्मितः ॥ ३७७ ॥
 विभिन्ने त्वयि सुग्रीवाहोलाचपलचेष्टिताः ।
 न त्वदीयास्त्वदीया वा भविष्यन्ति प्लवंगमाः ॥ ३७८ ॥
 सर्वस्य सर्वमप्यल्पं सर्वं स्वात्म्यं समीहते ।
 न हि नाम जनः कश्चिद्विभवस्थस्य तुष्यति ॥ ३७९ ॥
 स्वदेशविप्रकृष्टे च त्वयि दुर्गवनाश्रये ।
 स्वपुत्रदारसोत्कण्ठास्त्यक्ष्यन्ति त्वां निजानुगाः ॥ ३८० ॥
 ये स्वदेशे सदा नम्रा वाङ्मात्रेणैव सेविताः ।
 रत्नभारैरपि तते विदेशे यान्ति वश्यताम् ॥ ३८१ ॥
 पदस्थेनापदस्थस्य सुग्रीवेण तवाङ्गद ।
 न विरोधः क्षमः सत्यं पतङ्गस्यैव वहिना ॥ ३८२ ॥
 न दुर्गं बिलदुर्गं तु वज्रिवज्रावदारितम् ।
 अत्र लक्ष्मणबाणानां स्वेच्छाप्रणयिनी गतिः ॥ ३८३ ॥
 देशभङ्गे कुतोऽर्थस्ते हीनार्थस्य कुतोऽनुगाः ।
 तृणेऽपि चलतस्त्रासो निःसहायस्य जायते ॥ ३८४ ॥
 पदस्थस्यैव सुहृदः पदस्थस्यैव संश्रिताः ।
 नानुयाति च्युतं मित्रं रक्तोऽपि कमलाकरः ॥ ३८५ ॥
 अपुत्रश्चैव सुग्रीवस्त्वं पुत्रस्तस्य धर्मतः ।
 क्रमागतं निजं राज्यं मा कृथाश्चरणाहतम् ॥ ३८६ ॥
 इत्युक्तं वायुपुत्रेण प्रभुभक्तिपुरःसरम् ।
 श्रुत्वाङ्गदस्तं जगाद संरम्भलुलिताङ्गदः ॥ ३८७ ॥
 भ्रातुर्ज्येष्ठस्य येन प्राक्पिहितं शिलया बिलम् ।
 राज्यप्रदः सुखस्थेन येन रामोऽपि न स्मृतः ॥ ३८८ ॥
 कस्तस्मिन्कुटिलाचारे विश्वासं याति बुद्धिमान् ।
 यो भ्रातृरुधिरादिग्धां निर्घृणः श्रियमश्नुते ॥ ३८९ ॥
 मिथ्यैतदुक्तं भवता राज्यकामं न मे मनः ।

स्वस्ति तुभ्यमिहैवाहं शरीरं त्यक्तुमुद्यतः ॥ ३९० ॥
 इत्युक्त्वा वालितनयः कुशानास्तीर्य संयतः ।
 उपस्पृश्योदकं मौनी सानुगः समुपाविशत् ॥ ३९१ ॥
 दक्षिणाग्रेषु गर्भेषु ते कृत्वोत्तरतः शिरः ।
 स्थिताः सबाष्पनयनाः प्रशशंसुस्तदाङ्गदम् ॥ ३९२ ॥
 इति वानरप्रायोपवेशः ॥ १० ॥

अत्रान्तरे गृध्रपतिर्विन्ध्यकन्धरनिर्गतः ।
 आता जटायुषो ज्येष्ठः संपातिः प्रत्यदृश्यत ॥ ३९३ ॥
 स दृष्ट्वा वानरबलं प्रहृष्टः समचिन्तयत् ।
 अहो नु काले दैवेन निर्दिष्टं मम भोजनम् ॥ ३९४ ॥
 इत्याकलय्य शनकैस्तं देशं प्रससर्प सः ।
 अङ्गदोऽपि तमायातं विलोक्योवाच वानरान् ॥ ३९५ ॥
 अयं सत्यं महाकायः कालः कलिः ताखिलः ।
 संहर्तुमस्मान्संप्राप्तः काकुत्थाज्ञाव्यतिक्रमात् ॥ ३९६ ॥
 कार्यं न कृतमस्माभिर्भर्तृपिण्डः कृतो वृथा ।
 बृधोऽयं गर्हितः प्राप्तः कस्येदं कर्मणः फलम् ॥ ३९७ ॥
 धन्यो जटायुरेवैकस्त्यक्तासुरपि जीवति ।
 पुण्ये राघवकार्याग्नौ हुता येन निजा तनुः ॥ ३९८ ॥
 किं वा सुकृतिनस्तस्य सुकृतं वक्ष्यते परम् ।
 भाविनामपि येनोप्तं हृदये देहिनां यशः ॥ ३९९ ॥
 एतदाकर्ण्य संपातिर्दुःखितो आतृवत्सलः ।
 उवाच केन निहतो राघवार्थे ममानुजः ॥ ४०० ॥
 इत्युक्ते गृध्रराजेन तस्मै निखिलमङ्गदः ।
 चरितं रघुनाथस्य वैदेहीहरणं तथा ॥ ४०१ ॥
 वधं तदर्थे वीरस्य रावणेन जटायुषः ।
 रामसुग्रीवयोः सख्यं दिक्षु सीतानिरीक्षणम् ॥ ४०२ ॥

न्यवेदयद्यथावृत्तं कपीनां च कृतार्थताम् ।
 सर्वमाकर्ण्य संपातिस्तमूचे साश्रुलोचनः ॥ ४०३ ॥
 रावणेन हतो वीरः प्रियो आता ममानुजः ।
 तं हन्तुमद्य शक्तोऽहं न नाम जरसार्दितः ॥ ४०४ ॥
 प्रतिभाश्च प्रभावाश्च विभावाश्च शरीरिणाम् ।
 कलापाकपरिस्लाना यान्त्येव स्मृतिशेषताम् ॥ ४०५ ॥
 मोहः प्रज्ञाबलं हन्ति जरा पिबति यौवनम् ।
 जीवितं मृत्युरादत्ते सर्वमश्नात्यनित्यता ॥ ४०६ ॥
 अहं युवा जटायुश्च वृत्ते वृत्रवधे पुरा ।
 स्पर्धयाभिद्रुतौ व्योम्नि मार्तण्डरथवर्त्मना ॥ ४०७ ॥
 उदयाद्भास्करस्याग्रे प्रस्थितावस्तभूधरम् ।
 आवामवासौ मध्याहे व्योममध्ये महाजवौ ॥ ४०८ ॥
 ततः प्रदीप्तकिरणज्वालावलयमालिनः ।
 चण्डरश्मेः प्रतापेन जटायुर्विवशोऽभवत् ॥ ४०९ ॥
 आच्छादितोऽथ कृपया पक्षाभ्यां स मयानुजः ।
 जनस्थाने निपतितो मूर्छितः पर्वताकृतिः ॥ ४१० ॥
 दृष्टाः सूत्रोपमा नद्यः शैला वल्मीकसंनिभाः ।
 मेरुलक्षप्रमाणश्च मया दृष्टो दिवाकरः ॥ ४११ ॥
 निर्दग्धपक्षः पतितस्ततोऽहं विन्ध्यपर्वते ।
 विनष्टसंज्ञः संतप्तो मांसपिण्डोपमाकृतिः ॥ ४१२ ॥
 षड्रात्रेणाथ मां किंचित्प्राप्तसंज्ञं कृपानिधिः ।
 मरणे कृतसंकल्पं मुनिरूचे निशाकरः ॥ ४१३ ॥
 शरीरं न त्वया त्याज्यं कृच्छ्रेऽप्यस्मिन्विहंगम ।
 रामस्य चरितं श्रुत्वा पक्षौ तव भविष्यतः ॥ ४१४ ॥
 बलोत्साहोपपन्नश्च भविष्यसि पुनर्युवा ।
 मुनेरिति वचः श्रुत्वा स्थितोऽहं चिरमाशया ॥ ४१५ ॥

स्थितस्य मे विन्ध्यतटे साग्रं वर्षशतं ययौ ।
 सीता हृता मया दृष्टा रावणेन विहायसा ॥ ४१६ ॥
 इति गृध्रपतेर्वर्क्यं श्रुत्वा सर्वे प्लवंगमाः ।
 तं पप्रच्छ क सा देशे स्थिता देवीति शंस नः ॥ ४१७ ॥
 इति पृष्ठः कविवरैर्भ्रातुः कृत्वाम्बुधेस्तटे ।
 जलक्रियां विनिःश्वस्य शोकार्तस्तानभाषत ॥ ४१८ ॥
 मम निर्दग्धपक्षस्य क्षीणवृत्तेर्गतौजसः ।
 पुत्रः स्वपार्श्वः सततं ददात्याहृत्य भोजनम् ॥ ४१९ ॥
 एकदा स दिनस्यान्ते संप्राप्तश्चिरकारिणम् ।
 मया क्षुत्कोपतप्तेन पृष्ठो मां प्रत्यभाषत ॥ ४२० ॥
 महेन्द्रस्य गिरेः शृङ्गे सर्वेषां व्योमचारिणाम् ।
 एकायनगतो मार्गस्तत्र दृष्टं महाद्भुतम् ॥ ४२१ ॥
 अञ्जनाचलतुल्येन दशवक्त्रेण रक्षसा ।
 ह्रियमाणा मया दृष्टा नारी ललितलोचना ॥ ४२२ ॥
 क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च सस्वरम् ।
 मुहुरालोकिता साक्षैः कारुण्याद्योमचारिभिः ॥ ४२३ ॥
 तां वीक्ष्य रक्षोयुद्धाय समाभूदुद्धतं मनः ।
 ततोऽहं सान्त्वयिनयैर्वञ्चितस्तेन मायिना ॥ ४२४ ॥
 विघ्नकारणमेतन्मे जातं न क्रोद्धुमर्हसि ।
 इति पुत्रवचः श्रुत्वा क्रुद्धोऽहमवदं पुनः ॥ ४२५ ॥
 धिक्तां न रक्षिता किं सा त्वया दशरथस्रुषा ।
 राजा दशरथः श्रीमान्रामलक्ष्मणयोः पिता ॥ ४२६ ॥
 वीरः सुहृन्मम परं तत्सुतौ मे सुतोपमौ ।
 इत्युक्त्वाहं स्वतनयं चिरचिन्तापरः स्थितः ॥ ४२७ ॥
 अशक्तस्तत्प्रतीकारदानशील इवाधरः ।
 असिन्नेव क्षणे जातौ पुण्यरामकथामृतैः ॥ ४२८ ॥

पक्षौ ममाप्तवीर्यस्य सर्वे पश्यन्तु वानराः ।
 इहस्थ एव पश्यामि लङ्कायां जनकात्मजाम् ॥ ४२९ ॥
 सप्तमी गतिरस्माकं सौपर्णं च विलोचनम् ।
 वयमाहारतात्पर्यात्प्रकृत्या च विहंगमाः ॥ ४३० ॥
 योजनानां शतं सार्धं पश्यामस्तीक्ष्णचक्षुषा ।
 पुराणोऽहं जलनिधेर्लङ्घने न तथा क्षमः ॥ ४३१ ॥
 स्वस्ति वोऽस्तु ब्रजाम्येष हिमवन्तमतो गिरिम् ।
 तरन्तु वानराः क्षिप्रं सर्वे विक्रमशालिनः ।
 समुद्रं रावणपुरीं प्रविशन्त्वनिवारिताः ॥ ४३२ ॥
 श्रुत्वेति संपातिवचस्तमुवाचाथ जाम्बवान् ।
 त्वमेवोपायमस्माकं चिन्तयाम्भोधिलङ्घने ॥ ४३३ ॥
 रामकार्यं यथास्माकं तथा तव विशेषतः ।
 तस्मात्साधो त्वमेवात्र परमं नः परायणम् ॥ ४३४ ॥
 इति जाम्बवतः श्रुत्वा संपातिः पुत्रमस्मरत् ।
 स्मृतः सोऽप्याययौ क्षिप्रं पक्षाक्षेपधुताम्बुधिः ॥ ४३५ ॥
 ततो विदितवृत्तान्तः स पितुर्वचसा खगः ।
 सपार्श्वः प्रणतः सर्वानुवाच गरुडोपमान् ॥ ४३६ ॥
 युवराजोऽङ्गदः श्रीमान्मामारुह्य मनोजवम् ।
 उलङ्घ्य जलधिं यातु लङ्कां रावणपालिताम् ॥ ४३७ ॥
 इति गृध्रकुमारस्य वचः श्रुत्वा बलोर्जितम् ।
 प्रत्युवाचाङ्गदो मानी पूजयित्वाथ तद्वचः ॥ ४३८ ॥
 साधो कृतं त्वया सर्वं सुहृद्व्रणयशालिना ।
 त्रैलोक्यलङ्घनसहाः किं तु सन्तीह वानराः ॥ ४३९ ॥
 उपलब्धैव वैदेही सुहृदस्त्वत्पितुर्गिरा ।
 अधुना नास्ति नः किञ्चिदगम्यं व्यवसायिनाम् ॥ ४४० ॥

इत्युक्तो बालिपुत्रेण संपातिः सह सूनुना ।

जगामाभिमतामाशां नवपक्षावृताम्बरः ॥ ४४१ ॥

इति संपातिदर्शनम् ॥ ११ ॥

ततो जलनिधेस्तीरमुपसृत्य प्लवंगमाः ।

ददृशुर्जलकल्लोलमालावलयिता दिशः ॥ ४४२ ॥

जगज्जलमयं किंस्वित्क दिशः क नभः क भूः ।

इति चिन्तयतां येषां क्षणं मोह इवाभवत् ॥ ४४३ ॥

तं दानवकुलाकीर्णं भीमनिर्घोषभीषणम् ।

ते विलोक्यैव जलधिं निद्रां निशि न लेभिरे ॥ ४४४ ॥

उपविश्य प्रभातेऽथ संक्रान्ताः स्वमरीचिभिः ।

स्फुटं प्रभाते जलधां सहस्रगुणतामिव ॥ ४४५ ॥

हस्तिहस्तोपमैः शैलशृङ्गाभैर्मेघसंनिभैः ।

तरङ्गैः पूरितैर्व्योम्नि बभूवुः शिथिलोद्यमाः ॥ ४४६ ॥

तानब्रवीदङ्गदोऽब्धिसंदर्भाघटिताशयान् ।

धीराणामपि कोऽयं वः संरम्भः कातरोचितः ॥ ४४७ ॥

अदृश्यः सत्त्ववसतिर्गम्भीरो विपुलाशयः ।

स्थितिमानेष जलधिर्भवद्विरुपमीयते ॥ ४४८ ॥

अधैर्यलुप्तचित्तानां पौरुषं परिहीयते ।

लोभप्रतुष्टसत्त्वानामौचित्यं धनिनामिव ॥ ४४९ ॥

अपरिम्लानधैर्याणां पौरुषोत्साहशालिनाम् ।

अभिमानैकसाराणां किमसाध्यं महात्मनाम् ॥ ४५० ॥

लङ्घने जलधेरस्य करोतु सुदृढं मनः ।

यः स्फुटस्फाटिकगिरिस्फीते यशसि सादरः ॥ ४५१ ॥

जायते^३ कृतिनस्तस्य मतिः सागरलङ्घने ।

करिष्यति यशो यस्य सोऽतः सागरलङ्घनम् ॥ ४५२ ॥

१. 'प्रयाते जलद्यौ' शा०. २. 'शयः' शा०. ३. 'तां' शा०. ४. 'सतः' शा०.

प्रियरामस्य सुहृदः सुग्रीवस्य हितं प्रभोः ।
 क्रियतामुचितं वीरा विचार्य बलमात्मनः ॥ ४५३ ॥
 इत्युक्ते युवराजेन गजो वानरयूथपः ।
 किञ्चिल्लज्जानतशिरा मध्ये विपुलरंहसाम् ॥ ४५४ ॥
 उवाच गन्तुं शक्तोऽहं यत्नेन दशयोजनीम् ।
 गवाक्षोऽप्यवदद्वारिनिधौ तद्विगुणां गतिम् ॥ ४५५ ॥
 त्रिगुणां शरभः श्रीमानृषभोऽपि चतुर्गुणाम् ।
 गतिं पञ्चगुणामूचे तरस्वी गन्धमादनः ॥ ४५६ ॥
 मैन्दश्च षड्गुणां सप्तगुणां च द्विविधो बली ।
 उवाचाष्टगुणां वीरः सुषेणः सागरे गतिम् ॥ ४५७ ॥
 ततः पितामहसुतः श्रुतेन यशसा धिया ।
 वृद्धः प्रवृद्धचरितः शनैः प्रोवाच जाम्बवान् ॥ ४५८ ॥
 अस्माकमप्यभूत्पूर्वं स कश्चिद्गतिविक्रमः ।
 वयमद्य जराजीर्णाः शीर्णतारुण्यविभ्रमाः ॥ ४५९ ॥
 इयं यौवनपद्मस्य दुःसहा तुहिनाहतिः ।
 जराबलद्विपेन्द्रस्य कालसिंहनखावली ॥ ४६० ॥
 वशीकृतं करोत्येव हीनोत्साहबलप्रभम् ।
 वृद्धं नारीव सुप्रौढा जरा तारुण्यतस्करी ॥ ४६१ ॥
 स्मराम्यवाहनं देवमजाते गरुडे हरिम् ।
 अचन्द्रचूडमीशानमवृतेऽमृतमन्यते ॥ ४६२ ॥
 मया दृष्टाः सुबहुशो देवासुररणोत्सवाः ।
 येषु बन्दीकृताः शूरैस्त्रैलोक्यविजयश्रियः ॥ ४६३ ॥
 वृद्धोऽप्यद्याम्बुधौ गन्तुं शक्तः शिथिलविग्रहः ।
 दशोनं वा नवोनं वा योजनानामहं शतम् ॥ ४६४ ॥
 सदा समस्तभावानां काले संकोचकारिणि ।
 ह्यो वृत्तमद्य कथितं सत्यं न मन्यते जनः ॥ ४६५ ॥

अतीतचरिते वृद्धे विपुलं वक्तुमुद्यते ।
 हसन्ति यदि नो बालास्तदिदं श्रूयते मम ॥ ४६६ ॥
 त्रिसप्तकृतः पृथिवी बलियज्ञे मया पुरा ।
 प्रदक्षिणीकृता विष्णोस्त्रैलोक्याक्रमणे क्षणात् ॥ ४६७ ॥
 अस्ताचलमहं गत्वा मुहूर्तेनोदयाचलात् ।
 गन्धर्वकिंनरैर्जुष्टं प्रयातः स्फटिकाचलम् ॥ ४६८ ॥
 अद्य प्रवयसः शक्तिः स्फीता मम न तादृशी ।
 कालशक्तिर्हि भावानां प्रत्यग्ररसपायिनी ॥ ४६९ ॥
 इति जाम्बवतः श्रुत्वा नरः प्रोवाच वानरः ।
 योजनानां शतमहं प्रयामि रहितं त्रिभिः ॥ ४७० ॥
 एवं तत्र भुवाणेषु प्लवंगेष्वङ्गदान्तिके ।
 नोवाच हनुमान्किञ्चिद्वैर्यगम्भीरसागरः ॥ ४७१ ॥
 अथाङ्गदोऽवदत्क्षिप्रं विचार्य मकराकरम् ।
 तरामि योजनशतं महाब्धिं नात्र संशयः ॥ ४७२ ॥
 किं तु जाने भवत्येव प्रत्यावृत्तौ मम श्रमः ।
 तथापि रामकार्येऽस्मिन्गणयामि न जीवितम् ॥ ४७३ ॥
 निःसंशयो बधस्तावत्सुग्रीवादफलागमे ।
 ससंशयोऽब्धितरणे वरस्तस्मादसंशयः ॥ ४७४ ॥
 अङ्गदेनेत्यभिहिते पुनः प्रोवाच जाम्बवान् ।
 प्रेक्ष्येष्वस्मासु जीवत्सु स्वयं याति कथं प्रभुः ॥ ४७५ ॥
 त्वं मूलं कार्यवृक्षस्य वयं पुष्पफलोपमाः ।
 गतं मूलं भवत्येव सर्वं मूले सुरक्षिते ॥ ४७६ ॥
 जानाम्यहं महासत्त्वं सागरं यस्तरिष्यति ।
 इह स्थितोऽपि न ज्ञातो ह्यस्माभिर्मोहितैरिव ॥ ४७७ ॥
 दूरस्थो ज्ञायते सर्वः पर्वते ज्वलनादिवत् ।
 चूडामणिः शिरस्थोऽपि दृश्यते न खचक्षुषा ॥ ४७८ ॥

प्रभञ्जनसुतः श्रीमानेष प्लवगपुंगवः ।
 तरुणी हनुमान्वीरः शक्तः सागरलङ्घने ॥ ४७९ ॥
 ऐश्वर्यमन्दिरस्तम्भः सुग्रीवस्यायमुज्जतः ।
 रामकार्ये व्रजत्यस्मिन्विजयध्वजतां पुरः ॥ ४८० ॥
 हनूमत्कार्यकालेऽस्मिन्किमस्मान्नाभिभाषसे ।
 स्कन्धात्तत्कार्यभारो वा नूनं मौनी महाजनः ॥ ४८१ ॥
 गुणैस्त्वं सर्वभूतेभ्यो वरो रत्नैरिवाम्बुधिः ।
 बलं ते भुजयोर्भूरि गरुडस्येव पक्षयोः ॥ ४८२ ॥
 शापात्पुराप्सराः कान्ता विद्याख्या मुक्तिकास्थला ।
 वानर्यभूदञ्जनाख्या पत्नी केसरिणः कपेः ॥ ४८३ ॥
 सा स्वेच्छारूपिणी दिव्यं रूपं कृत्वा गिरेस्तटे ।
 विचचाराम्बुदश्यामे काले कुवलयेक्षणा ॥ ४८४ ॥
 मञ्जर्या इव किञ्जल्कपटलं पीतमंशुकम् ।
 दृष्ट्वा दूरुजघने जहारास्या प्रभञ्जनः ॥ ४८५ ॥
 कम्पमानस्ततो वायुस्तां परिष्वज्य मूर्छितः ।
 एकपत्नीव्रतक्रुद्धामुवाच रचिताञ्जलिः ॥ ४८६ ॥
 न मया दूषिता सुभ्रु त्वं भुक्ता मनसैव तु ।
 त्रैलोक्यविश्रुतगुणस्तनयस्ते भविष्यति ॥ ४८७ ॥
 पवनेनेति कथिते जातस्त्वं तेजसां निधिः ।
 वायुतुल्यगतिः श्रीमान्क्षेत्रे केसरिणः सुतः ॥ ४८८ ॥
 उदितं रविमादातुं फललोभात्ततो भवान् ।
 दिवमुत्पतितो बाल्यात्प्राग्योजनशतत्रयम् ॥ ४८९ ॥
 पतितस्याथ शैलाग्राद्वामो हनुरभज्यत ।
 तव येनासि लोकेषु विख्यातो हनुमानिति ॥ ४९० ॥
 स त्वमेको महत्यस्मिन्कार्यारम्भे कृतक्षणः ।
 दातुमर्हसि नः पुण्यां यशोरक्षणदक्षिणाम् ॥ ४९१ ॥

१. 'पुंजा' शा०. २. 'पुण्ययशो' शा०.

पूर्वपुण्यफलै जन्म कर्म स्फीतयशः फलम् ।
 सुहृत्प्रीतिफला सिद्धिस्त्वद्विधानां महात्मनाम् ॥ ४९२ ॥
 उत्तिष्ठ कुरु साहाय्यं रामस्य यशसां निधेः ।
 महतामेव कार्याणां सिद्ध्यै जन्म भवादृशाम् ॥ ४९३ ॥
 इति जाम्बवतो वाक्यमाकर्ण्य पवनात्मजः ।
 व्यवर्धत महोत्साहश्चन्द्रोदय इवाम्बुधिः ॥ ४९४ ॥
 स समुद्भूय लाङ्गूलं जृम्भा रम्भा यताननः ।
 स्फुरत्स्फारांशुजालस्य बभारांशुमतः श्रियम् ॥ ४९५ ॥
 सोऽब्रवीद्दृष्टदंष्ट्रांशुमालां गगनगौमिनीम् ।
 कुर्वन्मनोरथस्येव लङ्कागमनवर्तिनीम् ॥ ४९६ ॥
 एष व्यसनविस्फारं तरामि मकराकरम् ।
 रामकार्यपवित्रं च करोमि भवतां वचः ॥ ४९७ ॥
 उत्पाट्याविकटाट्टालमालिनीमवटे बलात् ।
 क्षिपामि लङ्कामौतङ्गां शङ्काकुलितरक्षसाम् ॥ ४९८ ॥
 शतकृत्वः समुलङ्घ्य महीं सगिरिसागराम् ।
 अविश्रान्तः करोम्येव जगत्प्रथमराक्षसम् ॥ ४९९ ॥
 तीर्थे पुरा प्रभासाख्ये गजो विजितदिग्गजः ।
 चचार शङ्खध्वलो नाम तापसकण्टकः ॥ ५०० ॥
 मुनीनां हितकामेन पुरा दर्पासहिष्णुना ।
 मम केसरिणा पित्रा स हतो वौयुकुञ्जरः ॥ ५०१ ॥
 ततस्तस्य भरद्वाजो ददौ मुनिवरो वरम् ।
 मारुतस्य प्रभावेण तनयस्ते भविष्यति ॥ ५०२ ॥
 सोऽहं मुनिवराज्जातः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
 त्रैलोक्यलङ्घने शक्तः कियानेष महोदधिः ॥ ५०३ ॥

१. 'फलं' शा०. २. 'प्रभाम्' शा०. ३. 'संगि' शा०. ४. 'आतङ्कशङ्का.'
 ५. 'व्याल' शा०.

न ममोत्पततो वेगात्सहते पादयोर्मरम् ।
 गगनाक्रान्तियोगेन बलेनापीडिता मही ॥ ५०४ ॥
 महेन्द्रगिरिमारुह्य लङ्घयामि महोदधिम् ।
 एष मे सहते वेगं निष्कारमिव सज्जनः ॥ ५०५ ॥
 इत्युक्त्वा सहितः सर्वैर्वानरैर्वालिनन्दनः ।
 आरुरोह महेन्द्राद्रिं मूर्तं सारमिवात्मनः ॥ ५०६ ॥
 पीताम्बिसलिलैर्मैघैर्द्विपैश्च मदमन्थरैः ।
 व्याप्तं दिव्यद्रुमाकीर्णं शिखरोल्लिखिताम्बरम् ॥ ५०७ ॥
 सिद्धकिंनरगन्धर्वललनाचरणाङ्कितम् ।
 प्रहृष्टमिव शष्पाग्रजातरोमाञ्चकञ्चुकम् ॥ ५०८ ॥
 उच्चैस्तटमहासानुः स्कन्धोरुशिखरः कपिः ।
 स बभौ शैलशिखरे द्वितीय इव भूधरः ॥ ५०९ ॥
 आलोकयन्तमखिलं जलधिं लङ्घनोद्यतम् ।
 तं द्रष्टुमाययुर्देवाः सह सिद्धर्षिचारणैः ॥ ५१० ॥
 कामतस्तस्य स गिरिश्चरणाभ्यां निपीडितः ।
 ननाम धातुसलिलं भूरिरक्तमिवोद्वमन् ॥ ५११ ॥
 शिलानिपीडितव्यालविषोल्कानलमालितः ।
 शान्तिं स लेभे भग्नोरुचन्दनप्रसवाम्बुभिः ॥ ५१२ ॥
 तरवः फुल्लशबलाः शिलाश्च समनःशिलाः ।
 निपेतुः सागरे स्फारजलस्फालवृताम्बराः ॥ ५१३ ॥
 मूलाद्विचलिते तस्मिन्गिरौ सागरवोसिनः ।
 बभूवुर्वृद्धमकरा मथनायासशङ्किनैः ॥ ५१४ ॥
 ऐकेन पीडितः प्रौढैः कपिनाश्चर्यकारिणौ ।
 याञ्छायैव महासत्त्वो गिरिर्वामनतां ययौ ॥ ५१५ ॥

१. 'भृता' शा०. २. 'गामि' शा०. ३. 'तः' शा०. ४. 'बले' शा०. ५. 'प्रौढ'
 शा०. ६. 'कपेरा' शा०. ७. 'णः' शा०. ८. 'याञ्छायै' शा०.

गुहागृहेषु दैत्यानामायुधन्यस्तचक्षुषाम् ।
 स जगाम गिरिक्षोभः प्रियासंभोगविघ्नताम् ॥ ५१६ ॥
 त्रासात्समुत्पतन्तीनां विद्याधरमृगीदृशाम् ।
 रश्नानानूपुरारवैर्बभूव मुखरं नभः ॥ ५१७ ॥
 ततः प्रणम्यः शक्रार्कविष्णुरुद्रचतुर्मुखान् ।
 सानुजं मनसा रामं सागरं चोत्पपात सः ॥ ५१८ ॥
 ससूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे ।
 भूतेभ्यः स नमस्कारं चकार हरिपुंगवः ॥ ५१९ ॥
 प्राञ्जलिः प्राङ्मुखं कृत्वा सगणायाम्भयोने ।
 मनसावन्द्य रामं च लक्ष्मणं च महारथम् ॥ ५२० ॥
 सागरं सरितश्चैव प्रणम्य शिरसा कपिः ।
 ज्ञातींस्तान्संपरिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ ५२१ ॥
 स तस्य शिखराग्रस्थस्थले नागवरायुते ।
 तिष्ठन्कपिवरस्तस्मिन्द्वितीयोऽर्क इवाबभौ । ५२२ ॥
 लाङ्गूलच्छन्नना चास्य समुद्भूतो जयध्वजः ।
 रराजौर्वपरिक्षिप्तो मन्दरस्येव वासुकिः ॥ ५२३ ॥
 निखिंशनीलमाकाशं समाविश्य महाजवः ।
 उरुर्वातैः स विदधे महाब्धेर्विशरारुताम् ॥ ५२४ ॥
 विबभौ तेजसा तस्य स्फारेण कपिलं नभः ।
 और्वानलशिखोद्धारघोरं रूपमिवाम्बुधेः ॥ ५२५ ॥
 तं कीर्णकुसुमाः क्षिप्रमनुजग्मुर्महीरुहाः ।
 गुणानुरक्ताः सुहृदः प्रियं जनमिवाध्वनि ॥ ५२६ ॥
 स प्राज्य भुजपक्ष्मभ्यां गाहमानः खमां बभौ ।
 सुपर्ण इव विक्रान्तः पीयूषहरणोद्यतः ॥ ५२७ ॥
 तस्य कक्षोरुपवनोद्भूतैर्धनघनारवैः ।
 बभूव सर्वभूतानामकालप्रलयभ्रमः ॥ ५२८ ॥

खे स्वयं छायायाम्भोधौ लङ्गूलेन महीयसा ।
 यैयौ त्रिभिरिवाकारैस्त्रैलोक्ये विश्रुतः कपिः ॥ ५२९ ॥
 वेगदीर्घाकृतेनास्य लाङ्गूलेन महीयसा ।
 नभः प्रभाभरोद्भासि सीमातीतमिवाभवत् ॥ ५३० ॥
 पिबन्निव नभः कृत्स्नमालिङ्गन्निव दिग्वधूः ।
 वर्त्म क्षिपन्निवातीतं स ययौ विधुताम्बुधिः ॥ ५३१ ॥
 त्रिंशद्योजनदीर्घास्य दशयोजनवर्तुला ।
 छाया चकार जलधौ संसर्पिजलदभ्रमम् ॥ ५३२ ॥
 पवनाकुञ्चितप्रान्तशुभ्राभवलयः क्षणम् ।
 प्रययौ स्कन्धयोस्तस्य स्फारकेसरमौरुतः ॥ ५३३ ॥
 ज्ञात्वा सागरवंशस्य दूतं रामस्य सागरः ।
 तं गन्तुं चोद्यतं दूरं तद्विश्रान्तिमचिन्तयत् ॥ ५३४ ॥
 हिरण्यनाभं मैनाकं सुतं गौरीगुरोर्गिरेः ।
 स समेत्य जगादाशु सलिलान्तरवर्तिनम् ॥ ५३५ ॥
 पातालवासिनां रब्धं पिधातुमिह वज्रिणा ।
 न्यस्तस्त्वं दैत्यसंघानां कामरूपी बलोचितः ॥ ५३६ ॥
 हनुमान्नामकार्यार्थं प्रयात्याशु विहायसा ।
 शिखराण्यस्य विश्रान्त्यै त्वं दर्शयितुमर्हसि ॥ ५३७ ॥
 इत्यम्बुधिगिरा क्षिप्रं हेमरत्नमयो गिरिः ।
 उद्ययौ काञ्चनच्छायं यत्प्रभाभिरभून्नभः ॥ ५३८ ॥
 तं दृष्ट्वा हेमशिखरं विभ्रं मत्वा कपीश्वरः ।
 उरःपवनवेगेन विदधे खर्वशेखरम् ॥ ५३९ ॥
 तस्यातिमात्रमालोक्य वेगं पुलकितो गिरिः ।
 दिव्यदेहस्तमवदद्विनद्योच्चैर्मुदा मुहुः ॥ ५४० ॥

१. 'प्रतिविम्बेन चान्तरे' शा०. २. 'तले' शा०. ३. 'स ययौ त्रिभिराकारै' शा०.
 ४. 'सीमन्तित' शा०. ५. 'वारता' शा०. ६. 'न्वितः' शा०.

सागरस्तव विश्रान्त्यै सगरान्वयगौरवः ।
 मां विसृज्य प्रियातिथ्यसफलां प्रीतिमिच्छति ॥ ५४१ ॥
 महीधराणां पक्षेषु पुरा कृतेषु वज्रिणा ।
 इह क्षिप्तः सपक्षोऽहं त्वत्पित्रा मातरिश्चना ॥ ५४२ ॥
 स त्वं कृतोपकारस्य तनयस्तस्य तत्समः ।
 स्थातुमर्हसि मे मूर्ध्नि प्रणयाच्च महोदधेः ॥ ५४३ ॥
 इत्युक्तः शैलराजेन हनूमान्प्रत्यभाषत ।
 गृहीतैव मया पूजा भवतः सागरस्य च ॥ ५४४ ॥
 किं त्वविश्रान्त एवायं मम मार्गः प्रतिज्ञया ।
 न चास्ति मे क्लमः कश्चिन्मिथ्या कालात्ययेन किम् ॥ ५४५ ॥
 इत्युक्त्वा मेनकं तूर्णं मानिनां प्रवरः कपिः ।
 अङ्गुल्यग्रेण तं स्पृष्ट्वा जगाम पवनोपमः ॥ ५४६ ॥
 तत्कर्मतुष्टः शक्रोऽपि मैनाकस्य वरं ददौ ।
 येन वज्रभयं घोरं स तत्याज चिरार्जितम् ॥ ५४७ ॥
 इति मैनाकदर्शनम् ॥ १२ ॥
 अत्रान्तरे सत्त्वसारं बलं ज्ञातुं हनूमतः ।
 देवैर्विसृष्टा सुरसा नागमाता समाययौ ॥ ५४८ ॥
 सा कृत्वा राक्षसं रूपं विकृतं भयदं महत् ।
 विवृत्य वक्त्रमवदद्दिष्ट्या पश्यामि भोजनम् ॥ ५४९ ॥
 तामूचे हनुमान्प्रीत्या रामकार्ये कृते पुनः ।
 सर्वथा स्वयमभ्येत्य यास्यामि तव भक्ष्यताम् ॥ ५५० ॥
 सात्रवीत्पाणिपतितं न त्यजामि प्लवंगम ।
 अभीष्टं लभ्यते दैवात्त्यक्तं न पुनरेति तत् ॥ ५५१ ॥
 अवाप्तमपि संत्यज्य यस्तत्प्राप्तिं प्रतीक्षते ।
 स कालवञ्चितो मूढः पुनस्तस्य न भाजनम् ॥ ५५२ ॥

एतदाकर्ण्य हनुमानुवाच विपुलाकृतिः ।
 विग्रहस्यास्य मे आसरैर्क्ष्यं प्रकटयाननम् ॥ ५५३ ॥
 इत्युक्ता तेन सा वक्त्रं चकार दशयोजनम् ।
 कर्पिर्बभूव तत्तुल्यः सा चक्रे द्विगुणं मुखम् ॥ ५५४ ॥
 हरिः सप्तगुणश्चासीत्साभूदष्टगुणानना ।
 तस्मिन्नष्टगुणाकारे सा चक्रे शतयोजनम् ॥ ५५५ ॥
 वक्त्रं विनिर्गतजलं द्वितीयमिव सागरम् ।
 तदृष्ट्वाङ्गुष्ठमात्रोऽभूत्क्षणेन पवनात्मजः ॥ ५५६ ॥
 स प्रविश्याननं तस्या निर्गत्य च मनोजवः ।
 तामूचे त्वद्वचः सत्यं दाक्षायणि कृतं मया ॥ ५५७ ॥
 इत्युक्त्वा स ययौ क्षिप्रं राहुमुक्त इवोडुपः ।
 वन्दितस्त्रिजगद्वन्द्यैः पुरंदरवरैः सुरैः ॥ ५५८ ॥
 स वैभौ स्वर्गमार्गेण विमानध्वजहासिना ।
 प्रैर्षर्पन्हव्यमादाय सुरार्थमिव पावकः ॥ ५५९ ॥
 इति सुरसादर्शनम् ॥ १३ ॥
 अस्मिन्नवसरे राहुजननी सिंहिकाभिधा ।
 चक्रे छायाग्रहं घोरा व्यावृत्तस्य हनूमतः ॥ ५६० ॥
 संनिरुद्धस्तया वीरः सहसा स्तब्धविग्रहः ।
 तां ददर्शोऽग्रपातालविशालवदनां पुरः ॥ ५६१ ॥
 विलोक्य वर्धमानां तां पुनः संक्षिप्य विग्रहम् ।
 विवेश वदनं तस्याश्चण्डांशुरिव विग्रहम् ॥ ५६२ ॥
 वज्रवेगो निपात्यासौ कृत्तमूलनिबन्धनम् ।
 हृत्पद्ममुज्जघानास्याः स्फुरन्नखार्धिसाङ्करम् ॥ ५६३ ॥
 सा पपात् हता तेन विधूतमकराकरा ।
 नासास्यश्रोत्रविवरप्रसरद्रक्तनिर्झरा ॥ ५६४ ॥
 इति सिंहिकावधः ॥ १४ ॥

१. 'क्षमं' शा०. २. 'गच्छत्स्व' शा०. ३. 'विरेजे' शा०.

तस्मिन्नत्यद्भुते भूते हते तत्र हनूमता ।
मुमुचुः पुष्पनिकरं सुरसिद्धर्षिकिनराः ॥ ५६५ ॥
स व्रजन्स्वप्रतापान्नितसानां ककुभामिव ।
लाङ्गूलेनाञ्चता चक्रे वीजनव्यजनभ्रमम् ॥ ५६६ ॥
क्षणं गात्रानिलैस्तस्य चक्रिरे तरलीकृताः ।
दंष्ट्रांशुनखशाखासु तारा कुसुमविभ्रमम् ॥ ५६७ ॥

व्योम्नि व्रजन्स विदधे विबुधावनीषु
नानाविमानवनकेतुदुकूलपालीम् ।

ऊरुप्रबन्धपृथुवेगविनिर्गतोऽग्र-

वातैः प्रचण्डतरताण्डवकेलिलीलाम् ॥ ५६८ ॥

मूर्ध्नि च्छत्राभिरामैः श्वसनविवलितैः पार्श्वयोश्चामरामैः
कण्ठे मालायमानैरुरसि तनुतरैरुत्तरीयानुकारैः ।
पृष्ठे लाङ्गूललीलावलनपरिचितैः स्कन्धयोः केसरामैः
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैः किमपि कपिपतिर्वेगगामी रराज ॥ ५६९ ॥
वेगस्पृष्टेन धृत्वा गगनजलनिधौ सेतुबन्धानुकारं
दत्त्वा स्फारे मुहूर्तं दिनकरकमले नाललीलाविलासम् ।
लाङ्गूलेनाशु कृत्वा दिशि दिशि स मुहुर्मानदण्डाभियोगं
लङ्कातङ्काभिश्चाप्रथमपरिचयं केतुनेवादिदेश ॥ ५७० ॥
अथ तरलतमालोत्तालतालीप्रियालां
प्रबलसरलसालोद्दालतालप्रवालाम् ।
अगुरुतगरगौरस्फारकर्पूरसारा-
मविरलवनमालां सोऽब्धिकूले ददर्श ॥ ५७१ ॥
अलङ्घ्यमुलङ्घ्य महाम्बुराशिं प्रभावतुल्यं दशकंधरस्य ।
तले प्रलम्बास्यगिरे विशाले जलप्रलम्बाम्बुदवत्पपात ॥ ५७२ ॥
किंस्विन्मुक्तावसाने जलनिधिमथनान्निर्गतो मन्दराद्रि-
मैनाकः किं विशङ्कः सुरसमरजये किं सुपर्णा सुधार्थी ।

चिन्तानिस्पन्दनेत्रैरिति सुररमणीमण्डलैरीक्ष्यमाणः

सोऽभूदल्पप्रमाणः सपदि रघुपतेर्वाञ्छितावासिसिञ्च्यै ॥५७३॥

इति सागरलङ्घनम् ॥ १५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे किष्किन्धाकाण्डः समाप्तः ।

अथ सुन्दरकाण्डम् ।

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।

अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥ १ ॥

पौलस्त्यदर्पविपुलं विलङ्घ्य जलधिं कपिः ।

विस्मयानन्दनिस्पन्दां विदधे विबुधावलीम् ॥ २ ॥

तमालतालतालीसहिन्ताललवलीवनैः ।

तगरागुरुपुंनागलवङ्गगहनैर्व्रजन् ॥ ३ ॥

स हेमवप्रजच्छन्नां रत्नद्युतिदुकूलिनीम् ।

लङ्कामङ्के त्रिकूटस्य ददर्श दयितामिव ॥ ४ ॥

स संक्षिप्य वपुः क्षिप्रं महोत्सवमिवाधनः ।

निपपाताशु लङ्कायां चोत्तरद्वारशेखरे ॥ ५ ॥

ततः क्षपाचरपुरीरत्नमन्दिररश्मिभिः ।

तिरस्कृत इवासक्तं जगामास्तं दिवाकरः ॥ ६ ॥

अथाययौ तमःस्तोकमयूरच्छदभूषणा ।

तारकामौक्तिकस्मेरा शर्वरी शर्वरीशनैः ॥ ७ ॥

कण्ठेषु नीलकण्ठानां गण्डेषु मददन्तिनाम् ।

तमः प्रगल्भतां लेभे कुन्तलेषु च योषिताम् ॥ ८ ॥

यामिनी कामिनीस्निग्धस्नानधौतकचत्विषि ।

बभार तिमिरस्फारे तारा कुसुमसंक्षयम् ॥ ९ ॥

गवाक्षजातोवदनैरिन्द्रनीलगृहैर्मुहुः ।

पीतो गीर्णमिवासक्तं ससर्प विपुलं तमः ॥ १० ॥

दिव्यरत्नमयी लङ्का दीप्रदीप्तांशुभिर्वभौ ।
 नभःप्लवनभीत्येव बद्धा कनकशङ्कुभिः ॥ ११ ॥
 रराज रजनीराजपुत्रीदीपावलीवृता ।
 विभ्राणा चर्मकमयीं कलिकामालिकामिव ॥ १२ ॥
 दीपांशुशबलैर्लङ्का नीलरत्नगृहैर्वभौ ।
 बभ्रुभूश्मश्रुभिव्याप्ता परैरिव निशाचरैः ॥ १३ ॥
 अथोद्ययौ निशाकान्तः शिवचूडामणिः शशी ।
 दिग्बधूमण्डनकलाविलासमणिदर्पणः ॥ १४ ॥
 लेभे स्फटिकहर्म्येषु क्रान्तस्तरलकान्तिषु ।
 विधुः सुधान्विकलोलदोलाकेलिसुखं पुनः ॥ १५ ॥
 रेजुर्मनोजविजयध्वजचामरचारवः ।
 तुषारहारकर्पूरतारास्तारापतेः कराः ॥ १६ ॥
 हरपुष्टे स्मरे चन्द्रे सलिले लाञ्छनच्छलात् ।
 पतिते विबभुः कीर्णाः शीकरा इव तारकाः ॥ १७ ॥
 स्मरस्मेरातपत्रेण रजनीस्मितकान्तिना ।
 व्योममानसहंसेन शुशुभे शशिना निशा ॥ १८ ॥
 चन्द्रोदयप्रहृष्टानां निशाचरमृगीदृशाम् ।
 बभूव वदनैर्व्याप्तालङ्का शशिशतैरिव ॥ १९ ॥
 ज्योत्स्नानवसुधापानसमुद्भूतो महोदधिः ।
 वभौ क्षिप्तपरावृत्तः स्फीतफेनसितांशुकः ॥ २० ॥
 हेमप्राकारजघने लङ्कायाः क्षुभितोऽम्बुधिः ।
 परिखामेखलाकृष्टिं वीचिहस्तैरिवाकरोत् ॥ २१ ॥
 बद्धकोशेषु मधुपाः कमलेषु न लेभिरे ।
 हृदयेषु गुणज्ञानां दोषलेशा इवान्तरम् ॥ २२ ॥
 विकासविषदे^३ ज्योत्स्नां प्रासादाभिमुखी शनैः ।
 इन्दोः कुमुद्वर्ती चक्रुः प्रेमदूता इवांशवः ॥ २३ ॥

१. 'चम्पक' शा०. २. 'पुरा' शा०. ३. 'दोद्ययोतां' शा०.

ववुश्चन्द्रकरस्मेराः कुमुदामोदमन्थराः ।
 सुदृशां सुरतक्लान्तिं विच्छेदसुहृदोऽनिलाः ॥ २४ ॥
 कान्ता कान्ताङ्गपर्यङ्के ज्योत्स्नास्वच्छोत्तरच्छदे ।
 बभुर्मधुनलीमत्ता मूर्ता इव रतिश्रियः ॥ २५ ॥
 स्फुटस्फटिकसौधेषु स्फीतचन्द्रांशुहारिषु ।
 बभुः कान्ताः सुधासिन्धुतरङ्गान्तर्गता इव ॥ २६ ॥
 प्रक्षालित इव क्षीरैः कर्पूरैरिव पूरिते ।
 जगति ज्योत्स्नया जाते घटिते स्फटिकैरिव ॥ २७ ॥
 उत्प्लुत्य लघुसंचारः सौधप्राकारशेखरैः ।
 रक्षसां सुखसुप्तानां भवनान्यविशत्कपिः ॥ २८ ॥
 मणिवेश्मप्रहस्तस्य महापार्श्वस्य वादिनः ।
 विभीषणस्येन्द्रजितः कुम्भकर्णस्य मालिनः ॥ २९ ॥
 वक्रस्य वज्रदंष्ट्रस्य धूम्राक्षस्य शठस्य च ।
 विद्युज्जिह्वस्य भीमस्य संपातेर्जम्बुमालिनः ॥ ३० ॥
 विकटस्य सुदंष्ट्रस्य सारणस्य शुकस्य च ।
 विरूपाक्षस्य मत्तस्य घसस्य प्रघसस्य च ॥ ३१ ॥
 महोदरमहाकायविद्युन्मालिसुमालिनाम् ।
 प्रविश्यापश्यदुद्यानसक्तकान्तामधूत्सवम् ॥ ३२ ॥
 सुगन्धिश्वासलोलोर्मिदोलारूढचलोत्पलम् ।
 मधुप्रियार्पितं रामा मूर्ते रागमिवाययुः ॥ ३३ ॥
 प्रियासमागमः सारः सत्यं विभवसंपदाम् ।
 दयितासंगमस्यापि जीवतां पानकेलयः ॥ ३४ ॥
 हर्म्यं चन्द्रोदयः कान्तामधुगीतं सुहृत्कथः ।
 एतास्ताः पूर्वपुण्यानां स्फीताः फलसमृद्धयः ॥ ३५ ॥
 रागो लीला च सुदृशां लावण्यं नवयौवनम् ।
 जैत्रमस्त्रं सरस्यैतन्मदेनास्फुरितं यदि ॥ ३६ ॥

लोलाक्षस्खलितालापं सुगन्धिमधुपाटलम् ।
 धन्यास्ते पद्मवदना वदनाब्जं पिबन्ति ये ॥ ३७ ॥
 नमो मदाय महते खस्ति रागाय रागिणाम् ।
 मानिनी यत्प्रसादेन स्वयं कण्ठावलम्बिनी ॥ ३८ ॥
 इति स्मरानुकूलभिः क्रथाभिः सहते मधु ।
 वधूबिम्बाधरासङ्गलम्भरागमिवापपुः ॥ ३९ ॥
 प्रागल्भ्यशिक्षागुरुणा विश्वाससुहृदो बभुः ।
 सुरतारम्भदूतेन मदेन मदिरेक्षणः ॥ ४० ॥
 पूर्वं दृशि ततश्चित्ते कपोलयुगले ततः ।
 प्रौढतां प्रययौ रागः प्रमदानां महोत्सवे ॥ ४१ ॥
 मधुस्रस्तांशुकं तासां वपुर्दृष्ट्वैव कामिनाम् ।
 पदे पदे धृतिच्छेदं खलप्रीतिरिवाययौ ॥ ४२ ॥
 भेजिरे वल्लभोत्सङ्गं प्रेमकोपेऽपि ताः स्वयम् ।
 न नाम सहते मानं मदश्चपलचक्षुषाम् ॥ ४३ ॥
 रतस्थायं न मानस्य कालः कमललोचने ।
 इतीवासां प्रियाकृष्टा जगुर्मुखरमेखलाः ॥ ४४ ॥
 कृतास्पदे हृदि मुदा मदेन मदनेन च ।
 प्रियापराधाः सुदृशामवकाशं न लेभिरे ॥ ४५ ॥
 यदुत्सक्ताः समुत्सृष्टा लज्जाविनयवर्जिताः ।
 मुग्धानामभयं चेष्टाः सा मदस्य प्रगल्भता ॥ ४६ ॥
 शशाङ्ककिरणोत्तंसे हर्म्ये हरिणचक्षुषाम् ।
 मधूत्सवे मदोत्तंसे रागोत्तंसमभून्मनः ॥ ४७ ॥
 इति चन्द्रोदयः ॥ १ ॥

विविच्य^१ मदनोद्यानपालीं वेश्मसु मन्त्रिणाम् ।
 रत्नांशुहासिनीं प्राप राजधानीं प्लवंगमः ॥ ४८ ॥

मणिदर्पणसंक्रान्तप्रतिमैश्चन्द्ररश्मिभिः ।
 शुभ्राभ्रपक्षविक्षेपैः प्लवमानामिवाम्बरे ॥ ४९ ॥
 सै प्रविश्य महाभोगं कैलासशिखरोपमम् ।
 भवनं दशकण्ठस्य ददर्शोल्लिखिताम्बरम् ॥ ५० ॥
 रक्षितं राक्षसैराततशैलैरञ्जनमेचकैः ।
 कालकूटावृतप्रांसं सुधाम्बुधिमिवोद्धतम् ॥ ५१ ॥
 संगीतवेश्मभिर्वारा गृहैरापणमन्दिरैः ।
 विमाननवसंभारैर्व्याप्तं निखिलकौतुकैः ॥ ५२ ॥
 अपश्यत्तत्र तुरगान्प्रमाणावर्तहेषितैः ।
 श्लाघ्या सत्त्वजवोदारैस्त्रैलोक्यजयशंसिभिः ॥ ५३ ॥
 स ददर्श दशास्यस्य चतुर्दन्तान्मदद्विषान् ।
 कैलासोच्छासनभयात्सेवायातानिवाचलान् ॥ ५४ ॥
 वर्णकं विविधाश्चर्यवर्गसर्गे प्रजापतेः ।
 रत्नांशुलेखाविन्यासैः स्वप्रभावमिवोद्धमन् ॥ ५५ ॥
 वेह्यर्त्तभावा भ्रूमङ्गतर्जितामरभूधरम् ।
 विमानं पुष्पकं नाम ददर्श त्रिदशद्विषः ॥ ५६ ॥
 दुर्लभा त्रिदशेन्द्रस्य कुतो वैश्रवणस्य सा ।
 रावणस्य गृहे लक्ष्मीं मारुतिर्या व्यलोकयत् ॥ ५७ ॥
 अथान्तःपुरमैश्वर्यस्फारकल्पतरोः फलम् ।
 स राक्षसपतेर्दिव्यं विवेशानेककौतुकम् ॥ ५८ ॥
 कपाटसंपुटैः श्लिष्टैः स्फाटिकैः स्फुटकान्तिभिः ।
 असंवृतमिवोद्धूतप्रभाप्रावरणं मुहुः ॥ ५९ ॥
 मुक्ताप्रालम्बधवलं तसकाञ्चनजालकम् ।
 प्रवालनीलवैडूर्यस्तम्भसंभारविभ्रमम् ॥ ६० ॥

१. 'मन्दिर' शा०. २. 'तां' शा०. ३. 'खङ्गै' शा०. ४. 'प्रान्तं' शा०.
 ५. 'दारा' शा०. ६. 'त्पताका' शा०.

मणिकुट्टिमसंक्रान्तसितस्रग्दाममण्डलम् ।
 शासनाद्दशकण्ठस्य शेषेणेव धृतं स्वयम् ॥ ६१ ॥
 स्फीतरत्नकृतालोकं वृद्धकञ्चुकिरक्षितम् ।
 पातालमिव भौतङ्गभुजंगीभङ्गिभूषितम् ॥ ६२ ॥
 चन्दनागुरुकर्पूरधूपधूमान्धकारितम् ।
 निशाचरपतिप्रीत्या निशयेव समाश्रितम् ॥ ६३ ॥
 ददर्श तत्र सुरतक्लान्तकान्ताजनं कपिः ।
 चित्रन्यस्तमिव प्रौढनिद्रामुद्रितलोचनम् ॥ ६४ ॥
 दृश्यस्तनोरुजघनं तासां कान्ततरं वपुः ।
 विलोक्य विवभुर्दीपा विस्रयादिव निश्चलाः ॥ ६५ ॥
 कुचैः कान्तनखोच्छिष्टैः पीतदद्याधरैर्मुखैः ।
 प्रत्यग्रतर्धृत्तानां तरुणीनाममुच्यत ॥ ६६ ॥
 हेमगौरोरुयुगलं नखोल्लेखैर्मृगीदृशाम् ।
 रतिच्युतैरिवाकीर्णं बभौ कुङ्कुमकेसरैः ॥ ६७ ॥
 तासां प्रियहठाकर्षहेलाविस्रस्तवेणिका ।
 मध्ये सुष्वाप निभृतरतिखिन्नेव शर्वरी ॥ ६८ ॥
 क्लमस्तोत्तरीयास्ताः स्वेदवारिकणैर्वभुः ।
 रतित्रुटितहाराग्रसंसक्तैरिव मौक्तिकैः ॥ ६९ ॥
 निद्रानिमीलिते तासां लोचनोत्पलकानने ।
 स्वप्रभाप्रतिभां प्राप क्षणं कर्णोत्पलावली ॥ ७० ॥
 प्रोच्छूनारुणगण्डैस्ताः कुण्डलाताण्डवाहतैः ।
 ऊचुः स्तस्रैः संचिकुरैर्विपरीतरतोत्सवम् ॥ ७१ ॥
 तासां रतिरणस्रस्तकर्णोत्पलदलच्युता ।
 लेखेव त्रिवली कूले लीना रोमावली बभौ ॥ ७२ ॥
 सुसपारावते मूकमेखले रतिमन्दिरे ।

निस्पन्ददीपे विबुधौ निःशब्दविजयी स्मरः ॥ ७३ ॥
 सुरकिंनरगन्धर्वनागविद्याधरात्मजाः ।
 दृष्ट्वा रावणकान्तास्ताः कपिर्विस्मयमाययौ ॥ ७४ ॥
 उपसृत्य शनैः स्फाररत्नपर्यङ्कशायिनम् ।
 स ददर्श दशग्रीवं पर्यस्तमिव मन्दरम् ॥ ७५ ॥
 मदनिद्राप्रबन्धेन मदिरामोदशालिना ।
 श्वासानिलेन महता क्षिपन्तं मधुपावलीः ॥ ७६ ॥
 सहारेणोरसा रक्तचन्दनार्द्रेण भूषितम् ।
 उदयाद्रितटेनेव शशिसंध्याभ्रशोभिना ॥ ७७ ॥
 त्रैलोक्यदक्षिणैः प्रौढकान्तालङ्गनदक्षिणैः ।
 भुजैर्नीलमणिस्तम्भप्रभैर्दीप्ताङ्गदैर्द्वृतम् ॥ ७८ ॥
 संक्रान्तदीपैर्भ्राजिष्णुं रत्नकेयूरशेखरैः ।
 नीलाचलमिव व्याप्तं दीप्तौषधिवनैर्निशि ॥ ७९ ॥
 सर्वाभरणरत्नाग्रबिम्बितप्रमदावनम् ।
 यातं रामारसोत्कण्ठ्यात्कामिनीमयतामिव ॥ ८० ॥
 मन्दारमालां शबलां पारिजातस्य पल्लवैः ।
 मूर्तामिव क्षेतां कण्ठे वहन्तं त्रिदिवश्रियम् ॥ ८१ ॥
 बिभ्राणं हंसधवलं वासः श्वासतरङ्गितम् ।
 क्षीरार्णवमिवोद्भूतकान्ताकान्तामुखेन्दुभिः ॥ ८२ ॥
 आरुह्य रत्नसोपानैः शीर्षान्ते मणिवेदिकाम् ।
 चिरं रावणमालोक्य हनूमान्विस्मितोऽभवत् ॥ ८३ ॥
 वीणावेणुमृदङ्गेषु निषण्णाः प्रौढनिद्रया ।
 प्रियास्तस्य बभुः पार्श्वे बाद्यानामिव देवताः ॥ ८४ ॥
 संपूर्णचन्द्रवदनां मदनानन्दकौमुदीम् ।
 मन्दोदरीं ददर्शाथ कपिस्त्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ ८५ ॥

मनःसंवने सक्तां नयनानन्दवर्षिणीम् ।
 शक्तिं रतिपतेर्मूर्ता सुधांशोर्वाधिदेवताम् ॥ ८६ ॥
 नखोल्लेखैः सनाथाभ्यां बालपल्लवपाटलैः ।
 कुचकाञ्चनकुम्भाभ्यां विहितानङ्गमङ्गलाम् ॥ ८७ ॥
 तां विलोक्यानवद्याङ्गीं पर्याप्तेन्दुशतद्युतिम् ।
 सीतेयमिति विज्ञाय हृष्टः कपिरचिन्तयत् ॥ ८८ ॥
 लावण्येन्दुमहोरूपमहोकान्तिसुखी तनुः ।
 इयं सा मन्मथमयी वैरं रामस्य वल्लभा ॥ ८९ ॥
 अथवा राघववधूः कथमेवंविधा भवेत् ।
 न श्रुताः स्रस्तचारित्रा रघूणां कुलयोषिताः ॥ ९० ॥
 सेयं त्रैलोक्यजयिनः प्राज्यसाम्राज्यदेवता ।
 मूर्ता रतिपतेः शक्तिः सक्ता रावणवेश्मनि ॥ ९१ ॥
 इति निश्चित्य मनसा पौलस्त्यान्तःपुराङ्गनाः ।
 मारुतिर्लघुसंचारिर्द्रष्टुमन्याः समुद्ययौ ॥ ९२ ॥
 विचित्रभक्ष्यभोज्यार्थपानकामवसेविते ।
 आस्तीर्णहेममाणिक्यस्तम्भभृङ्गारभाजने ॥ ९३ ॥
 कल्पपादपपुष्पाढ्ये नाभिकर्पूरधूपिते ।
 चचार मारुतिः पश्यन्मन्दिरे मन्दिरे श्रियम् ॥ ९४ ॥
 तेषु तेष्वथ देशेषु स राममहिषीं शनैः ।
 विचिन्त्याचिन्तयत्क्षिप्रं निष्फलोद्योगदुःखितः ॥ ९५ ॥
 अहो नु हेलयावाप्तः कियान्किल्बिषसंचयः ।
 मया विवसनाः स्पष्टं पश्यता परयोषितः ॥ ९६ ॥
 अनिच्छयैव सुकृतं दुष्कृतं वा पुराकृतैः ।
 कर्मानुबन्धवैचित्रैः जन्तूनां जातु जायते ॥ ९७ ॥
 संकल्पेनाप्यसंस्पृष्टा योषितो ब्रह्मचारिणः ।
 कथं ममापि निर्वस्त्रपरस्त्रीदर्शनोद्यमः ॥ ९८ ॥

उन्मूलिता हि मर्यादाः प्रच्छन्नच्छिन्नपौरुषाः ।
 सद्रुतपरिपन्थिन्यो जयन्ति विधिवासताः ॥ ९९ ॥
 अथवा चेतसा सत्यं निःसङ्गेन मयाङ्गनाः ।
 दृष्टा विधातृवैचित्र्यमयःकनकपुत्रिकाः ॥ १०० ॥
 न मनो म्लानिमातङ्कः कश्चिन्मे शीलविप्लवः ।
 शुभाशुभविचेष्टासु प्रमाणं देहिनां मनः ॥ १०१ ॥
 सप्रासादगृहोद्याना दृष्टेयं निखिला पुरी ।
 न तु दृष्टा जनकजा मूढेनैव मयात्मधीः ॥ १०२ ॥
 इयमुद्योगशक्तिर्मे दुराशेवानुतापिनी ।
 असाधुजनसेवेव वत निष्फलतां गता ॥ १०३ ॥
 न भवन्ति फलावासिलुप्तकेशाः समुद्यमाः ।
 उत्साहविमुखे नित्यमप्राप्ते स्पष्टतां विधौ ॥ १०४ ॥
 सत्कर्मारम्भसंभारफलं हरति हेलया ।
 कृपावतरणे पाशच्छेदी सर्वात्मना विधिः ॥ १०५ ॥
 पौरुषोत्साहयोगेऽपि याति यद्वन्ध्यतां श्रमः ।
 सा गुणद्वेषिणो धातुः स्वच्छन्दप्रभविष्णुता ॥ १०६ ॥
 विघ्नाघ्राता महोद्योगा फलसिद्धिरनित्यता ।
 विनाशप्रेक्षको लोकः कथमासाद्यते यशः ॥ १०७ ॥
 आश्चर्यचर्याविपुलः कृतः केवलमुद्यमः ।
 त्रपाकरः परस्याग्रे कथ्यमाना फलं विना ॥ १०८ ॥
 इहाप्यदृष्ट्वा वैदेहीं वृथैवोलङ्घ्यसागरम् ।
 किं वक्ष्याम्यबलोद्योगयोगः प्लवगपुंगवम् ॥ १०९ ॥
 गृहीत्वायं किमायातो लम्बमानभुजद्रुमः ।
 इति वक्ष्यन्ति मां सर्वे सांप्रतं हसिताननाः ॥ ११० ॥
 सीता मया न दृष्टेति कालकूटोत्कटं वचः ।
 श्रुत्वैव जीवितं व्यक्तं रामस्त्यक्ष्यति सानुजः ॥ १११ ॥

कुलचूडामणौ तस्मिन्प्रयाते कीर्तिशेषताम् ।
 कथं रघुकुलस्यापि जीविताशा भविष्यति ॥ ११२ ॥
 वैरं सुहृत्क्षयोद्विग्नः सुग्रीवो मित्रवत्सलः ।
 सामात्यभृत्यस्वजनस्तनुत्यागं करिष्यति ॥ ११३ ॥
 इति सर्वक्षयं घोरं द्रष्टुं गच्छाम्यहं कथम् ।
 अदृष्टेष्टवियोगस्य तपो मे नान्यदुत्तमम् ॥ ११४ ॥
 विपुलक्लेशवैफल्यदुःखसंतप्तचेतसाम् ।
 विधिवैमुख्यदग्धानां विवेकः श्रमवारिदः ॥ ११५ ॥
 इष्टे नष्टे सुखे अष्टे कष्टे निकटवर्तिनि ।
 अमूढमनसां युक्तं वैराग्याभरणं तपः ॥ ११६ ॥
 अस्मिन्पयोनिधेस्तीरे निर्निकेतो निराश्रयः ।
 हस्तादौ वा मुखादौ वा भवाम्येष गतस्पृहः ॥ ११७ ॥
 शरीरत्यागयोग्यैव मानम्लानिरियं मम ।
 शाम्यति प्रौढमनसा स्नातस्य प्रशमाम्बुभिः ॥ ११८ ॥
 अज्ञाते जानकीवृत्ते किं वृथैव हतेन मे ।
 रावणेनातिसिक्तेन स्त्रीसनाथासभूमिषु ॥ ११९ ॥
 अथवा विचिता नेयमशोकवनिका मया ।
 रक्ताशोकवटैस्तस्यां रतिराग इव स्थितः ॥ १२० ॥
 शर्वर्यां स्तोकशेषायामिति संचिन्त्य मारुतिः ।
 जगामाशोकवनिकां पुष्पपातोपमैः पदैः ॥ १२१ ॥
 इत्यन्तःपुरपरिचयः ॥ २ ॥
 सुरान्सरामसुग्रीवान्मनसा प्रणिपत्य सः ।
 वल्ली विलासिनीवृत्तललितामविशन्महीम् ॥ १२२ ॥
 सुजवेन व्रजन्वृक्षमञ्जरीर्वक्षसा क्षिपन् ।
 हेमवृक्षरजःपुञ्जे बभूव कनकप्रभः ॥ १२३ ॥

नानारत्नच्छदैर्दिव्यैः सौरभैः सुरपादपैः ।
 सपुष्पबाष्पैराकीर्णः कृतातिथ्य इवाबभौ ॥ १२४ ॥
 अशोकवनिकां तस्मिन्गाहमाने मनोजवे ।
 समुद्भूतैरलिकुलैर्बभूवुः श्यामला दिशः ॥ १२५ ॥
 विहङ्गैर्नीलरक्ताङ्गैः कूजद्भिः कनकच्छदैः ।
 प्रवालचञ्चुचरणैः स्रस्तैर्व्याप्तमभून्नभः ॥ १२६ ॥
 प्रवर्धमानवेगस्य तस्य गात्रानिलैर्मुहुः ।
 वनिका प्रोषितेवाभून्त्यक्तपुष्पविभूषणा ॥ १२७ ॥
 लोलालिमालाकवरी सा तरङ्गितमानसा ।
 दीक्षेव शुशुभे सस्तकिञ्चलकपटलांशुका ॥ १२८ ॥
 सा लुप्ततिलका सस्तचन्दनागुरुपलवा ।
 बभौ रतान्तक्लान्तेव क्लिष्टबिम्बफलाधरा ॥ १२९ ॥
 बभार पुष्पमालां सा छिन्नां वेश्येव रागिणा ।
 कपिसिंहेन नखरोल्लेखितस्तवकस्तनी ॥ १३० ॥
 तस्यां निष्पन्नकुसुमा न बभुः कपिकम्पिताः ।
 पादपाः प्रौढकितवैर्मुग्धा इव पराजिताः ॥ १३१ ॥
 तत्र केचिददृश्यन्त तरवो हृतवल्कलाः ।
 वेश्याभिर्भुक्तसर्वस्वा विटा इव निरम्बराः ॥ १३२ ॥
 विपुलाः पादपाः क्षिप्रं कपिना निष्फलीकृताः ।
 बभूवुः शोकजनका दैवेनेव मनोरथाः ॥ १३३ ॥
 आयासिता तरुश्रेणी मारुतेर्वेगविप्लवैः ।
 अकम्पत प्रजेवोग्रैर्लुण्ठिता राजवल्लभैः ॥ १३४ ॥
 सरत्नकदलीकुञ्जे कान्ताकल्पलतावने ।
 मन्दारोद्धारवीथीषु केलिकल्लोलिनीतटे ॥ १३५ ॥
 हेमपङ्कजिनीपुञ्जे क्रीडावैडूर्यपर्वते ।
 तत्र तत्र च बभ्राम वैदेहीदर्शनाशया ॥ १३६ ॥
 इत्यशोकवनिकाप्रवेशः ॥ ३ ॥

अथेन्द्रनीलतरुभिर्मुक्ताकुसुमहासिभिः ।
 आलिङ्गितमिव प्रौढस्कन्धैर्विटपबाहुभिः ॥ १३७ ॥
 मणिस्तम्भसहस्रेण धृतं कनकवेदिकम् ।
 कपिर्ददर्श प्रासादं स्वसंकल्पमिवोन्नतम् ॥ १३८ ॥
 तत्र काञ्चनशाखस्य महतः शिशिपातरोः ।
 अपश्यन्मारुतिर्मूले नारीं कमललोचनाम् ॥ १३९ ॥
 कनकस्निग्धगौरेण नयनानन्दबन्धुना ।
 देहकान्तिवितानेन संदेहितशशिप्रभाम् ॥ १४० ॥
 विरहापाण्डुरमुखां चिन्तया तनुतां गताम् ।
 रहितां सितपक्षेण सुधाकरकलामिव ॥ १४१ ॥
 अपरिम्लानचरितां परिम्लानाधराननाम् ।
 विच्छिन्नजीवितस्नेहामविच्छिन्नमनोरथाम् ॥ १४२ ॥
 आबद्धवेणिकां वक्रपद्मनेत्रोत्पलाशयाम् ।
 दीर्घां पश्चादिवालीनां वहन्तीं भृङ्गसंततिम् ॥ १४३ ॥
 पाणिस्वा(?)पारुणच्छायाकपोलोल्लिखिता धृतिम् ।
 दुःखामिधूमनिवहैरिव बाष्पाकुलेक्षणाम् ॥ १४४ ॥
 कुलविद्यामनभ्यासादनङ्गस्येव विस्मृताम् ।
 इन्दोरश्रावलिप्तस्य द्युतिं निपतितामिव ॥ १४५ ॥
 तां वीक्ष्य राक्षसस्त्रीभिर्विरूपाक्षीभिरावृताम् ।
 व्याघ्रीभिरिव घोराभिर्मृगीं चकितलोचनाम् ॥ १४६ ॥
 सहसा विस्मयावेशवशगः प्लवगः क्षणम् ।
 विमर्शहर्षकारुण्यनिश्चलः समचिन्तयत् ॥ १४७ ॥
 इयं श्रीः पुण्यलावण्यसुधासिन्धुसमुद्भूता ।
 विलासपारिजातस्य स्वसा कुसुमकोमला ॥ १४८ ॥
 प्रांशुवंशोदिता तन्वी शुचिशीला दुकूलिनी ।
 साम्राज्यविजयारम्भवैजयन्ती मनोभुवः ॥ १४९ ॥

यदि चिन्ताकुला नेयं रतिः प्रोषितभर्तृका ।
 तत्सैव निश्चितं कान्ता राममानसमानसी ॥ १५० ॥
 इयमेव तदास्माभिर्दृष्टा रक्षोहृता सती ।
 उत्सृष्टपुष्पाभरणा लतेव पवनाकुला ॥ १५१ ॥
 इयं सा रघुनाथस्य धृतिर्दूरतरं गता ।
 विदिता जीविताशेव वियोगतनुतां गता ॥ १५२ ॥
 अस्याः कृते कीर्तिलता फलिता सा जटायुषः ।
 साधुवादोलसत्सर्वजनजिह्वाग्रपल्लवा ॥ १५३ ॥
 अस्याः कृते सितच्छत्रतिलका कलशस्तनी ।
 प्राप्ता श्रीः कपिराजेन चारुचामरहासिनी ॥ १५४ ॥
 अस्याः कृते कपिवरैः पृथ्वी सगिरिसागरा ।
 दर्शनायोद्यतैः क्रान्ता दिनाकरकरैरिव ॥ १५५ ॥
 अहो बताप्रतिहता प्रतिकूलविलासिनी ।
 सर्वत्र विवृतद्वारा दैवशक्तिर्गरीयसी ॥ १५६ ॥
 विपदः सर्वगामिन्यो दुर्लङ्घ्या भवितव्यता ।
 कष्टं कुटिलचेष्टस्य विधेरस्खलिता गतिः ॥ १५७ ॥
 त्रैलोक्यरक्षादक्षस्य रघुनाथस्य जीवतः ।
 लक्ष्मणस्य च वीरस्य वैदेही विपदां पदम् ॥ १५८ ॥
 इमां विना विशालार्क्षीं कथं जीवति राघवः ।
 नियतान्यथ वायूंषि सर्वथा न न जीव्यते ॥ १५९ ॥
 वियोगहारितरतेर्विपुले व्यसनानले ।
 जीवितालम्बवसुधा प्रियावाप्तिमनोरथः ॥ १६० ॥
 इति चिन्तयतस्तस्य चिरं निर्वर्ण्य जानकीम् ।
 कार्यवैफल्यजा चिन्ता क्षपेव तनुतां ययौ ॥ १६१ ॥
 इति सीतादर्शनम् ॥ ४ ॥

१. 'मन्मथा' शा०. २. 'विधिरस्खलितादरः' शा०. ३. 'लम्बनसुधा' शा०.

ततः प्रपेदे प्रत्यूषसंध्यारुणरुचिः शशी ।
 पाणिस्त्रापभराताम्रप्रोषितावदनद्युतिम् ॥ १६२ ॥
 प्रवृत्तेष्वग्निहोत्रेषु प्रभाते ब्रह्मरक्षसाम् ।
 सभ्रूभङ्ग इव व्योम्नि धूमलेखातरङ्गिते ॥ १६३ ॥
 उदिते गगनाम्भोधिकौस्तुभे विपुलप्रभे ।
 मित्रे जगत्रयीनेत्रशतपत्रविकासिनि ॥ १६४ ॥
 कुमुद्वतीं परित्यज्य लक्ष्मीर्भेजे सरोजिनीम् ।
 प्रायः पर्यायगामिन्यः संपदो विपदस्तथा ॥ १६५ ॥
 पद्मसेवाप्रणयिनः कुमुद्वत्यां च निष्ठुराः ।
 समृद्धिसचिवाश्चेरुर्वित्ता इव मधुव्रताः ॥ १६६ ॥
 व्योम्नः श्यामा विरहिणस्तारकाश्रुकणावली ।
 बालमित्रकरोन्मृष्टा जगामादर्शनं शनैः ॥ १६७ ॥
 बभौ स्वर्णमयी लङ्का व्याप्ता बालातपश्रिया ।
 कुङ्कुमोन्मृष्टगात्रेव शोणांशुकवती वधूः ॥ १६८ ॥
 सुरकिंनरगन्धर्वविद्याधरमृगीदृशाम् ।
 नृपप्राबोधिकैर्गीतैर्विजिते भृङ्गशिञ्जिते ॥ १६९ ॥
 क्षणं दशाननस्थानप्रारम्भक्षुभिते जने ।
 सेवासंदर्शनव्यग्रसमग्रामात्यमण्डले ॥ १७० ॥
 सीतां सुनिश्चितं ज्ञात्वा तरुपल्लवसंभृतः ।
 पश्यन्नलक्ष्यस्तामेव कपिस्तस्थौ क्षपावधि ॥ १७१ ॥
 अथाम्बरसरश्चुम्बिरविविम्बाम्बुजं शनैः ।
 प्रम्लानदिननालान्ते परिश्रान्तमलम्बत ॥ १७२ ॥
 दीप्तिमौषधिशैलेषु तापं विरहिणीषु च ।
 निक्षिप्येव जगामास्तं विस्रस्तकिरणो रविः ॥ १७३ ॥
 सूर्यरत्नगृहैर्लङ्का वासरस्याशु गच्छतः ।
 क्षणमंशुकसंसक्ता हस्तालम्बमिवाकरोत् ॥ १७४ ॥

स्फारस्फटिकहर्म्येषु कान्ताकेलिस्मितेषु च ।
 ध्वजांशुकेषु च दिनं सावशेषमिवाभवत् ॥ १७५ ॥
 ततः संध्यासवापूर्णं तमःस्तोमोत्पलावृतम् ।
 तारकाकुसुमस्मेरं बभौ गगनभाजनम् ॥ १७६ ॥
 शोणरत्नगृहालोकरक्तचन्दनचर्चिता ।
 राक्षसीमुक्तकेशेव तमोभिरभवत्क्षपा ॥ १७७ ॥
 निशि प्रवर्धमानेव नीलरत्नगृहावली ।
 चिरायातस्य तमसः प्रत्युत्थानमिवाकरोत् ॥ १७८ ॥
 अथो निशीथमन्थाद्रिव्यासे गगनसागरे ।
 उद्ययौ विकटध्वान्तकालकूटे सुधाकरः ॥ १७९ ॥
 अशोकवनिकोद्देशे बभौ विम्बं क्षपापतेः ।
 छत्रीभूतमिवाशेषपुष्पकोशोद्गतं रजः ॥ १८० ॥
 चन्द्रांशुहाससुभगे रराज रजनीमुखे ।
 कुमुदामोदमत्तलिमालालोलकावली ॥ १८१ ॥
 प्रौढे निशाकरालोके सीतां मारुतनन्दनः ।
 ददर्श हर्षरहितां बद्धामिव करेणुकाम् ॥ १८२ ॥
 विरहानलसंतप्तश्वासधूसरिताननाम् ।
 संतताश्रुकणामर्षकषायारुणलोचनाम् ॥ १८३ ॥
 अपश्यत्तां समावृत्त्य स्थिता विकृतविग्रहाः ।
 नानाप्राणिमुखीघोरा नानायुधपरिग्रहाः ॥ १८४ ॥
 एकानेकोग्रविस्तीर्णप्रांशुह्रस्वाङ्गभूषणाः ।
 रक्षःपतिसमादिष्टराक्षसीस्तीव्रविक्रमाः ॥ १८५ ॥
 तामिरप्यर्दितां वाग्भिर्भर्तृशोकपरायणाम् ।
 तरुस्कन्धगतः सीतां दृष्ट्वाभूद्दुःखितः कपिः ॥ १८६ ॥
 अथार्धरात्रे निःशब्दे प्रौढपानमदोत्कटः ।
 दष्टः कन्दर्पसर्पेण व्यबुध्यत दशाननः ॥ १८७ ॥

सजृम्भारम्भनिःश्वासैः प्रेङ्खोलितनखैर्मुहुः ।
 प्रदीपैर्विहितालोकः सप्रणामैरिवागतः ॥ १८८ ॥
 उत्थाय पदसंरम्भश्चथमात्यवरांशुकः ।
 निद्राकषायनयनः क्षणं सीतामचिन्तयत् ॥ १८९ ॥
 स सीताचिन्तनोद्भूतं धर्तुं विषमसायकम् ।
 न शशाकोत्पथारूढं मूर्खं नवमिवेश्वरः ॥ १९० ॥
 सलोलहारस्त्रग्दामभूषणः पुष्पशेखरः ।
 जगामाशोकवनिकां चूर्णमान इवाचलः ॥ १९१ ॥
 तं विलोलकलक्वाणसखेलाहंसमालिनः ।
 अनुजग्मुः प्रियतमा महोदधिमिवाध्वगाः ॥ १९२ ॥
 ता हेमदीपभृङ्गारच्छत्रवेत्रकराः पुरः ।
 तस्यावभुर्भेरुतटे जाता हेमलता इव ॥ १९३ ॥
 जयालोक्य मार्गोऽयमेते सेवासमागताः ।
 इति तस्याकुलालापः ससर्प स्त्रीजनः पुरः ॥ १९४ ॥
 दूरादागच्छतस्तस्य कान्ताकङ्कणनिःस्वनम् ।
 रशनानूपुरारावं तारं शुश्राव मारुतिः ॥ १९५ ॥
 स ददर्श तमायान्तं योषिद्भिः परिवारितम् ।
 मूर्तं मदमिवाशेषलोकधैर्यापहारिणम् ॥ १९६ ॥
 स्फुटं विज्ञाय पौलस्त्यमसामान्येन तेजसा ।
 धीरोऽपि मारुतिर्द्रष्टुं नाभूत्सप्रतिभः क्षणम् ॥ १९७ ॥
 स तस्य त्रिदशैश्वर्यसंहाराश्चर्यकारिणः ।
 तेजसा शङ्कितः क्षिप्रमभूत्पल्लवसंवृतः ॥ १९८ ॥
 सीतापि रावणं वीक्ष्य दिव्याभरणदीप्तिभिः ।
 नीलाभ्रमिव विद्युद्भिः कुर्वाणं कपिला दिशः ॥ १९९ ॥
 भज्यमानेव सहसा वेपमानाश्रुवर्षिणी ।
 शीकरानिलवेगेन नलिनीव समाहता ॥ २०० ॥

‘हेमतटे’ क-ख. २. ‘सेनाः समागताः’ शा०-क-ख.

अधोमुखीससंकोचमूरुप्रच्छादितोदरी ।
 बाहुस्तम्बिकबन्धेन विनिगूह्य पयोधरौ ॥ २०१ ॥
 भयशोकार्वमानानां तुल्यं निपतिता वशे ।
 विवेश स्वमिवाकारं ह्रिया भूविवरार्थिनी ॥ २०२ ॥
 सीतामालोक्य पौलस्त्यः क्षितिं दैत्यहतामिव ।
 सहसा राक्षसाकृष्टां मन्त्रहीनामिवाहुतिम् ॥ २०३ ॥
 दीर्घदुःखानलक्रान्तां प्राणत्यागसुखार्थिनीम् ।
 रामसंगमसंकल्पैर्दूतैराश्वासितामिव ॥ २०४ ॥
 उत्कण्ठाकुण्ठितधृतिर्जगाद जलदस्वनः ।
 कुर्वन्नुद्याननलिनीं हंसालीं भयविह्वलाम् ॥ २०५ ॥
 अद्यापि वामनयने किमस्मान्नाभिभाषसे ।
 पेशले वज्रकठिनः कोऽयं ते हृदि दुर्ग्रहः ॥ २०६ ॥
 प्रसादामृतदिग्धेन मुग्धे मधुरचक्षुषा ।
 विलोकयन्ति यत्कान्तास्तत्तासां चारुभूषणम् ॥ २०७ ॥
 इयं ते ललिता मूर्तिर्वीराणां धृतिहारिणी ।
 त्रिजगज्जयिनः शक्तिं मूर्ती मन्ये मनोभुवः ॥ २०८ ॥
 भूषणैर्भूषयात्मानं लावण्येनापि भूषितम् ।
 गुणैरिवापरिस्नानं रूपं यौवनभूषितम् ॥ २०९ ॥
 संभोगरहिता सुभ्रु नेयं ते शोभते तनुः ।
 गुणजैरपरामृष्टा सुकवेरिव भारती ॥ २१० ॥
 दष्टाधरं रतिक्लान्तं विस्त्रस्तकवरीभरम् ।
 सुदृशां भाति संभोगसौभाग्याभरणं वपुः ॥ २११ ॥
 प्रसीद मे प्रणयिनः कुरु चारुस्मितं वचः ।
 कामं कामः सक्रामोऽस्तु कार्मुके सफलश्रमः ॥ २१२ ॥
 किं मे संदर्शनादेव तनुं तन्वि निगूहसे ।
 अकामां कामिनीं सत्यं न संस्पृशति रावणः ॥ २१३ ॥

त्यज भीरु भयं मा मे भव प्रीतिपराङ्मुखी ।
 अयं त्वच्चरणानम्रो मौलिः क्षमां परिचुम्बति ॥ २१४ ॥
 सेना सुभटहीनेव शशिहीनेव शर्वरी ।
 समृद्धिस्त्यागहीनेव भोगहीना न शोभसे ॥ २१५ ॥
 असंभोगपरिस्नाना स्वाङ्गी प्रक्षीणयौवना ।
 कान्ता कस्य न दुःखाय श्वभ्रजातेव वल्लरी ॥ २१६ ॥
 सौभाग्यरहिताः कान्ताः कामं कानकपुत्रिकाः ।
 यदि कान्तनखोल्लेखखण्डिता न कुचस्थली ॥ २१७ ॥
 वैङ्कर्यहेमहर्म्येषु चन्द्रिकोल्लासहासिषु ।
 खैरं वरासवक्षीवा भैज मां सुन्दरि स्वयम् ॥ २१८ ॥
 सुखसख्यस्मरस्मेरा मदोद्यानमधुक्षपाः ।
 न भवन्ति चिरं चारुनयने यौवनश्रियः ॥ २१९ ॥
 सुखेषु यदि वैमुख्यं संभोगे यदि नादरः ।
 अद्वितीयमिदं धात्रा तत्किमर्थं कृतं वपुः ॥ २२० ॥
 त्वां वीक्ष्य मम लोलाक्षि रोचते न वधूजनः ।
 भृङ्गः कल्पलतां प्राप्य वल्लीषु रमते कथम् ॥ २२१ ॥
 देवि त्रैलोक्यजयिनः श्रियं मे विश्वविश्रुताम् ।
 प्रसादसुमुखी क्षिप्रं देहि यस्यै त्वमिच्छसि ॥ २२२ ॥
 मद्भुजोपार्जिताशेषसाम्राज्यविजयोऽर्जितः ।
 त्वज्जन्मपूजां भजतां जनको जनकस्तव ॥ २२३ ॥
 स्त्रीविरामेण रामेण विस्मृतेन शुचिस्मिते ।
 शुष्कवल्कलिना तेन क्रियते निष्फलेन किम् ॥ २२४ ॥
 मतिस्ते यातु सुश्रेणि रतिलीलानुकूलताम् ।
 सुरसीमन्तिनीसीम्नि क्रियतामासनग्रहः ॥ २२५ ॥
 विद्याधरीकरोदञ्चामरोच्चालितांशुका ।
 दर्शनानुग्रहव्यग्रा भव त्रिदशयोषिताम् ॥ २२६ ॥

१. 'स्वङ्गी' इति स्यात्. २. 'मदिराक्षि भजस्व माम्' शा०.

इति राक्षसराजस्य वचः श्रुत्वा मनस्विनी ।
 कोपशोकानलाक्रान्ता विधाय तृणमन्तरे ॥ २२७ ॥
 कुर्वाणा कुचयोरश्रुकणैर्मुक्तावलीमिव ।
 क्षितिं निरीक्ष्यमाणैव जगाद जनकात्मजा ॥ २२८ ॥
 संकल्पस्त्यज्यतामेष स्वदारेष्वादरोऽस्तु ते ।
 न मामर्हसि संप्राप्तुमेकपत्नीं कुलोचिताम् ॥ २२९ ॥
 अहं रामस्य नान्यस्य विद्येव विदितात्मनः ।
 दयिता दानशीलस्य शुद्धा कीर्तिरिवोचिता ॥ २३० ॥
 स्वदारहरणे ज्ञात्वा दुःखामर्षविषव्यथाम् ।
 परस्त्रीहरणे बुद्धिरपशोः कस्य जायते ॥ २३१ ॥
 परदारपरामर्षकुत्सया कुत्सितात्मनाम् ।
 पुरुषोत्तमरक्ता श्रीर्न करोति पदं गृहे ॥ २३२ ॥
 कथं सन्तो न सन्तीह सन्तोऽपि न वदन्ति वा ।
 तदुक्तं न प्रमाणं वा तव नाशाभिलाषिणः ॥ २३३ ॥
 जाता विध्वस्तशीलस्य निर्लज्जस्य प्रमादिनः ।
 चारुचामरहासिन्यो न भवन्ति विभूतयः ॥ २३४ ॥
 विजितं दर्पमोहाभ्यां निर्लज्जमजितेन्द्रियम् ।
 विपदः स्वयमायान्ति वेश्या मुग्धमिवेश्वरम् ॥ २३५ ॥
 भूपतेर्व्यसनासङ्गः प्रजानां क्षयलक्षणम् ।
 अपर्वणि सहस्रांशोरिव राहुसमागमः ॥ २३६ ॥
 निसर्गदुर्गमो मार्गः क्षत्रवर्गो निरर्गलः ।
 कष्टं केनोपदिष्टोऽयमनिष्टपिशुनेव च ॥ २३७ ॥
 सर्वथा रघुनाथस्य प्रतापः कोपसंभृतः ।
 विचरिष्यति लङ्कायां धूमकेतुरिवोदितः ॥ २३८ ॥
 रामचाच्युतैर्बाणैरासन्नो रक्षसां क्षयः ।
 यद्यस्ति ते सुहृत्कश्चित्प्रतीकारो विचिन्त्यताम् ॥ २३९ ॥

अवश्यं त्वयि मग्नायाः पयःपङ्काशये श्रियः ।
 दीर्घरामशरश्रेणी हस्तालम्बं करिष्यति ॥ २४० ॥
 रुचिरैरचिरायतै रामलक्ष्मणसायकैः ।
 अयशःशेषतामेव प्रयास्यसि निपातितः ॥ २४१ ॥
 रामबाणमये लोके दिक्षु सर्वासु सर्वतः ।
 विचार्यानार्य जानीहि क ते रक्षा भविष्यति ॥ २४२ ॥
 जन्मान्तरेषु दुर्वृत्तनरकामिच्छलेन ते ।
 प्रशान्तिं रामकोपाम्निर्न हतस्यापि यास्यति ॥ २४३ ॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
 तां प्रत्युवाच निःश्वस्य कोपादाताम्रलोचनः ॥ २४४ ॥
 यान्ति प्रगल्भतां सान्त्वैरवमानैश्च वश्यताम् ।
 स्त्रियः कुटिलचारिण्यः प्रणयस्य न भाजनम् ॥ २४५ ॥
 अनुकूलविरुद्धस्य प्रतिकूलाभिलाषिणः ।
 सर्वथा विषमः पन्थाः मन्मथस्य प्रसादिनः ॥ २४६ ॥
 विमुखीध्वन्यकामासु यद्वामास्वधिका रुचिः ।
 सा ह्यगम्याभिक्रामस्य कामं कामस्य वामता ॥ २४७ ॥
 ललना परुषं ब्रूते तत्रापि प्रणयी जनः ।
 अहो विरक्तसक्तस्य रागस्यानुचिता गतिः ॥ २४८ ॥
 नीचानां निम्नगानां च योषितां च स्वभावतः ।
 धृतानामपि यत्नेन नोन्नते जायते रतिः ॥ २४९ ॥
 वृधार्हासि च वैदेहि मम विप्रियकारिणी ।
 किं करोम्येष दुर्वृत्तस्त्वां रक्षति मनोभवः ॥ २५० ॥
 वचः क्रकचतुल्यं ते विषौघविषमं मनः ।
 रामस्यापि कथं नाम त्वं नित्यकठिने प्रिया ॥ २५१ ॥
 मानं मार्ष्टि मतिं हन्ति जनयत्येव लाघवम् ।
 एवंप्रयत्नोऽस्याः प्रायेणाविषये रतिः ॥ २५२ ॥

१. 'वधयोग्यासि' शा०.

१७ रा०

अद्याप्ययं जनः सीते त्वत्प्रसादं प्रतीक्षते ।
 सद्ब्रूत इव रागोऽयं सदोषेष्वपि वत्सलः ॥ २५३ ॥
 सर्वथा यदि सावज्ञा न करिष्यति मे वचः ।
 याते मासद्वये वध्या भविष्यसि न संशयः ॥ २५४ ॥
 इति संतर्जितां सीतां सुरगन्धर्वयोषितः ।
 दृष्ट्वा नेत्रौष्ठसंज्ञाभिस्तदाश्वासं प्रचक्रिरे ॥ २५५ ॥
 सावदन्निर्भया शोकसंतप्ता भैरवैषिणी ।
 रक्षन्ती वाससा गात्रे रक्षोदर्शनदूषणम् ॥ २५६ ॥
 एवं प्रलापिनः पाप कथं जिह्वा न शीर्यते ।
 परेषां दारचौरस्य दण्डाः प्राणेषु ते क्षमाः ॥ २५७ ॥
 सैन्यरौघेषु दुर्गेषु स्वमित्रेषु परात्मसु ।
 दुःसहो रामकोपाग्निरास्थां मिथ्यैव मा कृथाः ॥ २५८ ॥
 स्तोकवासरशेषेयं तव श्रीरायुषा सह ।
 स्वयं वितर सर्वस्वं न प्रेतमनुयाति तत् ॥ २५९ ॥
 भविष्यति तवावश्यं रामाद्धीतस्य संयुगे ।
 भुजेषु भारभूतेषु शस्त्रग्रहविडम्बना ॥ २६० ॥
 त्वद्वर्ध्वाष्पसलिलैस्त्वत्संकल्पकलङ्कितम् ।
 क्षालयन्तीमिवात्मानं लङ्कां द्रक्ष्यति राघवः ॥ २६१ ॥
 इति ब्रुवाणां वैदेहीं कामक्रोधमयेन सः ।
 संसारेणेव घोरेण चक्षुषा क्षणमैक्षत ॥ २६२ ॥
 संरम्भक्षुभिता कोपकम्पव्याकुलकुण्डलम् ।
 दृष्ट्वा लङ्केश्वरं कान्ता बभाषे पुण्यमालिनी ॥ २६३ ॥
 पराङ्मुखीं त्यज विभो सीतां परुषवादिनीम् ।
 भजस्व स्वां प्रियतमां त्वत्प्रेमबहुमानिनीम् ॥ २६४ ॥

१. 'कोप' शा०. २. 'निधनै' शा०. ३. 'राश्र्थदुर्गेषु मित्रमन्त्रिवरात्मसु' शा०.
 ४. 'त्वत्संपर्क' शा०.

परस्परगुणाबद्धप्रेमप्रणयभूषणः ।
 उत्तमाभिमतो रागः खलरागो ह्यतः परः ॥ २६५ ॥
 इति प्रियावचः श्रुत्वा जानकीतर्जने स्वयम् ।
 राक्षसीगणमादिश्य रावणोऽन्तःपुरं ययौ ॥ २६६ ॥
 ततः प्रभाते पौलस्त्यराक्षस्यः कोपकम्पिताः ।
 सीतामूचुर्विरूपाक्ष्यो भेरीगम्भीरनिःस्वनाः ॥ २६७ ॥
 चतुर्थो ब्रह्मणः श्रीमान्वीरो विश्रवसः सुतः ।
 धन्यस्ते प्रणयी मूढे पौलस्त्यस्त्रिजगज्जयी ॥ २६८ ॥
 भाग्यहीनस्य किं वान्यन्मिथ्या समुपदिश्यते ।
 परित्यजति यः स्फीतं निधानं स्वयमागतम् ॥ २६९ ॥
 भ्रूक्षेपमात्रानुमितामाज्ञां यस्य सुरासुराः ।
 वहन्ति नम्राः सततं मौलिमालाग्रशालिनीम् ॥ २७० ॥
 वरुणः करुणापात्रं शक्रो वक्रमतिः पुनः ।
 मारुतो विरतावेगस्तरणिः किरणोज्झितः ॥ २७१ ॥
 धनदो धनदोषान्तः पावकोऽपावकव्रतः ।
 यमः ससंयमो यस्य रोचतां ते स रावणः ॥ २७२ ॥
 प्रीत्या प्रणत इत्येवं मावमंस्था दशाननम् ।
 तस्येच्छया त्रयो लोका भवन्ति न भवन्ति च ॥ २७३ ॥
 प्रणयाद्यदि दर्पान्धे न करिष्यसि नो वचः ।
 तदास्महन्तिदन्ताग्रदलिता क्षयमेष्यसि ॥ २७४ ॥
 कोमलानि तवाङ्गानि पानक्रीडावदंशताम् ।
 गतानि यावदस्माकं तावत्कुरु यथोचितम् ॥ २७५ ॥
 इति संतर्जिता सीता ताभिर्बोष्णाम्बुवर्षिणी ।
 उवाच सर्वं क्रियतां रामो मे दैवतं पतिः ॥ २७६ ॥
 त्रैलोक्यख्यातयशस्तस्य रामस्य वल्लभा ।
 न जीवितक्षयभयात्करोत्यनुचिते मतिम् ॥ २७७ ॥

इति ब्रुवाणा वैदैही नेत्राम्बुस्रपितस्तनी ।
 वल्लीवालिकुलालापा वेपमाना प्रलापिनी ॥ २७८ ॥
 रामं निरीक्षमाणेव संकल्पोल्लिखितं पुरः ।
 रुरोदाभ्यधिकं दुःखं तस्मै वक्तुमिवोद्यता ॥ २७९ ॥
 ततस्ताः शूलपरशुप्राप्तपट्टिशतोमरैः ।
 उद्यतैरुद्ययुः सीतां घोरा नक्तंचरस्त्रियः ॥ २८० ॥
 इति सीतातर्जनम् ॥

अथोचे त्रिजटा नाम प्रसिद्धा वृद्धराक्षसी ।
 बालेयं मैथिली मिथ्या हठादायास्यते सती ॥ २८१ ॥
 इयं गुणगणोदारा कल्याणस्येव भाजनम् ।
 इदमभ्युदयस्यैव सर्वदा मन्दिरं वपुः ॥ २८२ ॥
 श्रूयतां शर्वरीशेषे मया स्वप्नोऽद्य यादृशः ।
 दृष्टो न दृष्टपूर्वोऽपि न श्रुतो न विचिन्तितः ॥ २८३ ॥
 पिबन्सभूधरां भूमिं शोणितं च सिताम्बरः ।
 दृष्टः स्वप्ने मया रामः शुक्लमात्यानुलेपनः ॥ २८४ ॥
 लक्ष्मणश्च तथा दिव्यः शुक्लवस्त्रावृतः पुरः ।
 आरूढो दन्तशिबिकां दिव्यां गगनगामिनीम् ॥ २८५ ॥
 हृतां नागसहस्रेण कैलासशिखरोपमाम् ।
 समुद्रवलितं श्वेतपर्वतं जनकात्मजा ॥ २८६ ॥
 आरुह्य रामसहिता प्रविष्टा नगरीमिमाम् ।
 चतुर्दन्तगजारूढौ सहितौ रामलक्ष्मणौ ॥ २८७ ॥
 पुनश्च पुष्पकारूढौ दृष्टौ सीतामुपस्थितौ ।
 भर्त्रा कृतकरालम्बा तमारुह्य महागजम् ॥ २८८ ॥
 पाणिना स्पष्टचन्द्रार्का सीता लङ्कामुपागता ।
 रथेनाश्वयुजा रामः पाण्डुरर्षभशोभिना ॥ २८९ ॥
 पुनश्च सानुजः श्रीमान्समायातः पुरीमिमाम् ।
 पुष्पकाग्रान्निपतितो मया दृष्टश्च रावणः ॥ २९० ॥

हसन्नक्ताम्बरो मुण्डः कृष्यमाणः क्षितौ स्त्रिया ।
 रथेन खरयुक्तेन रक्तस्रगनुलेपनः ॥ २९१ ॥
 स व्रजन्दक्षिणामाशां प्रविष्टो गोमयहृदम् ।
 काली कमलपत्राक्षी प्रमदालोलिताम्बरा ॥ २९२ ॥
 दशग्रीवं गले बद्धा दिशं याता यमाश्रिताम् ।
 शिशुमारवराहोष्ट्रवाहनो राक्षसैर्वृतः ॥ २९३ ॥
 सगीतवाद्यैर्नृत्यद्भिः पुनर्यातो दशाननः ।
 तैलं पीत्वा सुवृत्ताभिर्हसन्तीभिश्च सर्वतः ॥ २९४ ॥
 स्त्रीभिः परिवृता लङ्का सज्वालापतिताम्बुधौ ।
 कुम्भकर्णादयो रक्तवसना गोमयहृदम् ॥ २९५ ॥
 प्रविष्टाः श्वेतशैलं तु समारूढो विभीषणः ।
 प्रत्यासन्नोदयो रामः क्षयासन्नो दशाननः ॥ २९६ ॥
 घोरां संतर्जनामेतां तस्मान्नार्हाते जानकी ।
 नेत्रोरुबाहुस्पन्दश्च दक्षिणोऽस्या विलक्ष्यते ।
 शुभं शाखाश्रयो नित्यं सीतां वदति वायसः ॥ २९७ ॥
 इति त्रिजटाखमः ॥ ६ ॥
 चिन्तयन्ती तु वैदेही रामं राजीवलोचनम् ।
 दुःसहं चात्मनो दुःखं प्राणत्यागोत्सुकाभवत् ॥ २९८ ॥
 भर्तुर्दूतैरिवागत्य किञ्चिदाश्वासिता शनैः ।
 धृतिं लेभे जनकजा निमित्तैः शुभशंसिभिः ॥ २९९ ॥
 हनूमानिति तत्सर्वं दृष्ट्वा श्रुत्वा च संवृतः ।
 अचिन्तयत्क्षणं तस्याः सतीवृत्तेन विस्मितः ॥ ३०० ॥
 कथं नु रात्रिशेषेऽस्मिन्भर्त्सितां राक्षसीगणैः ।
 सीतामाश्वास्य गच्छामि रामं जीवितनिःस्पृहाम् ॥ ३०१ ॥
 तूर्णमेतामसंभाष्य याते मयि यथागतम् ।
 जाने जीवितमद्यैव जहाति जनकात्मजा ॥ ३०२ ॥

गतोऽहं लङ्घिताम्भोधिर्लङ्कां दृष्ट्वा च जानकी ।
 न तु संभाषितेत्येवं कथं वक्ष्यामि राघवम् ॥ ३०३ ॥
 प्रस्ता पौलस्त्यमायासु मया संभाषिता सती ।
 न दास्यति प्रतिवचः सीता यत्नशतैरपि ॥ ३०४ ॥
 अहं संभाषणे त्वस्या राक्षसैर्यदि लक्षितः ।
 तत्सर्वथा प्रयत्नोऽयं कलहान्तो भविष्यति ॥ ३०५ ॥
 असंपूर्णे च कार्येऽस्मिन्युद्धं विविधसंशयम् ।
 राघवप्रतिसंदेशे विघ्नतामुपयास्यति ॥ ३०६ ॥
 विरलः सोद्यमो लोकः सामग्री बह्वपायिनी ।
 युद्धं संदिग्धमेकस्य विपरीतनिधिर्विधिः ॥ ३०७ ॥
 तस्माद्युक्तिं समाश्रित्य स्वैरं लघुतरस्वनः ।
 रघुनाथकथामस्याः करोम्यग्रे सुधामयीम् ॥ ३०८ ॥
 इति संचिन्त्य हनुमान्विटपान्तरिताकृतिः ।
 ससर्ज वाणीं वैदेहीश्रोत्रपान्नाभिगामिनीम् ॥ ३०९ ॥
 बभूव भूरियशसामिक्ष्वाकूणां कुलोचितः ।
 राजा दशरथो नाम धाम त्रिदशसंपदाम् ॥ ३१० ॥
 रामः सुधाद्युतिस्तस्य सूनुर्गुणमहोदधिः ।
 निर्दोषा कौमुदी यस्य कीर्तिराश्चर्यकारिणी ॥ ३११ ॥
 सीतां दशाननस्तस्य स्वविनाशाय मायया ।
 जायां जहार वीरस्य वने निवसतः सतः ॥ ३१२ ॥
 स चारान्वानरान्वीरान्करानिव दिवाकरः ।
 विक्षिप्य दिक्षु तां द्रष्टुमुद्यतः पद्मिनीमिव ॥ ३१३ ॥
 विस्रम्भसाक्षिणीं स त्वां मनोवृत्तिमिवात्मनः ।
 प्रोषितां कुशलं सीते देवः पृच्छति राघवः ॥ ३१४ ॥
 इति त्रिवाक्सुधासारैः सीतामाप्लाव्य मारुतिः ।
 विररामातिसंतापे क्षिप्रवर्षीव वारिदः ॥ ३१५ ॥

कर्णामृतं तदाकर्ण्य सहसा तरलेक्षणा ।
 कीर्णोत्पलदलाश्चक्रे लोलैरालोकितादिशः ॥ ३१६ ॥
 किमेतदिति संभ्रान्ता सत्यमित्यासजीवित ।
 मायेयमिति सासूया मिथ्यैतदिति मूर्छिता ॥ ३१७ ॥
 स्वप्नोऽयमिति सावज्ञा निद्रासीति च सादरा ।
 अस्त्वेतदिति सोत्कण्ठा न सीता निश्चयं ययौ ॥ ३१८ ॥
 हर्षशोकभयाक्रान्तमाक्रान्तं दीर्घचिन्तया ।
 मनः ससंशयं तस्याश्चक्रारूढमिवाभवत् ॥ ३१९ ॥
 दूतः कथं रघुपतेरियतीं भूमिमागतः ।
 विरुद्धस्य कथं धातुर्बुद्धिर्विपरिवर्तते ॥ ३२० ॥
 विप्रलम्भवलैस्तैस्तैरसंतुष्टोऽथवा विधिः ।
 दग्धं दहति दुःखेन हतमाहन्ति केवलम् ॥ ३२१ ॥
 इति चिन्ताकुला तन्वी समुन्नाम्यं मुखाम्बुजम् ।
 ददर्श शिशिपास्कन्धे निभृताङ्गं प्लवंगमम् ॥ ३२२ ॥
 अरिष्टसूचकः स्वप्ने दृश्यते यदि वानरः ।
 प्रत्यक्षदर्शनादस्य न चायं स्वप्नविभ्रमः ॥ ३२३ ॥
 रावणः कपिरूपोऽयं मायाशतविशारदः ।
 परस्त्रियं समाहर्तुं कितवो मां समीहते ॥ ३२४ ॥
 इत्यनेकविकल्पाभून्मोहनिस्पन्दलोचना ।
 अवरुह्य तरुस्कन्धाद्वक्तुं तामाययौ कपिः ॥ ३२५ ॥
 स तां विनीतः शनैः प्रससर्प यथा यथा ।
 तथा तथा रावणोऽयमित्याशङ्कत जानकी ॥ ३२६ ॥
 सोऽब्रवीद्देवि दूतोऽहं रामस्य यशसां निधेः ।
 मनोरथमिवोल्लङ्घ्य समुद्रं त्वामुपागतः ॥ ३२७ ॥
 त्वदनुस्मरणध्यानतत्परस्त्वत्कथाजपः ।
 कुशली राघवः सीते कानने विरहव्रते ॥ ३२८ ॥

हत्वा शक्रसुतं वीरं वालिनं वानरेश्वरम् ।
 सुग्रीवाय ददौ राज्यं त्वत्कृते रघुनन्दनः ॥ ३२९ ॥
 सुग्रीवः कुशलो देवि रामस्य दयितः सुहृत् ।
 सेतुस्त्वद्विरहाम्भोधौ त्वदन्वेषणवान्धवः ॥ ३३० ॥
 रामः कमलपत्राक्षः सिंहस्कन्धो महाभुजः ।
 शशीव राकारहितस्त्वत्कृते तनुतां गतः ॥ ३३१ ॥
 सुग्रीवः शाश्वतीं कीर्तिं त्वामवाप्तुं च राघवः ।
 कृतक्षणावेककाया लतासक्तेः फलद्वये ॥ ३३२ ॥
 रामस्य दारहरणं सुग्रीवेण च संगमः ।
 इयती रावणवधे सामग्री विधिनिर्मिता ॥ ३३३ ॥
 त्यक्त्वाहमागतः सीतामिति नित्यमधोमुखः ।
 ह्रिया शुष्यति सौमित्रिर्याच्चयेव कुलोन्नतः ॥ ३३४ ॥
 स ते कृताञ्जलिर्मातः कुशलं परिपृच्छति ।
 तप्तस्तापेन रामस्य सूर्यकान्तो रवेरिव ॥ ३३५ ॥
 इति ब्रुवाणो जानक्या पृष्टः पवननन्दनः ।
 सुग्रीवसख्यं विपुलामूचे रामकथां पुरः ॥ ३३६ ॥
 निखिलं रामवृत्तान्तं निवेद्यास्यै प्लवंगमः ।
 प्रददौ रामनामाङ्कं प्रत्ययायाङ्गुलीयकम् ॥ ३३७ ॥
 सा तदादाय लोलाक्षी हर्षबाष्पाप्लुतस्तनी ।
 अभूत्पतिमिवा लोक्य पुलकालंकृताकृतिः ॥ ३३८ ॥
 सावदन्मम दिष्ट्यासौ पतिर्जीवति राघवः ।
 अशेषं राक्षसकुलं यस्य कोपानलाहुतिः ॥ ३३९ ॥
 रामसुग्रीवयोः सख्यं स विन्ध्यो नाम राक्षसः ।
 वृद्धो न्यवेदयन्मह्यं जनस्थानादुपागतः ॥ ३४० ॥
 कच्चित्सरति मे नाथः कच्चिन्न शिथिलादरः ।
 कच्चिन्न दारहरणप्रतीकारो विलम्बते ॥ ३४१ ॥

यद्यहं तस्य वीरस्य दयिता हृदये स्थिता ।
 तत्किमद्यापि लङ्केयं न विशीर्णा सराक्षसा ॥ ३४२ ॥
 दैवं प्रमाणमाश्रित्य नोद्योगे यः प्रवर्तते ।
 तेन कण्ठगतच्छिद्रे घटे जलमिवोद्धृतम् ॥ ३४३ ॥
 देशकालोपपन्नस्य पौरुषस्याविरोधिनः ।
 अविस्वादिनी यस्माद्वाणस्येव फलोद्गतिः ॥ ३४४ ॥
 अपि पौरुषमास्थायै रामः प्रक्षालयिष्यति ।
 इमां पराभवम्लानिं रावणान्तःपुराश्रुभिः ॥ ३४५ ॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा बभाषे पवनात्मजः ।
 जीविताशां कथं रामस्त्वां विस्मरति बल्लभाम् ॥ ३४६ ॥
 भूमिशायी निराहारः स्वशरीरेऽपि निःस्पृहः ।
 मुनिरेव सुसंवृतः किं तु रागोऽस्य वर्धते ॥ ३४७ ॥
 अचिरेणैव काकुत्स्थः करिष्यति महीमिमाम् ।
 पौलस्त्यगात्रैः पतितैर्गिरिदुर्गवतीमिव ॥ ३४८ ॥
 दशाननकर्चोर्कर्षप्रौढरामशराङ्गुलिः ।
 करः करालः कालस्य प्रवेक्ष्यति पुरीमिमाम् ॥ ३४९ ॥
 लङ्केयं रघुनाथस्य नाद्यापि श्रुतिगोचरम् ।
 गता तेन विलम्बोऽत्र मृत्योरागमनोत्सवे ॥ ३५० ॥
 स्कन्धपीठाधिरूढां त्वामद्यैवादाय खेचरः ।
 राघवं लङ्घिताम्भोधिर्गच्छामि यदि मन्यसे ॥ ३५१ ॥
 त्वां प्राप्य राघवः क्षिप्रं क्षपयिष्यति राक्षसात् ।
 स्वस्थे चित्ते हि निष्पत्तिः कार्याणामुपजायते ॥ ३५२ ॥
 वानराणां प्रियाः शैलास्तैः समूलफलोदकैः ।
 वृष्टः समाशारुचिरं सानुजं विपुलाशयम् ॥ ३५३ ॥

१. 'कार्यं शतच्छिद्रे' शा०. २. 'नित्यं' शा०. ३. 'श्रित्य' शा०. ४. 'रा' शा०.
 ५. 'क्षसान्क्षि' शा०. ६. 'धवः' शा०.

शपे त्वच्चरणाभ्यां च तूर्णं द्रक्ष्यामि राघवम् ।
 इति ब्रुवाणं प्लवगं प्रत्यभाषत जानकी ॥ ३५४ ॥
 कथं नु मुष्टिमात्रस्त्वमितो मां नेतुमर्हसि ।
 श्रुत्वैतदस्यै स्वं रूपं कपिर्महददर्शयत् ॥ ३५५ ॥
 अवज्ञां प्रीतिवाक्येऽपि न सहन्तेऽभिमानिनः ।
 प्रवर्धमानः सहसा पुनर्विन्ध्य इवोत्थितः ॥ ३५६ ॥
 प्रभाव इव रामस्य विश्वव्यापी बभूव सः ।
 करावलम्बनं नूनं सहे नान्यस्य जातुचित् ॥ ३५७ ॥
 इहैव पश्य साधो त्वं कियत्संतर्जितां सतीम् ।
 दंष्ट्राकरालवदनः सोऽवदत्सनिशाचराम् ॥ ३५८ ॥
 लङ्कां नेतुं समर्थोऽहं विकटाट्टालमालिनीम् ।
 तमूचे मैथिली हर्षविस्मयोत्फुल्ललोचना ॥ ३५९ ॥
 जाने त्वां तेजसां राशिं मारुते क्षम्यतां भवान् ।
 अवज्ञामन्तरं वक्तुं प्रगल्भन्ते महत्स्वपि ॥ ३६० ॥
 मुग्धाः स्वभावात्प्रायेण योषितस्तरलाशयाः ।
 गगनं गरुडस्येव व्रजतस्ते तरस्विनः ॥ ३६१ ॥
 वेगेन धर्तुमात्मानमबला कथमुत्सहे ।
 व्योम्ना प्रभञ्जनजवे मामादाय गते त्वयि ॥ ३६२ ॥
 अभिद्रुतेषु रक्षःसु विद्धि मामम्बुधौ च्युताम् ।
 न च मे परगात्रेषु स्पर्शो युक्तः कुलस्त्रियाः ॥ ३६३ ॥
 तस्मात्त्वं गच्छ सावेगं स्वयमायातु राघवः ।
 पश्य मां मलदिग्धाङ्गीं तैर्जितां राक्षसीगणैः ॥ ३६४ ॥
 प्रियां रामस्य महिषीं दीनां स्थण्डिलशानियीम् ।
 इति सीतावचः श्रुत्वा हनूमान्साश्रुलोचनः ॥ ३६५ ॥
 पुनः शरीरं संक्षिप्य तामूचे शीलशालिनीम् ।
 भवत्या सत्यमेवैतद्युक्तमुक्तं कुलोचितम् ॥ ३६६ ॥

१. 'गोपुरान्' शा०. २. 'त्वद्वचसा तूर्णं' शा०. ३. 'भर्त्सितां' शा०.

सदृशं भाषसे सर्वं शीलस्याभिजनस्य च ।
 तीर्णोऽब्धिर्विचिता लङ्का त्वमिहस्थावलोकिता ॥ ३६७ ॥
 अभिज्ञानं तु रामाय किमादाय व्रजाम्यहम् ।
 एतदाकर्ण्य वैदेही पुनः प्रोवाच मारुतिम् ॥ ३६८ ॥
 वाच्यः संप्रत्ययायैव त्वया रहसि राघवः ।
 विलोलमञ्जरीपुञ्जकिञ्जल्कै रञ्जितानिले ॥ ३६९ ॥
 विकटे चित्रकूटस्य रम्ये मन्दाकिनीतटे ।
 अहं त्वदङ्कपर्यङ्के जलकेलिश्रमाकुला ॥ ३७० ॥
 निषण्णा त्वन्मुखाम्भोजलोललोचनषट्पदा ।
 ऐषीकेनानिलजवः शक्रसूनुसहेलया ॥ ३७१ ॥
 नखोल्लेखविधायी मे काणः काक्रः कृतस्त्वया ।
 अद्यापि हृदये लीना ललाटे लिखितापि च ॥ ३७२ ॥
 त्वया मनःशिलोल्लेखलीलातिलकमञ्जरी ।
 अभिमान इवायं मे रामप्रणयसंभवः ॥ ३७३ ॥
 त्वदुक्तिप्रत्ययायास्तु मणिं वेणीविभूषणम् ।
 इत्युक्त्वा वेणिकामसौ विमुच्य रुचिरं मणिम् ॥ ३७४ ॥
 प्रददौ वासरालोकमिव पुञ्जीकृतं निशि ।
 मणेः प्रभाकरस्तस्य तिरस्कृतनिशाकरः ॥ ३७५ ॥
 रामदर्शनयात्रायां हर्षहास इवावैभौ ।
 दत्त्वा मणिं कपिं सीता पुनरुन्ने कृताञ्जलिः ॥ ३७६ ॥
 अधुना त्वत्प्रभावाङ्के रामकार्यं विवर्धते ।
 हृतेति लोकविदितं त्रस्तेति स्त्रीजनोचितम् ॥ ३७७ ॥
 शुष्यतीति प्रलापो यः संस्थासीत्यतिनिष्ठुरम् ।
 विस्तृतासीत्यनुचितं दयितासीति चापलम् ॥ ३७८ ॥
 जीवन्तीत्यतिलज्जेयं शोकार्तेति किमद्भुतम् ।
 अस्मिन्दुःखार्णवे मग्नां रघुनाथः कृपानिधिः ॥ ३७९ ॥

१. 'कटके' शा०. २. 'मे' शा०. ३. 'भ' शा०. ४. 'भवत्' शा०.

विचाराचारसहितो मां समुत्तारयिष्यति ।
 अथ वा सर्वमेव त्वं जानीषे धीमतां वर ॥ ३८० ॥
 त्वयैव तस्य ह्युचितं तत्तद्वाच्यः पतिर्मम ।
 इति निद्रावमाणासु राक्षसीषु प्लवंगमः ।
 श्रुत्वा सीतावचः क्षिप्रं तामामन्त्र्य शनैर्ययौ ॥ ३८१ ॥
 इति हनुमत्सीतासंभाषणम् ॥ ७ ॥
 सीतां प्रदक्षिणीकृत्य प्रस्थितः पवनात्मजः ।
 वर्धमानवपुर्वारः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ ३८२ ॥
 रामकार्यं कृतं तावद्यदर्थं प्रेषिता वयम् ।
 तदुक्ताभ्यधिकं कर्तुमधुना मे मनोरथः ॥ ३८३ ॥
 एककार्यविस्मृष्टानामनेकार्थविधायिनाम् ।
 स्वामिसन्मानसफलं जीवितं वर्धमायिनाम् ॥ ३८४ ॥
 निशि सुप्तजनां लङ्कां दृष्ट्वा चोर इवाखिलाम् ।
 गमिष्याम्यपरिज्ञातः कथं भुजबलोऽर्जितः ॥ ३८५ ॥
 स्वीकारविमुखा घोरा न भिद्यन्ते सुसंहताः ।
 नार्थिनो जितवित्तेषा युद्धार्हा एव राक्षसाः ॥ ३८६ ॥
 तस्मादशोकवनिकां दयितां राक्षसप्रभोः ।
 युद्धदूर्ती करोम्येष निखिलोद्धूलितद्रुमाम् ॥ ३८७ ॥
 इति संचिन्त्य हनुमान्नसपूर्णाश्रुवर्षिणः ।
 बभञ्ज पादपान्त्सस्तपुष्पपल्लवभूषणान् ॥ ३८८ ॥
 अश्वकर्णैर्निपतितैर्नागैश्च शकलीकृतैः ।
 रणाङ्गणमिवोद्यानमभूदस्तशिलीमुखम् ॥ ३८९ ॥
 दवेषु पतितेष्वग्रे बभुर्विवलिता लताः ।
 उद्धूतालिकुलालपैः साक्रन्दा इव योषितः ॥ ३९० ॥
 महातरूणां पततां त्रस्तानां च पतत्रिणाम् ।
 पूरिताशावकाशेन शब्देन बुबुधे जनः ॥ ३९१ ॥

१. 'न जाने केन ववसा' शा०. २. 'सं' शा०. ३. 'वैश्याम्' क. ४. 'रम्यमुचितं' शा०.

बालप्रवालशालेषु रत्नतालीवनेषु च ।
 सुवर्णकर्णिकारेषु भग्नेष्वनिलजन्मना ॥ ३९२ ॥
 किमेतदिति सन्भ्रान्ता विस्मयामर्षनिश्चलाः ।
 राक्षस्यो ददृशुर्वीरं तोरणे तरणिप्रभम् ॥ ३९३ ॥
 विदारितोऽयं मन्दारश्छिन्ना कनककेतकी ।
 चारुचामीकरमयश्च्युतश्चूतोऽयमुन्नतः ॥ ३९४ ॥
 पाटितः पाटलश्चायमशोकः शकलीकृतः ।
 इत्यभूद्विपुलः शब्दः क्षणदाचरयोषिताम् ॥ ३९५ ॥
 ताः समभ्येत्य वैदेहीमूर्चुर्विकृतविग्रहाः ।
 उन्मूलिततरुः कोऽयं स्वैरं संभाषितस्त्वया ॥ ३९६ ॥
 तच्छ्रुत्वा साग्रवीनाहं जानाम्येनं तरस्विनम् ।
 मायाविनो गतिं वेत्ति मायी युष्मद्विधो जनः ॥ ३९७ ॥
 इति ब्रुवाणां निर्भर्त्स्य सीतां नक्तंचरस्त्रियः ।
 अन्तःपुरोदरगतं गत्वा रावणमूचिरे ॥ ३९८ ॥
 देव संभाषिता सीता स्वैरं स्वैरेण वाङ्मयैः ।
 भग्नं च प्रमदोद्यानं वानरेण तरस्विना ॥ ३९९ ॥
 रतिभोगप्रणयिनी सा तवात्यन्तवल्लभा ।
 अशोकवनिका तेन चपलेन प्रधर्षिता ॥ ४०० ॥
 भ्रष्टकर्पूरतिलका विनष्टागुरुपल्लवा ।
 संतर्जिता तु दुष्टेन भग्निता वाटिका शुभा ॥ ४०१ ॥
 मदनाक्रान्ततिलका विमर्दच्युतचन्दना ।
 अशोकाः शोकदास्तत्र निष्फला बकुलावली ॥ ४०२ ॥
 त्रस्ता सर्वविहंगाली लवङ्गालीनकेसरा ।
 निर्दयेन त्वया भुक्ता सुकामारीव कामिनी ।
 सा तवोद्यानवसुधा लूना तेन प्रमादिना ॥ ४०३ ॥
 देवी मन्दोदरी येभ्यः कर्णपूराय पल्लवम् ।

त्वदाज्ञयैव लभते तरवस्ते निपातिताः ॥ ४०४ ॥
 सहकारवने भग्ने छिन्ने चन्दनकानने ।
 मदनस्य न जानीमः क भविष्यति संश्रयः ॥ ४०५ ॥
 हृतपुष्पाम्बरा तेन गाढदन्तनखक्षतैः ।
 सापि कल्पतरुश्रेणी वेश्येव विवशीकृता ॥ ४०६ ॥
 तेनार्दितद्विजगणा विनष्टगुणमण्डला ।
 जनता कुनृपेणैव परिभूता सरोजिनी ॥ ४०७ ॥
 न विसृष्टो बलवता यदि नाम स केनचित् ।
 तत्कथं केलियोगस्य कपेः सा प्रभविष्णुता ॥ ४०८ ॥
 वरुणेन नवीभूतः कायमस्य प्रगल्भता ।
 वराकः कः कुबेरो वा शक्तिर्नास्त्येव वज्रिणः ॥ ४०९ ॥
 रामेण प्रेषितो नूनं स दूतः कपिरूपधृक् ।
 यत्सीतासंश्रयस्तेन रक्षितः शिशिपातरुः ॥ ४१० ॥
 स सुरो वासुरो वास्तु वानरो वा नरोऽथ वा ।
 देव प्रयातु सहसा त्वत्कोपाग्निपतङ्गताम् ॥ ४११ ॥
 खल्पोऽप्यनल्पतां याति मेघस्तोक इवाम्बरे ।
 नीचावमानमलिनो मन्युर्मनसि मानिनाम् ॥ ४१२ ॥
 इति तासां वचः श्रुत्वा सभ्रूभङ्गां मुखावलीम् ।
 स चक्रे वक्रहोमाभिलम्भूर्भलतामिव ॥ ४१३ ॥
 इत्यशोकवनिकाभङ्गः ॥ ८ ॥
 प्रौढकोपाग्निपतसोऽपि तूष्णीमासीद्दृशाननः ।
 विचारमन्थरासत्यमल्पेषु महतां रुषः ॥ ४१४ ॥
 तेन मानससंभूता निर्दिष्टा रक्षसां गणाः ।
 निग्रहाय कपेर्वीराः किंकरा राम निर्ययुः ॥ ४१५ ॥
 अथाशीतिसहस्राणि गदामुद्गरधारिणाम् ।
 रक्षसां मेघवक्रौणां चक्रुर्ग्रस्ताम्बरा दिशः ॥ ४१६ ॥

ते गत्वा ददृशुर्घोरं लुवंगं गिरिविग्रहम् ।
 चैत्यप्रासादमारूढमदृश्यं तेजसां निधिम् ॥ ४१७ ॥
 शस्त्रवीचिचया लोलं संरम्भात्समभिद्रुतम् ।
 रक्षसांगणमालोक्य ननाद पवनात्मजः ॥ ४१८ ॥
 तस्य शब्देन सन्नस्तल्लैलोक्याश्चैर्यकारिणा ।
 नवो बभूव लङ्कायां कालहुंकारसंभ्रमः ॥ ४१९ ॥
 व्यशीर्यत तदाक्रान्तः प्रासादो रत्नशेखरः ।
 शक्राशनिहतः क्षिप्रं रोहणाद्विरिवापरः ॥ ४२० ॥
 निर्घोषस्तस्य लाङ्गुलसावेगास्फालनोद्भवः ।
 लेभे भुवनगर्भेषु सुचिराभ्यासदीर्घताम् ॥ ४२१ ॥
 उत्सृष्टां राक्षसभटैः शस्त्रवृष्टिं निरन्तराम् ।
 स विधूयैव जग्राह परिघं तोरणाश्रयम् ॥ ४२२ ॥
 स तेन राक्षसवनं जघान घननिःस्वनः ।
 क्षणाद्येनाभवद्भूमिशृङ्गा स्फारशिरःफलैः ॥ ४२३ ॥
 स राक्षसक्षयारम्भे जगाद निनदन्मुहुः ।
 दिग्भिर्मत्ताभ्यनुमतः प्रीत्या प्रतिरैवैरिव ॥ ४२४ ॥
 जयत्याज्ञाहतारातिग्रामो रामः सलक्ष्मणः ।
 तत्प्रासादसितच्छत्रः सुग्रीवश्च महीपतिः ॥ ४२५ ॥
 जगच्चूडामणेस्तस्य दूतोऽहं जानकीपतेः ।
 रक्षःक्षयेऽस्मिन्विपुले प्रारम्भविजयध्वजः ॥ ४२६ ॥
 न रावणसहस्रं मे समरे गणनास्पदम् ।
 मद्विसृष्टाश्च सन्त्यन्ये तच्चृत्यपरमाणवः ॥ ४२७ ॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा गगनस्थस्य राक्षसाः ।
 तमदृश्यं ततश्चक्रुर्घोरशस्त्रालवृष्टिभिः ॥ ४२८ ॥
 ततः समभिपत्याशु वेगेन पवनात्मजः ।
 विदधे परिघाघातैः कदनं पिशिताशिनाम् ॥ ४२९ ॥

१. 'वैत्य' शा०. २. 'रक्षःसागर' शा०. ३. 'कम्प' शा०. ४. 'रुचिरेषु स' शा०.

निष्पिष्टे किंकरकुले हतशेषा निशाचराः ।

तूर्णं न्यवेदयन्गत्वा दशग्रीवाय तत्क्षगम् ॥ ४३० ॥

नवावतारस्फारेण समाक्रान्तः स मन्युना ।

आदिदेश प्रहस्तस्य तनयं जम्बुमालिनम् ॥ ४३१ ॥

इति किंकरवधः ॥ ९ ॥

स विसृष्टः कपिवधे स्वामिना मानकारिणा ।

रथी कनकसंनाहः प्रययौ धन्विनां वरः ॥ ४३२ ॥

तमायान्तं समालोक्य स्थितस्तोरणशेखरे ।

हृष्टो जजृम्भे हनुमान्समरारम्भसादरः ॥ ४३३ ॥

तं जम्बुमाली निशितैर्बाहोरुरसि चाशुगैः ।

दूरादपूरयद्बाणैर्गिरिं सूर्य इवांशुभिः ॥ ४३४ ॥

क्रुद्धः पवनजस्तूर्णमादाय विपुलं शिलाम् ।

चिक्षेप तस्मै स च तां चिच्छेद दशभिः शरैः ॥ ४३५ ॥

हनुमान्सालमुत्पाट्य तं समभ्याद्रवज्जवात् ।

तं चाकीर्णं शरैश्चक्रे वृक्षं विक्षिप्य राक्षसः ॥ ४३६ ॥

ततः परिघमादाय घोरघोषभ्रमं युधि ।

अपातयत्कपिवरः स्यन्दनाज्जम्बुमालिनम् ॥ ४३७ ॥

परिघाघातनिष्पिष्टमलक्ष्यावयवं वपुः ।

कालसूदाहृतं तस्य श्लक्ष्णमांसमिवाभवत् ॥ ४३८ ॥

श्रुत्वा प्रहस्ततनयं निष्पिष्टसरथायुधम् ।

सप्त मन्त्रिसुतान्वीरानादिदेश दशाननः ॥ ४३९ ॥

इति जम्बुमालिवधः ॥ १० ॥

सप्तसप्तिप्रभास्तस्य दीप्तकङ्कटकुण्डलाः ।

ते समेत्य हरिं चक्रुः पिङ्गं हेमशरांशुभिः ॥ ४४० ॥

बाणवृष्टिं तदुत्सृष्टां विलङ्घ्याधिकविक्रमः ।

अलातचक्रप्रतिमः क्षणं बभ्राम मारुतिः ॥ ४४१ ॥

तलाघातैर्नखैर्दन्तैः पञ्चामूरुजवेन च ।

हत्वा तान्मारुतिस्तीर्णमनायातानिवाकरोत् ॥ ४४२ ॥

ससैन्यान्मन्त्रितनयान्हतानाकर्ण्य रावणः ।

पञ्चसेनाग्रकान्कोपादादिदेश कपेर्वधे ॥ ४४३ ॥

इति मन्त्रितनयवधः ॥ ११ ॥

ते विरूपाक्षयूपाक्षदुर्धरप्रघसाः समम् ।

भासकर्णश्च तं देशमाययुर्विपुलैर्बलैः ॥ ४४४ ॥

अप्रमादेन योद्धव्यमित्युक्त्वा प्रभुना स्वयम् ।

ते मारुतिं समभ्येत्य चक्रुः शैरमयं वपुः ॥ ४४५ ॥

दुर्धरेणाधिकं बाणैराहतः कपिकुञ्जरः ।

खं समुत्पत्य सहसा पपातास्य रथे जवात् ॥ ४४६ ॥

तद्गान्नाभिहता क्षिप्रं साश्वसूतरथध्वजः ।

बभूव दुर्धरोऽन्येषां यमवर्त्मपुरःसरः ॥ ४४७ ॥

दुर्धरेऽभिहते वीरे पुनरुत्पतितं नभः ।

तं विरूपाक्षयूपाक्षावुत्पत्त्याभिद्रुतौ जवात् ॥ ४४८ ॥

मुद्गराभ्यां समं ताभ्यां कपिर्वक्षसि ताडितः ।

तौ समादाय बाहुभ्यां निपपात महीतले ॥ ४४९ ॥

ततः सालप्रहारेण तौ हत्वा कपिपुंगवः ।

प्रघसं भासकर्णं च वायुवेगः समाद्रवत् ॥ ४५० ॥

स ताभ्यां वीक्षितः क्षिप्रं शूलपट्टिशसायकैः ।

गिरिशृङ्गेण गुरुणा निष्पिपेष निशाचरौ ॥ ४५१ ॥

पञ्चसेनाग्रगान्वीरान्विज्ञाय युधि पातितान् ।

पौलस्त्यः स्वसुतं युद्धे श्लक्ष्णमक्षं निरैक्षत ॥ ४५२ ॥

इति दुर्धरादिवधः ॥ १२ ॥

स हेमसंनाहवृतः सैन्येन महता वृतः ।

प्रययौ ककुभः कुर्वन्ध्वजपट्टाट्टहासिनीः ॥ ४५३ ॥

१. 'श्रममयं' शा०. २. 'वज्रवेगः' शा०. ३. 'युद्धदक्षमक्षं' शा०.

तस्मिन्समुद्यते योद्धुं चकम्प साचला मही ।
 क्षोभोऽभवन्महाम्भोधेः प्रववौ न च मारुतः ॥ ४५४ ॥
 स हेमपुङ्खैर्विशिखैः समापूर्य प्लवंगमम् ।
 उन्ननादः सुरस्त्रीणां संत्रासगुरुतां गतः ॥ ४५५ ॥
 सुरराजरणोत्साहवज्रोल्लिखितवक्षसम् ।
 कुमारमक्षं हनुमान्सावष्टम्भमयोधयत् ॥ ४५६ ॥
 ततो बभूव गगने योधयोः समरोत्सवः ।
 निरालम्बस्य च कपेः सरथस्य च रक्षसः ॥ ४५७ ॥
 तुलाभिघातोन्मथितस्तस्य मारुतिना रथः ।
 पपात गगनाकारः सच्छत्रध्वजकूबरः ॥ ४५८ ॥
 स खड्गः श्यामलै व्योम्नि विचरन्खड्गचर्मभृत् ।
 धैर्यशशेरपि कपेर्मतिमोहमिवाकरोत् ॥ ४५९ ॥
 ततश्चरणयोर्वीरं तमादाय प्लवंगमः ।
 सहस्रशः परिभ्राम्य क्षितौ क्षिप्रमपातयत् ॥ ४६० ॥
 तं पिष्टमुकुटं कीर्णकेयूरं दलिताङ्गदम् ।
 निर्मथ्योद्गीर्णरुधिरं व्यसुं तत्याज मारुतिः ॥ ४६१ ॥
 अबालचरिते बाले हते तस्मिन्सुरद्विषि ।
 शशी मुमोच सुचिरात्स्वर्गविष्टं ससाध्वसम् ॥ ४६२ ॥
 इत्यक्षवधः ॥ १३ ॥

हते कुमारे पौलस्त्यो न शुशोच रूषा ज्वलन् ।
 न ह्यमर्षपदे शोकैः प्रभवत्यभिमानिनाम् ॥ ४६३ ॥
 स निश्चसन्क्षणं ध्यात्वा जगादेन्द्रजितं सुतम् ।
 प्रभावेण प्लवंगस्य परं विस्रयमागतः ॥ ४६४ ॥
 कियती विक्रमश्लाघा क्रियते जयिनस्तव ।
 अन्वर्थयुक्तं नामैव यस्य लोकेषु गीयते ॥ ४६५ ॥

अल्पेऽप्यनल्पचरिता युज्यन्ते यद्भवद्विधाः ।
 शत्रुलेशासहत्वं तत्स्वनयस्याभिशङ्किनः ॥ ४६६ ॥
 कपेश्चिन्त्यो वधे तस्य विसृष्टाः सैन्यनायकाः ।
 हतास्तेऽपि वधे सेयमद्भुताज्ञाप्रगल्भता ॥ ४६७ ॥
 दुर्धरप्रमुखा वीरा वानरेण निपातिताः ।
 दैवमत्र परं मन्ये धिगास्तां पौरुषे वृथा ॥ ४६८ ॥
 प्रभावे नास्ति विश्वासः शक्तिर्नूनमनिश्चिता ।
 कालैन्द्रजालिकस्यास्य विचित्रं किं न दृश्यते ॥ ४६९ ॥
 दैवप्रतीपं चरतस्तदैवैकस्य विश्रुता ।
 सर्वन्नाकुण्ठितोत्साहा शक्तिः स्वच्छन्दचारिणी ॥ ४७० ॥
 अधुना वानरवधे त्वमेवास्मिन्प्रतिक्रिया ।
 तस्यापि यत्कृतान्तस्य दंष्ट्रोन्मूलनलम्पटः ॥ ४७१ ॥
 इति शासनमादाय जनकस्य सुरेन्द्रजित् ।
 व्याडैश्चतुर्भिः संयुक्तं रथमारुह्य निर्ययौ ॥ ४७२ ॥
 तस्मिन्पुद्गोद्यते विश्वप्रलयारम्भविभ्रमः ।
 नभूव सर्वभूतानां भुवनाकल्पविह्वलः ॥ ४७३ ॥
 कालुष्यकलिले व्योम्नि ध्वान्तध्वस्तजगत्रये ।
 बभूवुर्दुर्निमित्ता ये रेणुप्रावरणा दिशः ॥ ४७४ ॥
 ततः क्षणमभूद्योन्नि युद्धं रक्षःस्रवंगयोः ।
 निःसरत्सायकशिलाज्वलजातामपिङ्गलम् ॥ ४७५ ॥
 अथेन्द्रजिद्भुजोत्सृष्टशरासारनिरन्तरे ।
 अलभाङ्गश्चचारैव वीरो मारुतिरम्बरे ॥ ४७६ ॥
 विशिखेषु विलक्षेषु विलक्ष्येष्विव रक्षसः ।
 क्षणं ध्यात्वा जिघृक्षुस्तं वीरो ब्रह्मास्त्रमाददे ॥ ४७७ ॥
 प्रादुर्भूते ततस्तस्मिन्नस्त्रे पाशशतैः कपिः ।
 बद्धः क्षितौ निपतितः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ ४७८ ॥

१. 'प्रगल्भते' शा० २. 'व्यूहै' क. ३. 'संभ्रमः' शा०

ब्रह्मास्त्रवारणे शक्तिरस्ति मे ब्रह्मणो वरात् ।
 तथापि धारयाम्येतदस्त्रं मन्त्रस्य गौरवात् ॥ ४७९ ॥
 पाशबद्धस्य चावश्यं दर्शनं मे भविष्यति ।
 दशकण्ठसभास्थाने संवादश्च चिरं स्थितः ॥ ४८० ॥
 इति चिन्तयतस्तस्य तूर्णं विग्रहमाग्रहात् ।
 रज्जुवल्कलवल्लीभिर्बन्धुः पिशिताशिनः ॥ ४८१ ॥
 रज्जुबद्धस्य तस्यास्त्रपाशाः कापि स्वयं ययुः ।
 न महान्तः सहन्ते हि प्राकृतैः समशीर्षकाम् ॥ ४८२ ॥
 अस्त्रमुक्तोऽपि मिथ्यैव दर्शयन्बन्धुमात्मनः ।
 कृष्यमाणश्च रक्षोभिः सर्वैः सेहे महाकपिः ॥ ४८३ ॥
 इति हनुमद्ग्रहणम् ॥ १४
 ततो निशाचरैर्नीतः क्षिप्रं रक्षःपतेः सभाम् ।
 प्रभामिव प्रतापाग्ने रक्तरत्नां ददर्श सः ॥ ४८४ ॥
 तां प्रविश्य वृतां वीरः श्रेणीभिस्त्रिदशद्विषाम् ।
 स्फाररत्नासनासीनं राक्षसेन्द्रं व्यलोकयत् ॥ ४८५ ॥
 द्वाग्वध्यो बहिरेवायं दृष्टेन किमनेन नः ।
 इत्यनल्पोऽभवज्जल्पस्तत्र तं वीक्ष्य रक्षसाम् ॥ ४८६ ॥
 कपिर्दृष्ट्वा दशग्रीवं त्रैलोक्यविजयोजितम् ।
 सृजन्तं रत्नमुकुटस्त्रिषा बालातपश्चियम् ॥ ४८७ ॥
 चामराञ्चितहस्तानां कान्तानां गण्डभित्तिषु ।
 चित्रपत्रनखोल्लेखाः कुर्वाणं भूषणांशुभिः ॥ ४८८ ॥
 सुस्कन्धैः स्फारकेयूरकिरणारुणपल्लवैः ।
 हारांशुकुसुमस्मरैर्भूषितं भुजपादपैः ॥ ४८९ ॥
 वज्राद्रिभङ्गगुरुभिर्वक्षोभिर्व्यक्तविक्रमैः ।
 आसेव्यमानं रक्षोभिस्त्रिजगज्जयलक्षणैः ॥ ४९० ॥
 निर्भर्त्सितो वेत्रिगणैः पुरः परुषवादिभिः ।
 अचिन्तयत्क्षणं गाढं विस्मयावेगनिश्चलः ॥ ४९१ ॥

अहो धैर्यममर्यादमहो साम्राज्यमूर्जितम् ।
 अहो सुरासुरश्लाघ्याः सावष्टम्भा विभूतयः ॥ ४९२ ॥
 अहो बतास्य पुरतः प्रकम्पन्ते महौजसः ।
 न वचांसि न चेतांसि न तेजांसि तपांसि वा ॥ ४९३ ॥
 बलं कैलासमूलेषु प्रतापः सुरवेश्मसु ।
 प्रयाति लक्ष्यतामस्य श्रीराश्रितगृहेषु च ॥ ४९४ ॥
 समस्तभुवनैश्वर्यमर्हत्येष न संशयः ।
 यदि न स्यादयं पापः क्रूरः क्रूरतरैर्वृतः ॥ ४९५ ॥
 सदाचारः श्रियो मूलं प्रभावे गुणसंभवः ।
 इति प्रवादोऽप्येतेन बलान्मन्ये तिरस्कृतः ॥ ४९६ ॥
 अहो दुर्नयपक्षस्य व्यसनस्यायता गतिः ।
 इयतीं भूमिमारूढा ह्रियन्ते येन संपदः ॥ ४९७ ॥
 इति विस्मयनिस्पन्दे चिन्तयत्यनिलात्मजे ।
 कोऽयं कस्य कुतो वेति प्रहस्ते रावणोऽब्रवीत् ॥ ४९८ ॥
 ततो जगाम प्लवगं प्रहस्तः शासनात्प्रभोः ।
 प्रीतिप्रसादितोष्ठाग्राद्व्यां संदर्शयन्निव ॥ ४९९ ॥
 कपे कथय कस्यासि न भयं विद्यते तव ।
 न हि नाम निपात्येषु पतन्ति प्रभुदृष्टयः ॥ ५०० ॥
 मन्ये न प्रेषितस्तावत्त्वं शक्रवरुणादिभिः ।
 ललाटे लोकपालानां न शक्तिर्लिखितैव सा ॥ ५०१ ॥
 लङ्काभिलाषिणो विष्णोः कुतः सा प्रभविष्णुता ।
 ते तस्य जीर्णाः सततं स्वाङ्गेष्वेव मनोरथाः ॥ ५०२ ॥
 माया कथय कस्येयमात्मक्षयविधायिनी ।
 वदतस्तव मोक्षोऽस्ति मौने निःसंशयो वधः ॥ ५०३ ॥
 इति ब्रुवाणे सावज्ञं प्रहस्ते पवनात्मजः ।
 उवाच रावणाग्नेऽपि प्रतिभाभरणं वचः ॥ ५०४ ॥

त्रिदशैर्नास्ति मे सख्यं प्रेषितोऽहं न विष्णुना ।
 उद्यानं राक्षसपतेर्दर्शनाय मया हतम् ॥ ५०५ ॥
 शक्तेनापि प्रतीकोरे मयास्त्रं न निवारितम् !
 अल्लपाशविमुक्तोऽहं स्वयं त्वां द्रष्टुमागतः ॥ ५०६ ॥
 दूतोऽहं रघुनाथस्य जयिनो जानकीपतेः ।
 सुग्रीवस्य च तत्प्रीतिप्राप्तराज्यनिजश्रियः ॥ ५०७ ॥
 कुशलं प्रीतिकुशलः स्पृष्ट्वा स्पृष्टीकृताशयः ।
 समादिशति देवस्त्वां सुग्रीवः सूर्यनन्दनः ॥ ५०८ ॥
 विस्रम्भधाम्नः सुहृदः प्रभोः सर्वप्रदस्य वा ।
 मया गृहीतं रामस्य सीतान्वेषणशासनम् ॥ ५०९ ॥
 तस्य देवस्य भृत्येषु मद्विधेष्वभिमानिषु ।
 जीवत्सु कः स्वयं शेते कृत्वा किल्बिषविप्लवम् ॥ ५१० ॥
 अहं तु सुग्रीवगिरा हनूमान्पवनात्मजः ।
 सीतां विचेतुं जलधिं विलङ्घ्य चाप्तः पुरीमिमाम् ॥ ५११ ॥
 अस्मद्विशिष्टा बहवो दिक्षु सुग्रीवशासनात् ।
 चरन्ति जानकीहेतोरगम्यासु महीष्वपि ॥ ५१२ ॥
 इह सीता मया दृष्टा निरुद्धा बलिना त्वया ।
 च्युतेव दुर्निमित्ताय तन्वी शशिकला दिवः ॥ ५१३ ॥
 सदाचारनिरुद्धेषु निषिद्धेष्वत्मघातिषु ।
 धीधना न निवर्तन्ते त्वद्विधाः किल कर्मसु ॥ ५१४ ॥
 नयप्रणयिनी लक्ष्मीः सत्त्वप्रणयिनी धृतिः ।
 कुलीनानां भवत्येव धर्मप्रणयिनी मतिः ॥ ५१५ ॥
 न शीलविकला वृत्तिर्न चासत्यव्रतं वचः ।
 न विभूतिर्यशःशून्या भवत्युचितचेतसाम् ॥ ५१६ ॥
 नेयं विराजते राजन्वर्जितेवामृतत्विषा ।
 निशा नयोज्झिता लक्ष्मीरक्षीणतिगि रावृता ॥ ५१७ ॥

न हि पश्यामि तं देशं कालशक्तिरिवायता ।
 सा लक्ष्मणशरश्रेणी यत्र भग्नमनोरथा ॥ ५१८ ॥
 इदं रक्षःपते रक्ष लङ्कालंकरणं वपुः ।
 न नाम रामविशिखाः क्षमन्ते क्षणमप्रियम् ॥ ५१९ ॥
 कस्तां शक्नोति तरसा धर्तुं जनकनन्दिनीम् ।
 चरन्ति यत्कृते पश्चान्मार्गणा राममार्गणाः ॥ ५२० ॥
 दिग्जयार्जितमैश्वर्यं कायक्लेशार्जितं तपः ।
 सर्वमेकपदे नष्टं परदारधिया तव ॥ ५२१ ॥
 इमाः शीलविरामेण कामेन गुणवैरिणा ।
 रैणाभिमानवामेन न क्षम्यन्ते विभूतयः ॥ ५२२ ॥
 मार्गो न दुर्गमः कश्चिन्मृत्यो दुर्नयरूपिणः ।
 दीर्घव्यसनहस्तस्य समस्ताकृष्टिशालिनः ॥ ५२३ ॥
 व्यक्ता शक्तिस्तपस्तीव्रं श्रुता श्रीरमलं कुलम् ।
 दुर्नयेन निगीर्णोऽयमहो गुणगणस्तव ॥ ५२४ ॥
 त्यज्यतां जानकी नूनं राघवश्च प्रसाद्यताम् ।
 मृत्योरायतपक्षस्य विफलः क्रियतां श्रमः ॥ ५२५ ॥
 संक्षेपः श्रूयतामेष बुद्धिरात्महिते यदि ।
 जानकीमपरित्यज्य नास्त्येव तव जीवितम् ॥ ५२६ ॥
 इति सावज्ञकोपाग्निगम्भीरपरुषं वचः ।
 श्रुत्वा दशमुखस्तूर्णमादिदेश कपेर्वधम् ॥ ५२७ ॥
 आदिष्टे राक्षसेन्द्रेण वधे पवनजन्मनः ।
 बभाषे आतरं कीर्तिभ्रंशभीरुर्विभीषणः ॥ ५२८ ॥
 विचाररुचिरालोकविवेककलितोदया ।
 शास्त्रानुगा तव मतिस्त्रैलोक्याक्रान्तिदूतिका ॥ ५२९ ॥
 क्रोधेन क्षोभमायाति न गम्भीरो महाशयः ।

१. 'ध्वस्तं' शा०. २. 'लङ्काभिमान' शा०. ३. 'तूर्ण' शा०.

शफरीस्फुरितेनेव सत्त्वराशिर्महोदधिः ॥ ५३० ॥
 कृतमेकेन कपिना दुःसहं महदप्रियम् ।
 तवापि यन्न मर्यादां भिनत्ति क्रोधविप्लवः ॥ ५३१ ॥
 तथापि वधदण्डोऽस्मिन्दूते साधुविगर्हितः ।
 न कस्यांचिदवस्थायां दूतो वध्यः क्षमाभुजाम् ॥ ५३२ ॥
 वैरूप्यं केशगात्रेषु दग्धलक्ष्माकषाहतीः ।
 दूतोऽर्हति न दृष्टस्तु वधो दूतस्य कर्हिचित् ॥ ५३३ ॥
 परोक्तवादिनो दूताः कस्तेषां निग्रहे गुणः ।
 यैरयं प्रेषितस्तेषु दण्डः क्रोधोचितः क्षमः ॥ ५३४ ॥
 इति भ्रातुर्वचः श्रुत्वा जगाद दशकंधरः ।
 दह्यतामस्य लाङ्गूलं प्रियपुच्छा हि वानराः ॥ ५३५ ॥
 ततः शासनमादाय राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
 दीप्तं चक्रुः कपेः पुच्छं तैलवस्त्रविवेष्टितम् ॥ ५३६ ॥
 अथ ज्वालितलाङ्गूलः कृष्यमाणः क्षपाचरैः ।
 स लङ्कां दग्धुमखिलां क्षणं सेहे पराभवम् ॥ ५३७ ॥
 अयं स प्रमदोद्यानं भग्नं येन सराक्षसम् ।
 इत्युच्चचार विपुलः पटहानुगतो ध्वनिः ॥ ५३८ ॥
 हृष्टाः समेत्य वैदेहीमूर्चुर्नक्तं चरस्त्रियः ।
 स तैः संदह्यते सीते सुहृत्संभाषणोचितः ॥ ५३९ ॥
 एतदाशाधृतिच्छेददुःसहं विषमं वचः ।
 आकर्ण्य सीता तद्वह्निव्यासेव सहसाभवत् ॥ ५४० ॥
 सा शोकविवशा ध्यात्वा बाष्पनिर्झरवर्षिणी ।
 हनुमद्वह्निसंतापशान्तये स्वयमभ्यधात् ॥ ५४१ ॥
 सतीवृत्तेन यदि मे किंचिदस्ति तपःफलम् ।
 तेनास्तु भगवान्वह्निर्मरुतैः शशिशितलः ॥ ५४२ ॥
 इत्यर्थितस्तया क्षिप्रं प्रदक्षिणशिखः शिखी ।

हिमसंघातशीतोऽभूत्पितुर्मित्रं हनूमतः ॥ ५४३ ॥
 ततश्छित्त्वा स सहसा निविडं भुजबन्धनम् ।
 उत्पपातोग्रलाङ्गूलज्वालावलयिताम्बरः ॥ ५४४ ॥
 छिन्नेष्वशेषपाशेषु मुक्तस्तस्मात्खिलग्रहः ।
 योगीव निर्वभौ व्योम्नि स ज्योतिर्मयतां गतः ॥ ५४५ ॥
 स नदद्वोरनिर्घोषदीप्तलाङ्गूलविप्लवः ।
 बभार प्रलयाभ्रस्य तडित्पुञ्जजुषः प्रभः ॥ ५४६ ॥
 ततो निपत्य हनुमान्पुरद्वाराग्रशेखरे ।
 लङ्कां परिघमादाय बभञ्ज च ददाह च ॥ ५४७ ॥
 वह्निना हेमवर्णेन धूमेन जलदत्विषा ।
 अभूत्पीतांशुकाङ्केव लङ्का मेचककञ्चुका ॥ ५४८ ॥
 ज्वलनेनोग्रवेगेन ज्वलितेष्वथ वेश्मसु ।
 चक्रे ज्वालावली दिक्षु हेमस्तग्दामविभ्रमम् ॥ ५४९ ॥
 ततो विनिर्ययुस्तूर्णं त्रस्तास्तरललोचनाः ।
 धूममालावलयिता देवता इव वेश्मनाम् ॥ ५५० ॥
 तासां कपोलपत्राभाः कर्णे कुवलयश्रियः ।
 धूमलेखा वभुर्नाभिमूले रोमलता इव ॥ ५५१ ॥
 स्फुलिङ्गैः शुशुभे व्योम मुहूर्तावर्तवर्तितैः ।
 स्फुरन्मणिगृहोदग्ररत्नजीवैरिवोद्गतैः ॥ ५५२ ॥
 व्याप्ताः सप्तार्चिषः प्राज्यज्वालाजालैर्बभुर्दीशः ।
 प्रत्यग्रकनकाट्टालवलद्वीचिचयैरिव ॥ ५५३ ॥
 संवर्त्तकाभ्रगम्भीरः प्रलयारम्भसूचकः ।
 घोरः कलकलाशब्दः प्रययौ कृष्णवर्त्मनः ॥ ५५४ ॥
 असंप्राप्तो हि हैमेषु प्रजज्वालेव वेश्मसु ।
 दीप्तोऽपि मणिगेहेषु नादृश्यत हुताशनः ॥ ५५५ ॥
 कचिद्विनाशप्रारम्भसंभारोङ्कारसंकुलैः ।

कचिद्विश्वतिरस्कारमार्जनीवल्लरीनिभैः ॥ ५५६ ॥
 कचित्सुदीप्तविलुठत्सुमेरुशिखरोपमैः ।
 कचिद्भूमपिशाचस्य पिङ्गश्मश्रुशिखासखैः ॥ ५५७ ॥
 कचिद्बृहविहंगानां हेमपञ्जरविभ्रमैः ।
 कचिद्योमाब्धिपर्यन्तविद्रुमद्रुमसोदरैः ॥ ५५८ ॥
 कचिन्मेघगजेन्द्राणां हेमसंनाहसंनिभैः ।
 कृशानोरर्चिषां चकैरपूर्यन्त दिशो दश ॥ ५५९ ॥
 स्फुलिङ्गालिकिसलयो धूमश्यामलपल्लवः ।
 शिखाशाखोऽपि विटपो लङ्कातङ्काफलोऽभवत् ॥ ५६० ॥
 हनुमत्परिघाघातभमानां मणिवेश्मनाम् ।
 पुष्टानां पततां शब्दस्तीव्राक्रन्द इवाबभौ ॥ ५६१ ॥
 ज्वालामालाकुला लङ्का जलधौ प्रतिबिम्बिता ।
 तापनिर्वापणायैव निमग्नान्तरदृश्यत ॥ ५६२ ॥
 वेगदीर्घीकृताश्चेरुव्योम्नि वह्निकृणाश्चिरम् ।
 रामचापच्युता हेमनाराचनिचया इव ॥ ५६३ ॥
 विमानध्वजपालीषु पवनाकुलपल्लवः ।
 अवाप पावकः क्षिप्रं लीलापाटलपद्धतिम् ॥ ५६४ ॥
 सगोपुरपुरद्वारसमाभवनभित्तिषु ।
 सालाट्टालप्रतोलीषु दीप्तासु पतितास्वपि ॥ ५६५ ॥
 एष दूरे स्थितस्तूर्णसमं प्राप्तो हता वयम् ।
 अनिलोत्तालिते वह्नौ बभूवेति जनस्वनः ॥ ५६६ ॥
 ततः क्षपाचरान्कूरक्रोधानायुधवर्षिणः ।
 उत्पात्य कनकस्तम्भं जघान पवनात्मजः ॥ ५६७ ॥
 ज्वालास्तम्भभुजं वह्निं सभास्तम्भायुधं कपिम् ।
 त्रस्ताः सर्वत्र ददृशुर्विश्वरूपं क्षपाचराः ॥ ५६८ ॥
 अत्रान्तरे जनकजां सरमा नाम राक्षसी ।

उवाच खैरमाभाष्य चिन्तासंतापिताशयाम् ॥ ५६९ ॥

सखि निर्मुक्तपाशोऽसौ वीरो वानरयूथपः ।

प्रज्वाल्य निखिलां लङ्कां निहत्य सुभटान्गतः ॥ ५७० ॥

इति लङ्कादीपनम् ॥ १५ ॥

इति धीयूषवर्षेण तया सितैव मैथिली ।

अनलानिलयोश्चक्रे नमस्कारं मनस्विनी ॥ ५७१ ॥

दग्ध्वा दशास्यनगरीं ज्वलनेन बलीयसा ।

पश्चात्तापाकुलश्चिन्तामवाप पवनात्मजः ॥ ५७२ ॥

अहो प्रमादिना मोहादसमीक्षितकारिणा ।

क्रुद्धेन दहता लङ्कां मया दग्धैव जानकी ॥ ५७३ ॥

धीरास्ते कीर्तिशुभ्राणां भाजनं सर्वसंपदाम् ।

न ये प्रचण्डकोपाग्नेर्यान्ति क्रीडापतङ्गताम् ॥ ५७४ ॥

यदर्थं विपुलः क्लेशः कृतः सैव हता मया ।

तरोः फलाभिकामेन मूलमुन्मूलितं पुनः ॥ ५७५ ॥

मूढेन कार्यसर्वस्वं स्वहस्तेन हतं मया ।

अस्मिन्नेव पताम्यग्नौ घोरे वा मकराकरे ॥ ५७६ ॥

सिद्धोऽप्यर्थः प्रनष्टो मे चपलस्य प्रमादिनः ।

काकतालीयसंप्राप्तो विभवः कुमतेरिव ॥ ५७७ ॥

निमित्तानि च पश्यामि शुभशंसीनि केवलम् ।

अप्यग्निना दक्षिणेन रक्षिता सा पतिव्रता ॥ ५७८ ॥

इति चिन्ताकुलः क्षिप्रं मारुतिर्व्योमचारिणाम् ।

स्थितां शुश्राव वैदेहीमाश्चर्यकथने मिथः ॥ ५७९ ॥

ततः प्रहृष्टोऽतिजवादशोकवनिकां पुनः ।

गत्वा दृष्ट्वा च वैदेहीं समाश्वास्याभिवाद्य च ॥ ५८० ॥

आरुरोह गिरेः शृङ्गं समुद्रं तर्तुमुद्यतः ।

मारुतिः सत्त्वसंपन्नः सोत्साह इव वीर्यवान् ॥ ५८१ ॥
 लङ्घनाक्रान्तिगुरुणा भूधरस्तेन पीडितः ।
 स त्रिंशद्योजनोत्सेधः क्षणात्क्षितिसमोऽभवत् ॥ ५८२ ॥
 ततः स गगनं शाणोल्लीढनीलमणिप्रभम् ।
 व्यगाहत महोत्साहः सहस्रांशुरिवापरः ॥ ५८३ ॥
 पितुः समानचरितः स्कन्धबन्धयुतान्पुरः ।
 क्षिपन्स मेघसंघातान्योगाभ्यासमिवाकरोत् ॥ ५८४ ॥
 मैनाकं पुनरुङ्गुल्या स्पृष्ट्वा प्रीत्यर्थमुद्गतम् ।
 द्रुमैः श्यामां गिरितटीं स ददर्शोदधेस्तटे ॥ ५८५ ॥
 तस्योरुवेगमाकर्ण्य नादं चानन्दलक्षणम् ।
 जगाद जाम्बवान्हर्षादङ्गदं भङ्गदं द्विषाम् ॥ ५८६ ॥
 कृतार्थो नूनमायातस्तरस्वी मारुतात्मजः ।
 यदस्य श्रूयते वेगनिर्घोषो बलवत्तरः ॥ ५८७ ॥
 एष संदृश्यते दूरान्मारुतिर्महसां निधिः ।
 सुपर्ण इव सविगः सुमेरुरिव पक्षवान् ॥ ५८८ ॥
 इति जाम्बवतो वाक्यमाकर्ण्य हरियूथपाः ।
 समुत्थायोनतग्रीवा ददृशुस्तं सविस्मयाः ॥ ५८९ ॥
 वृक्षानन्ये समारुह्य शिखराणि गिरेः परे ।
 प्रहर्षविवशास्तस्थुर्हनुमदर्शनोत्सुकाः ॥ ५९० ॥
 समापतन्तं वेगेन तं प्लवंगगणाः पराः ।
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणेषुः प्रणयानताः ॥ ५९१ ॥
 निपत्य मारुतिस्तूर्णं महेन्द्रगिरिशेखरे ।
 निषसाद कृतातिथ्यः पादपैः पुष्पवर्षिभिः ॥ ५९२ ॥
 तं निशाचरशस्त्राल्लेखोल्लिखितविग्रहम् ।
 परिष्वज्याङ्गदमुखाः प्रीतेरन्तं न लेभिरे ॥ ५९३ ॥
 स प्रणम्य गुरुं वृद्धं जाम्बवन्तं कृताञ्जलिः ।

१. 'स्कन्धवद्विधुतान्' ख; 'स्कन्धबन्धधुरान्' शा०.

युवराजं च सानन्दं देवी दृष्टेत्यभाषत ॥ ५९४ ॥
 तस्य सुस्पष्टदंष्ट्रांशुसुधाधाराकुलं वचः ।
 जीवप्रदं कपिवराः श्रोत्राञ्जलिपुटैः पपुः ॥ ५९५ ॥
 कथं दृष्टेति पृष्ठोऽत्र मारुतिर्वालिसूनुना ।
 वैदेहीदर्शने सर्वं यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ ५९६ ॥
 इति हनुमत्पुनरागमनम् ॥ १६ ॥
 दृष्टां जनकजां श्रुत्वा सतीं शोकानलाकुलाम् ।
 भग्नामशोकवनिकां किंकरांश्च निपातितान् ॥ ५९७ ॥
 जम्बुमालिमुखान्वीरानक्षं च क्षितिपात्मजम् ।
 दग्धां च निखिलां लङ्कां ग्रह्णोऽवददङ्गदः ॥ ५९८ ॥
 मारुते शत्रुशल्येन सुहृदानन्ददायिना ।
 कृतकृत्येन भवता कृतं कृत्यं यथोचितम् ॥ ५९९ ॥
 अहो महत्त्वयैवाग्र्यं भुवनाक्रान्तिजं यशः ।
 प्राप्तं प्रतापनिधिना देवेनेव विवस्वता ॥ ६०० ॥
 प्रभूनां सुहृदां चित्ते कार्यकाले स्फुरन्ति ये ।
 तेषां सिद्धार्थयशसां धन्यानां साधु जीवितम् ॥ ६०१ ॥
 महत्ते पौरुषोद्योगविपुलोत्साहसेवनम् ।
 भयादिवातिकुटिलं दैवमप्यनुवर्तते ॥ ६०२ ॥
 विलङ्घितोऽब्धिर्भवता सती दृष्टा च जानकी ।
 परिभूतश्च पौलस्त्यः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ ६०३ ॥
 अधुना तां समाहृत्य सतीं हत्वा च रावणम् ।
 भवद्भिः सहितो वीरैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ ६०४ ॥
 इन्द्रजिद्यदि मायावी दिव्यास्त्रग्रामदुःसहः ।
 तथापि न वयं तेषां युद्धे परिभवास्पदम् ॥ ६०५ ॥
 कथयामि ध्रुवं शक्तिं तद्वधे स्वयमात्मनः ।
 परात्मनिन्दाश्लाघासु मौनिनो हि मनीषिणः ॥ ६०६ ॥

कचिद्विश्वतिरस्कारमार्जनीवल्लरीनिभैः ॥ ५५६ ॥
 कचित्सुदीप्तविलुठत्सुमेरुशिखरोपमैः ।
 कचिद्रूपमपिशाचस्य पिङ्गश्मश्रुशिखासखैः ॥ ५५७ ॥
 कचिद्बृहविहंगानां हेमपञ्जरविभ्रमैः ।
 कचिद्व्योमाब्धिपर्यन्तविद्रुमद्रुमसोदैरैः ॥ ५५८ ॥
 कचिन्मेघगजेन्द्राणां हेमसंनाहसंनिभैः ।
 कृशानोरचिषां चकैरपूर्यन्त दिशो दश ॥ ५५९ ॥
 स्फुलिङ्गालिकिसलयो धूमश्यामलपल्लवः ।
 शिखाशाखोऽपि विटपो लङ्कातङ्काफलोऽभवत् ॥ ५६० ॥
 हनुमत्परिघाघातभग्नानां मणिवेश्मनाम् ।
 पुष्टानां पततां शब्दस्तीव्राक्रन्द इवावभौ ॥ ५६१ ॥
 ज्वालामालाकुला लङ्का जलधौ प्रतिबिम्बिता ।
 तापनिर्वापणायैव निमग्नान्तरदृश्यत ॥ ५६२ ॥
 वेगदीर्घाकृताश्चेरुव्योम्नि वह्निक्वणाश्चिरम् ।
 रामचापच्युता हेमनाराचनिचया इव ॥ ५६३ ॥
 विमानध्वजपालीषु पवनाकुलपल्लवः ।
 अवाप पावकः क्षिप्रं लीलापाटलपद्धतिम् ॥ ५६४ ॥
 सगोपुरपुरद्वारसभाभवनभित्तिषु ।
 सालाट्टालप्रतोलीषु दीप्तासु पतितास्वपि ॥ ५६५ ॥
 एष दूरे स्थितस्तूर्णसमं प्राप्तो हता वयम् ।
 अनिलोत्तालिते वह्नौ बभूवेति जनस्वनः ॥ ५६६ ॥
 ततः क्षपाचरान्कूरक्रोधानायुधवर्षिणः ।
 उत्पात्य कनकस्तम्भं जघान पवनात्मजः ॥ ५६७ ॥
 ज्वालास्तम्भभुजं वह्निं सभास्तम्भायुधं कपिम् ।
 त्रस्ताः सर्वत्र ददृशुर्विश्वरूपं क्षपाचराः ॥ ५६८ ॥
 अत्रान्तरे जनकजां सरमा नाम राक्षसी ।

उवाच खैरमाभाष्य चिन्तासंतापिताशयाम् ॥ ५६९ ॥

सखि निर्मुक्तपाशोऽसौ वीरो वानरयूथपः ।

प्रज्वाल्य निखिलं लङ्कां निहत्य सुभटान्गतः ॥ ५७० ॥

इति लङ्कादीपनम् ॥ १५ ॥

इति पीयूषवर्षेण तया सितैव मैथिली ।

अनलानिलयोश्चक्रे नमस्कारं मनसिनी ॥ ५७१ ॥

दग्ध्वा दशास्यनगरीं ज्वलनेन बलीयसा ।

पश्चात्तापाकुलश्चिन्तामवाप पवनात्मजः ॥ ५७२ ॥

अहो प्रमादिना मोहादसमीक्षितकारिणा ।

क्रुद्धेन दहता लङ्कां मया दग्धैव जानकी ॥ ५७३ ॥

धीरास्ते कीर्तिशुभ्राणां भाजनं सर्वसंपदाम् ।

न ये प्रचण्डकोपाग्नेर्यान्ति क्रीडापतङ्गताम् ॥ ५७४ ॥

यदर्थं विपुलः क्लेशः कृतः सैव हता मया ।

तरोः फलाभिकामेन मूलमुन्मूलितं पुनः ॥ ५७५ ॥

मूढेन कार्यसर्वस्वं स्वहस्तेन हतं मया ।

अस्मिन्नेव पताम्यग्नौ घोरे वा मकराकरे ॥ ५७६ ॥

सिद्धोऽप्यर्थः प्रनष्टो मे चपलस्य प्रमादिनः ।

काकतालीयसंप्राप्तो विभवः कुमतेरिव ॥ ५७७ ॥

निमित्तानि च पश्यामि शुभशंसीनि केवलम् ।

अप्यग्निना दक्षिणेन रक्षिता सा पतिव्रता ॥ ५७८ ॥

इति चिन्ताकुलः क्षिप्रं मारुतिर्व्योमचारिणाम् ।

स्थितां शुश्राव वैदेहीमाश्चर्यकथने मिथः ॥ ५७९ ॥

ततः प्रहृष्टोऽतिजवादशोकवनिकां पुनः ।

गत्वा दृष्ट्वा च वैदेहीं समाश्रयास्याभिवाद्य च ॥ ५८० ॥

आरुरोह गिरेः शृङ्गं समुद्रं तर्तुमुद्यतः ।

मारुतिः सत्त्वसंपन्नः सोत्साह इव वीर्यवान् ॥ ५८१ ॥
 लङ्घनाक्रान्तिगुरुणा भूधरस्तेन पीडितः ।
 स त्रिंशद्योजनोत्सेधः क्षणात्क्षितिसमोऽभवत् ॥ ५८२ ॥
 ततः स गगनं शाणोल्लीढनीलमणिप्रभम् ।
 व्यगाहत महोत्साहः सहस्रांशुरिवापरः ॥ ५८३ ॥
 पितुः समानचरितः स्कन्धबन्धयुतान्पुरः ।
 क्षिपन्स मेघसंघातान्योगाभ्यासमिवाकरोत् ॥ ५८४ ॥
 मैनाकं पुनरङ्गुल्या स्पृष्ट्वा प्रीत्यर्थमुद्धतम् ।
 द्रुमैः श्यामां गिरितटीं स ददर्शोदधेस्तटे ॥ ५८५ ॥
 तस्योरुवेगमाकर्ण्य नादं चानन्दलक्षणम् ।
 जगाद जाम्बवान्हर्षादङ्गदं भङ्गदं द्विषाम् ॥ ५८६ ॥
 कृतार्थो नूनमायातस्तरस्वी मारुतात्मजः ।
 यदस्य श्रूयते वेगनिर्घोषो बलवत्तरः ॥ ५८७ ॥
 एष संदृश्यते दूरान्मारुतिर्महसां निधिः ।
 सुपर्ण इव सवेगः सुमेरुरिव पक्षवान् ॥ ५८८ ॥
 इति जाम्बवतो वाक्यमाकर्ण्य हरियूथपाः ।
 समुत्थायोनतग्रीवा ददृशुस्तं सविस्मयाः ॥ ५८९ ॥
 वृक्षानन्ये समारुह्य शिखराणि गिरेः परे ।
 प्रहर्षविवशास्तस्थुर्हनुमद्दर्शनोत्सुकाः ॥ ५९० ॥
 समापतन्तं वेगेन तं प्लवंगगणाः पराः ।
 कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणेषुः प्रणयानताः ॥ ५९१ ॥
 निपत्य मारुतिस्तूर्णं महेन्द्रगिरिशेखरे ।
 निषसाद कृतातिथ्यः पादपैः पुष्पवर्षिभिः ॥ ५९२ ॥
 तं निशाचरशस्त्राल्लेखोल्लिखितविग्रहम् ।
 परिष्वज्याङ्गदमुखाः प्रीतेरन्तं न लेभिरे ॥ ५९३ ॥
 स प्रणम्य गुरुं वृद्धं जाम्बवन्तं कृताञ्जलिः ।

१. 'स्कन्धद्विधुतान्' ख; 'स्कन्धबन्धधुरान्' शा०.

युवराजं च सानन्दं देवी दृष्टेत्यभाषत ॥ ५९४ ॥

तस्य सुस्पष्टदंष्ट्रांशुसुधाधाराकुलं वचः ।

जीवप्रदं कपिवराः श्रोत्राञ्जलिपुटैः पपुः ॥ ५९५ ॥

कथं दृष्टेति पृष्टोऽत्र मारुतिर्वालिसूनुना ।

वैदेहीदर्शने सर्वं यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ ५९६ ॥

इति हनुमत्पुनरागमनम् ॥ १६ ॥

दृष्टां जनकजां श्रुत्वा सतीं शोकानलाकुलाम् ।

भग्नमशोकवनिकां किंकरांश्च निपातितान् ॥ ५९७ ॥

जम्बुमालिमुखान्वीरानक्षं च क्षितिपात्मजम् ।

दग्धां च निखिलां लङ्कां ग्रह्णोऽवददङ्गदः ॥ ५९८ ॥

मारुते शत्रुशल्येन सुहृदानन्ददायिना ।

कृतकृत्येन भवता कृतं कृत्यं यथोचितम् ॥ ५९९ ॥

अहो महत्त्वयैवाग्र्यं भुवनाक्रान्तिजं यशः ।

प्राप्तं प्रतापनिधिना देवेनेव विवस्वता ॥ ६०० ॥

प्रभूनां सुहृदां चित्ते कार्यकाले स्फुरन्ति ये ।

तेषां सिद्धार्थयशसां धन्यानां साधु जीवितम् ॥ ६०१ ॥

महत्ते पौरुषोद्योगविपुलोत्साहसेवनम् ।

भयादिवातिकुटिलं दैवमप्यनुवर्तते ॥ ६०२ ॥

विलङ्घितोऽन्विर्भवता सती दृष्टा च जानकी ।

परिभूतश्च पौलस्त्यः कर्तव्यं किमतः परम् ॥ ६०३ ॥

अधुना तां समाहृत्य सतीं हत्वा च रावणम् ।

भवद्भिः सहितो वीरैर्द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ ६०४ ॥

इन्द्रजिद्यदि मायावी दिव्यास्त्रग्रामदुःसहः ।

तथापि न वयं तेषां युद्धे परिभवास्पदम् ॥ ६०५ ॥

कथयामि ध्रुवं शक्तिं तद्वधे स्वयमात्मनः ।

परात्मनिन्दाश्लाघासु मौनिनो हि मनीषिणः ॥ ६०६ ॥

अस्य जाम्बवतः शौर्यस्त्वेन वयमीश्वराः ।
 वक्तुं रविप्रतापस्य प्रमाणं कः प्रगल्भते ॥ ६०७ ॥
 मारुते दृष्टसारस्त्वं क्षणदाचरसंक्षये ।
 तवास्मिन्विक्रमार्म्भे पुनरुक्ता गुणस्तुतिः ॥ ६०८ ॥
 अयं च सततं तुल्यः पनसो मनसो जवी ।
 न कस्यैतत्सुविदितं यः क्षमस्त्रिजगज्जये ॥ ६०९ ॥
 नलो न लोके विदितो यदि विक्रमकर्मसु ।
 तच्च भ्रेऽह्नि न जानाति जनो जाने दिवाकरम् ॥ ६१० ॥
 स्थितौ च मैन्दद्विविधौ कार्येऽस्मिन्नश्विनः सुतौ ।
 याभ्यां जित्वा सुरान्पीतं पीयूषं यशसा सह ॥ ६११ ॥
 अनादिष्टोऽपि रामेण सुग्रीवेण च मानिना ।
 अस्मद्विधानामुचितो दशाननवधोद्यमः ॥ ६१२ ॥
 समर्थानां परार्थेषु प्रार्थना क्रोपयुज्यते ।
 स्वयं प्रतापयत्यर्कः पृथ्वीं शेषो विभर्ति च ॥ ६१३ ॥
 तस्माल्लङ्कामितो गत्वा करोम्येष यथोचितम् ।
 सीता दृष्टा न चानीता वक्तुमित्युत्सहे कथम् ॥ ६१४ ॥
 इत्यङ्गदवचः श्रुत्वा वृद्धः प्रोवाच जाम्बवान् ।
 अवाच्यं कृतमप्येतत्काकुत्स्थाय न रोचते ॥ ६१५ ॥
 रामेण रावणवधः प्रतिज्ञातो जनाग्रतः ।
 स कथं तद्विसंवादं सहते सत्यसंगरः ॥ ६१६ ॥
 मनोरथक्षयायैव तस्यायं त्वत्समुद्यमः ।
 सेयं यदि परा भक्तिः तस्मिन्का नाम वैरिता ॥ ६१७ ॥
 शत्रुस्ते निहतोऽस्माभिरिति रामस्य नेप्सितम् ।
 प्रच्छादनं प्रतापस्य न सहन्ते हि मानिनः ॥ ६१८ ॥
 तस्माद्यथोक्तं कृतैव गच्छामो रघुनन्दनम् ।
 इति ब्रह्मसुतेनोक्ते तथेत्यूचुः प्लवंगमाः ॥ ६१९ ॥

ततः प्रमोदसमदा वारणा इव वानराः ।
 गन्तुं समुद्ययुर्वीरा वालिवायुसुताग्रगाः ॥ ६२० ॥
 ते निरन्तरसंघातघनग्रस्तनभस्तलाः ।
 हर्षाधिकजवा जग्मुः सुपक्षा इव भूधराः ॥ ६२१ ॥
 व्यस्ताभकञ्जुकैस्तेषां लाङ्गलैर्वलितैर्भुहुः ।
 भोगिभोगनिभैर्व्यासं खं पातालमिवावभौ ॥ ६२२ ॥
 रामाय प्रियमाख्यातं सोत्कण्ठाः समरोत्सुकाः ।
 ते सुग्रीवप्रियं प्रापुः क्षणान्मधुवनं महत् ॥ ६२३ ॥
 मधूनि तत्र दिव्यानि पीयूषरसवन्ति च ।
 स्वयंग्रैहाणि हरयो हनुमन्तं ययाचिरे ॥ ६२४ ॥
 हनुमानपि संहृष्टस्तेषामर्थे कृताञ्जलिः ।
 युवराजं मधुवनप्रवेशाज्ञामयाचत ॥ ६२५ ॥
 यथेष्टमत्र क्रियतां मधुपानाशनोत्सवः ।
 इत्यङ्गदाज्ञया तूर्णं विविशुः कपयः समम् ॥ ६२६ ॥
 ते प्रदिश्यामृतमयं दिव्यामोदं फलासवम् ।
 मधु भुक्त्वा यथाकामं मदेन मदनिर्भराः ॥ ६२७ ॥
 वृक्षानारुरुहुः केचित्केचिद्युधिरे फलैः ।
 अपरे जहसुर्नादैः शाखाश्चान्ये ललम्बिरे ॥ ६२८ ॥
 धावद्भिश्च पतद्भिश्च कर्षद्भिश्च परस्परम् ।
 प्रनृत्यद्भिश्च कपिभिः सर्वे वनमकम्पत ॥ ६२९ ॥
 तैर्निषेधरुषा मत्तैस्ताडितः काननाधिपः ।
 तानद्भवद्भिमुखः कोपादुद्यम्य पादपम् ॥ ६३० ॥
 तमभ्येत्याङ्गदः कोपात्परित्यज्यार्यगौरवम् ।
 भुवि निष्पिप्य विदधे भग्नोरुभुजकंधरम् ॥ ६३१ ॥

स मोहमूर्छानिःस्पन्दः शनकैर्लब्धजीवितः ।

प्रययौ यत्र सुग्रीवः काकुत्स्थाभ्यां सह स्थितः ॥ ६३२ ॥

इति मधुवनविलोपनम् ॥ १७

निपत्य गगनात्तूर्णं पादयोः प्लवगप्रभोः ।

स कृच्छ्रेण पृथुश्वासस्खलिताक्षरमभ्यधात् ॥ ६३३ ॥

देव दिव्यं तवोद्यानं त्रिदशैरप्यधर्षितम् ।

अङ्गदप्रमुखैर्मुक्तं प्रहारैरभिहन्य माम् ॥ ६३४ ॥

बलान्मधूनि पीतानि तानि दिव्यरसानि तैः ।

तद्विधं ते न चेष्टन्ते मृत्युना तेन चोदिताः ॥ ६३५ ॥

श्रुत्वा दधिमुखेनैतत्कथितं वानरेश्वरः ।

किमेतदिति पृष्टश्च लक्ष्मणेन तदाभ्यधात् ॥ ६३६ ॥

अवश्यं जानकी दृष्टा हनुमत्प्रमुखैः सती ।

न तेषामकृतार्थानामेवंरूपो भवेन्मदः ॥ ६३७ ॥

स्वाधीनमङ्गदादीनां कामं मधुवनं मम ।

विश्रान्तास्तूर्णमायान्तु मद्विरा ते तरस्विनः ॥ ६३८ ॥

इति ब्रुवाणे सुग्रीवे सादरं विगतक्लमः ।

सौमित्रिणा तथेत्युक्त्वा ययौ दधिमुखः क्षणात् ॥ ६३९ ॥

स प्रसाद्याङ्गदमुखान्प्रशान्तमदविप्लवान् ।

भर्तुः शासनमादाय गुणोदारानपूजयत् ॥ ६४० ॥

ततस्ते रामसुग्रीवदर्शनाभ्यधिकोत्सुकाः ।

ययुर्व्योम्ना समुत्पत्य नन्दन्तो जलदा इव ॥ ६४१ ॥

रामलक्ष्मणसुग्रीवान्दूरादालोक्य सादरान् ।

अवरुह्याम्बरात्तूर्णं पञ्चामभिमुखं ययुः ॥ ६४२ ॥

अङ्गदप्रमुखा वीरास्ते मारुतिपुरःसराः ।

प्रभुं ववन्दिरे तेन सानन्दमभिवन्दिताः ॥ ६४३ ॥

इति वानरप्रत्यागमनम् ॥ १८ ॥

ततो जगाद हनुमान्प्रणम्य रघुनन्दनम् ।
 प्रीतिप्रसादितेनाक्ष्णा सुग्रीवेण निरीक्षितः ॥ ६४४ ॥
 देव देवधूः श्लाघ्या सती जीवति जानकी ।
 दृष्टा च संक्षयक्लिष्टा लेखेव शशिलक्ष्मणः ॥ ६४५ ॥
 श्रुत्वैतदमृतास्वादसोदरं हनुमद्वचः ।
 ऊचे रामः शिखण्डीव नवाम्भोदस्वनोदितः ॥ ६४६ ॥
 दिष्ट्या जीवति वैदेही देहबद्धा धृतिर्मम ।
 कथं दृष्टा क्व वा दृष्टा कथं वा मयि वर्तते ॥ ६४७ ॥
 मद्वियोगेन महता तन्वी प्रतनुतां गता ।
 कान्तिमात्रावशेषेण मन्ये सा वपुषा स्थिता ॥ ६४८ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथेन जगाद पवनात्मजः ।
 पारेसमुद्रं लङ्कायां मया दृष्टा तव प्रिया ॥ ६४९ ॥
 एकवेणीर्त्रेता दीर्घध्याननिश्चललोचना ।
 मलिना गाढशोकामिधूमेनेवाश्रुवर्षिणी ॥ ६५० ॥
 दशाननगृहोद्याने राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
 लक्षिता त्वद्वियोगेन तप्तनिश्वासलक्ष्मणा ॥ ६५१ ॥
 यत्तस्यास्तीव्रचारित्रतपोदीप्तेन चक्षुषा ।
 नाद्यापि दग्धः पौलस्त्यः सा तस्यापि प्रगल्भता ॥ ६५२ ॥
 अथ वा झुष्ट एवासौ तत्प्रकोपकृशानुना ।
 त्वद्भाणमाला येनास्मिन्हेतुमात्रं भविष्यति ॥ ६५३ ॥
 इत्युक्त्वा विस्तरेणास्मै सीतासंदेशभाषितम् ।
 अभिज्ञानकथां तस्याः स्ववृत्तं च न्यवेदयत् ॥ ६५४ ॥
 निखिलं विनिवेद्याथ मारुतिर्मैथिलीवचः ।
 रामस्य प्रत्ययायैव ददौ तं वेणिकामणिम् ॥ ६५५ ॥
 रामोऽपि मणिमादाय बाष्पाम्बुभिरपूरयत् ।
 विरहानलसंतप्तं तस्या मूर्तेमिवाशयम् ॥ ६५६ ॥

ततः स विदधे रत्नं दयितादयितं हृदि ।
 चिरप्रवासादायातं स्थिरं धैर्यमिवात्मनः ॥ ६५७ ॥
 धृतिं लेभे परिष्वज्य स श्लाघ्यां पावनेस्तनुम् ।
 वैदेहीदर्शनेनेव यातामतिपवित्रताम् ॥ ६५८ ॥
 सोऽब्रवीत्सुमहत्कर्म कुर्वतो मारुते तव ।
 यशः स्फीतं भवाम्भोधौ यादमक्षयसेतुताम् ॥ ६५९ ॥
 सुहृदं च प्रभूणां च बन्धूनां स्वजनस्य च ।
 मनोरथफलप्राप्त्यै त्वद्विधो जायते जनः ॥ ६६० ॥
 इत्युक्त्वा वल्लभाप्रसितसंकल्पाकृष्टमानसः ।
 रामः समुद्रतरणं मध्ये विघ्नममन्यत ॥ ६६१ ॥
 स चिरं सागरं ध्यात्वा वियोगमिव दुस्तरम् ।
 पपात विस्मृतधृतिर्विपुले दुःखसागरे ॥ ६६२ ॥
 तं शोकविवशं ज्ञात्वा मकराकरचिन्तया ।
 जगाद प्रणयानम्रः सुग्रीवो मित्रवत्सलः ॥ ६६३ ॥
 कोऽयं तवापि विदुषः सुमतेधैर्यवारिधेः ।
 विक्रमावसरे व्यस्तविवेकः शोकविप्लवः ॥ ६६४ ॥
 त्यज्यतां हृदयादर्शश्यामिकां स्नेहदूतिकाम् ।
 शुचं वैक्लव्यजननीं क्लेशपाशपिशाचिकाम् ॥ ६६५ ॥
 उत्साहशत्रुणानेन शोकः शोकेन वर्धते ।
 संचयेन कदर्यस्य लोभाभ्यास इवानिशम् ॥ ६६६ ॥
 उत्साहदर्पदयिताः कालेऽस्मिन्विजयोजिताः ।
 उचिताः शितशस्त्रास्त्रपरुषाः पौरुषश्रियः ॥ ६६७ ॥
 पप्रच्छ दुर्गरचनां लङ्कायां पवनात्मजम् ।
 सोऽब्रवीत्परिखागुप्तवप्रप्राकारदुर्गमा ॥ ६६८ ॥
 परिघार्गलितद्वारप्रकटाज्वालमालिनी ।
 यन्नशस्त्रास्त्रसंवाधा त्रिकूटोत्तुङ्गशायिनी ॥ ६६९ ॥

१. 'धैर्यं साक्षादिवात्मनः' शा०. २. 'क्रान्ति' शा०. ३. 'दुस्तरे' शा०. ४. 'मोह' शा०.

अदृश्या त्रिदशैर्लङ्का नदी निर्झरशालिनी ।
 रक्षसां प्रयुतं तत्र पूर्वद्वाराभिसंश्रयम् ॥ ६७० ॥
 पद्मं तत्रोत्तरद्वारि पश्चिमे द्वारि चार्जुदम् ।
 नियुतं दक्षिणद्वारि शूलमुद्गरधारिणाम् ।
 वारेण तिष्ठति न्यस्तं रावणेन दिवानिशम् ॥ ६७१ ॥
 क्रियतामुद्यमस्तूर्णै रघुनाथ रिपुक्षये ।
 दुर्गमं त्वत्प्रतापस्य दैवस्येव न युज्यते ॥ ६७२ ॥
 इति रामः प्रहृष्टस्य श्रुत्वा हनुमतो वचः ।
 सुग्रीवमवदत्प्रीत्या दयितादर्शनोत्सुकः ॥ ६७३ ॥
 अस्मिन्मुहूर्ते विजये मध्याहे शुभलक्षणे ।
 उत्तराफाल्गुनीयुक्ते जययात्रा ममोचिता ॥ ६७४ ॥
 इत्युक्त्वा सह संनद्धैर्वानरानीकनायकैः ।
 नीलं सेनाग्रगं कृत्वा प्रतस्थे रघुनन्दनः ॥ ६७५ ॥
 मध्ये प्लवंगसैन्यानां राघवः पवनात्मजम् ।
 ययौ श्रीमान्समारुह्य वैनतेयमिवाच्युतः ॥ ६७६ ॥
 लक्ष्मणोऽप्यङ्गदारूढः सुग्रीवाग्रगमग्रजम् ।
 जगाद जयशंसीनि निमित्तानि विलोकयन् ॥ ६७७ ॥
 एष वाति सुखस्पर्शः पवनः शुभसूचकः ।
 सर्वथैवार्य पर्याप्तस्तव हस्तगतो जयः ॥ ६७८ ॥
 ग्रहाः सूर्यादयो व्योम्नि प्रसन्नास्तरुणार्चिषः ।
 तत्रोदयं वदन्त्येते त्रिशङ्कुश्च महीपतिः ॥ ६७९ ॥
 निशास्त्राख्यं च नक्षत्रं रघूणां निरुपप्लवम् ।
 मूलं राक्षसनक्षत्रं पीडितं धूमकेतुना ॥ ६८० ॥
 शंसन्ति मैथिलीलाभं दक्षिणा मृगपक्षिणः ।
 भ्रातुः श्रुत्वेति काकुत्स्थः प्रीतिं सीतामिवाप्तवान् ॥ ६८१ ॥
 पूरिताशावकाशेन कपिसैन्येन सर्पता ।

स बभौ सागरेणेव सेवितः क्षोभभीरुणा ॥ ६८२ ॥
 विन्ध्याचलमतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
 रामः प्राप्य महेन्द्राद्रिं ददर्श मकराकरम् ॥ ६८३ ॥
 तरङ्गैः पवनावेगतुङ्गैरालम्बिताम्बरम् ।
 दीप्तरत्नप्रभागर्भैः सतडिद्भिरिवाम्बुदैः ॥ ६८४ ॥
 फणारत्नांशुकैर्पिशैर्वलद्भिर्य्वालमण्डलैः ।
 बडवाग्निस्फुलिङ्गाङ्गैर्धूमावर्तैरिवान्वृतम् ॥ ६८५ ॥
 शुभ्राभ्रेण स्फुरत्फेनं नभसा मिश्रतां गतम् ।
 सत्संगतमिवाजस्रमविधातान्तरं परैः ॥ ६८६ ॥
 तं महाशयमालोक्य बन्धुप्रीत्यैव सागरम् ।
 अवरुह्य महेन्द्राग्रात्काकुत्स्थोऽब्धितटीं ययौ ॥ ६८७ ॥
 तटमालानिविष्टेषु कपिसैन्येषु सर्वतः ।
 निषसाद स्वयं रामो वेलाकूलशिलातटे ॥ ६८८ ॥
 इति समुद्रदर्शनम् ॥ १९ ॥
 ततः कल्लोलसंघट्टघोषघट्टितदिवतटे ।
 तटे निविष्टः सुग्रीवं जगाद रघुनन्दनः ॥ ६८९ ॥
 एष सत्त्वनिधिः श्रीमानपारः पाथसां निधिः ।
 अधुना तरणोपायस्तूर्णमस्मिन्विचिन्त्यताम् ॥ ६९० ॥
 अप्रमत्तास्तु देशेऽस्मिन्भवन्तु हरियूथपाः ।
 विनिवेशश्च सैन्यानां यथास्थानं निधीयताम् ॥ ६९१ ॥
 मन्त्रश्च क्रियतामस्मिन्पृथक्संभूय वा क्षणम् ।
 कार्यमेतदनल्पं हि समुद्रस्यास्य लङ्घनम् ॥ ६९२ ॥
 आरम्भाः पुरुषद्रव्यदेशकालफलोचिताः ।
 विनिपातप्रतीकारैः कार्यसिद्धिविधायिनः ॥ ६९३ ॥
 इति सुग्रीवमादिश्य शनैः सौमित्रिमब्रवीत् ।

शोकसंतप्तनिश्वासैः शोषयन्निव सागरम् ॥ ६९४ ॥
 अहन्यहनि भावानां म्लानिः समुपजायते ।
 अयं तु मे नवीभूतः शोकः सीतावियोगजः ॥ ६९५ ॥
 मद्द्वियोगाग्नितापेन सा तन्वी तनुतां गता ।
 वृत्तिः परार्थनादैर्न्यभीरोरिव यशस्विनः ॥ ६९६ ॥
 इयतीं भूमिमुलङ्घ्य सीतां दृष्ट्वा समीरणः ।
 एष बन्धुरिवाश्वसकारी स्पृशति मां पुनः ॥ ६९७ ॥
 असौ सुधापरिचयी धन्योऽयं मे मनोरथः ।
 क्षणेन शतशो दृष्ट्वा सीतां स्पृष्ट्वाभ्युपैति सः ॥ ६९८ ॥
 इमं महाजलनिधिं वियोगाचलदुःस्थिरम् ।
 अपि पश्येयमुलङ्घ्य वैदेहीचरणाम्बुजम् ॥ ६९९ ॥
 जीवन्ती तामहं श्रुत्वा संप्रति श्रोत्रजीवितः ।
 कदा दृष्ट्वा भविष्यामि चिरं लोचनजीवितः ॥ ७०० ॥
 निमेषलेशोऽप्यगमद्विभ्रतां यद्विलोकने ।
 व्यवधानं कथं मध्ये तस्या जलधिमुत्सहे ॥ ७०१ ॥
 आरम्भमात्रसाध्येऽपि दयितादर्शनोत्सवे ।
 प्रतीक्ष्यते च मे चेतः क्षणमप्यधिकोत्सुकम् ॥ ७०२ ॥
 अपैति हृदयैः कीर्णा नेयं मे विरहव्यथा ।
 जन्तोर्ललाटफलके लिखितेवाक्षरावली ॥ ७०३ ॥
 इति प्रलापिनः श्रुत्वा सौमित्रिर्जानकीपतेः ।
 प्रदध्यौ विविधोपायैर्महोदधिविलङ्घनम् ॥ ७०४ ॥
 ततः शनैः प्रयातेऽहि बभूव तमसा जगत् ।
 चक्रकाकवियोगाग्निधूमेनेवान्धकारितम् ॥ ७०५ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे सुन्दरकाण्डम् ।

अस्मिन्नवसरे वृद्धा जननी रक्षसां प्रभोः ।
 उवाच धीमतां धुर्यं पुत्रं निशि विभीषणम् ॥ १ ॥
 विचित्य निखिलं लङ्कां रावणातङ्ककारिणा ।
 तेन वानरवीरेण दृष्टा राघववल्लभा ॥ २ ॥
 जनापवादमूलोऽयं राज्ञः किल्बिषपल्लवः ।
 प्रत्यासन्नफलप्रायः प्रौढो दुर्नयपादपः ॥ ३ ॥
 शत्रुसंतोषजननी सुहृद्दुःखविधायिनी ।
 अधर्मकर्मणि मतिर्भूभुजां क्षयदूतिका ॥ ४ ॥
 निःशङ्कं पातकं कृत्वा रमते विभवेषु यः ।
 पीत्वा हालाहलं घोरं मालाकण्ठः स नृत्यति ॥ ५ ॥
 शुचिशीलदुकूलिन्यो यशश्चन्दनचर्चिताः ।
 गुणरक्ताः सतां सत्यं प्रभावाभरणः श्रियः ॥ ६ ॥
 त्यजन्ति मूर्खं दुर्वृत्तं धर्महीनं प्रमादिनम् ।
 गुणवर्गानुसारिण्यः स्वभावेन विभूतयः ॥ ७ ॥
 दोषासक्तिर्गुणद्वेषः श्रीविनाशस्य लक्षणम् ।
 पतिष्यतां मतिः प्रायः किल्बिषाभिनिवेशिनी ॥ ८ ॥
 सीतामिह स्थितां ज्ञात्वा व्यक्तं तस्य कपेर्गिरा ।
 रामः करिष्यति शरैः क्षणात्क्षोणीमराक्षसाम् ॥ ९ ॥
 खरदूषणसंहारकारिणस्तस्य विक्रमम् ।
 रक्षःकङ्कालमालिन्यो वदन्ति वनभूमयः ॥ १० ॥
 प्रौढः प्रतापो रामस्य रावणस्य च दुर्नयः ।
 सर्वथायं प्रवृत्तोऽग्निः शुष्केन्धनसमागमः ॥ ११ ॥
 पश्य विद्वेषिणो राज्ञो मन्त्रतन्त्राभिवर्तिनः ।
 व्याधयो दुर्बलस्येव निधनायैव शत्रवः ॥ १२ ॥
 निपात्यते सुखेनैव शत्रुभिर्व्यसनी जनः ।
 कल्लोलिनीकूलजलैश्छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १३ ॥

विचिन्त्य राघवं पुत्र महन्मे जायते भयम् ।
 दारापहारकुपितं कथमुत्सहते युधि ॥ १४ ॥
 कालं व्यालं गले कृत्वा धृत्वा भूर्ते हुताशनम् ।
 दंष्ट्रामाक्रम्य सिंहस्य मूढः शेते दशाननः ॥ १५ ॥
 पौलस्त्यस्य प्ररूढोऽयं विनाशविषपादपः ।
 स लङ्काज्वलनो यस्य नवः किसलयोद्धमः ॥ १६ ॥
 वात्सल्यं यदि ते भ्रातुस्तद्गत्वा ब्रूहि तं हितम् ।
 श्रियं सहायुषा येन संत्यजेन्नोन्नतोन्नताम् ॥ १७ ॥
 इत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रस्य युक्तं माता विभीषणम् ।
 विरराम चिरं ध्यात्वा दुःसहं रामविक्रमम् ॥ १८ ॥
 इति विभीषणमातृवाक्यम् ॥ १ ॥

ततः प्रभाते विस्फाररत्नादिशिखरोपमम् ।
 ययौ विभीषणस्तूर्णं दशकंधरमन्दिरम् ॥ १९ ॥
 स प्रविश्य सभासीनं महामौल्यैः समावृतम् ।
 ददर्श तेजसां राशिं शेखरं त्रिदशद्विषाम् ॥ २० ॥
 सुरकिंनरगन्धर्वनिषेधप्रभविष्णुभिः ।
 वेत्रिभिर्भूसमुत्क्षेपनिवारितजनस्वनम् ॥ २१ ॥
 रूढवज्रशिखोल्लेखगण्डस्थैर्गितकुण्डलम् ।
 प्रणताननुगृह्णन्तं सामन्तानवलोकनैः ॥ २२ ॥
 त्यक्तालका कुबेरेण चिरशून्यामरावती ।
 ध्वस्तपातालमित्यादिसंदेशे श्रवणोत्सुकम् ॥ २३ ॥
 तापं संहर तिग्मांशो नीचैर्गच्छ समीरण ।
 मौनी भवाग्ने त्वमिति प्रोद्धताग्नेसरस्व नः ॥ २४ ॥
 वक्षःप्रकारगम्भीरस्तम्भसंभारदोर्द्धमम् ।
 अधृष्यं सर्वभूतानां कारागारमिव श्रियः ॥ २५ ॥

१. 'मूर्ध्नि' शा०. २. 'मात्यशतैर्वृतम्' शा०. ३. 'स्वलित' क.ख.

लङ्घेश्वरं समालोक्य रत्नाभरणभास्वरम् ।
 सुरस्त्रीचामरोल्लासविलासोल्लुलितांशुकम् ॥ २६ ॥
 प्रणम्य सूचिता भिक्षा प्रणयेन विभीषणः ।
 भेजे तद्भूविनिर्दिष्टं प्रीतिशासनमासनम् ॥ २७ ॥
 निवातसुप्तजलधिप्रभे निःशब्दनिश्चले ।
 तस्मिन्सदसि गम्भीरे प्रगल्भः सोऽभ्यधात्सुम् ॥ २८ ॥
 इयं सुरासुरादेशजययात्रोत्सवाशिषाम् ।
 भाजनं भवतो लक्ष्मीरक्षीणोत्साहलक्षणा ॥ २९ ॥
 इयतीं भूमिमारूढा संपत्संपन्नपौरुषा ।
 लज्जैषा महती याति यदि दुर्नयवाच्यताम् ॥ ३० ॥
 विभूतिरयशःस्पृष्टा शिष्टाचारोज्झिता मतिः ।
 चेष्टासाधुजनानिष्टा न भवत्युन्नतात्मनाम् ॥ ३१ ॥
 सुरासुरशिरोरत्नमालाललितशासनः ।
 प्रभावो विभवोद्गारः कस्यान्यस्य यथा तव ॥ ३२ ॥
 गुणमानकुलाचारप्रभावविनयादयः ।
 निपतन्त्युन्नतिं याता रूक्षास्तस्माद्विशेषतः ॥ ३३ ॥
 इयं श्रीर्निरनुक्रोशा वेश्येव बहुगामिनी ।
 सरागविमुखी नित्यं व्यसनिभ्यः पलायते ॥ ३४ ॥
 राजन्धोराणि दृश्यन्ते निमित्तानि गृहेषु नः ।
 यदैव रामस्य वधूः प्रविष्टा दुःखदूतिका ॥ ३५ ॥
 अग्निहोत्रे न भात्यग्निर्हविः क्रिमिकुलाकुलम् ।
 गजाश्वसंप्रहृष्टं च लङ्का क्रव्यादनादिता ॥ ३६ ॥
 तदेषां दुर्निमित्तानां प्रायश्चित्तमिदं परम् ।
 यदेषा त्यज्यते तूर्णं काकुत्स्थायैव मैथिली ॥ ३७ ॥
 इति आतुर्वचः श्रुत्वा मुखान्यालोक्य मन्त्रिणाम् ।
 निजगाद दशग्रीवः कोपजिह्वानताननः ॥ ३८ ॥

भवद्भुजवलाधीना मम विश्वजयश्रियः ।
 मन्त्रतन्त्रानपेक्षिण्यः परां प्रौढिमुपागताः ॥ ३९ ॥
 यत्स्वजात्युचितं तेन कपिना चापलं कृतम् ।
 तस्य मानावलेपस्य मन्मन्त्रोपगमः क्षमः ॥ ४० ॥
 क्व गतः प्लवगो जीवन्कृत्वा लङ्कापराभवम् ।
 येनायमवकाशोऽस्य मन्त्रस्य विवृतः पुरः ॥ ४१ ॥
 अधमस्योचिता शत्रोर्नोपेक्षा न प्रतिक्रिया ।
 तस्मात्संदेहदोलायां मन्त्रस्यैव प्रयोजनम् ॥ ४२ ॥
 श्रेयान्मन्त्रो मतिष्वैक्यं मध्यमोऽप्यन्तरं गतः ।
 विवादद्वेषविक्लिष्टो मन्त्रः क्लेशफलोऽधमः ॥ ४३ ॥
 व्यसनी तापसोऽस्माकं चिन्तास्थानं न राघवः ।
 न मे तद्विक्रमे चिन्ता तपस्तस्य तु चिन्त्यताम् ॥ ४४ ॥
 इति राक्षसराजेन निर्दिष्टे मन्त्रिमण्डले ।
 ऊचे प्रहस्तः संचिन्त्य प्रणतः पृतनापतिः ॥ ४५ ॥
 देव देववधूयस्तवियोगस्य तव स्तवः ।
 गतो गतार्थतां विश्वविजयश्च नवो नवः ॥ ४६ ॥
 कुञ्जरारैर्मृगाघाते संरम्भः क्रोपयुज्यते ।
 न मन्त्रः क्रियते कश्चित्सहस्रांशोस्तमःक्षये ॥ ४७ ॥
 चिन्ताशान्तिपरा नित्यं मन्त्रैर्मन्दपराक्रमाः ।
 शुष्यन्ति सिद्धिमेषां तु विधत्ते विधिरन्यथा ॥ ४८ ॥
 विक्रमोत्साहशीलानां सर्वत्राभ्यतेजसाम् ।
 स्पष्टतां स्वयमायान्ति पन्थानः कुटिला अपि ॥ ४९ ॥
 त्वत्प्रतापहतैश्वर्ये सहसैव शतक्रतौ ।
 लैजां बृहस्पतिर्धत्ते स्वनयग्रन्थभारिकः ॥ ५० ॥

१. 'पक्रमः' शा०. २. 'न्यस्त' शा०. ३. 'लब्धान्वितः स वक्त्रेषु नयोऽस्ति भारवा
हकः' छा-शा०.

पदच्युतः फलाहारस्तापसः काननाश्रयः ।
 कस्य शङ्कास्पदं नाम रामः परिमिताशयः ॥ ५१ ॥
 सुग्रीवप्रमुखैः सार्धं यदि रामः समेष्यति ।
 का क्षतिर्नः कपिशिरःफलैः क्रीडा भविष्यति ॥ ५२ ॥
 साम साधुषु योक्तव्यं दानं लुब्धजनोचितम् ।
 भेदो हि शङ्किषु श्रेयान्दण्डस्तब्धेषु भेषजम् ॥ ५३ ॥
 छिन्नं हनुमता साम दानं नीचेषु नोचितम् ।
 क्व भेदो निःसहायस्य दण्डार्हो राघवः परम् ॥ ५४ ॥
 दुर्बलेन पुनश्छिन्नं साम रामेण सर्वदा ।
 बलिनोऽपि वयं कस्मान्नीचदर्पं सहामहे ॥ ५५ ॥
 प्रस्तुतो यदि रामस्य न दौरात्म्यात्परिक्षयः ।
 तत्कथं तद्विधो दूतस्त्वद्विधेषु विसृज्यते ॥ ५६ ॥
 इयं सरलता राजन्यमर्त्योऽपि विचिन्त्यते ।
 उपायाः क्रोपयुज्यन्ते भोगभोक्तृसमागमे ॥ ५७ ॥
 प्रहस्तेनेति कथिते वज्रदंष्ट्रपुरोगमाः ।
 दर्पान्धाः प्रवरामात्या दशकंधरमूचिरे ॥ ५८ ॥
 मन्त्रारम्भोऽयमस्थाने किमर्थं क्रियते वृथा ।
 नोचिता रिपुचर्चापि वानरेष्वल्पकेषु नः ॥ ५९ ॥
 देवं कैलासकूटेषु विबुधार्थजयोजितम् ।
 रथचक्रसमुल्लेखैर्लिखितं भवताशयः ॥ ६० ॥
 मयेन मायानिधिना दानवेन्द्रेण ते भयात् ।
 निजकन्याच्छलेनैव मूर्ता शक्तिरिवार्पिता ॥ ६१ ॥
 पुराणि लोकपालानां भग्नोद्यानगृहाणि यत् ।
 त्वदाज्ञाध्वजपट्टस्य तद्भ्रूक्षेपस्य चेष्टितम् ॥ ६२ ॥
 इति दर्पाद्भुवाणेषु महामात्येषु रावणः ।
 क्रोधाध्मातो महापार्श्वः श्वसन्नाग इवाभ्यधात् ॥ ६३ ॥

असमानजने साम कृपया यदि युज्यते ।
 तत्सौजन्यं जनो जातु भयमेवाभिमन्यते ॥ ६४ ॥
 मनुष्यस्य वधे देव चिन्तास्माकं न शोभते ।
 न जम्बुकवधे सिंहः स्वप्नेऽपि कुरुते मतिम् ॥ ६५ ॥
 अधुना स्वस्ति मन्त्राय मन्त्रिभ्यश्चायमञ्जलिः ।
 भृत्यलेशाज्ञया तूर्णं क्रियतां वानरक्षयः ॥ ६६ ॥
 सरामलक्ष्मणस्यास्य कपिसैन्यस्य भक्षणम् ।
 मह्यं भृत्याय भवता प्रमाणीक्रियतां विभो ॥ ६७ ॥
 इति ब्रुवाणे दर्पान्धे महापार्श्वे मदोदरः ।
 कोपात्तद्वाक्यमाक्षिप्य जगाद जगतां रिपुः ॥ ६८ ॥
 पतङ्गपुत्तिकादंशपिपीलकसरीसृपाः ।
 वानरा वा कथं नाम शङ्कास्थानं भवादृशम् ॥ ६९ ॥
 पराभवास्पदं कस्माद्वयं निर्जितनिर्जराः ।
 वनेषु लुब्धकैर्वध्या बलिनः केन वानराः ॥ ७० ॥
 मनोरथविकल्पानां स्वच्छन्दा क्रियती गतिः ।
 यैस्तृणीक्रियते मेरुर्मरुतां नीयते तृणम् ॥ ७१ ॥
 नूनं देव न जानीषे प्रभावं स्वयमात्मनः ।
 परमात्मा जगद्धापी खखभावमिवेश्वरः ॥ ७२ ॥
 अपर्याप्ता हरिचमूः सालतालशिलायुधा ।
 कुक्षिकोणैकदेशेऽपि पर्याप्तं न हि भोजनम् ॥ ७३ ॥
 महद्दृष्ट्वायन्नसंघट्टनिष्पिष्टाः प्लवगा मिथः ।
 एकीभूता इव प्रीत्या यान्तु प्रेतपतेः पुरीम् ॥ ७४ ॥
 इति तेषां वचः श्रुत्वा राक्षसानाममर्षिणाम् ।
 बभाषे भीषणं भ्रातुर्नाशं ज्ञात्वा विभीषणः ॥ ७५ ॥
 प्रमादमदमत्तानां श्वश्रे निपततां बलात् ।
 मृणालतन्तुना केन क्रियते गतिसंयमः ॥ ७६ ॥

आश्चर्यनिधये मायाविधये विधये नमः ।
 चिन्त्यमानोऽपि यः क्षिप्रं विदुषामपि वञ्चकः ॥ ७७ ॥
 छन्दानुगास्तव प्रायः प्रियाः स्वच्छन्दवादिनः ।
 प्रियं वदन्ति न हितं यदेतेऽप्यत्र मन्त्रिणः ॥ ७८ ॥
 नमोऽस्तु प्रियवादिभ्यो धूर्तेभ्यः स्वामिनां पुरः ।
 ये पथ्यं कटुकं वक्तुं स्वप्नेष्वपि न शिक्षिताः ॥ ७९ ॥
 अमुष्मिन्विभवोद्याने शीर्णे तिष्ठन्ति न कश्चित् ।
 लक्ष्मीलताषट्चरणा धूर्ता मधुरवादिनः ॥ ८० ॥
 ऐश्वर्यं यदि रक्ष्यं चेत्प्रियं यदि च जीवितम् ।
 तत्स्वयं त्यज्यतां तूर्णं काकुत्स्थायैव मैथिली ॥ ८१ ॥
 कथाशेषोत्सवा यावन्न लङ्का शून्यतां गता ।
 रामायैव स्वयं तावद्दीयतां देव मैथिली ॥ ८२ ॥
 अप्रमादी महोत्साहः स्थितः सद्धर्मवर्त्मनि ।
 न रामः संयुगे जेतुं शक्यः सर्वैः सुरासुरैः ॥ ८३ ॥
 अपरित्यक्तशीलानां शूराणामप्रमादिनाम् ।
 सत्यव्रतानां धीराणां जयश्रीरपराङ्मुखी ॥ ८४ ॥
 गुणानुरागी लोकोऽयं प्रतिष्ठा लोकसंभवा ।
 प्रतिष्ठा यशसो मूलं यशोलुब्धा विभूतयः ॥ ८५ ॥
 नयानुयायिनी लक्ष्मीरप्रमादोदयो जयः ।
 प्रभावप्रभवा शक्तिर्गुणमार्गानुगं यशः ॥ ८६ ॥
 श्रीरियं नीतिनलिनी विलासकलहंसिका ।
 नश्यत्येव परित्रस्ता दृष्ट्वा दुर्नयदुर्दिनम् ॥ ८७ ॥
 जितेन्द्रियाणां संत्यक्तसङ्गानां विदितात्मनाम् ।
 योगिनां भूमिपालानां सफला मन्त्रसिद्धयः ॥ ८८ ॥
 भव शीलधरो राजन्व्यसने मा कृथा मतिम् ।
 त्यक्त्वा कुमतिमायान्ति सदाचारं विभूतयः ॥ ८९ ॥

विघ्नन्ति बहवोऽप्येकमेको हन्ति बहूनपि ।
 अमर्यादं सदा युद्धं तस्मिन्नप्रत्ययो जयः ॥ ९० ॥
 श्रुतशीलबलौचित्यप्रभावविभवादयः ।
 गुणधर्मफलाः सर्वे धर्मायत्तगतिर्जयः ॥ ९१ ॥
 राजन्सुखसुखस्यायं न कालः प्रणयोचितः ।
 प्रियः शिखाग्रहेणापि व्यसनाद्विनिवार्यते ॥ ९२ ॥
 सतः सत्त्वसहायस्य धैर्यराशैर्यशस्विनः ।
 प्रौढः प्रतापो रामस्य सर्वत्रास्खलितोदयः ॥ ९३ ॥
 यदि प्रियजने प्रेम यदि भोगेष्वतृप्तता ।
 यदि प्राणेषु वः प्रीतिस्तत्काकुत्स्थः प्रसाद्यताम् ॥ ९४ ॥
 उक्ते विभीषणेनेति किञ्चिदागतविक्रियः ।
 उवाच विधिवैमुख्यविप्रलब्धो दशाननः ॥ ९५ ॥
 खड्गमेघशिखण्डिन्यो भुजालानकरेणुकाः ।
 वीरवक्त्रावलोकिन्यः सत्यमेता विभूतयः ॥ ९६ ॥
 बन्धुभावादहो मोहः स्नेहः सरलतापि वा ।
 भ्रातुर्भीरुस्वभावस्य प्रकृतिर्वा तवेदृशी ॥ ९७ ॥
 कुलाचारमतिक्रम्य कथमस्मद्विधो जनः ।
 मानमुत्सृज्य वर्तेत त्रैलोक्ये रक्ष्यतां गतः ॥ ९८ ॥
 येनेश्वरः पथा याति स्पष्टेन कुटिलेन वा ।
 महाजनानुगो नित्यं जनस्तेनैव गच्छति ॥ ९९ ॥
 तापसस्य मया योऽयं कृतः कान्तापराभवः ।
 स चिन्त्यमानस्तत्त्वेन दोषो यदि गुणोऽत्र कः ॥ १०० ॥
 किं विरक्तस्य संभोगैरश्रमस्याश्रमेण किम् ।
 पूर्वापरविरुद्धोऽयमाचारस्तस्य दुर्मतेः ॥ १०१ ॥
 क पांसुशय्या विपिने जरन्मृगगणाश्रये ।
 क नूपुरवती कान्ता शिञ्जानमणिनूपुरा ॥ १०२ ॥

१. 'भ्रातर्भी' स्यात्. २. 'त्रैलोक्यालक्ष्यतां' ख.

क वृद्धसंनिधि वनं संभोगार्हं क यौवनम् ।
 क युद्धयात्रा सुरथा क च पङ्कमनोरथाः ॥ १०३ ॥
 क शौर्यं क जटाबन्धः क शस्त्रं क च बल्कलम् ।
 सर्वथा कुटिलाचारो विपरीतः स तापसः ॥ १०४ ॥
 कथमर्हति तां रामः स्त्रीरत्नं जनकात्मजाभू ।
 त्रैलोक्यजयिनो यस्यां मद्विधा बद्धकौतुकाः ॥ १०५ ॥
 खरमुख्या हतास्तेन यन्मर्त्येनापि राक्षसाः ।
 दैवादन्त्यत्र कस्यैषा शक्तिः स्वेच्छाविलासिनी ॥ १०६ ॥
 कथं केलिकपेर्लङ्कादहने सा गतिर्भवेत् ।
 यदि न स्यात्परं चित्रक्रीडाद्भुतनिधिर्विधिः ॥ १०७ ॥
 यस्येयं विश्वनिर्माणवैचित्र्यप्रभविष्णुता ।
 शक्तिं कस्तस्य दैवस्य पौरुषेणातिवर्तते ॥ १०८ ॥
 युद्धं यदि बलादीनां खड्गादीनां यदि श्रियः ।
 शक्त्यपेक्षो यदि जयो मम चिन्तास्पदं नु किम् ॥ १०९ ॥
 इति क्रोधं नियम्यैव भाषमाणे दशानने ।
 ऊचे विभीषणो राजन्सीतैव त्यज्यतामिति ॥ ११० ॥
 ततः कोपोष्मसंजातस्वेदसंसिक्तमाननम् ।
 संप्रमृज्यांशुकान्तेन व्याजहारेन्द्रजिद्वचः ॥ १११ ॥
 दूरदेव प्रणामार्हाः पण्डिता गुरवो द्विजाः ।
 तद्दोषे ह्यतिसंगत्या दृष्टे श्रेद्धा विनश्यति ॥ ११२ ॥
 स्वभाषितपरिच्छेदविवक्षावसरोचिताः ।
 व्यवहारविचारेषु बाह्याः पण्डितबुद्धयः ॥ ११३ ॥
 धीमान्सर्वज्ञ इत्येष प्रौज्ञोऽस्माकं विभीषणः ।
 कुलवैलक्ष्यजननी लक्षितास्य न भीरुता ॥ ११४ ॥
 अहो नु रथ्यावन्दीव राममेव प्रशंसति ।
 गदयं नैव जानीमः केनास्योपहृता धृतिः ॥ ११५ ॥

का नाम कृपणे तस्मिन्यस्य चिन्ता कुतापसे ।
 सुरासुररणोत्साहविजयो विस्मृतः स किम् ॥ ११६ ॥
 नीचोत्कर्षकथादुःखं सहते नोन्नतं मनः ।
 येनेयं विक्रमश्लाघा क्रियते स्वयमात्मनः ॥ ११७ ॥
 अद्यापि लोचनपथे धत्ते पिष्टः क्षितौ मया ।
 द्वेषोष्मणा रजोभिश्च तुल्यं कलुषतां हरिः ॥ ११८ ॥
 ऐरावणरदाकृष्टिच्छन्नना प्रसभं मया ।
 मूलमुन्मूलितं मन्ये सुरराजयशस्तरोः ॥ ११९ ॥
 समरे लोकपालानां विद्रुतानां भयान्मम ।
 नाद्यापि पदवी लब्धा वधूभिर्वनवर्त्मसु ॥ १२० ॥
 तस्य मे तापसकथा मिथ्याशौर्यमयी पुरः ।
 क्रियमाणा कथं नाम नो प्रथात्युपहास्यताम् ॥ १२१ ॥
 इति शक्रजितो वाक्यं श्रुत्वोवाच विभीषणः ।
 विभ्राणः कोपरजनीचन्द्रिकां हसितच्छटाम् ॥ १२२ ॥
 अद्याप्यपक्वबुद्धिस्त्वं बालकः पेशलाशयः ।
 बलावलं विजानीषे न परस्य न चात्मनः ॥ १२३ ॥
 पुत्ररूपो ध्रुवं शत्रुस्त्वं पितुर्दुर्नयोचितः ।
 यदस्यातिप्रमत्तस्य राघवात्क्षयमिच्छसि ॥ १२४ ॥
 ब्रह्मशापोपमास्तीक्ष्णाः शराः शिखरिभेदनाः ।
 सङ्गन्ते येन रामस्य जनो जातो न जातु सः ॥ १२५ ॥
 सीता समर्प्यतां तस्मै रत्नैः सह सुरोचितैः ।
 कृच्छ्रे त्यक्त्वापि सर्वस्वं रक्षेच्चात्मानमात्मवित् ॥ १२६ ॥
 हन्ता मारीचमुख्यानां वीरः सुग्रीवराज्यदः ।
 रामः कामं नरेन्द्रोऽस्तु कानने वास्तु तापसः ॥ १२७ ॥
 कर्मणामेष संकल्पः काकुत्स्थो यद्वनेचरः ।
 दाता त्रैलोक्यराज्यानां भस्मशायी महेश्वरः ॥ १२८ ॥

असंक्षयाय स परं निविष्टो जलधेस्तटे ।
 सर्वैः स्वयमितो गत्वा सर्वस्वेन प्रसाद्यताम् ॥ १२९ ॥
 तेन क्लेशनिमित्तेन वित्तेन निष्कलेन किम् ।
 यत्कुलस्यात्मनो वापि रक्षार्थं नोपयुज्यते ॥ १३० ॥
 न भुक्तेषु न मुक्तेषु वृद्धानां विनयेष्विव ।
 धनादानेषु लुब्धानां निधनावधिरादरः ॥ १३१ ॥
 धनेन रक्ष्यतामात्मा स पुनर्धनभाजनम् ।
 न त्वात्मनि गते वित्तं पुरुषाननुगच्छति ॥ १३२ ॥
 श्रुत्वैतत्कलुषं आतुर्वचः कोपारुणेक्षणः ।
 श्वसन्वभूव पौलस्त्यः कम्पव्यालोलकुण्डलः ॥ १३३ ॥
 गम्भीरं कोपमालोक्य शीलज्ञास्तस्य मन्त्रिणः ।
 चकम्पिरे चिरं धीरा भूकम्पादिव भूधराः ॥ १३४ ॥
 सोऽवदत्पाणिना पाणिं निष्पिष्य स्वेदसंस्तुतः ।
 दीप्तरत्नाङ्गदालोकैर्निर्धर्ष्याग्निं सृजन्निव ॥ १३५ ॥
 प्रियायैवाप्रियेणोक्तं श्रुत्वा कोपोत्कटं वचः ।
 विरक्तस्य स्मितेनापि जायेते कोपसाध्वसे ॥ १३६ ॥
 पापदुष्टेन मनसा भाषसे प्रतिभान्वितम् ।
 हितमप्यप्रमाणं तन्मम पथ्यमिवाशुचि ॥ १३७ ॥
 रागद्वेषविकल्पेषु प्रमाणं सर्वथा मनः ।
 रतौ दन्तक्षतैः प्रीतिस्तैरेव कलहे व्यथा ॥ १३८ ॥
 अहो बत वयं सर्वे वञ्चिताः सरलाशयाः ।
 येषां विभीषणे मिथ्या गुणसंभावनाभवत् ॥ १३९ ॥
 दम्भदिग्धगुणस्यास्य किं पाण्डित्येन किं धिया ।
 अभिमानमयं यस्य धैर्यं नास्त्येव जीवितम् ॥ १४० ॥
 पूर्वापकारिणा संधिं शत्रुणा यः समीहते ।
 मन्त्रे वा विक्रमे वापि स किमायास्यते पशुः ॥ १४१ ॥

अपनीतायुधो रामः शरणं यदि मा व्रजेत् ।
 तदेतदुक्तं युक्तं स्याद्विनयः कस्य न प्रियः ॥ १४२ ॥
 शत्रुलेशप्रणाशं मे प्रमाणं सुभटाः परे ।
 भीरुस्वभावः कार्येऽस्मिन्बहिरास्तां विभीषणः ॥ १४३ ॥
 रामे यद्यस्य रमते बुद्धिर्विबुधमानिनः ।
 तत्तमेव प्रयात्वेष विरक्तः केन सङ्गते ॥ १४४ ॥
 इति ब्रुवाणे सावेगं क्रोधान्धे दशकंधरे ।
 ससंरम्भेष्वमात्येषु पुनरूचे विभीषणः ॥ १४५ ॥
 बल्लभं सर्वजन्तूनां जीवितं यस्य न प्रियम् ।
 उन्मार्गागामिनस्तस्य हितवादी कथं प्रियः ॥ १४६ ॥
 अधर्मं स्वविनाशाय यः समाचरति स्वयम् ।
 किमात्मशत्रुणा तेन प्रीतेन कुपितेन वा ॥ १४७ ॥
 किं चित्रं यदि धर्मस्थे रामे मे रमते मतिः ।
 आनन्दाय न कस्येन्दुः सुधानिष्पन्दसुन्दरः ॥ १४८ ॥
 प्रमादी प्रार्थ्यमानोऽपि पथ्यं गृह्णाति नैव यः ।
 सत्यं तस्य विनाशेन नृत्यन्ति स्वजना अपि ॥ १४९ ॥
 स मन्त्रो मन्त्रिभिर्यत्र व्यसनाद्वार्यते नृपः ।
 शिष्टचित्तग्रहायैव प्रमत्तस्यानुभाषणम् ॥ १५० ॥
 स्वभ्रपातोद्यतो राजा मन्त्रिणोऽनुमतप्रदाः ।
 सेयं विनाशसामग्री दैवेन घटिता परम् ॥ १५१ ॥
 श्रुत्वैतत्कोपसंतप्तः समुत्थाय दशाननः ।
 साम्राज्यमिव पादेन जघानाशु विभीषणम् ॥ १५२ ॥
 स पपात हतस्तेन तेजस्वी कनकासनात् ।
 अस्ताचलादिव रविः शर्वर्यन्तरितोदयः ॥ १५३ ॥
 तमभ्यधावदाकृष्य खड्गं व्यालोलकुण्डलः ।
 रावणश्चक्रचापाङ्गस्तडित्पङ्क इवाम्बुदः ॥ १५४ ॥

स निरुद्धः प्रहस्तेन बाहुभ्यां प्रियवादिना ।
 निजमासनमासाद्य निःश्वसन्पुनरभ्यधात् ॥ १५५ ॥
 तूर्णं निर्ध्कास्यतामेष निलयान्निरपत्रपः ।
 क्लैब्याद्भयाद्वा यस्येयं जाता शत्रुस्तेवे मतिः ॥ १५६ ॥
 परपक्षप्रियो वक्तुं नार्हत्येष पुरो मम ।
 न तथा दुःसहः शत्रुर्यथा शत्रुसैमाश्रितः ॥ १५७ ॥
 ज्ञातिभ्यो भयमुत्पन्नं वह्निर्वेणुवनादिव ।
 प्रभावद्वेषिणो नित्यं ज्ञातयो गूढशत्रवः ॥ १५८ ॥
 ज्ञातयो ज्ञातसंचाराश्छिद्रेषु व्यसनैषिणः ।
 न सहन्ते गुणोद्विमास्तुल्या कुलजनोन्नतिम् ॥ १५९ ॥
 न दानेन न मानेन नोपकारैर्न संस्तवैः ।
 ज्ञातयः परितुष्यन्ति क्षयसंदर्शनादृते ॥ १६० ॥
 शिक्षाहस्तिसमाकृष्टैः श्रूयन्ते हस्तिभिः पुरा ।
 श्लोका पद्मवने गीताः कूटपाशवशंगतैः ॥ १६१ ॥
 विषशस्त्राग्निसर्पेभ्यो न भयं विद्यते नृणाम् ।
 सुप्ताभिघातप्रतिमं घोरं ज्ञातिकृतं भयम् ॥ १६२ ॥
 स्वार्थप्रधानविद्वेषाद्रूढमायाप्रहारिणः ।
 नेच्छन्ति ज्ञातयो वृद्धिं स्वजनस्य क्षयोत्सुकाः ॥ १६३ ॥
 दुर्जनात्पातकमिव स्त्रीचित्तादिव चापलम् ।
 अहिवक्त्रादिव भयं नापैति ज्ञातितो भयम् ॥ १६४ ॥
 तस्मात्क्षिप्रं प्रयात्वेव यत्रास्य रमते मतिः ।
 प्रिया प्रियत्वं लोकस्य चक्षुषः केन वार्यते ॥ १६५ ॥
 इत्युक्ते दशकण्ठेन संरम्भलुलिताङ्गदम् ।
 प्रहस्तो हस्तमुद्यम्य भ्रान्तभ्रूयुगलोऽभ्यधात् ॥ १६६ ॥
 क्रुद्धस्ते रावणो राजा दिशो गच्छ विभीषण ।
 न ह्यतुष्टे दशग्रीवे भुज्यन्ते भोगसंपदः ॥ १६७ ॥

१. 'निर्ध्कास्यता' शा०. २. 'विषया' शा०. ३. 'समाश्रयः' शा०.

सोऽपि वैश्रवणः श्रीमाननेनाज्ञाव्यतिक्रमात् ।
 भ्रूमङ्गनष्टविभवो भ्राता ज्येष्ठो विवासितः ॥ १६८ ॥
 उक्त्वेति हस्तेनाकृष्य प्रहस्तो रावणानुजम् ।
 उवाच गच्छ गच्छेति क्रोधाध्मातः पुनः पुनः ॥ १६९ ॥
 ततो हरिप्रभृतिभिश्चतुर्भिः सचिवैः सह ।
 विभीषणो गदापाणिर्विवेशाकाशमाशुगः ॥ १७० ॥

इति विभीषणनिष्काशनम् ॥ २ ॥

स दृष्ट्वा मातरं तूर्णं प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
 निवेद्यास्य यथावृत्तं प्रययौ व्योमवर्त्मना ॥ १७१ ॥
 तस्य कुण्डलकेयूरमौलिरत्नांशुभिर्दिशः ।
 ययुर्नृत्यन्मयूराणां वनानां तुल्यरूपताम् ॥ १७२ ॥
 ब्रजन्तं तेजसां राशिं चलत्पीतांशुकाञ्चलम् ।
 तं मेरुमिव संध्याभ्रमालितं ददृशुः सुराः ॥ १७३ ॥
 रामाभिमुखमायान्तं तं सुग्रीवपुरोगमाः ।
 शङ्किताः प्लवगा वीक्ष्य युद्धायैव समुद्ययुः ॥ १७४ ॥
 संरब्धान्वानरान्वीरान्दृष्ट्वा धीमान्विभीषणः ।
 समुद्रस्योत्तरे पार्श्वे तस्थौ खेक्षणनिश्चलः ॥ १७५ ॥
 दूरात्स्वनेन महता घनघोषानुकारिणा ।
 सुग्रीवं दर्शनोद्ग्रीवं सानुगं स समभ्यधात् ॥ १७६ ॥
 भो भोः प्लवङ्गमाः सर्वे राक्षसोऽहं विभीषणः ।
 रावणस्यानुजो वीरं द्रष्टुमिच्छामि राघवम् ॥ १७७ ॥
 त्यज्यतां जानकी भ्रातर्मयेत्युक्तो दशाननः ।
 हितं वचो न जग्राह मुमूर्षुरिव भैषजम् ॥ १७८ ॥
 तै रावणादिभिः सर्वैः कोपादतिविमानितः ।
 गुणानुरागाघातोऽहं शरणं रघुनन्दनम् ॥ १७९ ॥

संत्यक्तपापं स्वजनं सदाचारजनप्रियम् ।
 निवेदयत रामाय मामकिल्विषमागतम् ॥ १८० ॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवोऽभ्येत्य राघवम् ।
 राक्षसाचारचकितस्तदुक्तं सर्वमभ्यधात् ॥ १८१ ॥
 ज्ञात्वा रामः समायातं सानुगं रावणानुजम् ।
 विचिन्त्य निश्चलः क्षिप्रं प्रोवाच कपिकुञ्जरान् ॥ १८२ ॥
 यूयं प्रमाणं कार्येऽस्मिन्धीधना भुजशालिनः ।
 विभीषणस्यागमने यदुक्तं तद्विचिन्त्यताम् ॥ १८३ ॥
 इत्युक्ता रघुनाथेन केचिदूचुः प्लवंगमाः ।
 पापः शत्रुप्रयुक्तोऽयं सर्वथा वधमर्हति ॥ १८४ ॥
 उवाच त्यक्त्वायं कश्चिद्यदि आतरमागतः ।
 तत्परेषां कथं नाम क्रूरः स्निग्धो भविष्यति ॥ १८५ ॥
 जात्यैव स्वजने प्रीतिर्जन्तोरव्यभिचारिणी ।
 न जातु जम्बुकीपुत्रः स्तनं पिबति गोः क्वचित् ॥ १८६ ॥
 ततो जगाद हनुमान् रामं विरचिताञ्जलिः ।
 मर्मवेदी परस्यायं न तु त्याज्यो विभीषणः ॥ १८७ ॥
 विरक्तस्य कुवृत्तस्य रावणस्य प्रमादिनः ।
 कोशं दुर्गं बलं राष्ट्रं वक्ष्यत्येव न संशयः ॥ १८८ ॥
 दुर्वृत्तं स्वजनं त्यक्त्वा यदि साधूनयं श्रितः ।
 तदस्य गुणलुब्धस्य न ह्यविश्वासकारणम् ॥ १८९ ॥
 स्वभावानुगुणा प्रीतिर्दूरस्थेऽप्यंशुमालिनि ।
 समीपस्थेऽपि सलिले न संश्लेषोऽम्बुजन्मनाम् ॥ १९० ॥
 इति वायुसुतेनोक्ते निशम्योवाच राघवः ।
 सदोषः सगुणो वास्तु न मे त्याज्यो विभीषणः ॥ १९१ ॥
 अनुरक्तो विरक्तो वा मामुद्दिश्यायमागतः ।
 बन्धुं मनोरथं तस्य न कर्तुमहमुत्सहे ॥ १९२ ॥

परित्यजति निर्लज्जः प्राप्तं यः शरणार्थिनम् ।
 मानं धर्मं श्रियं कीर्तिं सर्वत्र स परित्यजेत् ॥ १९३ ॥
 श्रूयते हि कपोतेन लुब्धकः शरणागतः ।
 भार्यानिषूदकोऽभ्येत्य स्वमासेन निमन्त्रितः ॥ १९४ ॥
 भीरुः प्राणान्परित्यज्य रक्षणीयो ह्यरक्षितः ।
 हृत्वास्य सुकृतं याति कण्डुरित्यभ्यधान्मुनिः ॥ १९५ ॥
 मयास्य दत्तमभयं तूर्णमायातु राक्षसः ।
 कृताञ्जलिषु भीतेषु पेशला रघवो वयम् ॥ १९६ ॥
 इति रामस्य वचसा सुग्रीवः सानुगो नभः ।
 समुत्पत्यानिनायाशु परिष्वज्य विभीषणम् ॥ १९७ ॥
 ततः स रामपादाब्जश्छिष्टमौलिमणिर्बभौ ।
 कण्ठे स्वच्छनखच्छायाच्छलेनालिङ्गितः श्रिया ॥ १९८ ॥
 त्वामहं शरणं यातः पौलस्त्येनावमानितः ।
 इति ब्रुवाणं तं रामः प्रोवाच प्रणयोचितम् ॥ १९९ ॥
 विभीषण सुहृन्मे त्वं प्रेमविस्त्रम्भभाजनम् ।
 मनो मे दर्शनादेव त्वयि सत्यं प्रसीदति ॥ २०० ॥
 लङ्का त्वया परित्यक्ता समिन्धनवान्धवा ।
 मदर्थे तत्प्रियांशस्य फलं मे गृह्यतां सखे ॥ २०१ ॥
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणानीतैः तूर्णं रत्नाकराम्बुभिः ।
 सोऽभिषिच्यैव विदधे लङ्काधीशं विभीषणम् ॥ २०२ ॥
 तेन रामप्रसादेन गुरुणा नतकन्धरः ।
 सोऽचिन्तयच्चिरं धीमान्बहुशस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ २०३ ॥
 भ्रातृशत्रुं स सुग्रीवं दृष्ट्वा सप्रतिभोऽभवत् ।
 तत्तु लज्जानतः क्षिप्रं लक्ष्मणं भ्रातृवत्सलम् ॥ २०४ ॥
 इति विभीषणपरिग्रहः ॥ ३ ॥
 तमुवाचाथ हनुमानस्य तावन्महोदधेः ।
 उपायं ब्रूहि स्रग्णे सत्यं धुर्योऽसि धीमताम् ॥ २०५ ॥

सोऽब्रवीद्वानरं रामः शरणं यातु सागरम् ।
 पितामहेन रामस्य सगरेणैष निर्मितः ॥ २०६ ॥
 उक्ते विभीषणेनेति वीरौ सुग्रीवलक्ष्मणौ ।
 उपपन्नतरं वाक्यं तत्तस्य प्रशशंसतुः ॥ २०७ ॥
 ततस्तीरे निराहारः कुशानास्तीर्य राघवः ।
 तपस्तिष्ठः क्षपाश्चक्रे दर्शनाय महोदधेः ॥ २०८ ॥
 त्रिरात्रोपोषिते रामे निर्विकारे च सागरे ।
 बभूव चिन्ताकुलिता निःस्पन्दा हरिबाहिनी ॥ २०९ ॥
 ततो निःश्वस्य संतप्तः कोपसंरक्तलोचनः ।
 उवाच रामः सौमित्रि नेत्रे विक्षिप्य पत्रिषु ॥ २१० ॥
 पश्य लक्ष्मण दृप्तस्य जलराशेरसाधुताम् ।
 न नयेन न च प्रीत्या यो नीच इव तुष्यति ॥ २११ ॥
 प्रणयेनोग्रतामेति काठिन्यं याति सेवया ।
 न स कश्चिदुपायोऽस्ति गृह्यते येन दुर्जनः ॥ २१२ ॥
 प्रयुक्ता नूनमास्थाने प्रणयप्रशमक्षमाः ।
 प्रयान्त्यगुणतामेव मानम्लानिकराः परम् ॥ २१३ ॥
 आत्मप्रशंसामुखरनिकृतं क्रूरकर्मणम्(?) ।
 भयाङ्कुशविधेयोऽयं जनः सत्कुरुते जनम् ॥ २१४ ॥
 विजयः कीर्तिरैश्वर्यं सत्यं साम्ना न लभ्यते ।
 तीक्ष्णानुवर्ती लोकोऽयं पौरुषेणैव भुज्यते ॥ २१५ ॥
 क प्रीतिर्गुणसंसक्तसाधुसारङ्गवागुरा ।
 क्रूरता क्व च दुर्वृत्तदुष्टाश्चोग्रकशाहतिः ॥ २१६ ॥
 पारुष्यवश्यः प्रणयश्चेह सर्वात्मना जनः ।
 नयं भयं न जानीते क्षमामक्षमतामपि ॥ २१७ ॥
 शरासनं महाघोरं चापमानय लक्ष्मण ।
 करोम्येनं विपर्यस्तमर्यादं यादसां निधिम् ॥ २१८ ॥

मद्भाणवहिसंतापक्राथ्यमानोऽद्य सागरः ।
 वडवाग्निशिखाकारं शरणं यातु शीतलम् ॥ २१९ ॥
 शरैर्निकृत्तनिःशेषसत्त्वरक्ताकुलोऽम्बुधिः ।
 धत्तां नदीवधूमध्ये जुगुप्सायतनं वपुः ॥ २२० ॥
 इत्युक्त्वा धनुरादाय विशिखं च शिखिप्रभम् ।
 गम्भीरक्षोभसंरम्भभ्रान्तं स विदधेऽम्बुधिम् ॥ २२१ ॥
 बभुः ससर्पमकरैर्व्याप्तः शिखरिसंनिभैः ।
 शरोद्धूतैर्विवलिताः कल्लोलैरखिला दिशः ॥ २२२ ॥
 परिवृत्तेऽम्बुधौ लोलजलाश्चपुरुषद्विपे ।
 शरत्रस्ताः समुत्तस्थुर्देव्याः पातालवासिनः ॥ २२३ ॥
 शङ्करश्मिनखैर्दासै रत्नताम्रतलैर्मुहुः ।
 कल्लोलाञ्जलिभिश्चक्रे रामयाच्यामिवोदधिः ॥ २२४ ॥
 शरनिर्घोषसावेगसलिलावर्तशूक्तैः ।
 मन्युदुःखाकुलः क्षिप्रं निःश्वासैरेव वारिधिः ॥ २२५ ॥
 जलस्फारस्वनैरुद्यद्बीचिबाहुर्महोदधिः ।
 देव संहर कोपाग्निमित्युवाचेव राघवम् ॥ २२६ ॥
 दिक्षु ध्वान्तनिरुद्धासु संरुद्धे भुवनत्रये ।
 सूर्यचन्द्रप्रधानानि तिर्यग्ज्योतींषि खे ययुः ॥ २२७ ॥
 इति समुद्रक्षोभणम् ॥ ४ ॥
 ततो विधूय सहसा वीचिचक्रं महोदधिः ।
 कृताञ्जलिः समुत्तस्थौ स्रग्वी रुचिरकुण्डलः ॥ २२८ ॥
 रत्नैर्विभूषितश्चन्द्रलक्ष्मीकौस्तुभसोदरैः ।
 वस्त्रैश्च पारिजातस्य पाटलैरिव पल्लवैः ॥ २२९ ॥
 मन्दाकिनीपुरोगाभिर्नदीभिश्चामरानिलैः ।
 सोत्कण्ठं च सलज्जं च नर्तितोष्णीषपल्लवः ॥ २३० ॥

देहकान्तिवितानेन वैदूर्यविमलत्विषा ।
 विदधान इवासक्तं सर्वं जलमयं जगत् ॥ २३१ ॥
 चन्द्रकान्तशलाकेन मुक्ताप्रारम्भशोभिना ।
 फेनौघेनोद्गतेनेव स्वच्छश्छत्रेण सच्छविः ॥ २३२ ॥
 सप्तास्यैर्दीप्तरत्नैर्द्वैर्व्यक्तस्वस्तिकलाञ्छनैः ।
 सेवितस्तु महाभागैर्भोगिभिर्बद्धमण्डलैः ॥ २३३ ॥
 स्फुरत्पीयूषकलोलमालाधवलवर्चसा ।
 श्रीविहारेण हारेण सादृहास इवोरसि ॥ २३४ ॥
 सोऽब्रवीत्सितदन्तांशुपुष्पिताधरपल्लवः ।
 समस्तमौक्तिकच्छायामन्तस्थां दर्शयन्निव ॥ २३५ ॥
 भोः काकुत्स्थ न मिथ्यैव विक्रियां गेन्तुमर्हसि ।
 महाभूतैः सह वयं न मर्यादातिवर्तिनः ॥ २३६ ॥
 न कामान्न च संरम्भान्न भयान्न च गौरवात् ।
 मर्यादामुत्सहे त्यक्तुं शाश्वते वर्त्मनि स्थितः ॥ २३७ ॥
 त्वत्तस्तेजस्विनोऽप्यन्ये जलस्थलपथार्थिनः ।
 कथमेवंविधैः क्षोभैर्न मे कुर्याः पराभवम् ॥ २३८ ॥
 अभीष्टं ते करोम्येष सगरान्वयमानभृत् ।
 अचिन्त्यमद्भुतं लोके सागरे स्थलदर्शनम् ॥ २३९ ॥
 बद्धं सेतुं द्रुमैः शैलैः स्तम्भिते सलिले मया ।
 तरन्तु वानराः क्षिप्रं नास्त्येषां मत्कृतं भयम् ॥ २४० ॥
 उत्तरे कृमिकूलाख्यो देशः पुण्यतरो मम ।
 आभीरैर्दस्युभिर्घोरैरावृतः पापकर्मभिः ॥ २४१ ॥
 मदर्थमुद्यतो बाणस्तेषु प्रक्षिप्यतामयम् ।
 इत्यम्बुधिगिरा रामश्चिक्षेप ज्वलितं शरम् ॥ २४२ ॥
 स देशस्तेन निर्दग्धो मरुकान्तारतां ययौ ।
 निर्व्यालो राघववरात्क्षीरौषधिफलाकुलः ॥ २४३ ॥

ततो जलनिधिः प्रीत्या काकुत्स्थमवदत्पुनः ।
 राजा दशरथो नाम ममाभूद्वयितः सुहृत् ॥ २४४ ॥
 पुरा देवासुरे युद्धे स चाहं च समागतौ ।
 एकीभावमिवापन्नौ सुरसाहाय्यकर्मणि ॥ २४५ ॥
 स निर्जितामररिपुर्वरं लेभे सुरेश्वरात् ।
 कुलचूडामणेर्यस्य त्वज्जन्म प्रथमं फलम् ॥ २४६ ॥
 अयोध्यायां गृहे तस्य मासमध्युषितः सुखम् ।
 सौहार्दप्रीतिसर्वस्वरूपचारैरकृत्रिमैः ॥ २४७ ॥
 सोऽहं तव पितुर्मित्रं तत्स्नेहे निष्प्रतिक्रियः ।
 मन्ये कृतघ्नमात्मानं स्पृष्टं पापशतैरपि ॥ २४८ ॥
 अद्याहमनृणो भूत्वा तत्पुत्रोपकृतौ स्थितः ।
 भजे प्रीतिसुखोच्छ्वासावेश्रान्तिं चिरसंचिताम् ॥ २४९ ॥
 एष वानरवीरोऽत्र विश्वकर्मसुतो नलः ।
 सेतुं बध्नातु गम्भीरे स्तम्भितेऽम्भसि संभृतम् ॥ २५० ॥
 इत्युक्तो वारिनिधिना नलः काकुत्स्थशासनात् ।
 सह प्लवंगमगणैरुद्ययौ सेतुकर्मणि ॥ २५१ ॥
 इति समुद्रदर्शनम् ॥ ५ ॥

ततः प्रहृष्टाः कपयः सालतालकुलाचलात् ।
 उन्मूल्योन्मूल्य जलधौ चिक्षेप क्षुभितेऽम्भसि ॥ २५२ ॥
 सलिले पात्यमानानां गिरीणां वानरर्षभैः ।
 उदभूत्प्रलयावर्तसूचकः क्षोभविभ्रमः ॥ २५३ ॥
 मज्जतां भूभृतां सत्त्वकलिले सलिले मुहुः ।
 असूच्यन्त गजाबन्धा भ्रान्तेरुपरि बुहुदैः ॥ २५४ ॥
 तस्मिन्नत्यद्भुते तत्र प्रारब्धे सेतुकर्मणि ।
 देवाः ससिद्धगन्धर्वा द्रष्टुं व्योम्ना समाययुः ॥ २५५ ॥

अहो वत प्रभावोऽयं राघवस्यातिपौरुषः ।
 केन दृष्टं कदा नाम महाब्धौ सेतुबन्धनम् ॥ २५६ ॥
 अहो नु पौरुषेणायं रामेणाश्चर्यकारिणा ।
 सेतुः सेतुरिवावद्धो दैवाल्लङ्घनकर्मणि ॥ २५७ ॥
 अयं दिगन्तरव्यापी सेतुर्जलधिपारगः ।
 यशसा सह रामस्य कल्पस्थायी भविष्यति ॥ २५८ ॥
 अहो प्रतापनिधिना रामेणाश्चर्यकारिणा ।
 अलङ्घ्यशशासनेनायं नदीनाथः स्थिरीकृतः ॥ २५९ ॥
 एष मज्जत्ययं मग्नः स्थितोऽयं न विकम्पते ।
 सेतुबन्धे बभूवेति सुराणां व्योम्नि निःस्वनः ॥ २६० ॥
 चतुर्दशसु बद्धेषु योजनेषु प्लवंगमैः ।
 आश्चर्यदर्शनात्तृप्त इव सूर्योऽस्तमाययौ ॥ २६१ ॥
 सा कदा दृश्यते लङ्का सेतुः संपूर्यते कदा ।
 कपीनामिति कृच्छ्रेण सोत्कण्ठानां ययौ निशा ॥ २६२ ॥
 क्रमेणैवं दिनैः षड्भिर्भूधरैर्वानराहृतैः ।
 बन्धनं निश्चलं सेतुं विश्वकर्मसुतो नलः ॥ २६३ ॥
 मलयाग्रात्प्रवृत्तं तं लङ्कामूलमुपागतम् ।
 दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ २६४ ॥
 सेतुं निबद्धमालोक्य सुग्रीवो हर्षनिर्भरः ।
 सज्जीकृतबलाम्भोधिः काकुत्स्थाय न्यवेदयत् ॥ २६५ ॥
 अथ सुग्रीवसहितः सलक्ष्मणविभीषणः ।
 अग्रे प्लवगसैन्यानां धन्वी रामः स्वयं ययौ ॥ २६६ ॥
 ततः कोटिसहस्राणां वानराणां तरस्विनाम् ।
 प्रययुः सेतुना तेन शङ्कुपद्मयुतानि च ॥ २६७ ॥
 असूचीविवरे तस्मिन्त्रजति प्लवगार्णवे ।
 अलब्धमार्गाः पयसा नैभसापि च ते ययुः ॥ २६८ ॥

१. 'मानुषः' शा०. २. 'स्थलीकृतः' शा०. ३. 'नभसा च परे' शा०.

संघैरविवरं तेषां तीर्णानां तरतामपि ।

अवसानपरिच्छेदैर्नालक्ष्यत परिक्षयः ॥ २६९ ॥

इति सेतुबन्धः ॥ ६ ॥

परं पारं समुद्रस्य संप्राप्ते रघुनन्दने ।

आरुरोह परां कोटिं प्रमोदस्त्रिदिवौकसाम् ॥ २७० ॥

ततः स्वयं समभ्येत्य प्रहृष्टः सरितां पतिः ।

उवाच राघवं प्रीत्या सुधां वर्षन्निवांशुभिः ॥ २७१ ॥

न राम मुनिवेशोऽयं जयारम्भे तवोचितः ।

युद्धमर्हन्ति राजाहर्षभूषणैर्भूषिता नृपाः ॥ २७२ ॥

अपास्यैव जटाबन्धं परित्यज्य च वल्कलम् ।

गृहाण हेमकवचं दिव्यान्याभरणानि च ॥ २७३ ॥

इत्युक्त्वा सागरस्तस्य दिव्यं भूपतिभूषणम् ।

बन्ध रघुनाथस्य भास्वरं लक्ष्मणस्य च ॥ २७४ ॥

आमुक्तकवचः श्रीमान्सदीप्ताङ्गदकुण्डलः ।

केयूररुचिरो नूनं रत्नशैल इवावभौ ॥ २७५ ॥

सरत्नकवचो विश्वं बिभ्राणः प्रतिबिम्बितम् ।

विष्णोर्जगन्निवासस्य तुल्यरूप इवाभवत् ॥ २७६ ॥

ततः समुद्रवचसा स प्रविश्य जलान्तरम् ।

प्रणम्य वरुणं देवं तेनाशीर्भिविबर्धितः ॥ २७७ ॥

तमामत्रय मुहूर्तेन पुनरभ्येत्य राघवः ।

सागरे स्वपदं याते बभूव समरोत्सुकः ॥ २७८ ॥

क्षणान्त्रिकूटकटकदिक्तेषु च वानरैः ।

मीलितेषु दृशं रामः पौलस्त्यनगरे ददौ ॥ २७९ ॥

इति भूषणप्रदानम् ॥ ७ ॥

लङ्काशैलनिविष्टेषु परेषु पृथुपौरुषाः ।

उदतस्थुर्महामात्या दशग्रीवं सभास्थितम् ॥ २८० ॥

तानब्रवीत्स विज्ञाय बद्धं सेतुं महार्णवे ।
 आश्चर्यामर्षसंरम्भलज्जासंजातविक्रियः ॥ २८१ ॥
 अहो न सुखसंसक्तैरवलिप्तैः प्रमादिभिः ।
 भवद्विर्भ्रमिभिः शत्रुर्वर्धमानोऽप्युपेक्षितः ॥ २८२ ॥
 बद्धः सेतुर्महाम्भोधौ पारं प्राप्ताश्च शत्रवः ।
 अनुसचारैर्युष्माभिर्दोषोऽयं न विचिन्तितः ॥ २८३ ॥
 अप्रवृद्धेषु दोषेषु चिकित्सा पूर्वमेव यत् ।
 राज्याब्धिकर्णधाराणां मन्त्रिणां मन्त्रितैव सा ॥ २८४ ॥
 व्यसनोपहता यूयं यदि कार्यपराब्जुखाः ।
 मन्त्रविक्रमयोरेकस्तदहं स्वयमास्थितः ॥ २८५ ॥
 इत्युक्ते राक्षसेन्द्रेण लज्जिते मन्त्रिमण्डले ।
 उवाच शृणुतामीषामिन्द्रजिद्विजयोजितः ॥ २८६ ॥
 तात संभावना केयं मिथ्यैवानुचिते जने ।
 भवद्भुजानां को नाम विभर्ति प्रतिमल्लताम् ॥ २८७ ॥
 विवासितसुरेन्द्रस्य का चिन्ता मानुषे तव ।
 भीरवो भयदाः कस्य वानरा वनचारिणः ॥ २८८ ॥
 इत्युक्ते मेघनादेन प्रहस्तप्रमुखास्ततः ।
 आविद्धायुधसंभारास्तदेवोचुः पुनः पुनः ॥ २८९ ॥
 अथातिकायो मेघावी पुनः प्रोवाच रावणम् ।
 राजत्राज्ञां स्वधर्मेण वर्तनं व्यसनौषधम् ॥ २९० ॥
 प्रजानां यत्परित्राण दस्यूनां यत्प्रमार्जनम् ।
 स राज्ञां परमो मन्त्रः शेषः स्वैरकथारसः ॥ २९१ ॥
 परार्थे परदारेषु न येषां धीः प्रवर्तते ।
 तेषां पवित्रयशसां कलत्रं सर्वसंपदः ॥ २९२ ॥
 जात्या रामो न नः शत्रुर्न चासौ भूम्यनन्तरः ।
 सीतापहारकोपोऽस्य तत्प्रदानेन शाम्यति ॥ २९३ ॥

१. 'नुधिरज्यते' क०. २. 'संवाधा' शा०. ३. 'शत्रु' शा०.

त्रैलोक्यरक्षाभूतानां कुलश्लाघाभिमानिनाम् ।
 परदारापहरणं कथं युक्तं भवादृशाम् ॥ २९४ ॥
 रामाय त्यज्यतां सीता म्लानमुत्सृज्यतां यशः ।
 वञ्चना क्रियतां तूर्णं कालस्याकालपातिनः ॥ २९५ ॥
 इत्युक्तमतिक्रायेन हितं श्रुत्वा दशाननः ।
 तभनादृत्य दर्पान्धः प्रोवाच शुकसारणौ ॥ २९६ ॥
 प्रच्छन्नाभ्यामितो गत्वा भवञ्च्यां हरिवाहिनी ।
 दृश्यतां युवयोरेव तत्संख्याने प्रगल्भता ॥ २९७ ॥
 इति भर्त्रा समादिष्टौ तौ कृत्वा वानराकृतिम् ।
 जग्मतुर्लघुसंचारौ यत्रास्ते रघुनन्दनः ॥ २९८ ॥
 अपारे वानराम्भोधौ तौ चिरं गूढचारिणौ ।
 नाग्रं न मध्यमन्तं वा प्रापतुर्यत्रमास्थितौ ॥ २९९ ॥
 जगत्कपिमयं सर्वमेकीभूतमिवानिशम् ।
 दृष्ट्वा शिखरिशृङ्गस्थौ तौ निःस्यन्दौ बभूवतुः ॥ ३०० ॥
 ततो विभीषणश्छन्नं चरन्तौ शुकसारणौ ।
 परिज्ञाय महामायौ राघवाय न्यवेदयत् ॥ ३०१ ॥
 विभीषणगिरा तूर्णं गृहीतौ तौ प्लवंगमैः ।
 न्यस्तौ रामस्य पुरतः क्षणं नो किञ्चिदूचतुः ॥ ३०२ ॥
 तौ निर्वर्ण्य चिरं रामः स्मितधौताधरद्युतिः ।
 उवाच दृश्यतां सेना विलम्बं त्यज्यतां भयम् ॥ ३०३ ॥
 अयमस्म्येष सौमित्रिः श्रीमानेष विभीषणः ।
 सुग्रीवाधिष्ठितं चैतद्वातराणां महद्बलम् ॥ ३०४ ॥
 अपर्याप्ता हरिचमूः पौलस्त्याय निवेद्यताम् ।
 क्षयाय रक्षसां सेयमक्षया निपतिष्यति ॥ ३०५ ॥
 इति दत्ताभयौ तेन प्रगल्भौ क्षणदाचरौ ।
 कृताञ्जलिपुटौ राममूचतुः सस्मिताननौ ॥ ३०६ ॥

दृष्टाः सुवहवोऽस्माभिर्देवासुरबलार्णवाः ।
 एताः प्लवगवाहिन्यः कौतुकाय न नः परम् ॥ ३०७ ॥
 प्रभविष्णुः प्रभावोऽयं किंत्वद्भुततरस्तव ।
 स्थलीकृतं जलं येन भ्रूक्षेपेण महोदधेः ॥ ३०८ ॥
 पवनः प्लवणो यस्यां सेयं पौलस्त्यपालिता ।
 मही कपिभिराक्रान्ता किमतः परमद्भुतम् ॥ ३०९ ॥
 विधेरेवाद्भुतनिधेस्त्रैलोक्याश्चर्यकारिणी ।
 अचिन्त्यविभवा शक्तिर्दृष्टा तव किमुच्यते ॥ ३१० ॥
 इत्युक्त्वा तौ प्रययतुर्विमुक्तौ भयसंकटात् ।
 विसृष्टौ सत्त्वशीलेन रामेण क्षणदाचरौ ॥ ३११ ॥
 तौ समेत्य दशग्रीवं प्रणिपत्य हितैषिणौ ।
 यथादिष्टं निवेद्यासौ न विश्रान्तिमवापतुः ॥ ३१२ ॥
 अपारस्य बलाम्भोधेरप्रवेशस्य दर्शनम् ।
 विभीषणेन ग्रहणं मोक्षणं राघवेण च ॥ ३१३ ॥
 सुग्रीवस्य प्रभावं च गाम्भीर्यं लक्ष्मणस्य च ।
 विक्रमं वानराणां च सोच्छ्वासं तावभाषताम् ॥ ३१४ ॥
 ततः सूर्यपथोत्सेधसौधारूढं दशाननम् ।
 द्रष्टुं समुद्यतं सेनामूचतुः शुकसारणौ ॥ ३१५ ॥
 एष वानरवीर्याणां श्रीमानग्रे स्थितो नलः ।
 विश्वकर्मसुतो यस्य नादेनाकम्पते जगत् ॥ ३१६ ॥
 पद्माकिजल्मगौरोऽयं वीरो मेरुरिवापरः ।
 वृतः पद्मसहस्रेण शूरः शङ्कुशतेन च ॥ ३१७ ॥
 जृम्भायुतमुखो लङ्कां पिबन्निव निरीक्षते ।
 दीप्ताङ्गदो गदास्फारकेसरो वालिनन्दनः ॥ ३१८ ॥
 एष प्रजापतेः सूनुर्जाम्बवान्पृथुविक्रमः ।
 गुरुभार्गवयोर्बुद्धौ सहते तुल्यतां न यः ॥ ३१९ ॥

१. 'पवनाः पल्लवो' ख. २. 'सूर्योत्पथो' शा०. ३. 'सेनानां' शा०. ४. 'बुद्ध्या' शा०.

वरुणस्यैष पुत्रश्च हेमकूटो मदोत्कटः ।
 पयसामिव सैन्यानां संख्या यस्य न विद्यते ॥ ३२० ॥
 एष धर्मसुतो वीरः सुषेणः कपियूथपः ।
 सोमपुत्रो दधिमुखो नीलश्च दहनात्मजः ॥ ३२१ ॥
 यमस्य पुत्राः पञ्चैते पितुस्तुल्यपराक्रमाः ।
 गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ॥ ३२२ ॥
 एष स्फटिकशैलाभः कुमुदो नाम यूथपः ।
 वेगवान्विनतो रम्भः क्रथनः पनसो हरः ॥ ३२३ ॥
 एष सूर्यसुतः श्रीमान्सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
 यस्येयं महती सेना दृष्टिदोलाविलासिनी ॥ ३२४ ॥
 एषोऽक्षहन्ता हनुमानुमापतिवरोजितम् ।
 भवन्तमपि यश्चक्रे प्रौढलङ्काम्बितापितम् ॥ ३२५ ॥
 एतौ च मैन्दद्विविदौ कुमारावश्विनीसुतौ ।
 याभ्यां ब्रह्मवरात्पीतमाकण्ठममृतं दिवि ॥ ३२६ ॥
 एष सत्त्वोदधिः श्रीमान्दैवधुर्यो धनुष्मताम् ।
 लङ्कामालोकयन्नास्ते रामः कमललोचनः ॥ ३२७ ॥
 अस्य पार्श्वे स्थितः शौर्यगाम्भीर्योदार्यलक्षणः ।
 लक्ष्मणः कार्मुकासज्जग्यामार्जनकृतक्षणः ॥ ३२८ ॥
 एष त्वदनुजो रामप्रणामानतशेखरः ।
 प्रासादालोकेनास्य बहुमानोन्नताशयः ॥ ३२९ ॥
 कोटीशतसहस्राणां सहस्रं शङ्ख उच्यते ।
 शतं शङ्खसहस्राणां वृन्दं संख्याविदो जगुः ॥ ३३० ॥
 तेषां शतसहस्रं तु पद्ममित्यभिधीयते ।
 तेषां शतसहस्रं तु महापद्मं विदुर्बुधाः ॥ ३३१ ॥
 कपिसैन्ये महापद्मसंख्या नैवान्न विद्यते ।
 चुलुकैः परिसंख्यातुं शक्यं जलनिधेर्जलम् ॥ ३३२ ॥

दशा सूर्यस्य वा तेजो न त्वेतद्विपुलं बलम् ।
 प्रभो प्रसीद प्रणयाद्भृत्यानां भृत्यवत्सल ।
 संधिस्तवास्तु रामेण दीयतामस्य मैथिली ॥ ३३३ ॥
 इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
 तौ निर्भर्त्स्य बलज्ञाने चारानन्यानवासृजत् ॥ ३३४ ॥
 विभीषणपरिज्ञाते रामेण परिरक्षिते ।
 चारचक्रे पुरः प्राप्ते त्रस्ते वन्ध्यपरिश्रमे ॥ ३३५ ॥
 निविष्टे सानुजे रामे सुवेलस्य गिरेस्तटे ।
 लङ्काद्वारेषु रुद्धेषु वानरानीकनायकैः ॥ ३३६ ॥
 विद्युज्जिह्वं समानाय्य सचिवं राक्षसेश्वरः ।
 संमथ्य सुचिरं तेन तूर्णं सीतान्तिकं ययौ ॥ ३३७ ॥
 इति चारप्रवेशः ॥ ८ ॥
 सतीमधोमुखीं प्राप्य वेपमानां भयाकुलाम् ।
 बालां मृगीमिव व्याघ्रः प्रोवाच चकितेक्षणाम् ॥ ३३८ ॥
 सीते यस्योपरि कृतस्त्वया साधुपरिश्रमः ।
 स स्वयं पतितः पङ्क्तुः प्लवशील इवावटे ॥ ३३९ ॥
 छिन्नग्रीवः स सुग्रीवः सोऽङ्गदशूर्णिताङ्गदः ।
 हतश्च स विनिष्पिष्टहनुश्च हनुमान्मुवि ॥ ३४० ॥
 त्यजे रामगतां प्रीतिं विच्छिन्नालम्बनां स्वयम् ।
 भजस्व भोगविभवं रम्भोरु भवने मम ॥ ३४१ ॥
 इत्युक्त्वा तां दशग्रीवः संकेताद्बहिरास्थिताम् ।
 आनिनाय महाकायं विद्युज्जिह्वं सुसंज्ञया ॥ ३४२ ॥
 स प्रविश्याज्ञया भर्तुः प्रणतः सशरासनम् ।
 मायारामशिरस्तुल्यं चिक्षेप रुचिरं पुरः ॥ ३४३ ॥
 तदृष्ट्वा जानकी घोरं वैरस्यं जीवितासहम् ।
 तस्यौ कृतोपकारेव क्षणं मोहेन निश्चला ॥ ३४४ ॥

अत्रान्तरे समुद्रान्तः प्रविश्याकुललोचनः ।
 बलाध्यक्षोऽथ स द्वास्थः संज्ञयाभै न्यवेदयत् ॥ ३४५ ॥
 इति मायाशिरोदर्शनम् ॥ ९ ॥

ततः प्रयाते पौलस्त्ये संज्ञामासाद्य जानकी ।
 शुशोच साश्रुनयना प्राणत्यागकृतक्षणा ॥ ३४६ ॥
 आर्यपुत्र कथं राम संकल्पानल्पपल्लवा ।
 आशालतेयं निर्लूना फलकाले मम त्वया ॥ ३४७ ॥
 गन्तुमभ्यर्थितस्याद्य जीवितस्यायमञ्जलिः ।
 येन व्यवहितं पत्युर्न पश्यामि मुखाम्बुजम् ॥ ३४८ ॥
 उत्तीर्णाब्धि समासाद्य लङ्कां राक्षससंकुलाम् ।
 ईप्सितं न त्वया प्राप्तं मम भाग्यविपर्ययात् ॥ ३४९ ॥
 आरुह्य मेरुशिखरं पतिताहमधोमुखी ।
 प्राप्तोऽपि निकटं यस्याः प्रयातस्तव दर्शनम् ॥ ३५० ॥
 इयतीं भूमिमभ्येत्य कृत्वा कर्म दुदुष्करम् ।
 असंदर्श्य मुखाम्बोजं कथं नाथ गतोऽसि मे ॥ ३५१ ॥
 प्रिय क्षणं प्रतीक्षस्व प्रियां भार्यामनागसम् ।
 परित्यज्य न गच्छन्ति सत्यशीला भवद्विधाः ॥ ३५२ ॥
 इति प्रलापिनीं बालां निमग्नां शोकसागरे ।
 निराशां दर्शने पत्युर्बद्धाशां जीवितक्षये ॥ ३५३ ॥
 उवाच सरमा नाम राक्षसी प्रीतिवत्सला ।
 तद्दुःखानलसंप्राप्ततीव्रसंतापवेदना ॥ ३५४ ॥
 अयि मुग्धे न जानासि दशग्रीवस्य वक्रताम् ।
 मायाविलसितैस्तैस्तैर्दुःखं ते विदधाति यः ॥ ३५५ ॥
 अपि भर्तुः प्रभावज्ञा कथं मिथ्या विमूर्छसि ।
 स्वभावसुलभा सत्यं स्त्रीणामत्यन्तभीरुता ॥ ३५६ ॥

को नाम राघवं हन्तुमात्तचापं प्रगल्भते ।
 प्रभावं यस्य वंक्तीव सेतुसीमन्तितोऽम्बुधिः ॥ ३५७ ॥
 समाश्वसिहि नास्त्येव रामस्य परतो भयम् ।
 मायाशिरस्तु पापेन विद्युज्जिह्वेन निर्मितम् ॥ ३५८ ॥
 एष रामबलाम्भोधिनिर्घोषः श्रूयते महान् ।
 पिनष्टि भुवनव्यापी धृतिं यः सर्वरक्षसाम् ॥ ३५९ ॥
 स्वजनप्रार्थितोऽप्येष जनन्या च दशाननः ।
 नायाति स्पष्टतां वक्रः प्रत्यासन्नपरिक्षयः ॥ ३६० ॥
 कुरङ्गशृङ्गकुटिला सहसैव दुरात्मनाम् ।
 दैवस्येव गतिः केन सरलीक्रियते मतिः ॥ ३६१ ॥
 कलुषस्यैव वृद्धैव नीचमार्गानुसारिणः ।
 वार्यते केन कौटिल्यं खलस्य सलिलस्य च ॥ ३६२ ॥
 दुर्जनस्य श्वपुच्छस्य व्यालस्योष्ट्रगलस्य च ।
 न मन्त्रैर्नौषधैर्वापि ऋजुता जातु जायते ॥ ३६३ ॥
 विनष्टः सर्वथा पापः पौलस्त्यो विश्वकण्टकः ।
 धर्मारामस्य रामस्य सत्यं हस्तगतो जयः ॥ ३६४ ॥
 इति श्रुत्वैव सहसा सिक्तेवामृतवृष्टिभिः ।
 भयं शोकं च तत्याज जानकी लब्धजीविता ॥ ३६५ ॥
 इति सरमावाक्यम् ॥ १० ॥
 ततः सज्जीकृतबलं सभासीनं दशाननम् ।
 वृद्धामात्यः समभ्येत्य मात्यवानभ्यभाषत ॥ ३६६ ॥
 विधेयः साधुवृत्तानां विदुषां हितवादिनाम् ।
 न याति विनयं अंशवाच्यतां वसुधाधिप ॥ ३६७ ॥
 देशकालोचितौ यस्य सततं संधिविग्रहौ ।
 अक्षेपमात्रानुगताः पार्श्वस्थास्तस्य संपदः ॥ ३६८ ॥

कुर्यान्न्यूनबलः संधिं ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ।
 तुल्यक्षयभयान्नित्यमुपेक्षितसमः समम् ॥ ३६९ ॥
 न मद्यं रोचते युद्धं रामेण बलशालिना ।
 सीताप्रदानमात्रेण तेन संधिस्तवोचितः ॥ ३७० ॥
 जयस्यायतनं धर्मः पापं वर्त्म क्षयस्य च ।
 धर्मपक्षे स्थिता देवा रामस्य विजयैषिणः ॥ ३७१ ॥
 अधर्मप्रभवाण्येव निमित्तानि गृहेषु नः ।
 सीताहेतोः प्रदृश्यन्ते येषामग्रफलं क्षयः ॥ ३७२ ॥
 कृष्णा स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैर्हसन्ती लोहितांशुका ।
 रथ्यासु संचरति यत्तत्क्षयस्यैव लक्षणम् ॥ ३७३ ॥
 यद्बालिं भुञ्जते प्रेता जायन्ते गोषु यत्स्वराः ।
 नकुलेष्वाखवो यस्य तद्विनाशस्य लक्षणम् ॥ ३७४ ॥
 दुर्जयो राघवः सत्यं पापपक्वाश्च राक्षसाः ।
 अवतारप्रकारोऽसौ विष्णोर्दैत्यकुलच्छिदः ॥ ३७५ ॥
 इति माल्यवतो वाक्यं श्रुत्वा क्रोधानलाकुलः ।
 उवाच मन्त्रिणां मध्ये ससंरम्भो दशाननः ॥ ३७६ ॥
 दृष्टापरविमर्दस्य स्वर्गविध्वंससाक्षिणः ।
 वज्रोल्लेखविलुप्तस्य कुतस्ते भयमागतम् ॥ ३७७ ॥
 अवश्यलुप्तसत्त्वानां वृद्धानां शिथिलात्मनाम् ।
 समर्पितस्तव मया सत्यं स्थविरगौरवात् ॥ ३७८ ॥
 हीनोऽपि नावमन्तव्यो बलिभिः शत्रुरित्यसौ ।
 चिन्तितस्तापसस्तस्माद्भयसंभावनैव का ॥ ३७९ ॥
 इति ब्रुवाणे साक्षेपं कुपिते राक्षसेश्वरे ।
 बभूव माल्यवान्मौनी निःशब्दे मन्त्रिमण्डले ॥ ३८० ॥
 इति माल्यवद्वाक्यम् ॥ ११ ॥
 लज्जिते स्वगृहं याते माल्यवत्यानतानने ।
 संमन्त्र्य रावणः क्षिप्रं दुर्गरक्षाविधिं व्यधात् ॥ ३८१ ॥

स ग्रहस्तं समादिश्य पूर्वद्वाराभिगुप्तये ।
 निधाय दक्षिणद्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥ ३८२ ॥
 स्वयमिन्द्रजितं वीरं पुत्रं विन्यस्य पश्चिमे ।
 आदिदेशोत्तरद्वारे सानुगौ शुक्रसारणौ ॥ ३८३ ॥
 विभीषणगिरा ज्ञात्वा लङ्कागुप्तिं परैः कृताम् ।
 रामोऽपि द्वारसंरोधविधानं विदधे स्वयम् ॥ ३८४ ॥
 पूर्वद्वारं तदादेशानीलो जग्राह यूथपः ।
 अङ्गदो दक्षिणं वीरः पश्चिमं पवनात्मजः ॥ ३८५ ॥
 स्वयं सलक्ष्मणो रामः परिपीड्य तथोत्तरम् ।
 दिदेश मध्यमानीके ससुग्रीवं विभीषणम् ॥ ३८६ ॥

इति सैन्यप्रविभागः ॥ १२ ॥

अथोदतिष्ठद्रुम्भीरः प्रलयाम्भोधरध्वनिः ।
 निर्घोषः कपिसैन्यानां रक्षसां क्षयलक्षणः ॥ ३८७ ॥
 तेन शब्देन संभ्रान्तभुवनक्षयकारिणः ।
 लङ्का चकम्पे साध्वीव विध्वंसातङ्कशङ्किता ॥ ३८८ ॥
 अथाह्वयाङ्गदं रामो विभीषणमते स्थितः ।
 उवाच गच्छ मद्राक्यादृतं ब्रूहि दशाननम् ॥ ३८९ ॥
 न धनेषु न भोगेषु न मित्रेषु न बन्धुषु ।
 न प्राणेषु तव प्रीतिः सर्वं यत्त्यक्तुमर्हसि ॥ ३९० ॥
 त्वया हेममृगव्याजाद्वञ्चिता यद्वने वयम् ।
 कौशलं तव तत्रैव न रणे बाहुतोरणे ॥ ३९१ ॥
 भिक्षुरूपस्य ते शून्या न तपोवनभूरियम् ।
 इमास्ताः कार्मुकक्रूरहुंकारमुखराजयः ॥ ३९२ ॥
 जीविताशां त्यज व्याजहतां वा जनकात्मजाम् ।
 वधो मोक्षश्च ते पाप भुजे वाक्ये च मे स्थितौ ॥ ३९३ ॥

एतत्कपिपतेः सैन्यमते वयमिदं यतः ।
 क्रियतामग्निपतनं यदि खिन्नोऽसि जीविते ॥ ३९४ ॥
 इति शासनमादाय रामस्य शिरसाङ्गदः ।
 उत्पत्य प्रययौ व्योम्ना पक्षवानिव पर्वतः ॥ ३९५ ॥
 अथासाद्य दशग्रीवं सचिवैः परिवारितम् ।
 रामसंदेशमावेद्य जगाद पुनरङ्गदः ॥ ३९६ ॥
 अनल्पमिदमैश्वर्यं कण्ठच्छेदपणार्जितम् ।
 उन्मत्त इव सर्वस्वं कथं त्यजसि राक्षस ॥ ३९७ ॥
 यदि त्वमेकः क्षीणायुस्तत्क्षिपात्मानमम्बुधौ ।
 किं कृतं पुत्रपौत्रैस्ते येषां निधनमिच्छसि ॥ ३९८ ॥
 खरास्ते मृत्युनखराः खरप्राणापहारिणः ।
 शराः शरासनोष्णांशुकरा राम करैर्धृताः ॥ ३९९ ॥
 इति श्रुत्वैव कोपाग्निज्वालाविभ्रमभङ्गुरैः ।
 भ्रूमङ्गैरभ्यधात्पिङ्गैर्वधं दशमुखः कपेः ॥ ४०० ॥
 ततो गृहीतः सहसा राक्षसैर्गिरिविग्रहैः ।
 जग्राह गगनं वेगादङ्गदः शत्रुभङ्गदः ॥ ४०१ ॥
 स तान्विधूयातिजवाद्भुजभग्नानतापयत् ।
 दूरप्रपातसंमोहनष्टसंज्ञामहीतले ॥ ४०२ ॥
 निपात्य चरणाग्रेण राजप्रासादमुन्नतम् ।
 प्रययौ वालितनयः काकुत्स्थो यस्य सानुगः ॥ ४०३ ॥
 इत्यङ्गदवाक्यम् ॥ १३ ॥
 अथ प्राकारमारुह्य दृष्ट्वा लङ्कां प्लवंगमैः ।
 निरुद्धां रावणो योद्धुमादिदेश निशाचरान् ॥ ४०४ ॥
 निर्गतेष्वथ रक्षःसु भीत्येवादर्शनं ययुः ।
 व्रजद्वजघटाघण्टाटङ्कारवधिरा दिशः ॥ ४०५ ॥

दशा सूर्यस्य वा तेजो न त्वेतद्विपुलं बलम् ।
 प्रभो प्रसीद प्रणयाद्भृत्यानां भृत्यवत्सल ।
 संधिस्तवास्तु रामेण दीयतामस्य मैथिली ॥ ३३३ ॥
 इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
 तौ निर्भर्त्स्य बलज्ञाने चारानन्यानवासृजत् ॥ ३३४ ॥
 विभीषणपरिज्ञाते रामेण परिरक्षिते ।
 चारचक्रे पुरः प्राप्ते त्रस्ते बन्ध्यपरिश्रमे ॥ ३३५ ॥
 निविष्टे सानुजे रामे सुबेलस्य गिरेस्तटे ।
 लङ्काद्वारेषु रुद्धेषु वानरानीकनायकैः ॥ ३३६ ॥
 विद्युज्जिह्वं समानाद्य सचिवं राक्षसेश्वरः ।
 संमथ्य सुचिरं तेन तूर्णं सीतान्तिकं ययौ ॥ ३३७ ॥
 इति चारप्रवेशः ॥ ८ ॥
 सतीमधोमुखीं प्राप्य वेपमानां भयाकुलाम् ।
 बालां मृगीमिव व्याघ्रः प्रोवाच चकितेक्षणाम् ॥ ३३८ ॥
 सीते यस्योपरि कृतस्त्वया साधुपरिश्रमः ।
 स स्वयं पतितः पङ्क्तुः प्लवशील इवावटे ॥ ३३९ ॥
 छिन्नग्रीवः स सुग्रीवः सोऽङ्गदश्रूणिताङ्गदः ।
 हतश्च स विनिष्पिष्टहनुश्च हनुमान्मुवि ॥ ३४० ॥
 त्यजे रामगतां प्रीतिं विच्छिन्नालम्बनां स्वयम् ।
 भजस्व भोगविभवं रम्भोरु भवने मम ॥ ३४१ ॥
 इत्युक्त्वा तां दशग्रीवः संकेताद्बहिरास्थिताम् ।
 आनिनाय महाकायं विद्युज्जिह्वं सुसंज्ञया ॥ ३४२ ॥
 स प्रविश्याज्ञया भर्तुः प्रणतः सशरासनम् ।
 मायारामशिरस्तुल्यं चिक्षेप रुचिरं पुरः ॥ ३४३ ॥
 तद्दृष्ट्वा जानकी घोरं वैरस्यं जीवितासहम् ।
 तस्यौ कृतोपकारेव क्षणं मोहेन निश्चला ॥ ३४४ ॥

अत्रान्तरे समुद्रान्तः प्रविश्याकुललोचनः ।

बलाध्यक्षोऽथ स द्वास्थः संज्ञयाम्भै न्यवेदयत् ॥ ३४५ ॥

इति मायाशिरोदर्शनम् ॥ ९ ॥

ततः प्रयाते पौलस्त्ये संज्ञामासाद्य जानकी ।

शुशोच साश्रुनयना प्राणत्यागकृतक्षणा ॥ ३४६ ॥

आर्यपुत्र कथं राम संकल्पानल्पपल्लवा ।

आशालतेयं निर्दूना फलकाले मम त्वया ॥ ३४७ ॥

गन्तुमभ्यर्थितस्याद्य जीवितस्यायमञ्जलिः ।

येन व्यवहितं पत्युर्न पश्यामि मुखाम्बुजम् ॥ ३४८ ॥

उत्तीर्णाब्धि समासाद्य लङ्कां राक्षससंकुलाम् ।

ईप्सितं न त्वया प्राप्तं मम भाग्यविपर्ययात् ॥ ३४९ ॥

आरुह्य मेरुशिखरं पतिताहमधोमुखी ।

प्राप्तोऽपि निकटं यस्याः प्रयातस्तव दर्शनम् ॥ ३५० ॥

इयतीं भूमिमभ्येत्य कृत्वा कर्म दुदुष्करम् ।

असंदर्श्य मुखाम्भोजं कथं नाथ गतोऽसि मे ॥ ३५१ ॥

प्रिय क्षणं प्रतीक्षस्व प्रियां भार्यामनागसम् ।

परित्यज्य न गच्छन्ति सत्यशीला भवद्विधाः ॥ ३५२ ॥

इति प्रलापिनीं बालां निमग्नां शोकसागरे ।

निराशां दर्शने पत्युर्वद्भाशां जीवितक्षये ॥ ३५३ ॥

उवाच सरमा नाम राक्षसी प्रीतिवत्सला ।

तद्दुःखानलसंप्राप्ततीव्रसंतापवेदना ॥ ३५४ ॥

अयि मुग्धे न जानासि दशग्रीवस्य वक्रताम् ।

मायाविलसितैस्तैर्दुःखं ते विदधाति यः ॥ ३५५ ॥

अपि भर्तुः प्रभावज्ञा कथं मिथ्या विमूर्छसि ।

स्वभावसुलभा सत्यं स्त्रीणामत्यन्तभीरुता ॥ ३५६ ॥

को नाम राघवं हन्तुमात्तचापं प्रगल्भते ।
 प्रभावं यस्य वक्तीव सेतुसीमन्तितोऽम्बुधिः ॥ ३५७ ॥
 समाश्वसिहि नास्त्येव रामस्य परतो भयम् ।
 मायाशिरस्तु पापेन विद्युज्जिह्वेन निर्मितम् ॥ ३५८ ॥
 एष रामबलाम्भोधिनिर्घोषः श्रूयते महान् ।
 पिनष्टि भुवनव्यापी धृतिं यः सर्वरक्षसाम् ॥ ३५९ ॥
 स्वजनप्रार्थितोऽप्येष जनन्या च दशाननः ।
 नायाति स्पष्टतां वक्रः प्रत्यासन्नपरिक्षयः ॥ ३६० ॥
 कुरङ्गशृङ्गकुटिला सहसैव दुरात्मनाम् ।
 दैवस्येव गतिः केन सरलीक्रियते मतिः ॥ ३६१ ॥
 कलुषस्यैव वृद्धैव नीचमार्गानुसारिणः ।
 वार्यते केन कौटिल्यं खलस्य सलिलस्य च ॥ ३६२ ॥
 दुर्जनस्य श्वपुच्छस्य व्यालस्योष्ट्रगलस्य च ।
 न मन्त्रैर्नौषधैर्वापि ऋजुता जातु जायते ॥ ३६३ ॥
 विनष्टः सर्वथा पापः पौलस्त्यो विश्वकण्टकः ।
 धर्मारामस्य रामस्य सत्यं हस्तगतो जयः ॥ ३६४ ॥
 इति श्रुत्वैव सहसा सिक्तेवामृतवृष्टिभिः ।
 भयं शोकं च तत्याज जानकी लब्धजीविता ॥ ३६५ ॥
 इति सरमावाक्यम् ॥ १० ॥

ततः सज्जीकृतबलं सभासीनं दशाननम् ।
 वृद्धामात्यः समभ्येत्य मात्यवानभ्यभाषत ॥ ३६६ ॥
 विधेयः साधुवृत्तानां विदुषां हितवादिनाम् ।
 न याति विनयं भ्रंशवाच्यतां वसुधाधिप ॥ ३६७ ॥
 देशकालोचितौ यस्य सततं संधिविग्रहौ ।
 भूक्षेपमात्रानुगताः पार्श्वस्थास्तस्य संपदः ॥ ३६८ ॥

कुर्यान्न्यूनबलः संधिं ज्यायान्कुर्वीत विग्रहम् ।
 तुल्यक्षयभयान्नित्यमुपेक्षितसमः समम् ॥ ३६९ ॥
 न मद्यं रोचते युद्धं रामेण बलशालिना ।
 सीताप्रदानमात्रेण तेन संधिस्तबोचितः ॥ ३७० ॥
 जयस्यायतनं धर्मः पापं वर्त्म क्षयस्य च ।
 धर्मपक्षे स्थिता देवा रामस्य विजयैषिणः ॥ ३७१ ॥
 अधर्मप्रभवाण्येव निमित्तानि गृहेषु नः ।
 सीताहेतोः प्रदृश्यन्ते येषामग्रफलं क्षयः ॥ ३७२ ॥
 कृष्णा स्त्री पाण्डुरैर्दन्तैर्हसन्ती लोहितांशुका ।
 रथ्यासु संचरति यत्तत्क्षयस्यैव लक्षणम् ॥ ३७३ ॥
 यद्बलिं भुञ्जते प्रेता जायन्ते गोषु यत्स्वराः ।
 नकुलेष्वाखवो यस्य तद्विनाशस्य लक्षणम् ॥ ३७४ ॥
 दुर्जयो राघवः सत्यं पापपक्वाश्च राक्षसाः ।
 अवतारप्रकारोऽसौ विष्णोर्दैत्यकुलच्छिदः ॥ ३७५ ॥
 इति माल्यवतो वाक्यं श्रुत्वा क्रोधानलाकुलः ।
 उवाच मन्त्रिणां मध्ये ससंरम्भो दशाननः ॥ ३७६ ॥
 दृष्टापरविमर्दस्य स्वर्गविध्वंससाक्षिणः ।
 बज्रोल्लेखविलुप्तस्य कुतस्ते भयमागतम् ॥ ३७७ ॥
 अवश्यलुप्तसत्त्वानां वृद्धानां शिथिलात्मनाम् ।
 समर्पितस्तव मया सत्यं स्थविरगौरवात् ॥ ३७८ ॥
 हीनोऽपि नावमन्तव्यो बलिभिः शत्रुरित्यसौ ।
 चिन्तितस्तापसस्तस्माद्भयसंभावनैव का ॥ ३७९ ॥
 इति ब्रुवाणे साक्षेपं कुपिते राक्षसेश्वरे ।
 बभूव माल्यवान्मौनी निःशब्दे मन्त्रिमण्डले ॥ ३८० ॥
 इति माल्यवद्वाक्यम् ॥ ११ ॥
 लज्जिते स्वगृहं याते माल्यवत्यानतानने ।
 संमथ्य रावणः क्षिप्रं दुर्गरक्षाविधिं व्यधात् ॥ ३८१ ॥

स प्रहस्तं समादिश्य पूर्वद्वाराभिगुप्तये ।
 निधाय दक्षिणद्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥ ३८२ ॥
 स्वयमिन्द्रजितं वीरं पुत्रं विन्यस्य पश्चिमे ।
 आदिदेशोत्तरद्वारे सानुगौ शुकसारणौ ॥ ३८३ ॥
 विभीषणगिरा ज्ञात्वा लङ्कागुप्तिं परैः कृतम् ।
 रामोऽपि द्वारसंरोधविधानं विदधे स्वयम् ॥ ३८४ ॥
 पूर्वद्वारं तदादेशानीलो जग्राह यूथपः ।
 अङ्गदो दक्षिणं वीरः पश्चिमं पवनात्मजः ॥ ३८५ ॥
 स्वयं सलक्ष्मणो रामः परिपीड्य तथोत्तरम् ।
 दिदेश मध्यमानीके ससुग्रीवं विभीषणम् ॥ ३८६ ॥

इति सैन्यप्रविभागः ॥ १२ ॥

अथोदतिष्ठद्रुम्भीरः प्रलयाम्भोघरध्वनिः ।
 निर्घोषः कपिसैन्यानां रक्षसां क्षयलक्षणः ॥ ३८७ ॥
 तेन शब्देन संभ्रान्तभुवनक्षयकारिणः ।
 लङ्का चकम्पे साध्वीव विध्वंसातङ्कशङ्किता ॥ ३८८ ॥
 अथाह्वयाङ्गदं रामो विभीषणमते स्थितः ।
 उवाच गच्छ मद्राक्यादृतं ब्रूहि दशाननम् ॥ ३८९ ॥
 न धनेषु न भोगेषु न मित्रेषु न बन्धुषु ।
 न प्राणेषु तव प्रीतिः सर्वं यत्त्यक्तुमर्हसि ॥ ३९० ॥
 त्वया हेममृगव्याजाद्वञ्चिता यद्वने वयम् ।
 कौशलं तव तत्रैव न रणे बाहुतोरणे ॥ ३९१ ॥
 भिक्षुरूपस्य ते शून्या न तपोवनभूरियम् ।
 इमास्ताः कार्मुकक्रूरहुंकारमुखराजयः ॥ ३९२ ॥
 जीविताशां त्यज व्याजहतां वा जनकात्मजाम् ।
 वधो मोक्षश्च ते पाप भुजे वाक्ये च मे स्थितौ ॥ ३९३ ॥

एतत्कपिपतेः सैन्यमते वयमिदं यतः ।
 क्रियतामग्निपतनं यदि खिन्नोऽसि जीविते ॥ ३९४ ॥
 इति शासनमादाय रामस्य शिरसाङ्गदः ।
 उत्पत्य प्रणयौ व्योम्ना पक्षवानिव पर्वतः ॥ ३९५ ॥
 अथासाद्य दशग्रीवं सचिवैः परिवारितम् ।
 रामसंदेशमावेद्य जगाद पुनरङ्गदः ॥ ३९६ ॥
 अनल्पमिदमैश्वर्यं कण्ठच्छेदपणार्जितम् ।
 उन्मत्त इव सर्वस्वं कथं त्यजसि राक्षस ॥ ३९७ ॥
 यदि त्वमेकः क्षीणायुस्तत्क्षिपात्मानमम्बुधौ ।
 किं कृतं पुत्रपौत्रैस्ते येषां निधनमिच्छसि ॥ ३९८ ॥
 खरास्ते मृत्युनखराः खरप्राणापहारिणः ।
 शराः शरासनोष्णांशुकरा राम करैर्धृताः ॥ ३९९ ॥
 इति श्रुत्वैव कोपाग्निज्वालाविभ्रमभङ्गुरैः ।
 भ्रूमङ्गैरभ्यधात्पिङ्गैर्वधं दशमुखः कपेः ॥ ४०० ॥
 ततो गृहीतः सहसा राक्षसैर्गिरिविग्रहैः ।
 जग्राह गगनं वेगादङ्गदः शत्रुभङ्गदः ॥ ४०१ ॥
 स तान्विधूयातिजवाद्भुजभग्नानतापयत् ।
 दूरप्रपातसंमोहनष्टसंज्ञामहीतले ॥ ४०२ ॥
 निपात्य चरणाग्रेण राजप्रासादमुन्नतम् ।
 प्रणयौ वालितनयः काकुत्स्थो यस्य सानुगः ॥ ४०३ ॥
 इत्यङ्गदवाक्यम् ॥ १३ ॥
 अथ प्राकारमारुह्य दृष्ट्वा लङ्कां सुवंगमैः ।
 निरुद्धां रावणो योद्धुमादिदेश निशाचरान् ॥ ४०४ ॥
 निर्गतेष्वथ रक्षःसु भीत्येवादर्शनं ययुः ।
 ब्रजद्गजघटाघण्टाटङ्कारवधिरा दिशः ॥ ४०५ ॥

कोटीशतसहस्राणि वानराणां तरस्विनाम् ।
 प्राकारार्जालशृङ्गाणि समारुह्य समन्ततः ॥ ४०६ ॥
 स्थविरे घोरकल्पान्तघनघोषघनस्वनैः ।
 नादैर्भुवनसंघट्टसंकटास्फोटकारिभिः ॥ ४०७ ॥
 जयत्यविजितः श्रीमान्सानुजो जानकीपतिः ।
 देवः सुग्रीवसाम्राज्यप्रार्थनाकल्पपादपः ॥ ४०८ ॥
 राजा जयति सुग्रीवः शुभ्रा विभ्राजते गुणैः ।
 रामकीर्तिः पताकेव यस्य श्रीर्विश्वविश्रुता ॥ ४०९ ॥
 इति गम्भीरनिर्घोषैर्गर्जन्तः कपियूथपाः ।
 प्राकारपरिखार्जालविनाशाय समुद्युः ॥ ४१० ॥
 इति समुद्रपर्व ॥ १४ ॥

अथाहन्यत सैन्येषु क्षुभिताम्भोधिनिःस्वनः ।
 रजनीचरराजस्य समरारम्भदुन्दुभिः ॥ ४११ ॥
 ततः काञ्चनसंनाहैर्वाजिभिः स्पन्दनैर्द्विपैः ।
 रक्षसां दीप्तशस्त्रैश्च विबभुः पिङ्गला दिशः ॥ ४१२ ॥
 बभूव संप्रहारार्हः कपिराक्षससैन्ययोः ।
 समागमः सागरयोः प्रलयोद्धूतयोरिव ॥ ४१३ ॥
 पुरः प्रवृत्ते समरे घोषघट्टितदिक्कटे ।
 शिलाशस्त्रास्त्रनिर्घोषैर्ज्वालाकुलमभून्नभः ॥ ४१४ ॥
 खङ्गाभिघातसंघट्टघोरश्चटचटो रवः ।
 तदभूद्भुवनव्यापी वेणूनां स्फुटतामिव ॥ ४१५ ॥
 अश्रूयत ततः स्फूर्जद्भृजनिष्पेयसोदरः ।
 राममुष्टिसमाकृष्टिधीरस्य धनुषो ध्वनिः ॥ ४१६ ॥
 रामचापच्युताश्चेरुर्वीराणां धृतिहारिणः ।
 संग्रामलक्ष्मीविक्षिप्तकटाक्षचपलाः शराः ॥ ४१७ ॥

प्रतापदहनज्वालारणदुर्दिनविद्युतः ।
 ताः शरश्रेणयश्चक्रुः कालजृम्भाविजृम्भितम् ॥ ४१८ ॥
 आजघानोरसि क्रोधादिन्द्रजिह्वादयाङ्गदम् ।
 रथं मनोरथमिव प्राञ्जमाथाङ्गदस्य च ॥ ४१९ ॥
 वानरौ रम्भविनतौ सालतालशिलायुधौ ।
 अतिकायस्य चक्राते संरोधं शरवर्षिणः ॥ ४२० ॥
 महोदरशरैर्विद्धः सुषेणः शिलया रथम् ।
 साश्वसूतध्वजं तस्य जघान घनगर्जितः ॥ ४२१ ॥
 जाम्बवान्स्वरपुत्रस्य मकराक्षस्य रक्षसः ।
 वृक्षं चिक्षेप तं चासौ चिच्छेद निशितैः शरैः ॥ ४२२ ॥
 सायकैः परितप्तोऽथ जाम्बवान्मुष्टिभिः क्षणात् ।
 स्फारं जघानास्य रथं वृद्धोऽपि तरुणोद्यमः ॥ ४२३ ॥
 वृक्षायुधः शतबलिर्विद्युज्जिह्वं समाद्रवत् ।
 कुम्भकस्यात्मजं कुम्भं नीलो जग्राह यूथपः ॥ ४२४ ॥
 देवान्तकेन युयुधे गवाक्षः पृथगूक्षधृक् ।
 ऋषभः सारजेनाथ त्रिशिराः शरभेण च ॥ ४२५ ॥
 नरान्तकेन पनसः कुमुदेनाप्यकम्पनः ।
 धूम्राक्षेणोग्रशस्त्रेण केसरी हनुमत्पिता ॥ ४२६ ॥
 महापाश्वेण बलिना तरसी गन्धमादनः ।
 शुकेन वेगदर्शी च पतनेन नलस्तथा ॥ ४२७ ॥
 मेघमाली हनुमता मित्रघ्नेन विभीषणः ।
 प्रसधेन च सुग्रीवो विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥ ४२८ ॥
 मिथस्तेषां प्रहरतां घोरे समरकर्मणि ।
 वपूंषि ययुरभ्यासात्सहस्राकारतामिव ॥ ४२९ ॥
 अग्निकेतुर्बलोदग्रः सुमैत्रो रश्मिकेतनः ।
 यज्ञकोपश्च काकुत्स्थमदृश्यं चक्रिरे शरैः ॥ ४३० ॥

तेषां शिरांसि चिच्छेद रामः सपदि पत्रिभिः ।
 यैरभूत्पातितैर्मृत्योः पादन्यासोपलावली ॥ ४३१ ॥
 मैन्दोऽपि मुष्टिघातेन वज्रमुष्टिमपातयत् ।
 द्विविदो निष्पपाताथ शैलाभमशनप्रभम् ॥ ४३२ ॥
 जघान नीलः शैलेन निकुम्भं शरवर्षिणम् ।
 इति तेषामभूद्वन्द्वं सक्तानां युद्धमुद्धतम् ॥ ४३३ ॥
 इति द्वन्द्वयुद्धम् ॥ १५ ॥

ततः शस्त्रशिलासारत्रासादिव दिवाकरः ।
 करावृतमुखः प्रायादस्तमस्ताद्रिमस्तकात् ॥ ४३४ ॥
 कालदेहाः समागत्य ततस्तिमिरराक्षसाः ।
 निःशेषमापपुः संध्यारागमोहितमम्बरे ॥ ४३५ ॥
 सप्तभूते क्षणे तस्मिन्ययुर्निःशेषतां दिशः ।
 तमोभिर्घोरसंघट्टैर्वेतालैरिव घट्टिताः ॥ ४३६ ॥
 सुग्रीवाज्ञासमायातैर्भिन्नाञ्जनसमप्रभैः ।
 ऋक्षयूथैरिव व्याप्तं तमोभिरभवन्नभः ॥ ४३७ ॥
 रक्षःकायैर्गजैः खड्गैस्तमो वान्तमिवाभवत् ।
 उष्णीषैश्चामरैश्छत्रैः कचिद्वस्तमिवाभवत् ॥ ४३८ ॥
 वाजित्रजाः खुररवैः स्यन्दनाश्चक्रनिःस्वनैः ।
 घण्टाशब्देन जगतः सूचिताः समरे ययुः ॥ ४३९ ॥
 बभौ तमसि रामस्य हेमपुङ्खशरावली ।
 लीना कनकलेखेव नीले व्योमकपाश्मनि ॥ ४४० ॥
 सा कालरात्रिर्विस्पष्टताराविकटदन्तुरा ।
 तमोभिर्मुक्तकेशीव भूतानां भयदाभवत् ॥ ४४१ ॥
 बभूव समरोद्धूतधूलिनीहारसंवृता ।
 रक्षःशस्त्रास्त्रभीतेव नेत्रोन्मीलिततारका ॥ ४४२ ॥

राक्षसोऽहं प्लवङ्गोऽहमिह तिष्ठ स्थिरो भव ।
 इत्यजृम्भन्त दन्तांशुजटिलाः सुभटोक्तयः ॥ ४४३ ॥
 तिष्ठ स्थितोऽहं युध्यस्व निहतोऽसि त्वमाहतः ।
 इतिशब्दैः प्रवीराणां क्षतावेवोद्धतं तमः ॥ ४४४ ॥
 रक्षोभिर्भाष्यमाणानां कपीनां तैश्च रक्षसाम् ।
 वभूवाकर्षनिर्धर्षहर्षसंघर्षनिःस्वनः ॥ ४४५ ॥
 रक्षःशिरोभिः काकुत्स्थशरोत्कृत्तैरभून्मही ।
 पक्कैरिव फलैर्व्यासा तमस्तालवनच्युतैः ॥ ४४६ ॥
 चुकूज रघुनाथस्य यत्र यत्रोद्यतं धनुः ।
 अराक्षसा क्षणेनैव तत्र तत्राभवत्क्षितिः ॥ ४४७ ॥
 ते शुद्धपक्षाः काकुत्स्थस्नेहनाराचसंचयाः ।
 सितस्मेरा ईव दिशो जहुस्तिमिरकञ्चुकान् ॥ ४४८ ॥
 यशःसौगन्ध्यलुब्धास्ते वीरवक्राब्जपातिनः ।
 विचेलुः समरोद्याने कामं रामशिलीमुखाः ॥ ४४९ ॥
 वर्तमाने रणे तस्मिन्संहारे कपिरक्षसाम् ।
 अवर्तमाने तिमिरे दिक्षु संघट्टितास्त्रिव ॥ ४५० ॥
 अङ्गदेनेन्द्रजित्क्षिप्रं हताश्वो हतसारथिः ।
 वीरैरनुचरैः सार्धं धीमानन्तरधीयत ॥ ४५१ ॥
 रक्तोष्णीषाम्बैरः स्रग्वी यागभूमिं प्रविश्य सः ।
 आयसस्तुकस्तुवो न्यस्तविभीतकसमित्कुशः ॥ ४५२ ॥
 प्रवृद्धं वह्निमादाय सर्वायुधकृतस्तरः ।
 छागस्य जीवतः कण्ठात्कृष्णस्यादाय शोणितम् ॥ ४५३ ॥
 जुहाव विधिवन्मन्त्रैः प्रयतः सिद्धये युधि ।
 अथोदतिष्ठत्कनकस्यन्दनं पावकप्रभः ॥ ४५४ ॥
 प्रदक्षिणशिखाद्बहेर्हेमरागो धृतध्वजः ।
 तमारुह्योग्रनिर्घोषमन्तर्धानं गतः क्षणात् ॥ ४५५ ॥

१. 'सृष्ट' शा०. २. 'हि ककुभां जङ्ग' शा०. ३. 'मुर' शा०. ४. 'त्तवाण' शा०.

इन्द्रजित्समरे प्रायात्तमोभिस्तरुणैर्वृतः ।
 स रामलक्ष्मणौ स्फारशरजालवृताम्बरौ ॥ ४५६ ॥
 अदृश्यौ व्योमगश्चक्रे घोराभिः शरवृष्टिभिः ।
 रामसौमित्रिविशिखास्तमन्तर्हितमम्बरे ॥ ४५७ ॥
 अप्राप्यानुगताः पेतुः खलमेवागता इव ।
 प्रच्छन्नं चरतस्तस्य घोरमायाविधायिनः ।
 शस्त्रवृष्टिं शरैर्घोरां चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ ४५८ ॥
 पीता इव दिशः सर्वा निगीर्णमिव चाम्बरम् ।
 क्षिप्तानि भुवनानीव तेनामन्यन्त वानराः ॥ ४५९ ॥
 वेगावपातिनस्तस्य शरैरशनिदारुणैः ।
 दारितावपि निष्कम्पौ राघवौ युधि तस्थतुः ॥ ४६० ॥
 तौ भूरिरुधिरासारसंसिक्ताखिलविग्रहौ ।
 उत्फुल्लकिंशुकाशोकसंकाशौ वर्धतः क्षणम् ॥ ४६१ ॥
 अप्राप्ये विपुले शत्रौ विलक्षे शरसंचये ।
 उवाचं रामं सौमित्रिः कोपान्नाग इव श्वसन् ॥ ४६२ ॥
 अनुजानीहि मामार्य ब्रह्मास्त्रेण निशाचरम् ।
 निर्दहाम्यफलोद्योगलज्जां युधि कथं सहे ॥ ४६३ ॥
 मण्डलीकृतचापस्य लक्ष्मणस्येषुवर्षिणः ।
 श्रुत्वैतद्वचनं धीरः प्रत्यभाषत राघवः ॥ ४६४ ॥
 ब्रह्मास्त्रेण कथं नाम जगत्सर्वं सराक्षसम् ।
 दग्धुमिच्छसि संरम्भादेकस्येन्द्रजितः कृते ॥ ४६५ ॥
 भ्रातः क्षणं प्रतीक्षस्व लक्ष्यतामेष यातु नः ।
 सारतां ज्ञास्यसि ततः शराणां शैलभेदिनाम् ॥ ४६६ ॥
 विभूतिरिव दृप्तानां चपलानामिवोन्नतिः ।
 मायाबलानामचिरं भवति प्रभविष्णुता ॥ ४६७ ॥
 मायाव्यवहितस्यास्य गूढं गगनचारिणः ।

सावेगाः प्लवगाः शत्रोर्गतिं ज्ञातुं न पुंगवाः ॥ ४६८ ॥
 इत्युक्त्वा रघुनाथेन निर्दिष्टाः कपियूथपाः ।
 दिशासु विविशुर्व्योम सज्जाः शत्रुजितः क्षये ॥ ४६९ ॥
 नीला नीलात्मजगजास्ते मैन्दद्विविदाङ्गदाः ।
 शरभर्भभसंपातिहराश्चेरुर्नभस्तले ॥ ४७० ॥
 तेषां गरुडवेगानां गतिं गगनवासिनाम् ।
 शरैरवारयद्धोरैरिन्द्रजिद्विजयोजितः ॥ ४७१ ॥
 अदृश्येनाशनिस्पशैर्विशिखैर्भृशमाहताः ।
 ते तेन तमसि स्फीते निपेतुः पर्वता इव ॥ ४७२ ॥
 ततः स्फारशरासारैर्निःसूत्रान्तरपातितैः ।
 चकार राघवौ वज्रशिखाप्रेताविवेन्द्रजित् ॥ ४७३ ॥
 भुजङ्गवदनैर्व्याप्तौ ज्वालामालोल्वनैः शरैः ।
 विरुद्धचापव्यापारौ दुर्लक्षौ तौ बभूवतुः ॥ ४७४ ॥
 कल्पान्तवाताभिहतौ तौ च कल्पद्रुमाविव ।
 तौ चन्द्रे दुर्निमित्ताय च्युते सूर्य इवाम्बरात् ॥ ४७५ ॥
 तद्वधं सादृहासेन नादेनाघट्टयन्दिशः ।
 जगाम गगनव्यापी विश्राव्य स्वयमिन्द्रजित् ॥ ४७६ ॥
 इति रात्रियुद्धे इन्द्रजिज्जयः ॥ १६ ॥
 विष्णुशक्रोपमौ दृष्ट्वा पतितौ रामलक्ष्मणौ ।
 सुग्रीवमुख्यास्तं देशमाययुः सविभीषणाः ॥ ४७७ ॥
 ते राघवासक्तदृशः सुग्रीवहनुमन्मुखाः ।
 विद्धा इवापीतविषैः सर्वमर्मसु सायकैः ॥ ४७८ ॥
 मनोरथरथभ्रष्टाः श्वभ्रे निपतिता इव ।
 भङ्गाभिमानविभवा मेरुशृङ्गादिव च्युताः ॥ ४७९ ॥
 भिन्ने प्रवाहने मग्ना वणिजा जलधाविव ।
 दस्युभिर्लेच्छदेशेषु विक्रीताः श्रोत्रिया इव ॥ ४८० ॥

नीचयाच्चावमानेन संतप्ता इव साधवः ।
 दुःखसंत्रासदैत्यानां लज्जिताः प्रययुर्वशम् ।
 हस्तन्यस्तललाटाग्रं सुग्रीवं साश्रुलोचनम् ॥ ४८१ ॥
 दुःखक्रोधानलाक्रान्तमभाषत विभीषणः ।
 युद्धान्येवंविधान्येव विजये नास्ति निश्चयः ॥ ४८२ ॥
 चला सिद्धिर्विधौ वक्रे पौरुषे सफलं क्वचित् ।
 त्यज्यतामेष संतापः शूरः शोच्यो न राघवः ॥ ४८३ ॥
 अवश्यं जन्मवीराणां वधाय विजयाय वा ।
 अच्छन्नं समरच्छिन्नैरचलं वीचिचञ्चलैः ॥ ४८४ ॥
 अनल्पमल्पैरसुभिर्लभन्ते सुभटा यशः ।
 मा कृथा मोहसुलभं शोकं शत्रुपराभवे ॥ ४८५ ॥
 अभिमानधनानां हि भुजायत्ता प्रतिक्रिया ।
 सखे क्षणं प्रतीक्षस्व मोहं त्यक्ष्यति राघवः ॥ ४८६ ॥
 नास्ति मृत्युभयं सत्यं सत्यधर्मानुयायिनाम् ।
 न मोहः कृच्छ्रकालेषु व्यसनव्याधिभैषजम् ॥ ४८७ ॥
 धैर्यादीनानि कार्याणि सर्वथा धैर्यशालिनाम् ।
 त्वयि प्रतापतिग्मांशो मोहमेघनिमीलिते ॥ ४८८ ॥
 नौरिवाकर्णधारेयं भज्यते हरिवाहिनी ।
 इत्युक्ता सलिलेनास्य प्रमृज्य नयने स्वयम् ।
 आश्वासं विदधे वीरः प्लवगानां विभीषणः ॥ ४८९ ॥
 शयितौ वीरशयने राघवौ हनुमन्मुखाः ।
 तृणाञ्चनेऽपि चकिता ररक्षुर्यत्नमास्थिताः ॥ ४९० ॥
 गिरा शक्रजितोर्ज्ञात्वा निहतौ रामलक्ष्मणौ ।
 रावणस्तं परिध्वज्य विदधे नगरोत्सवम् ॥ ४९१ ॥
 पुष्पकं सममारोप्य राक्षसीभिस्तु रक्षिताम् ।
 सीतामदर्शयत्तस्यै शरतल्पगतं पतिम् ॥ ४९२ ॥

सा तं दृष्ट्वैव सहसा मोहेन महता हता ।
 संज्ञामासाद्य शनैर्विललापाश्रुगद्गदम् ॥ ४९३ ॥
 अहो नु पुण्यहीनाया ललाटे मम संकटे ।
 त्वत्समागमपीयूषप्राप्तिर्न लिखिता पुनः ॥ ४९४ ॥
 दाक्षिण्यं तत्क ते नाथ क सा प्रीतिरकृत्रिमा ।
 यद्धि मामसुरावासां दृष्ट्वा नैवाभिभाषसे ॥ ४९५ ॥
 कोऽयं कठोरपर्यन्तः कटिनो मन्युविप्लवः ।
 चक्षुषा प्रेमदिग्धेन कथं मां न निरीक्षसे ॥ ४९६ ॥
 प्रयच्छ मे प्रतिवचः पश्य प्रणयिनीं दृश ।
 प्रसादालालितः पूर्वं नावज्ञां सहते जनः ॥ ४९७ ॥
 अपि ते हृदयं कच्चिदध्यास्ते न पराङ्मना ।
 अपि नाम न ते स्नेहः प्रवासान्मयि विस्मृतः ॥ ४९८ ॥
 अहोऽसि तव धैर्याब्धे निहिताशेषरक्षसा ।
 अहो उल्लाङ्घिताम्भोधेर्गोपदं पतनं तव ॥ ४९९ ॥
 सुचिरायासतप्ताया नेदानीं दर्शनं तव ।
 जीवितत्यागमात्रेण परलोके समागमः ॥ ५०० ॥
 पाणिपादतलाशकै रेखाकमलमण्डलैः ।
 वैधव्यं सूचितमिदं कथं मे शुभलक्षणैः ॥ ५०१ ॥
 ये भर्तृशस्तां मामाहुः कन्यालक्षणकोविदाः ।
 ते दैवज्ञाः कथं नाम जाता वितथवादिनः ॥ ५०२ ॥
 नीलाः केशाः समाः सूक्ष्माः परिच्छिन्ने भ्रुवौ च मे ।
 शङ्खो नेत्रे वरौ पादौ गुल्फौ च न शिरोन्नतौ ॥ ५०३ ॥
 दन्ताः प्रगुणरामाश्च तनुवृत्तशिखा नखाः ।
 स्तनौ सुसंहतौ पीनौ सुवृत्तौ ममचूचुकौ ॥ ५०४ ॥
 गम्भीरो नाभिदेशश्च कान्तिः स्निग्धा च मे मृदुः ।
 ममेदं येन वैधव्यं न तत्पश्यामि लक्षणम् ॥ ५०५ ॥

चित्रं शत्रुकुलस्यायं हन्ता युधि निपातितः ।
 अधुना पौरुषस्येव सिद्धिर्देवेन मुद्रिता ॥ ५०६ ॥
 परदेशे प्रियां त्यक्त्वा गन्तुं नार्हसि राघव ।
 मनोवृत्तिरिवाहं ते सर्वत्र सहचारिणी ॥ ५०७ ॥
 इति प्रलापिनीं सीतां धर्मज्ञा प्रियवादिनी ।
 उवाच त्रिजटा स्वैरं तत्सतीव्रतवत्सला ॥ ५०८ ॥
 अलं मिथ्याविषादेन पुत्रि जीवति ते पतिः ।
 मुखवर्णेन पश्यामि रामस्य शुभमग्रतः ॥ ५०९ ॥
 अनष्टधैर्याः प्लवगा रामं रक्षन्ति यद्भुवि ।
 यत्सैत्यानि न दीर्णानि तदेव शुभलक्षणम् ॥ ५१० ॥
 न भाग्यहीना वैदेहि त्वं सत्त्वोचितलक्षणा ।
 भग्नभाग्यो जनः सत्यं पुष्पकेन न धार्यते ।
 पुष्पकेन हता तूर्णमशोकवनिकां ययौ ॥ ५११ ॥
 इति रामदर्शनम् ॥ १७ ॥
 ततः संज्ञां समासाद्य कृच्छ्रेणोन्मीललोचने ।
 वज्राङ्गघाशविवशैः प्लवगैः परिवारितः ॥ ५१२ ॥
 विलोक्य लक्ष्मणं दीनं शयानं रुधिरौक्षितम् ।
 बाष्पव्यासमुखो रामः क्षामस्वरमभाषत ॥ ५१३ ॥
 हा सुखभ्रष्टसौमित्रे मदर्थे त्यक्तजीवित ।
 भूमिमालिङ्ग्य सुप्तोऽसि कथं मम पराङ्मुखः ॥ ५१४ ॥
 सर्वत्र सुहृदः सन्ति सन्ति संबन्धवान्धवाः ।
 अभिन्नजन्मदेहस्य दुर्लभः स सहोदरः ॥ ५१५ ॥
 मन्त्री बन्धुः सुतः शिष्यः सुहृद्योधः पथानुगः ।
 लक्ष्मणेन समो भ्राता भाग्यहीनैर्न लभ्यते ॥ ५१६ ॥
 भग्नाभिमानसर्वस्वः कथं जीवितुमुत्सहे ।
 छिन्नोऽयं यस्य सौमित्रिर्दक्षिणो दक्षिणो भुजः ॥ ५१७ ॥

भ्रातः सीतावियोगेऽपि नोक्तोऽसि परुषं मया ।
 समन्युरिव मां कस्मान्न कस्मान्नाभिभाषसे ॥ ५१८ ॥
 कासौ मदाज्ञाप्रणयी मयि सेवारसस्तव ।
 सुखसुप्तो यदद्यापि निर्भयो न विवध्यसे ॥ ५१९ ॥
 इति प्रलापमुखरे लक्ष्मणक्षिप्तचक्षुषि ।
 राघवे शरनिःस्पन्दे प्लवगास्तत्यजुर्धृतिम् ॥ ५२० ॥
 विद्रुते सागरस्फारे हरिसैन्ये सहस्रधा ।
 धूम्रं यूथपमाहूय सुग्रीवः स्वयंमभ्यधात् ॥ ५२१ ॥
 एते दृष्ट्वा समायातुं गदापाणिं विभीषणम् ।
 इन्द्रजिद्वयसंभ्रान्ता विद्रुताः सर्ववानराः ॥ ५२२ ॥
 भटानां भयभग्नानां धिग्जीवितमजीवितम् ।
 रणे मृत्युर्वने मृत्युर्गृहे मृत्युश्च देहिनाम् ॥ ५२३ ॥
 इत्यादिष्टः कपीन्द्रेण धूम्रो वानरयूथपः ।
 विपुलं भुजमुद्यम्य जगाम प्लवगर्षभान् ॥ ५२४ ॥
 रामशासनसर्वस्वः श्रीमानेष विभीषणः ।
 नेन्द्रजिद्व्याजयुद्धासमिथ्याविजयगर्वितः ॥ ५२५ ॥
 उत्सृज्य भीरुमुसलं भयं भुजबलोज्जिताः ।
 जयाय रघुनाथस्य क्रियतां सैन्यसंग्रहः ॥ ५२६ ॥
 इति धूम्रस्य वचसा परावृत्ते बलार्णवे ।
 रामं निश्चेष्टमालोक्य विललाप विभीषणः ॥ ५२७ ॥
 तृणीकृतदशास्यस्य प्रभुमाश्रित्य यन्मम ।
 अभिमानोन्नतिरभूत्सोऽयं शेते शराहतः ॥ ५२८ ॥
 प्रसादविशदा लोकाः स्मितपूर्वाभिभाषिणः ।
 भाग्यहीनैर्न लभ्यन्ते प्रभवो मानदाः सदा ॥ ५२९ ॥
 अहो बत नृशंसेन रक्षसा कूटयोधिना ।
 निघ्नता राघवौ वीरौ निहतोऽहं निराश्रयः ॥ ५३० ॥

श्वेतं गजं चतुर्दन्तं चामरच्छत्रलाञ्छनम् ।
 अहो मुहूर्तमालोक्य पतितोऽहमधोमुखः ॥ ५३१ ॥
 दुराचारो गजस्त्यक्तः काकुत्स्थोऽप्याश्रितः कृती ।
 कृतं कृत्यं मया साधु विधिसिद्धिषु कः प्रभुः ॥ ५३२ ॥
 अहो वेश्येव निःस्नेहा वक्रा दुर्जनधीरिव ।
 सर्वथा खलमैत्रीव दुरन्ता वेधसो गतिः ॥ ५३३ ॥
 नमः सुघटितारम्भविनाशप्रभविष्णवे ।
 विधेये पौरुषोत्कर्षस्पर्शमात्रासहिष्णवे ॥ ५३४ ॥
 इति शोकाकुलः शोचन्साश्रुनेत्रो विभीषणः ।
 पस्पर्शं सलिलार्द्रेण पाणिना राघवो मुहुः ॥ ५३५ ॥
 तं जगादाथ सुग्रीवः सखे दुःखसमुद्भवः ।
 त्यज्यतामेष वैक्लव्यसंकल्पे स्त्रीजनोचितः ॥ ५३६ ॥
 तव स्वच्छनस्वच्छायारचितौष्णीषविभ्रमः ।
 अभिषेकोत्सवं मौलौ रामपाणिर्विधास्यति ॥ ५३७ ॥
 सानुजं राममादाय सुषेणेन सहाङ्गदः ।
 किष्किन्धां यातु सन्नद्धः सह सर्वैः प्लवङ्गमैः ॥ ५३८ ॥
 अहमेको हनुमता सह लङ्कामराक्षसाम् ।
 कृत्वा सीतां समादाय पश्चादेष्यामि राघवौ ॥ ५३९ ॥
 सौहार्दस्य प्रसादस्य प्रणयस्य प्रियस्य च ।
 राज्यदानस्य चानर्ण्यं गच्छाम्यद्य न संशयः ॥ ५४० ॥
 अस्य स्फीतयशःस्वच्छच्छत्रस्य व्यजनस्य च ।
 हरिचन्दनकर्पूरपरिरम्भस्य भूयसः ॥ ५४१ ॥
 नणिकङ्कणकेयूरमौलिहारभरस्य च ।
 अनङ्गमङ्गलासङ्गललनालिङ्गनस्य च ॥ ५४२ ॥
 मात्यांशुकप्रकारस्य संभोगस्य गरीयसः ।
 इमौ मे सदृशं बाहू सुहृत्कार्यं करिष्यतः ॥ ५४३ ॥

राममानप्रसादस्य शक्या तस्य प्रतिक्रिया ।
 त्यक्तैः पुनः पुनर्जातैर्न शरीरशतैरपि ॥ ५४४ ॥
 यदि देवासुरैः सार्धं योत्स्यते मां दशाननः ।
 तथापि तस्य कुपिते मयि नास्त्येव जीवितम् ॥ ५४५ ॥
 इत्युक्ते वानरेन्द्रेण सुषेणः कपियूथपः ।
 उवाच धृतिमालम्ब्य चिन्तयन्दुःखभेषजम् ॥ ५४६ ॥
 देवासुररणे पूर्वमसुरैर्निहताः सुराः ।
 मन्त्रौषधिगणैः प्रापुर्जीवितं गुरुणार्पितैः ॥ ५४७ ॥
 क्षीरोदधौ पर्वतयोरन्तरे द्रोणचन्द्रयोः ।
 ताः सन्त्यौषधयो यत्र बभूवामृतमन्थनम् ॥ ५४८ ॥
 श्रच्छवीकरणी दिव्या विशल्या जीवनी तथा ।
 संधिनी चेति तास्तूर्णं हरन्तु हनुमन्मुखाः ॥ ५४९ ॥
 सुषेणेनेत्यभिहते चिन्तास्तब्धे बलार्णवे ।
 अवतीर्याम्बरादिव्यद्युतिरभ्याययौ मुनिः ॥ ५५० ॥
 इति सुग्रीववाक्यम् ॥ १८ ॥
 स समासाद्य काकुत्स्थं भगवान्नारदः स्वयम् ।
 स्वैरं जगाद जनता हिताय सततं यतः ॥ ५५१ ॥
 रामरामाविरामस्त्वं युद्धे त्रिदशविद्विषाम् ।
 देवो नारायणः श्रीमान्परमात्मा सनातनः ॥ ५५२ ॥
 भगवन्भुवनारम्भव्यापारेषु प्रजासृजः ।
 त्वदनुप्राणिता शक्तिः संहारेषु हरस्य च ॥ ५५३ ॥
 हिरण्याख्यवधे व्यस्ता वराहेण वराहवे ।
 त्वया वसुंधरोद्धारधीरेण धरणीधराः ॥ ५५४ ॥
 त्वया दैत्या द्विपेन्द्रस्य लीलाकेसरिणा नखैः ।
 यशांसि मौक्तिकानीव लुण्ठितानि सहासुभिः ॥ ५५५ ॥
 त्रैलोक्याक्रान्तिविभवः प्रययौ बलिसंयमे ।
 ब्रह्माण्डमण्डपे दण्डपादस्थे मानदण्डताम् ॥ ५५६ ॥

ज्वालाजालजटालस्ते परशुर्भार्गवाकृतेः ।
 जजृम्भे क्षत्रियवने दीर्घदावाग्निलीलया ॥ ५५७ ॥
 सर्वदेवमयात्मा त्वं सर्वयज्ञमयः प्रभुः ।
 सर्वदेवमयाकारः पुरुषः सर्वलोककृत् ॥ ५५८ ॥
 वैकुण्ठस्त्वमकुण्ठश्रीः पद्मनाभो नमःप्रभः ।
 केशवः केशिहर्ता च शेषशायी नरेश्वरः ॥ ५५९ ॥
 स्मरस्व सचिवं देव गरुडं गरुडध्वज ।
 भुजङ्गपञ्जरं घोरं स क्षिप्रं क्षपयिष्यति ॥ ५६० ॥
 इत्युक्त्वा नारदे याते तदैवोवाच मारुतिः ।
 देवः काकुत्स्थमभ्येत्य कर्णान्तं स्वार्थसिद्ध्यै ॥ ५६१ ॥
 इति नारदवाक्यम् ॥ १९ ॥

ततः सस्मार गरुडं राघवौ विगतज्वरः ।
 स चाययौ ध्यातमात्रः पक्षाक्षेपधुताम्बुधिः ॥ ५६२ ॥
 पाणिना कृतसंस्पर्शः सानुजस्तेन राघवः ।
 निःशल्यो निर्ब्रणश्चासीन्मुक्तपाशः शशिप्रभः ॥ ५६३ ॥
 स सूर्यकिरणाकीर्णसुवर्णगिरिसंनिभः ।
 स्वस्थं काकुत्स्थमामन्त्र्य विवेश विशदं नभः ॥ ५६४ ॥
 अथोत्थिते पृथुबले रघुनाथे सलक्ष्मणे ।
 बभूव सर्वभूतानां निर्विघ्नः हर्षनिर्वृतिः ॥ ५६५ ॥
 ततः प्लवगसैन्यानां नः प्रमदसंभवः ।
 उद्भूतभुवनाभ्रान्तिगम्भीरारम्भविभ्रमः ॥ ५६६ ॥
 तेन शब्देन महता संभ्रान्ताः क्षणदाचराः ।
 ददृशुस्तूर्णमभ्येत्य स्वस्थौ दशरथात्मजौ ॥ ५६७ ॥
 ते गत्वा विस्मयभयभ्रान्ता भग्नमनोरथाः ।
 तदप्रियमसंभाव्यं रावणाय न्यवेदयन् ॥ ५६८ ॥
 इति विशत्यकरणम् ॥ २० ॥

सानुजं राघवं ज्ञात्वा पौलस्त्यः प्राप्तजीवितम् ।
 विवर्णवदनः क्षिप्रं नोचे किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ ५६९ ॥
 कार्यं विचार्य संदेहदोलामारूढमात्मनः ।
 स धैर्यस्तम्भितोद्वेगः क्रोधाद्भूमाक्षमभ्यधात् ॥ ५७० ॥
 अदृष्टसंमुखारातेर्ममाप्यल्पतरो रिपुः ।
 उपेक्षित इव व्याधिः प्रयातः कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ ५७१ ॥
 सेयं पराभवग्लानिरयशोधूलिधूसरा ।
 त्वद्यशःसितवस्त्रेण मयाद्य परिमृज्यते ॥ ५७२ ॥
 रामलक्ष्मणसुग्रीवविभीषणवधाय ते ।
 न्यस्तोऽयं तु जयो भारसुरसंहारकारिणः ॥ ५७३ ॥
 इति माल्यमिवादाय शिरसा शासनं प्रभोः ।
 रथी राक्षससैन्येन धूम्राक्षः सह निर्ययौ ॥ ५७४ ॥
 राक्षसैर्मन्त्रिमित्रैश्च भीषणैः परिवारितः ।
 धूम्राक्षो विदधे गच्छन्धूलिधूमा दिशो दश ॥ ५७५ ॥
 तस्योपरिकृतच्छाये गृध्रचक्रे प्रसर्पति ।
 क्षिप्रं प्राप सितच्छत्रं सव्यापारदरिद्रताम् ॥ ५७६ ॥
 दुष्प्रहारो बभूवाथ रणे स भटदारणे ।
 हरिसैन्येन महता रक्षसां पृथुवक्षसाम् ॥ ५७७ ॥
 एहि राक्षस युध्वस्व तिष्ठ कातर वानर ।
 इत्यभूद्भीषणः शब्दो विपुलस्तुमुले युधि ॥ ५७८ ॥
 धूम्राक्षशरनिर्भिन्नैः प्लवगैर्गिरिविग्रहैः ।
 निपतद्भिरभूद्भूमिर्दोलाकेलिविलासिनी ॥ ५७९ ॥
 वानरप्रवराः प्रौढभुजोत्सृष्टैर्महाद्रुमैः ।
 विपुलाभिः शिलाभिश्च चक्रिरे रक्षसां क्षयम् ॥ ५८० ॥
 विदारितेषु सैन्येषु धूम्राक्षेण तरखिना ।
 तमभ्यधावत्तेजस्वी गृहीत्वा मारुतिः शिलाम् ॥ ५८१ ॥

क्षिप्तां तेन शिलां वीक्ष्य क्षिप्रकारी निशाचरः ।
 गुर्वीं गदां समादाय रथाद्भूमिमवातरत् ॥ ५८२ ॥
 साश्वसूतध्वजस्तस्य निष्पिष्टः शिलया रथः ।
 सहसा प्रलयं यायान्मूढस्येव मनोरथः ॥ ५८३ ॥
 स भग्नस्यन्दनः कोपात्क्षपिताशेषराक्षसम् ।
 वक्षस्यताडयद्वेगाद्गदया मारुतात्मजम् ॥ ५८४ ॥
 तस्योत्तमाङ्गे चिक्षेप गिरिशृङ्गं प्लवङ्गमः ।
 तेन निष्पिष्टसर्वाङ्गः स पपात रणाङ्गणे ॥ ५८५ ॥
 धूम्राक्षे निहिते घोरे त्रस्ताः सर्वे निशाचराः ।
 हनुमद्विक्रमं गत्वा पौलस्त्याय न्यवेदयन् ॥ ५८६ ॥
 इति धूम्राक्षवधः ॥ २१ ॥

जितनाके हते तस्मिन्नावणः सैन्यनायकम् ।
 विससर्जोर्जितं शत्रुहृत्कम्पनमकम्पनम् ॥ ५८७ ॥
 रथिनो व्रजतस्तस्य रणाग्रं भर्तुराज्ञया ।
 दीर्घप्रवासे प्रययुर्मन्त्रिमित्राणि दूरताम् ॥ ५८८ ॥
 ततो बभूव संमर्दः कपीनां वीर्यशालिनाम् ।
 राक्षसैरक्षयवलैरकम्पनपुरःसरैः ॥ ५८९ ॥
 गजवाजिरथोद्धूतधूलिप्रावरणा दिशः ।
 नादृश्यन्त महामेघसंघातैरिव मीलिताः ॥ ५९० ॥
 रणाङ्गणोद्धतरजस्तोमसस्तनभस्तले ।
 युद्धे लोको निरालोकः शस्त्रशब्दैरबुध्यत ॥ ५९१ ॥
 ततः सुभटशैलाग्रनिर्यदुधिरनिर्क्षरैः ।
 व्याप्ते महीतले शान्तिं मूलच्छिन्नं ययौ रजः ॥ ५९२ ॥
 अकम्पनसैनामानि वानराणां रणेविणाम् ।
 चक्रुराच्छादनानीव शरीराणि परस्परम् ॥ ५९३ ॥

१. 'ये' शा०. २. 'ग्रां' शा०. ३. 'दुर्निमित्तानि दूततां' शा०. ४. 'सस्पन्दः' शा०.
 ५. 'शराप्तानि' शा०.

महापादपमुत्सृज्य तं समभ्याद्रवदुषा ।
 विशालवक्षा हनुमान्सानुमानिव पर्वतः ॥ ५९४ ॥
 तस्य तं गगनावर्तभ्रान्तिनिर्घोषभीषणम् ।
 विशिखैरशनिस्पर्शैर्वृक्षं चिच्छेद राक्षसः ॥ ५९५ ॥
 तद्वाणविद्धः सोऽप्यन्तशैलशृङ्गः समाययौ ।
 रुधिरोद्गारिभिर्गात्रैर्धातुस्त्रावीव भूधरः ॥ ५९६ ॥
 वज्रवेगैर्गिरिशिरश्चिच्छेदाकम्पनः शरैः ।
 शिखाविखण्डनोद्भूतज्वालावलयपिङ्गलैः ॥ ५९७ ॥
 अथापरं समासाद्य पादपं तत्पदानुगान् ।
 जघान हनुमान्वेगाद्विद्धः शत्रुपतत्रिभिः ॥ ५९८ ॥
 अकम्पनशरोत्कृत्ते तस्मिन्नपि महाद्रुमे ।
 विपुलं सालमुन्मूल्य तं जघानानिलात्मजः ॥ ५९९ ॥
 द्रुमाभिघाताभिहतः कम्पमानोऽप्यकम्पनः ।
 तेनैव सह वृक्षेण क्षिप्रं शकलतां ययौ ॥ ६०० ॥
 इत्यकम्पनवधः ॥ २२ ॥

त्रैलोक्याकम्पनं श्रुत्वा युद्धे हतमकम्पनम् ।
 कम्पमानवपुःकोपात्तूष्णीमासीद्विशाननः ॥ ६०१ ॥
 स प्रहस्तं समादिश्य समरे सैन्यनायकम् ।
 अमन्यताहितव्रातं यातं नामावशेषताम् ॥ ६०२ ॥
 प्रहस्तोऽप्यप्रशस्तेषु निमित्तेषु विनिर्ययौ ।
 बाणसंमानमौराणां कर्तुमानृष्यमुद्यतः ॥ ६०३ ॥
 स द्विपेन्द्रघटाबन्धैः पिहिताखिलदिङ्मुखैः ।
 लेभे प्रलयकालस्य मेघघोरस्य तुल्यताम् ॥ ६०४ ॥
 कृष्णाः कनकसंनाहा बभुस्तस्य रथे हयाः ।
 अच्छिन्नविद्युद्विद्योत इव व्योम्नि बलाहकाः ॥ ६०५ ॥

ततः प्रहस्तसैन्येन पूरिते समरे पुनः ।
 बभूव कृच्छ्रसंचारा वानराणामनीकिनी ॥ ६०६ ॥
 एष रक्षःपतेर्बाहुः प्रत्यक्ष इव दक्षिणः ।
 प्रहस्तो निर्गतो योद्धुमित्यभूज्जननिःस्वनः ॥ ६०७ ॥
 ततः समरसंघट्टनिर्घोषः कपिरक्षसाम् ।
 रामरावणयोरर्थे परित्यक्तात्मनामभूत् ॥ ६०८ ॥
 हरिसेना विशालेषु रक्षःखड्गेषु बिम्बिता ।
 लेभे रामप्रभावेण सहस्रगुणितामिव ॥ ६०९ ॥
 व्रजतां रक्षसां सेना कदर्यश्रीरिवाययौ ।
 संकोचं गन्त्रचिन्तासु शास्त्रहीनस्य धीरिव ॥ ६१० ॥
 प्रहस्तहस्तकृष्टस्य निर्हादी धनुषो ध्वनिः ।
 प्रययौ प्रलयारम्भे मेघनिर्घोषघोरताम् ॥ ६११ ॥
 सायकास्तद्भुजोत्सृष्टा यत्र यत्र बलाम्बुधौ ।
 निपेतुस्तत्र तत्राभून्मुहूर्तावर्तविभ्रमः ॥ ६१२ ॥
 सा कपित्वाभिसंनाहवर्मणां वज्रसारता ।
 यच्छस्त्रास्त्रनिपातेऽपि शूराणां नाभवद्यथा ॥ ६१३ ॥
 वानराद्रिद्रुमाघातभग्नाङ्गा अपि राक्षसाः ।
 अभिमानाङ्कुशाङ्कास्ते न बभूवुः पराङ्मुखः ॥ ६१४ ॥
 सुवज्रभिन्नैर्मातङ्गैरुत्कृत्ताङ्गैस्तुरङ्गमैः ।
 पतितैर्भूरभूद्याप्ता भटैश्चोच्छिन्नकंकटैः ॥ ६१५ ॥
 क्षिप्रं कबन्धरुद्धास्वरथरथ्यासु सर्वतः ।
 निःसंचारेषु सैन्येषु निरुच्छ्वासोऽभवज्जनः ॥ ६१६ ॥
 समुन्नदः कुम्भहनुर्महानादस्तरंधमः ।
 एते प्रहस्तसचिवाश्चकिरे राक्षसाः क्षयम् ॥ ६१७ ॥
 द्विविधः शैलशृङ्गेण निष्पिपेष तरंधमम् ।
 महाद्रुमाभिघातेन दुन्दुभश्च समुन्नदम् ॥ ६१८ ॥

महानादं जघानाथ शिलया युधि जाम्बवान् ।
तरुणस्तरुणाचारश्चक्रे कुम्भहनुं व्यसुम् ॥ ६१९ ॥
हतेषु तेषु वीरेषु प्रहस्तो हस्तिदुर्मदः ।
निबिडालोडनक्रीडां शत्रुसैन्यहृदे व्यधात् ॥ ६२० ॥
तस्मिन्नाजगणैर्बाणाधारोद्धरणदुर्दिनैः ।
ससर्पं शोणितनदी शरीरतरुहारिणी ॥ ६२१ ॥
प्रहस्तप्रहतां दृष्ट्वा वानराणामनीकिनीम् ।
तमभ्यधावद्वेगेन नीलः सेनासुनायकः ॥ ६२२ ॥
तयोः सन्नद्धयोर्युद्धे त्रैलोक्यत्रासकारिणि ।
क्षणं प्रेक्षकतां प्रापुः प्रेक्षिकाः कपिराक्षसाः ॥ ६२३ ॥
नीलेनाभिहतः कोपात्पृथुः स्कन्देन शालिना ।
प्रहस्तः शरजालेन निनाय तमदृश्यताम् ॥ ६२४ ॥
तं शरासारमत्युग्रं नीलो मीलितलोचनः ।
जग्राहाभिनवं वर्षघर्मन्त इव कुञ्जरः ॥ ६२५ ॥
ततस्तरुप्रहारेण प्रहस्तस्य मनोजवान् ।
जघान नीलसंनाहान्नीलः क्षिप्रं तुरङ्गमान् ॥ ६२६ ॥
हताश्वः सोऽभिपत्याशु मुसलेन प्लवङ्गमम् ।
निजघान ललाटाग्रे तं वृक्षेणस चोरसि ॥ ६२७ ॥
उद्भ्रान्तमुसलं रक्षः साक्षात्कालमिवोद्यतम् ।
नीलः शिलां समुत्क्षिप्य चक्रे स्फुरितमस्तकम् ॥ ६२८ ॥
भग्नोत्तमाङ्गे सावेगं प्रहस्ते पतिते युधि ।
रक्षसां नाभवत्कश्चिद्भग्नसंस्तम्भनं विभुः ॥ ६२९ ॥
इति प्रहस्तवधः ॥ २३ ॥
सेनानाथे हते तस्मिन्नणयज्ञे हुतात्मनि ।
समं समस्तसामन्तैर्निर्ययौ रावणः स्वयम् ॥ ६३० ॥
ततः प्रलयसंरम्भभैरवाम्भोधरध्वनिः ।
रुराव रावणस्याग्रे प्रथमारम्भदुन्दुभिः ॥ ६३१ ॥

अभूद्भुजचयैव्योमि सैन्याकारैश्च दिक्षु च ।
 अभूद्भटभुजस्तम्भस्तम्भिता मरुतां गतिः ॥ ६३२ ॥
 प्रधानाधिष्ठितैः सैन्यैः पूर्यमाणा दिशो दश ।
 दृष्ट्वा पप्रच्छ काकुत्स्थः स्थितमग्रे विभीषणम् ॥ ६३३ ॥
 बलैर्महीध्रविपुलैर्ध्वजपिञ्जरिताम्बरैः ।
 योद्धुमभ्येति संनद्धः कोऽस्माकं सुभटः पुरः ॥ ६३४ ॥
 प्रणयादिति रामेण पृष्टः प्रह्वो विभीषणः ।
 उवाच निर्दिशन्दूरादङ्गुल्या सैन्यनायकान् ॥ ६३५ ॥
 अग्रे यः सर्वसैन्यानां रथे सूर्य इवोदितः ।
 एष स्वर्गोक्तसां भोगवियोगगुरुरिन्द्रजित् ॥ ६३६ ॥
 अस्य कुण्डलकेयूरभासुरस्य किरीटिनः ।
 प्रताप इव भात्येष ध्वजः कनकनिर्मितः ॥ ६३७ ॥
 यस्यैतत्कूजति धनुः पर्जन्योर्जितगर्जितम् ।
 एषोऽतिकायः प्रवरो रथिनां दृश्यते पुरः ॥ ६३८ ॥
 यश्चात्र हेमसंनाहं रथमारुह्य बल्यति ।
 एष देवान्तको नाम सत्यनामा निशाचरः ॥ ६३९ ॥
 एष मत्तद्विपशिरः शृङ्गाग्रे त्रिशिरास्ततः ।
 एष रक्षःपतेः सूनूर्मकराक्षः क्षपाचरः ॥ ६४० ॥
 एते कुम्भनिकुम्भोग्रमहोदरसुमालिनः ।
 सदा संग्रामयज्ञेषु त्रिदशक्षयदीक्षिताः ॥ ६४१ ॥
 अशेषभुवनध्वंसे प्रचण्डप्रलयानलाः ।
 एते ते रावणामात्याः स्वर्गोलुण्ठनदस्यवः ॥ ६४२ ॥
 सेनाग्रे परिसर्पन्ति ये पद्भ्यां राक्षसप्रभोः ।
 त एते विबुधध्वंससाक्षिणः क्षणदाचराः ॥ ६४३ ॥
 यः सहस्रशलाकेव च्छत्रेण स्वच्छकान्तिना ।
 नीलः शैल इवाभाति शुभ्राभवलयोज्ज्वलः ॥ ६४४ ॥

एष विश्वजयोदग्रः पुलस्त्यो राक्षसैर्वृतः ।
 प्रभूतभूतसंघातैरिव देवः पिनाकभृत् ॥ ६४५ ॥
 स एष सप्तभुवनाक्रान्तिस्वच्छन्दशासनः ।
 जानकीदुःखकोपामिर्दग्धशक्तिर्दशाननः ॥ ६४६ ॥
 तस्यैतच्चन्द्रधवलं कैलासोल्लासजं यशः ।
 त्वद्भूभङ्गेन जलदश्यामलेन निमीलितम् ॥ ६४७ ॥
 एतद्विभीषणेनोक्तं निशम्य रघुनन्दनः ।
 दिवं विलोक्य पौलस्त्यमुवाचोत्फुल्ललोचनः ॥ ६४८ ॥
 अहो प्रभावगम्भीराश्चक्षुर्वाणीमनोमुषः ।
 रक्षःपतिभुजस्तम्भाः सावष्टम्भा विभूतयः ॥ ६४९ ॥
 इयं दूरे कुबेरस्य दुर्लभैव शतक्रतोः ।
 अस्य श्लाघ्यतमा श्रीः स्याद्धर्मेणाच्छुरिता यदि ॥ ६५० ॥
 अहो नु विपरीतेषु विधिरत्यधिकादरः ।
 यः करोत्यायतां लक्ष्मीमयशः स्पर्शदूषिताम् ॥ ६५१ ॥
 प्रायेणासहसामान्यनिर्दोषोत्कर्षसंपदाम् ।
 स्वकृतेष्वपि कौटिल्यं गुणद्विष्टस्य वेधसः ॥ ६५२ ॥
 प्रक्षीणसंचयश्चन्द्रः सापायाः सुखसंपदः ।
 क्रियते क्रियते कर्तुर्निर्विचारस्य वाच्यता ॥ ६५३ ॥
 इति निर्वर्णयन्नामः प्रशशंस दशाननम् ।
 सादराः सापराधेऽपि गुणलुब्धा हि साधवः ॥ ६५४ ॥
 ततः समुदभूद्विश्वप्रलयारम्भभीषणः ।
 पौलस्त्योश्चण्डदोर्दण्डकृष्टको दण्डनिःस्वनः ॥ ६५५ ॥
 कैलासोल्लासनसहैः प्राप्तः पौलस्त्यबाहुभिः ।
 भित्त्वाहतिशरीराणि पातालं विविशुः शराः ॥ ६५६ ॥
 हन्यमानेषु सैन्येषु रावणेन प्रमाथिना ।
 तमभ्यधावद्वेगेन सुग्रीवः पर्वतायुधः ॥ ६५७ ॥

सुग्रीवदोर्युगाक्षिप्तं सपक्षमिव तं गिरिम् ।
 चिक्षेप विशिखैर्वज्रशिखैर्दशमुखः क्षणात् ॥ ६५८ ॥
 शैले शकलतां याते मृत्युदंष्ट्राकरं शरम् ।
 चिक्षेप राक्षसपतिः सुग्रीवायोग्रविक्रमः ॥ ६५९ ॥
 स सर्प इव शूङ्कारी भित्त्वा प्लवगमाशुगः ।
 वलक्षपक्षनिवहः प्रविवेश रसातलम् ॥ ६६० ॥
 शराभिघातव्यथिते पतिते वानरेश्वरे ।
 योद्धुमभ्याययुः सर्वे क्रूराः प्लवगपुंगवाः ॥ ६६१ ॥
 सालतालशिलावृष्टिं तैः क्षिप्तामक्षयां क्षणात् ।
 क्षिप्रकारी दशग्रीवः छित्त्वा चिक्षेप सायकान् ॥ ६६२ ॥
 वज्रवेगैः शरैः क्षिप्तास्तैर्मैन्दद्विविदादयः ।
 क्षितौ निपेतुः सावेगाश्छिन्नमूला इव द्रुमाः ॥ ६६३ ॥
 भग्नेषु कपिसैन्येषु सौमित्रिः शत्रुदारणः ।
 रामशासनमादाय दशकण्ठं समाद्रवत् ॥ ६६४ ॥
 कोपादापतिते तस्मिन्वीरे धुर्ये धनुष्मताम् ।
 हनुमानग्रतो गत्वा लङ्केश्वरमयोधयत् ॥ ६६५ ॥
 तमब्रवीद्दशग्रीवः कपे दर्शय पौरुषम् ।
 विहीनविक्रमं हन्तुं प्रवर्तन्ते न मद्भुजाः ॥ ६६६ ॥
 इत्युक्ते राक्षसेन्द्रेण जगाद पवनात्मजः ।
 किमक्षस्य वधे दृष्टं न त्वया मम पौरुषम् ॥ ६६७ ॥
 निष्पिष्टराक्षसभटो मुष्टिरेष ममोद्यतः ।
 करोत्यद्य शरीरं ते क्षिप्रं प्रोषितजीवितम् ॥ ६६८ ॥
 इति ब्रुवाणं प्लवगं रथोपश्लिष्टमभ्यधात् ।
 दशास्यो दशभिर्हासैः शुग्रीकृत्य दिशो दश ॥ ६६९ ॥
 कपे प्रहर निःशङ्कं निहितस्य ततो मया ।
 तव प्रागल्भ्यजा कीर्तिश्चिरमेषा विजृम्भताम् ॥ ६७० ॥

इत्युक्तः पृथुवेगेन तलेनोरसि मारुतिम् ।
 जघान रावणो येन स मुहूर्तमकम्पत ॥ ६७१ ॥
 सहसैव समाश्वस्तो हनुमान्प्रौढविक्रमः ।
 तलेन वज्रसारेण रक्षःपतिमताडयत् ॥ ६७२ ॥
 तलेनाभिहतस्तेन लोलबाहुर्दशाननः ।
 चचाल व्याकुलतनुर्दशशृङ्ग इवाचलः ॥ ६७३ ॥
 सोऽवदत्साधु ते वीर्यं कपे योग्योऽसि मे रिपुः ।
 मे सारणः प्रहारेण येनाहमसि कम्पितः ॥ ६७४ ॥
 सावलेपं वचः शत्रोः श्रुत्वैतत्पवनात्मजः ।
 जगाद स्वभुजे चक्षुः सासूयं प्रतिपादयन् ॥ ६७५ ॥
 धिग्बलं मम पौलस्त्य लोकलज्जाकरं परम् ।
 यन्न यातोऽसि मन्मुष्टिनिष्पिष्टश्लक्ष्णचूर्णताम् ॥ ६७६ ॥
 इति ब्रुवाणस्यात्युग्रक्रोधान्निर्धूतविश्रुतम् ।
 वेगादपातयन्मुष्टिं कपेर्वक्षसि राक्षसः ॥ ६७७ ॥
 गाढप्रहारसंजातमूर्छां विपुलमानसे ।
 हनूमति दशग्रीवः सावेगं नीलमाद्रवत् ॥ ६७८ ॥
 मारुतिर्लब्धसंज्ञोऽथ सक्तं नीलेन रावणम् ।
 द्वन्द्वयुद्धविधौ धर्मं स्मरं नैनं समाद्रवत् ॥ ६७९ ॥
 ततः शरभरासारैर्विद्धः पावकसंभवः ।
 क्रोधात्प्रज्वलितो नीलः पौलस्त्यायासृजद्विरिम् ॥ ६८० ॥
 तं बाणैर्नवभिश्छित्वा गिरिं वृक्षांश्च रावणः ।
 नीलं शरशतैश्चक्रे मेघच्छन्नमिवाचलम् ॥ ६८१ ॥
 ततो नीलः समाश्रित्य मायामद्भुतविक्रमः ।
 विश्वात्मानमिवात्मानं सर्वत्र समदर्शयत् ॥ ६८२ ॥
 ध्वजे धनुषि बाणान्ते किरीटाग्रे च पावकिम् ।
 दुर्लभं राक्षसपतेर्वीक्ष्य कोपाकुलोऽभवत् ॥ ६८३ ॥

महास्त्रमभिमङ्ग्याशु घोरमाग्नेयमाशुगम् ।
 रक्षश्चिक्षेप नीलाय सप्तलोकक्षयक्षमम् ॥ ६८४ ॥
 वक्षस्यभिहतो नीलस्तेनास्त्रेणोग्रतेजसा ।
 विसंज्ञः प्राप तद्भूमौ पित्रा रक्षितजीवितः ॥ ६८५ ॥
 ततः सौमित्रिरभ्येत्य कर्णान्ताकृष्टकार्मुकः ।
 उवाच रावणं धीरः पादचारी रथस्थितम् ॥ ६८६ ॥
 अभ्येहि राक्षसपते युध्यस्व समरे मया ।
 अभङ्गविक्रमं जेतुं न त्वामर्हन्ति वानराः ॥ ६८७ ॥
 इति वादिनमक्षोभ्यं क्षुब्धचेता दशाननः ।
 अभ्यघाललक्ष्मणं कोपकम्पव्याकुलमण्डलः ॥ ६८८ ॥
 दिष्ट्या मे तापसपशो दृशोर्यातोऽसि गोचरम् ।
 त्वत्संदर्शनपर्यन्तं सत्यं जीवितमद्य मे ॥ ६८९ ॥
 मूकस्येवाभिवादेच्छा पङ्कोरिव जवोद्वृत्तिः ।
 अन्धस्येवादरश्चित्ते श्रद्धा मेऽस्त्येव ते युधि ॥ ६९० ॥
 योद्धुमिच्छसि दर्पान्ध केवलं बालचापलात् ।
 एतैः कैलाशसंघट्टस्पष्टाङ्कविकटैर्भुजैः ॥ ६९१ ॥
 इत्युक्ते राक्षसेन्द्रेण लक्ष्मणः पुनरब्रवीत् ।
 निःसाराणां भवन्त्येव सत्यं वाचि प्रगल्भता ॥ ६९२ ॥
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणक्षिप्तात्रामः सेन्द्रेण सायकान् ।
 चिच्छेद विशिखैस्तीक्ष्णैस्तत्संकल्पानिवायतान् ॥ ६९३ ॥
 ततः सौमित्रिपौलस्त्यपत्रिजालैरवान्तरैः ।
 अदभ्राभ्रैरिव भ्रान्तमेकच्छत्रमभून्नभः ॥ ६९४ ॥
 सायकेनाथ सौमित्रिं ललाटे रावणोऽभिनत् ।
 ब्रह्मदत्तेन सोल्लेखं कर्मणेवाविनाशिना ॥ ६९५ ॥
 कृच्छ्रेण शरनिर्भेदव्यथां संस्तम्भ्य लक्ष्मणः ।
 कृन्तचापं रिपुं चक्रे विशिखाघातमूर्छितम् ॥ ६९६ ॥

संज्ञां प्राप्य दशग्रीवः शक्तिं कालानलोल्वणाम् ।
 ससर्ज लक्ष्मणायोग्रां मूर्तीं शक्तिमिवात्मनः ॥ ६९७ ॥
 ज्वालाजटिलयातस्य शक्त्याभिहतवक्षसः ।
 मुहूर्त्तं वैष्णवो भागः स्वयं स्मृतिपदं ययौ ॥ ६९८ ॥
 विश्वेश्वरांशदृष्टेन सबलेनाभिपूरितः ।
 अभ्येत्य लङ्काधिपतिं जघानोरसि मुष्टिना ॥ ६९९ ॥
 मुष्टिप्रहाराभिहतस्तूर्णमाधूर्णितेक्षणः ।
 जानुभ्यामवनिं गत्वा निपपात दशाननः ॥ ७०० ॥
 च्युते निजाभिमानेन सह त्रिदशविद्विषि ।
 सुरसिद्धर्षिसंघानां बभूवानन्दनिःस्वनः ॥ ७०१ ॥
 ततः समीरणसुतो दोर्भ्यामालिङ्ग्य लक्ष्मणम् ।
 निनाय रावणाभ्यासं मूर्तं जयमिवौर्जितम् ॥ ७०२ ॥
 सापि रक्षःपतेः शक्तिर्जीवशक्तिरिव स्वयम् ।
 अभ्याययौ कृच्छ्रगतं पतिं कुलवधूरिव ॥ ७०३ ॥
 पुनः समुद्यते योद्धुं लब्धप्राणे दशानने ।
 तद्वाणाशनिसंपातैर्वभूवः प्लवगक्षयः ॥ ७०४ ॥
 ततो मारुतिमारुह्य देवस्ताक्षर्यमिवाच्युतः ।
 अभ्याद्रवद्दशग्रीवं चापं विस्फार्य राघवः ॥ ७०५ ॥
 स जहार द्विषां धैर्यं सीतादुःखाब्धिसेतुना ।
 हेतुना विश्वरक्षासु राक्षसक्षयकेतुना ॥ ७०६ ॥
 समुद्दलितपापेन प्रतापेनेव रूपिणा ।
 चापेन शत्रुशपेन क्षिपन्सायकसंचयान् ॥ ७०७ ॥
 तं योद्धुमागतं दृष्ट्वा दर्पविक्रमविस्मितः ।
 रजनीचरराजोऽभूद्भ्रमसीतामनोरथः ॥ ७०८ ॥
 ततः पौलस्त्यविशिखैर्विद्धं दृष्ट्वानिलात्मजम् ।
 त्रौंकारमुखरां मौर्वीं चकर्ष रघुनन्दनः ॥ ७०९ ॥

पेतुः पौलस्त्यगात्रेषु तीक्ष्णा रामशिलीमुखाः ।
 मिथः शौर्यश्रियं दृष्टुं सुंचिराबद्धकौतुकाः ।
 संकल्पा इव चेरुस्ते रामरावणयोः शराः ॥ ७१० ॥
 ततो रामशरोत्कृत्तकेतुर्जेतुर्दिवौकसाम् ।
 पपात संपदां शृङ्गं शार्वोवर इवोन्नतः ॥ ७११ ॥
 चक्रुर्नेमिसमुल्लेखखण्डिताखण्डभूतलम् ।
 रावणस्योन्ममाथाथ रथं दशरथात्मजः ॥ ७१२ ॥
 शरेण निशिताग्रेण पौलस्त्यस्तेन ताडितः ।
 कम्पमानतनुश्चक्रे लोलकुण्डलताण्डवम् ॥ ७१३ ॥
 छिन्नं रामार्धचन्द्रेण किरीटं तस्य भूतले ।
 ऐश्वर्यमिव रत्नाढ्यं पतितं ददृशुः सुराः ॥ ७१४ ॥
 च्युतचापं हतगतिं तमुवाचाथ राघवः ।
 गच्छ श्रान्तोऽसि समरे सकृत्संरक्षितो मया ॥ ७१५ ॥
 आलुलोके तदाकर्ण्य त्रैलोक्यजयगर्वितः ।
 क्षणं निजदुराचार मारनम्रामिव क्षितिम् ॥ ७१६ ॥
 युधिप्रष्टप्रतिष्ठस्य पृष्ठं यस्य सुरासुरैः ।
 न दृष्टं स ययौ स्पष्टं अष्टमानो दशाननः ॥ ७१७ ॥
 निर्जितो न तु तत्याज जानकीसंगमस्पृहाम् ।
 असुभिः सह निर्बन्धो दुर्वृत्तानां निवर्तते ॥ ७१८ ॥
 अहो दुर्नयशस्त्राय कियती तीक्ष्णसारता ।
 यत्प्रभावं छिनत्त्याशु वज्रोल्लेखैरखण्डितम् ॥ ७१९ ॥
 पतिं साध्वीव विगुणं मातेवानुचितं सुतम् ।
 द्वेष्यं वेश्येव दातारं दर्पं नोज्झति मूढता ॥ ७२० ॥
 इति रावणभङ्गः ॥ २४ ॥
 ततो विवेश पौलस्त्यः स्फारं कनकमन्दिरम् ।
 कन्दरं सुरशैलस्य सिंहाक्रान्त इव द्विपः ॥ ७२१ ॥

उपविश्य श्वसन्नन्नप्रदीप्ते काञ्चनासने ।
 उवाच सुचिरं ध्यात्वा राक्षसान्नाक्षसेश्वरः ॥ ७२२ ॥
 अहो ममातितीव्राणि तेजांसि च तपांसि च ।
 व्यर्थंभूतानि देवस्य शासनात्पौरुषद्विषः ॥ ७२३ ॥
 परिनिष्ठितसारेषु प्रभावेषु गुणेषु च ।
 पतिता स्वेच्छया धातुः शक्तिर्वैफल्यकारिणी ॥ ७२४ ॥
 शक्तिसाध्यानि कार्याणि स्वाधीनाः पौरुषश्रियः ।
 अचिन्त्या फलकाले तु सोन्मादस्य विधेर्मतिः ॥ ७२५ ॥
 विपन्ने पौरुषोद्योगे क्रियते कस्य वाच्यता ।
 एवंविधैव प्रायेण वस्तुशक्तिरनिश्चिता ॥ ७२६ ॥
 सततानुभवाभ्यासाल्लोके विस्मृतविस्मयाः ।
 जयन्त्यद्भुतवीर्यस्य कुटिलाः केलयो विधेः ॥ ७२७ ॥
 दधीच्यस्थुद्भवाश्छिन्नाः कुलिशेन कुलाचलाः ।
 कैलासतुल्यकल्लोलः पीतश्च मुनिनाम्बुधिः ॥ ७२८ ॥
 मर्त्येभ्यो भयमेतन्मे सत्यमूचे प्रजापतिः ।
 अयं स नन्दिनिर्दिष्टः कष्टं कपिपराभवः ॥ ७२९ ॥
 सालाट्टालप्रतोलीषु द्वारगोपुरवर्त्मसु ।
 अधुना क्रियतां रक्षा रक्षोभिर्बलवत्तरैः ॥ ७३० ॥
 ब्रह्मशापाभिभूतोऽसौ कुम्भकर्णः प्रबोध्यताम् ।
 जयाशा मे संदा यस्मिन्ननुजे स्वभुजे यथा ॥ ७३१ ॥
 स ममास्मिन्यदि आता व्यसने नोपयुज्यते ।
 तत्तेन स्फारसारेण भूमिभारेण किं वृथा ॥ ७३२ ॥
 इति राक्षसराजेन समादिष्टाः क्षपाचराः ।
 कुम्भकर्णप्रबोधाय विविशुस्तन्निकेतनम् ॥ ७३३ ॥
 ददृशुस्तं प्रविश्योरुरत्नकुट्टिमसंश्रये ।
 महार्हशयने सुप्तं कुम्भकर्णं गिरिप्रभम् ॥ ७३४ ॥

तस्य नामा गुहागर्भनिर्गतैः श्वासमारुतैः ।
 गतागतमभूत्क्षिप्रं तृणानामिव रक्षसाम् ॥ ७३५ ॥
 स शीतचन्दनैर्माल्यैः कीर्णो न बुबुधे यदा ।
 तैस्तदा शङ्खभेरीणां सहस्रैश्चक्रिरे स्वनम् ॥ ७३६ ॥
 ततो रक्षःसहस्राणि रथकुञ्जरवाजिभिः ।
 तस्य विन्ध्यातटे स्फारे चिरं वक्षसि विभ्रमुः ॥ ७३७ ॥
 स तैः समाहतोऽप्युग्रगदामुद्गरतोमरैः ।
 गाढनिद्रां न तत्याज दृप्ततामिव दुर्जनः ॥ ७३८ ॥
 ततस्त्रिदशगन्धर्वसिद्धविद्याधराङ्गनाः ।
 विविशुस्तम्प्रबोधाय गीतवाद्यरवाकुलाः ॥ ७३९ ॥
 तासां पीनस्तनस्पर्शैर्दिव्यचन्दनसौरभैः ।
 मधुरैः काकलीगीतैः कुम्भकर्णो व्यबुध्यत ॥ ७४० ॥
 सर्वथा भ्रूसमुल्लासविलासाञ्चितचक्षुषाम् ।
 प्रगल्भता पुरंध्रीणामसाध्येष्वपि वस्तुषु ॥ ७४१ ॥
 एताः पीयूषहासिन्यः कान्ता कुमुदकोमलाः ।
 सर्वेन्द्रियशिलाभेदकठिना वज्रसूचयः ॥ ७४२ ॥
 नेत्रे ततः समुन्मील्य पातालविपुलाननः ।
 वज्राञ्चितभुजस्तम्भः कुम्भकर्णो व्यजृम्भत ॥ ७४३ ॥
 स स्नात्वा हस्तिमहिषैर्मनुष्यैश्च कृताशनः ।
 पीत्वा कुम्भसहस्राणि रुधिरस्यासवस्य च ॥ ७४४ ॥
 सीतानिकारजं श्रुत्वा घोरं आतुः पराभवम् ।
 उत्थाय निश्चसन्कोपात्प्रययौ द्रष्टुमग्रजम् ॥ ७४५ ॥
 तस्य मेरुशरीरस्य लग्नमर्कपथे शिरः ।
 दृष्ट्वा बहिः स्थिताः सर्वे वानरा दुद्रुवुर्भयात् ॥ ७४६ ॥
 इति कुम्भकर्णप्रबोधः ॥ २५ ॥
 किरीटिनं महाकायं दृष्ट्वा रामः क्षपाचरम् ।

पप्रच्छ भयभङ्गेषु प्लवगेषु विभीषणम् ॥ ७४७ ॥
 किमेतदद्भुततरं लङ्कायां भूतमुत्थितम् ।
 ब्रह्माण्डमण्डपे यातं मानस्तम्भाभिरामताम् ॥ ७४८ ॥
 अयं शरीरवात्सल्ये चिराद्विन्ध्यः समुद्रतः ।
 कर्णकोणे करोत्येष यस्याङ्कः कुण्डलभ्रमम् ॥ ७४९ ॥
 विस्मयादिति रामेण पृष्टः प्रेम्णा विभीषणः ।
 उवाच कुम्भकर्णोऽयं भ्रात्रा कृच्छ्रविबोधितः ॥ ७५० ॥
 एष निर्जितजम्भारिर्जगत्क्षयकृतक्षणः ।
 ब्रह्मणैवै कृतस्वप्नो दीर्घनिद्रां प्रवेशितः ॥ ७५१ ॥
 अनेन तरसा कृष्टो दन्त ऐरावणाननात् ।
 वासवः समरे वीरः प्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥ ७५२ ॥
 उद्यन्तां कपयस्तूर्णं तीव्रत्रासनिवृत्तये ।
 मन्त्र एष कृतो घोरो मायया राक्षसैरिति ॥ ७५३ ॥
 विभीषणस्येति धिया सैन्याब्धौ निर्भये कृते ।
 विवेश रावणं द्रष्टुं कुम्भकर्णो मदोत्कटः ॥ ७५४ ॥
 स प्रणम्य दशग्रीवं चरणालीनशेखरः ।
 प्रबोधकारणं तेन प्रणयेन दशाननः ।
 पृष्टो वभाषे निश्चासैः पूर्वमुक्तमनक्षरम् ॥ ७५५ ॥
 अहो मे दयितो भ्राता दिग्जये प्रथमो भुजः ।
 सुखसुप्तो न जानीषे नवं वैरिपराभवम् ॥ ७५६ ॥
 सीतावियोगग्रस्तेन मनुष्येण पदातिना ।
 अस्मत्प्रभावगम्भीरो नदीनाथः स्थलीकृतः ॥ ७५७ ॥
 क एवं नाम जानीते लोकपालपुरःसरैः ।
 ममापि नगरी लङ्का यत्प्रयत्नेन रक्ष्यते ॥ ७५८ ॥
 अस्यावमानपङ्क्तस्य कलङ्कस्य मलश्रियः ।
 शुद्धिस्त्वं निहतारातिवधूबाष्पम्बुनिर्झरैः ॥ ७५९ ॥

१. 'रुग्णेषु' शा०. २. 'यस्याङ्कः' इति स्यात्. ३. 'गैक' शा०.

इत्युक्ते राक्षसेन्द्रेण कुम्भकर्णोऽभ्यभाषत ।
 हसन्विवृत्तवक्त्रेन्दुर्गुहागम्भीरनिखनः ॥ ७६० ॥
 अहो वत न ते कच्चिद्विपश्चिन्मन्त्रिमण्डले ।
 बभूव घोरव्यसनबाधव्याधिचिकित्सकः ॥ ७६१ ॥
 सत्यं सीतापहारस्य परिहारस्य संपदाम् ।
 पतनं पादपस्येव प्रत्यासन्नमिदं फलम् ॥ ७६२ ॥
 राजन्किमेतत्सचिवैः प्रथमं न विचारितम् ।
 जायते वा विपन्नेऽर्थे सा पूर्वं श्रेयसे मतिः ॥ ७६३ ॥
 देशकालविरुद्धेषु कालेषु निद्रिता मतिः ।
 आहुतिर्मन्त्रहीनेव न फलाय प्रकल्पते ॥ ७६४ ॥
 छन्दानुवर्तिनः पापाहुर्नयेष्वनुवादिनः ।
 मन्त्रिणः शत्रवो राज्ञामज्ञानमुद्ददः परम् ॥ ७६५ ॥
 मूर्खैरहो सहामात्यैः पशुभिः प्रोषितैरिव ।
 आत्मक्षयोद्यतमतिर्भ्राता मम न रक्षितः ॥ ७६६ ॥
 एकस्मिन्विवृते रन्ध्रे प्रविशत्येव पार्थिवम् ।
 हंसश्रेणीव क्रौञ्चाद्रिं घोरानर्थपरम्परा ॥ ७६७ ॥
 अपसारितरक्तस्य पट्टबन्धो महीपतेः ।
 रोगस्येव विभिन्नस्य लाघवायैव केवलम् ॥ ७६८ ॥
 शक्तः कृतोद्यमः शत्रुः स्वेनैवार्थेन तुष्यति ।
 यदि तत्किमयं रामो भवद्भिः समुपेक्षितः ॥ ७६९ ॥
 न कर्णाभ्यर्णमायातं न च लोचनगोचरम् ।
 कदाचित्कस्यचिन्नाम महाब्धौ सेतुबन्धनम् ॥ ७७० ॥
 कथं सेतुर्यशः सेतुर्मर्त्यनाब्धौ विवर्त्यते ।
 प्रसारितः स कालेन दीर्घो बाहुः क्षयप्रदः ॥ ७७१ ॥
 श्रुत्वैतत्कुम्भकर्णस्य वचनं पथ्यमप्रियम् ।
 तमूचे रावणः कोपाद्भुक्कुटीकुटिलाननः ॥ ७७२ ॥

वीरव्रतपरिभ्रष्टं श्रुतं तव मया वचः ।
 आयासितोऽसि मिथ्यैव भजस्व शयनं पुनः ॥ ७७३ ॥
 कथं वृद्ध इवाचार्यः पुनरुक्तानुशासनैः ।
 श्रुतिशूलैः करोषि त्वं व्यथां शुक्तैरिवौषधैः ॥ ७७४ ॥
 निर्दया किमतिक्रान्ते यत्कृतं साध्वसाधु वा ।
 प्रतिक्रिया हि दोषस्य वर्तमानस्य चिन्त्यते ॥ ७७५ ॥
 विचारावसरस्तावद्यावन्न स्फुरितं शरैः ।
 रक्तक्षीबेषु खड्गेषु मन्त्रचिन्तासु कः प्रभुः ॥ ७७६ ॥
 श्रीरक्षणक्षमस्यायमुपदेशस्तु न क्षणः ।
 रजन्यां नेत्रसर्वस्वं दिवा दीपो निरर्थकः ॥ ७७७ ॥
 प्रमादाद्योऽयमस्माभिः सुमार्गो विषमीकृतः ।
 त्वत्प्रभावसमीभूतः स भवत्वद्भुतोदयः ॥ ७७८ ॥
 इति प्रौढप्रकोपस्य आतुराकर्ण्य शासनम् ।
 कुम्भकर्णोऽभ्यधात्क्षिप्रं वैलक्ष्यविनताननः ॥ ७७९ ॥
 आर्य संत्यज्यतामेष शत्रुचिन्ताकृतो ज्वरः ।
 त्वद्भूभङ्ग इवात्युग्रः सज्जोऽहं विश्वसंक्षये ॥ ७८० ॥
 अवश्यं तु हितं वाच्यं यदुक्तोऽसि मया प्रभो ।
 त्रिजगत्क्षयदीक्षासु वयमभ्यधिकादराः ॥ ७८१ ॥
 अधुना मद्भुजस्तम्भन्यस्तशत्रुपरिक्षयः ।
 कान्ताप्रसादनव्यग्रश्चिरं विचर निर्वृतः ॥ ७८२ ॥
 अवानरमसुग्रीवमलक्ष्मणमराधवम् ।
 अद्य लोकं करोम्येष त्वच्छासनपरो रणे ॥ ७८३ ॥
 एक एवाद्य गत्वाहमितो निजभुजायुधः ।
 क्षपयामि परानीकं सर्वे तिष्ठन्तु राक्षसाः ॥ ७८४ ॥
 सोत्सेकं कुम्भकर्णस्य वचः श्रुत्वा महोदरः ।
 उवाच रावणाग्रेऽपि प्रगल्भः कार्यगौरवात् ॥ ७८५ ॥

कथं बाल इवाकाले निःसहायोऽपि चापलात् ।
 जेतुमिच्छसि काकुत्स्थं हन्तारं त्रिदशद्विषाम् ॥ ७८६ ॥
 न ते शौर्यास्पदं गर्वादसंभाव्यं वदन्ति ये ।
 उद्योगकारिणी सत्यमत्युक्तिः फलवर्जिता ॥ ७८७ ॥
 सर्वैः क्षपाचरणैः सह गच्छ रणाङ्गणम् ।
 कुलानुरूपं युध्यस्व विजयस्तु विधेर्वशे ॥ ७८८ ॥
 हतं तु राघवं मिथ्या विश्राव्य जनकात्मजाम् ।
 निराशां स्ववशां देवः करोतु दशकंधरः ॥ ७८९ ॥
 मायायुद्धादयुद्धं वा वरं शिंसास्पदं द्विषाम् ।
 बद्धा हि निधनं मूर्ध्नि युद्धेष्वधीयते मतिः ॥ ७९० ॥
 वाक्यं महोदरस्यैतदाकर्ण्य क्षितिपानुजः ।
 बभ्रुभूभङ्गदीप्तार्चिर्ददाहेव दिशो दश ॥ ७९१ ॥
 स ज्वालाकपिशं शूलं समादाय समुद्ययौ ।
 कल्पान्ते सर्वभूतानामभावायेव भैरवः ॥ ७९२ ॥
 रत्नांशुमण्डितं मूर्ध्नि बबन्ध मुकुटं स्वयम् ।
 तस्य लङ्कापतिः प्रीत्या दीप्तं स्वमिव शासनम् ॥ ७९३ ॥
 आमुक्तकंकटस्यास्य हारं स्फारसितद्युतिम् ।
 चचारोरसि पौलस्त्यकालाद्रेरिव निर्झरम् ॥ ७९४ ॥
 स प्रणम्य दशग्रीवं रथमारुह्य भासुरम् ।
 युक्तं खरसहस्रेण च्छत्रप्राच्छादिताम्बरम् ॥ ७९५ ॥
 वृतो राक्षससैन्येन प्रययौ योद्धुमुद्यतः ।
 धनुःशतपरीणाहषड्व्यामशतविस्तृतः ॥ ७९६ ॥
 तस्य प्रसर्पतो भूमिर्जङ्गमस्येव भूभृतः ।
 चकम्पे भृशमायस्ता चिरं सगिरिकानना ॥ ७९७ ॥
 स दृष्ट्वा वानरानीकं ननाद मदनिर्भरः ।
 भयमाविरभूद्येन भूतानां महतामपि ॥ ७९८ ॥

शिरसा पूरिताकाशमुरसा वृतदिक्तम् ।
 तं दृष्ट्वा वानराः सर्वे संत्रस्ता दुद्रुवुर्दिशः ॥ ७९९ ॥
 भग्नेषु हरिसैन्येषु कुम्भकर्णभयाकुलान् ।
 अभ्यधादङ्गदो मानी नादेन हरियुथपान् ॥ ८०० ॥
 अलं भयेन नः शूरा महाकायो निशाचरः ।
 किं करोत्यधिकं मृत्युरेक एव शरीरिणाम् ॥ ८०१ ॥
 सर्वथा क्षयिणः प्राणास्तृणं येषां यशोर्थिनाम् ।
 न तेषां प्रभवत्युग्रं विच्छिन्नालम्बनं भयम् ॥ ८०२ ॥
 वयं सुसंहताः सर्वे स्थूलाकारं निशाचरम् ।
 शक्ताः प्रापयितुं युद्धे धूर्ता इव वशे स्थितम् ॥ ८०३ ॥
 इत्यङ्गदवरा वीराः परावृत्ताः प्लवङ्गमाः ।
 अभ्ययुः कुम्भकर्णं ते सालतालाचलायुधाः ॥ ८०४ ॥
 सावेगं वज्रसारेषु प्लवंगमभुजौज्जिताः ।
 गुरवो गिरयस्तस्य गात्रेषु कणशो ययुः ॥ ८०५ ॥
 चिक्षेप द्विविदस्तस्मै पर्वतं स्फारकन्धरम् ।
 अप्राप्य कुम्भकर्णं यो निष्पिपेष निशाचरान् ॥ ८०६ ॥
 ततः पद्भ्यां महाकायः प्लवगान्गिरिगौरवः ।
 निष्पिप्य रक्ततटिनीमसृजद्रावणानुजः ॥ ८०७ ॥
 प्रवृत्ते घोरनिर्घोषे समरे हरिरक्षसाम् ।
 न बभूव क्षणं कश्चिन्मनागपि पराङ्मुखः ॥ ८०८ ॥
 प्रभुसंमानभारस्य प्राणैरानृण्यकाङ्क्षिणाम् ।
 ब्रह्मलोकाभिकामानामभूत्तेषां मिथः क्षयः ॥ ८०९ ॥
 अथ प्लवगसैन्यानि मन्थाचल इवाकुलः ।
 ममन्थ पृथुनिर्घोषः कुम्भकर्णो भयंकरः ॥ ८१० ॥
 प्रहारोद्यतहस्तस्य तस्य रूपं प्लवंगमाः ।
 कालस्येवोल्बणं दृष्ट्वा त्रस्ताः सर्वे ययुर्दिशः ॥ ८११ ॥

तेषु भग्नेषु सहसा परिवृत्याङ्गदोऽवदत् ।
 कोऽयं नः संभ्रमाविद्धः संत्रासः स्त्रीजनोचितः ॥ ८१२ ॥
 अहो नु जीवितस्यास्य क्षणसंक्षयिणः कृते ।
 भग्नैर्भवद्विर्विक्रीतं स्वहस्तेनाक्षयं यशः ॥ ८१३ ॥
 क्रियतामचलं चेतः साध्वसं विनिवार्यताम् ।
 कीर्त्यर्थमायुः शूराणां तपोऽर्थं च द्विजन्मनाम् ॥ ८१४ ॥
 नेयं पुण्यविहीनानां पतत्यङ्गेषु संगरे ।
 मोक्षारोहणसोपानपङ्क्तिः खड्गपरम्परा ॥ ८१५ ॥
 रामस्यार्थे भवद्विर्यत्सुग्रीवस्योक्तमग्रतः ।
 तत्सद्यः क्रियतां सत्यं सत्यं वित्तं हि मानिनाम् ॥ ८१६ ॥
 ते जयन्ति जगत्पूज्याः साधवो धर्मबान्धवाः ।
 येषां वसति वक्राब्जे मानः सत्यं सरस्वती ॥ ८१७ ॥
 शूराणां व्रतमेतावद्यद्युद्धे न पराङ्मुखाः ।
 किं तु द्यूत इवैतौ द्वौ भाग्यायत्तौ जयाजयौ ॥ ८१८ ॥
 इत्यङ्गदस्य वचसा परावृत्ते बलार्णवे ।
 पुनर्वभूव तुमुलं युद्धं प्लवगरक्षसाम् ॥ ८१९ ॥
 गवाक्षजाम्ब(म्ब)वल्लीलकुमुदद्विविधा(दा)ङ्गदाः ।
 मैन्दचन्दनमुख्याश्च कुम्भकर्णं समाद्रवन् ॥ ८२० ॥
 तैस्तुल्यं ससृजुस्तस्मै सालतालकुलाचलान् ।
 पपात कुम्भकर्णस्य यैः समुन्मथितो रथः ॥ ८२१ ॥
 विरथः शूलमुद्यम्य स चकार कपिक्षयम् ।
 भुजसंघट्टविस्लिष्टनिष्पिष्टाशेषवानरः ॥ ८२२ ॥
 ततस्तस्मै समभ्येत्य हनुमान्प्राहिणोद्विरिम् ।
 कुम्भकर्णोऽग्रशूलाग्रभिन्नाद्रिः स पपात च ॥ ८२३ ॥
 निशिताग्रेण शूलेन वायुसूनुस्तनान्तरे ।
 आहतः कुम्भकर्णेन ननादासृग्वमन्मुखात् ॥ ८२४ ॥

व्यथिते मारुतसुते विद्रुते वानरार्णवे ।
 शैलं नीलश्च चिक्षेप विक्षिप्तपृथुपादपम् ॥ ८२५ ॥
 स कुम्भकर्णमुष्ट्यग्रताडितो धरणीधरः ।
 निपपात नवैश्वर्यमदोद्धत इवाधमः ॥ ८२६ ॥
 शरभर्षभमुख्यान्स पाणिभ्यां प्रक्षिपन्मुखे ।
 निगीर्यालम्बदन्ताग्रस्तृप्तिं न प्राप राक्षसः ॥ ८२७ ॥
 भक्ष्यमाणेषु सैन्येषु सदैव्येषु महत्स्वपि ।
 राघवं शरणं जग्मुर्भयार्ताः कपियूथपाः ॥ ८२८ ॥
 ततः क्रोधोद्धतगतिः कुम्भकर्णं महाभुजः ।
 जघानाभ्येत्य सुग्रीवश्चैत्यवृक्षेण वक्षसि ॥ ८२९ ॥
 स तेनाभिहतः क्रोधाद्विहस्य विकटाननः ।
 सुग्रीवायासृजद्धोरं शूलं शूलकरं द्विषाम् ॥ ८३० ॥
 शूलं सहस्रैर्भारणां निर्मितं वह्निपिङ्गलम् ।
 पाणिभ्यां जानुसंध्यग्रे बभञ्ज प्लवगेश्वरः ॥ ८३१ ॥
 शूलभङ्गात्प्रकुपितः कुम्भकर्णो ज्वलन्निव ।
 गिरिशृङ्गेण महता निजघान हरीश्वरम् ॥ ८३२ ॥
 तं शैलवेगाभिहतं मूर्छितं पतितं भुवि ।
 आदाय प्रययौ लङ्कां प्रहृष्टो रावणानुजः ॥ ८३३ ॥
 तं प्रयान्तं समालोक्य स्तूयमानं निशाचरैः ।
 दुःखावमानक्रोधान्तः प्रदध्यौ पवनात्मजः ॥ ८३४ ॥
 अहो गृहीतः सुग्रीवो विसंज्ञः शत्रुणा रणे ।
 धिगस्मान्सचिवानस्य मिथ्याबलभुजोर्जितान् ॥ ८३५ ॥
 एष मुष्टिप्रहारेण हत्वाहं क्षणदाचरम् ।
 करोमि गुरुसमानगुरुभारावरोपणम् ॥ ८३६ ॥
 अथवा लब्धसंज्ञोऽथ करोत्येष भुजोर्जितम् ।
 मोक्षितोऽहं परेणेति लज्जां न सहते ध्रुवम् ॥ ८३७ ॥

तस्मान्नास्योत्सहे कर्तुं यशः शीतांशुमेघताम् ।
 करोमि तावत्सैन्यानां भग्नानां विनिवर्तनम् ॥ ८३८ ॥
 इति चिन्ताकुले दोलालोलचित्ते हनूमति ।
 सुग्रीवः शनकैः संज्ञां सुप्तोत्थित इवासवान् ॥ ८३९ ॥
 स विधूय वपुर्वेगादुत्पत्योदग्रविक्रमः ।
 चकर्त कुम्भकर्णस्य कुपितः कर्णनासिके ॥ ८४० ॥
 स कृत्तनासाश्रवणः स्रवद्गुधिरनिर्झरः ।
 भृशं विदारितः पार्श्वे निष्पिपेष क्षितौ कपिम् ॥ ८४१ ॥
 स निष्पिष्टो बलवता राक्षसेन कपीश्वरः ।
 खमुत्पत्य ययौ तूर्णं यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ ८४२ ॥
 ततः पुनः समभ्येत्य कुम्भकर्णो रणाङ्गणे ।
 चकार कदनं घोरं वानराणां तरखिनाम् ॥ ८४३ ॥
 वसारुधिरसिक्ताङ्गो मत्तः कोपेन चाकुलः ।
 वानरैः सह चिक्षेप स वक्त्रे राक्षसानपि ॥ ८४४ ॥
 तं दृष्ट्वा त्यक्तमर्यादं स्वपरग्रामघस्सरम् ।
 त्रस्तानि सर्वभूतानि कालोऽयमिति मेनिरे ॥ ८४५ ॥
 भक्ष्यमाणेषु सर्वेषु तेन स्वेषु परेषु च ।
 तद्वक्त्रश्चविभ्रष्टा ससर्प रुधिरापगा ॥ ८४६ ॥
 ववृधे विपुलोत्सेधं तस्याधिकतरं वपुः ।
 यत्नेनाराध्यमानस्य दौर्जन्यमिव दुर्मतेः ॥ ८४७ ॥
 प्रभग्नेषु प्लवङ्गेषु क्षपितेषु च रक्षसा ।
 अभ्याद्रवत्तमाकृष्य चापं रामः सलक्ष्मणः ॥ ८४८ ॥
 तं शोणिताक्तसर्वाङ्गं प्रदीप्तमुकुटाङ्गदम् ।
 वर्जितं कपिरक्षोभिर्जगाद रघुनन्दनः ॥ ८४९ ॥
 अहो बतासि मोहेन महता क्षणदाचर ।
 स्वान्परांश्च न जानीषे प्रासैश्वर्य इवाधमः ॥ ८५० ॥

एषोऽहं पापवृत्तानां संहारैककृतक्षणः ।
 करोमि त्वां दशास्यस्य यमवर्त्मपुरःसरम् ॥ ८५१ ॥
 इति रामवचः शृण्वन्सौमित्रिशरदारितः ।
 पुष्करावर्तनिर्घोषं प्रहस्योवाच राक्षसः ॥ ८५२ ॥
 नाहं विराधमारीचकबन्धखरवालिभिः ।
 तुल्यः कथं न जानीषे मां निर्जितसुरासुरम् ॥ ८५३ ॥
 काकुत्स्थ कुम्भकर्णोऽहं शक्रादीनां भयंकरः ।
 लोकपालवसादिग्धं पश्य मे घोरमुद्गरम् ॥ ८५४ ॥
 इति तस्य ब्रुवाणस्य शरीरं रामसायकाः ।
 विविशुः कृतरन्ध्रस्य कौञ्चाद्रेरिव सारसाः ॥ ८५५ ॥
 ते रामकार्मुकोत्सृष्टाः खरप्राणहराः शराः ।
 न व्यथा कुम्भकर्णस्य चक्रुः पुष्पमया इव ॥ ८५६ ॥
 सुरसंहारसचिवं स समुद्यम्य मुद्गरम् ।
 राममभ्याद्रवद्धोरं दिक्षु कुर्वन्भुजभ्रमम् ॥ ८५७ ॥
 ततः ससर्ज काकुत्स्थो रौद्रमखं धृताखिलः ।
 विद्धस्य वक्रान्निश्चेरुरर्चिषो येन राक्षसः ॥ ८५८ ॥
 हृदि निर्ममबाणस्य मुद्गरो गिरिगौरवः ।
 स पपात करात्तस्य प्राच्यो जय इवैर्जितः ॥ ८५९ ॥
 ततो भुजायुधः क्रोधान्नष्टसंज्ञ इवाकुलः ।
 घोरं चकार संहारं स पुनः कपिरक्षसाम् ॥ ८६० ॥
 पुनर्मुद्गरमादाय सोऽभ्यधावत्प्लवंगमान् ।
 पादव्यस्तक्षितिः कुर्वन्नवकाशमिवाम्बुधेः ॥ ८६१ ॥
 तं ज्ञात्वा घोरगम्भीरक्षयव्यापारधीरितम् ।
 उवाच लक्ष्मणश्चिन्तासंतप्तः कपियूथपान् ॥ ८६२ ॥
 अथ सर्वे समारुह्य शरीरं भूधराकृतेः ।
 कुर्वन्तु गात्रसंमर्दं भवन्तो गुरुविक्रमाः ॥ ८६३ ॥

लक्ष्मणेनेत्यभिहिते गवाक्षकुमुदाङ्गदाः ।
 जाम्बवद्गजनीलाद्यास्ते समारुरुर्जवात् ॥ ८६४ ॥
 तानारूढान्प्रयत्नेन नवबद्ध इव द्विपः ।
 विधूय गात्रं बलवान्दिक्षु चिक्षेप राक्षसः ॥ ८६५ ॥
 ततः प्रभञ्जनास्त्रेण रामस्तस्य समुद्धरम् ।
 भुजं चिक्षेप सावेगपातनिष्पिष्टवानरम् ॥ ८६६ ॥
 कृत्तवामभुजः सोऽथ वृक्षमुद्यम्य राक्षसः ।
 क्रुद्धोऽभ्यधावत्काकुत्स्थं नादेनाघट्टयन्दिशः ॥ ८६७ ॥
 भुजं ससालं तमपि स्फाराजगरभीषणम् ।
 ऐन्द्रेणास्त्रेण चिच्छेद रामस्तस्याद्रिगौरवम् ॥ ८६८ ॥
 महता पतता तेन दोष्णा निष्पिष्टविग्रहाः ।
 प्रलयं प्रययुर्गोढं संश्लिष्टाः कपिराक्षसाः ॥ ८६९ ॥
 ततश्छिन्नभुजस्यास्य रक्तनिर्झरवर्षिणः ।
 चरणार्धचन्द्राभ्यां चिच्छेद रघुनन्दनः ॥ ८७० ॥
 स कृत्तबाहुचरणः पातालविकृताननः ।
 राममभ्याद्रवद्धोरः सूर्यं राहुरिवाकुलः ॥ ८७१ ॥
 हेमपुङ्खैर्मुखं तस्य शरैः शिखरिदारणैः ।
 अपूरयन्मुहूर्तेन राघवो लाघवोर्जितः ॥ ८७२ ॥
 शक्रदत्तं शरं चास्मै चिक्षेपाशु क्षयंकरम् ।
 यस्तस्य विपुलं वक्षो भित्त्वा भूतलमाविशत् ॥ ८७३ ॥
 ततः प्रचण्डमार्तण्डमण्डलाप्राज्यतेजसः ।
 रामः शिरः शरेणास्य चिक्षेप शिखरोपमम् ॥ ८७४ ॥
 तस्मिन्निपतिते वेगात्स्फारे शिरसि रक्षसः ।
 पेतुश्चूर्णीकृता लङ्काप्राकाराट्टालमेखलाः ॥ ८७५ ॥
 काये निपतिते तस्य पिष्टे प्लवगमण्डले ।
 दिक्षु सूर्यप्रकाशानामवकाशश्चिरादभूत् ॥ ८७६ ॥

उत्पाताभिहते लोके लोलसागरमेखला ।
 लङ्का चकम्प सातङ्का संत्रस्तेव वराङ्गना ॥ ८७७ ॥
 पातिते कण्टके तस्मिन्मुनीनां सदिबौकसाम् ।
 हतो हत इति प्रौढः प्रादुरासीज्जनस्वनः ॥ ८७८ ॥
 इती कुम्भकर्णवधः ॥ २६ ॥
 भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भग्नमानो दशाननः ।
 पपात शोकसंतापमूर्च्छितः काञ्चनासनात् ॥ ८७९ ॥
 तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ देवान्तकनरान्तकौ ।
 त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुस्तत्सुताः शुचा ॥ ८८० ॥
 महोदरमहापार्श्वौ कुम्भकर्णानुजौ नृपम् ।
 दृष्ट्वा निश्चेष्टसर्वाङ्गं शोकतप्तौ बभूवतुः ॥ ८८१ ॥
 कृच्छ्रेण संज्ञमासाद्य शोकशङ्कुशरैर्वृतः ।
 पौलस्त्यः प्रसरद्वाष्पः प्रललापाकुलाशयः ॥ ८८२ ॥
 हा कुम्भकर्ण त्रैलोक्यजययात्रापुरःसर ।
 सुरेन्द्रसेनासरसीविलोडनमहागज ॥ ८८३ ॥
 किं जीवितेन विच्छिन्नजयाशालम्बनस्य मे ।
 कुम्भकर्णश्च्युतो यस्य दक्षिणः सहजो भुजः ॥ ८८४ ॥
 अहो बत मया मोहात्सुखसुप्तो विबोधितः ।
 अपुनर्दर्शनायैव शेते कृतभुजाननः ॥ ८८५ ॥
 किं कृतं विप्रियं भ्रातस्तव प्रणयिनो मया ।
 अस्मिन्व्यसनकाले मां यत्परित्यज्य गच्छसि ॥ ८८६ ॥
 हेलानिर्जितजम्भारिः कथं भुवनमङ्गदः ।
 हतोऽसि युधि मर्त्येन जम्बुकेनेव कुञ्जरः ॥ ८८७ ॥
 अधुना मम का सीता धिग्राज्यं जीवितेन किम् ।
 कुम्भकर्णविहीनस्य हन्त शून्या जगत्रयी ॥ ८८८ ॥
 स्वयं मे दुर्नयतरौ विपाकः फलसंततेः ।
 विभीषणवचो येन तथ्यं पथ्यं च न श्रुतम् ॥ ८८९ ॥

स मया विनयी धीमान्भक्तो आता विवासितः ।
 यद्वाक्यातिक्रमादेष स्वयं प्राप्तः पराभवः ॥ ८९० ॥
 इति प्रलापिनः श्रुत्वा वचनं मानिनः पितुः ।
 उवाच त्रिशिरा दुःखं नियम्यान्तः समुत्थितम् ॥ ८९१ ॥
 एवमेतन्महाराज धर्ममुक्तं यदुक्तवान् ।
 विभीषणस्तद्भवता न गृहीतं हितं पुनः ॥ ८९२ ॥
 अधुना किं प्रलापेन पश्चात्तापेन किं वृथा ।
 अतीतं नानुशोचन्ति साधवो धैर्यसागराः ॥ ८९३ ॥
 त्वदर्थे कुम्भकर्णस्य श्लाघ्यो जीवितसद्ययः ।
 साधुवादस्तनुत्यागे धन्यानामेव जायते ॥ ८९४ ॥
 न ते शोच्याः शुचियशःपूर्णचन्द्रोदयाचलाः ।
 प्रधने निधनं येषां निधनन्यस्तचक्षुषाम् ॥ ८९५ ॥
 क्रियतामुचितं चैव भुजानां विक्रमस्य च ।
 रणे हतानां शूराणां न शोकेन प्रतिक्रिया ॥ ८९६ ॥
 रथो धनुः शराः शौर्यं शक्तिः शक्तिश्च ते दृढा ।
 कुम्भकर्णवधक्रोधः क्षिप्रं शत्रुषु पात्यताम् ॥ ८९७ ॥
 स्थितेष्वस्मासु ते तात विधेयेषु भुजेष्विव ।
 को रामः कश्च सौमित्रिः के वराकाः प्लवङ्गमाः ॥ ८९८ ॥
 इति त्रिशिरसो वाक्यान्मन्दशोके दशानने ।
 अतिकायप्रभृतयस्तथेत्यूचुर्मदोत्कटाः ॥ ८९९ ॥
 ततस्ते निर्ययुर्मूर्ध्ना पितुरादाय शासनम् ।
 महोदरमहापार्श्वौ तत्पितृव्यौ च सानुगौ ॥ ९०० ॥
 ते समासाद्य विपुलं कपिसैन्यमहोदरम् ।
 चक्रिरे शरवर्षेण दुःसहः क्षोभविभ्रमः ॥ ९०१ ॥
 ततः कपिप्रधानानां यातुधानवलैः सह ।
 निर्विभागमभूद्युद्धं शिलाशस्त्रास्त्रदुःसहम् ॥ ९०२ ॥

१. शस्त्रविशेषः. २. सामर्थ्यविशेषः.

रथो रथेन निष्पिष्य कुञ्जरेणैव कुञ्जरः ।
 रक्षसा राक्षसो युद्धे वानरेणैव वानरः ॥ ९०३ ॥
 अथातिकायत्रिशिरौ देवान्तकनरान्तकैः ।
 दारिताः प्लवगाः पेतुश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः ॥ ९०४ ॥
 राक्षसैर्बाध्यमानेषु प्लवगेष्वङ्गदो बली ।
 सुग्रीवशासनात्तूर्णं नरान्तकमुपाद्रवत् ॥ ९०५ ॥
 नर. तकोऽपि तुरगारूढः प्रासं महाजवम् ।
 चिक्षेप वालिपुत्रस्य वक्षसि प्रौढविक्रमः ॥ ९०६ ॥
 स शिलापीठकठिने प्रासस्तस्योरसि क्षणात् ।
 भग्नाननः पपाताग्रे याच्याभङ्गादिबाधनः ॥ ९०७ ॥
 ततस्तस्याङ्गदः कोपात्तुरङ्गं वल्गु वलितम् ।
 चक्रे मुष्टिप्रहारेण शीर्णवक्त्रशिरोधरम् ॥ ९०८ ॥
 निहताश्वोऽभिसृत्याशु क्रोधाक्रान्तो नरान्तकः ।
 जघान मुष्टिना वालिसूनुं मूर्ध्नि बलोत्कटः ॥ ९०९ ॥
 स रक्तनिर्झरोद्गारी धातुसिक्त इवाचलः ।
 मुष्टिना वज्रकल्पेन निजघान नरान्तकम् ॥ ९१० ॥
 इति नरान्तकवधः ॥ २७ ॥
 हते नरान्तके घोरे देवान्तकमहोदरौ ।
 त्रिशिराश्चाङ्गदं क्रुद्धा लब्धलक्षं समाद्रवत् ॥ ९११ ॥
 देवान्तकाय चिक्षेप महापादपमङ्गदः ।
 तं चाशुकारी त्रिशिराश्चकार तिलशः शरैः ॥ ९१२ ॥
 शालशैलावलीं तस्मै प्राहिणोदङ्गदः क्रुधा ।
 बभञ्ज त्रिशिराः क्षिप्रं परिघाग्रेण तामपि ॥ ९१३ ॥
 ऐरावणसमं तत्र समारुह्य सुदर्शनम् ।
 गजं महोदरश्चक्रे तोमरच्छिन्नमङ्गदम् ॥ ९१४ ॥
 देवान्तकेन च जवात्परिघेनाङ्गदो हतः ।

गजदन्तं समुत्पाद्य जघानोरसि तं बली ॥ ९१५ ॥
 वीरैस्त्रिभिस्तैर्युगपत्प्रदीसायुधवृष्टिभिः ।
 राक्षसैरावृतस्तीव्रं न चचालाङ्गदो युधि ॥ ९१६ ॥
 ततः समेत्य हनुमानीलश्च कपियूथपौ ।
 चक्राते तैस्त्रिभिर्युद्धं शिलाशस्त्रास्त्रदुःसहम् ॥ ९१७ ॥
 शरोत्कृत्तमहाशैलं ततो देवान्तकं क्रुधा ।
 मुष्टिपाताहतं चक्रे गतासुं पवनात्मजः ॥ ९१८ ॥
 इति देवान्तकवधः ॥ २८ ॥
 हते देवान्तके नीलः शरैस्त्रिशिरसार्दितः ।
 महोदराय चिक्षेप संज्ञामासाद्य भूधरम् ॥ ९१९ ॥
 स तेन गाढनिष्पिष्टो दुर्लक्षावयवः क्षितौ ।
 निपपात समातङ्गः प्रध्वस्ताङ्कुशतोमरः ॥ ९२० ॥
 इति महोदरवधः ॥ २९ ॥
 हतं पितृव्यमालोक्य त्रिशिराः क्रोधमूर्छितः ।
 शरैश्चकार कदनं वानराणां तरस्विनाम् ॥ ९२१ ॥
 स शक्तिं वायुपुत्राय प्राहरत्प्राणहारिणीम् ।
 तमापतन्तीमादाय बभञ्ज पवनात्मजः ॥ ९२२ ॥
 शक्तिभङ्गक्रुधा खड्गमाकृष्ट क्षणदाचरः ।
 आजघानोरसि स्फारे हनुमन्तं महाभुजः ॥ ९२३ ॥
 खड्गप्रहारकुपितः सोऽथ वक्षसि राक्षसम् ।
 निजघान तलाग्रेण वज्रनिष्पेषपातिना ॥ ९२४ ॥
 स तेनाभिहतः कोपान्निपपात च्युतायुधः ।
 भ्रान्तां वसुमतीं पश्यन्मूर्छितः कनकप्रभाम् ॥ ९२५ ॥
 हत्वा निपतितस्यास्य करवालं करात्कपिः ।
 शिरांसि त्रीणि चिक्षेप शिखराणीव भूभृतः ॥ ९२६ ॥
 इति त्रिशिरोवधः ॥ ३० ॥

हते त्रिशिरसि क्रुद्धो महापार्श्वः प्रतापवान् ।
 गुर्वी गदां समुद्यम्य निष्पिपेष प्लवंगमान् ॥ ९२७ ॥
 ऋषभस्योरसि गदां स तां त्रिदशभङ्गदाम् ।
 अपातयद्यथा संज्ञां कृच्छ्रेण कपिरासवान् ॥ ९२८ ॥
 जवेनास्य गदां हत्वा वानरो वरुणात्मजः ।
 तथा जघान येनासौ मूर्छितः प्रापतद्व्यसुः ॥ ९२९ ॥
 इति महापार्श्ववधः ॥ ३१ ॥
 अतिकायो रथेनाथ सहस्राश्वेन नादिना ।
 राहुध्वजेन महता धन्वी राममुपाद्रवत् ॥ ९३० ॥
 तमापतन्तमालोक्य रत्नाङ्गदकिरीटिनम् ।
 ऊचे विभीषणं रामः कोऽयं शौर्यार्जिताकृतिः ॥ ९३१ ॥
 विभीषणस्तमवदत्पौलस्त्यस्यायमग्रजः ।
 अतिकायो महोत्साहः प्रजापतिवरोर्जितः ॥ ९३२ ॥
 एष धैर्यनिधिर्धोमान्सुवृत्तः श्रुतवान्वशी ।
 धर्मे नित्यं नये मन्त्रे सत्ये सत्त्वे च विश्रुतः ॥ ९३३ ॥
 अवध्यः सर्वभूतानां तरस्वी मानिनीसुतः ।
 गायन्ति यस्य चरितं दिवि देवमृगीदृशः ॥ ९३४ ॥
 उक्ते विभीषणेनेति चिरं रामस्तमैक्षत ।
 गुणलुब्धा विरुद्धेऽपि सादरा एव साधवः ॥ ९३५ ॥
 अतिकायोऽथ निःशस्त्रमग्रभीतपराङ्मुखान् ।
 वर्जयन्पुद्ध्यमानानां चकार समरे क्षयम् ॥ ९३६ ॥
 तेनाहेतेषु सैन्येषु शरैरशनिदारुणैः ।
 भैन्दद्विविदमुख्यानां बभूवापूर्वसंभ्रमः ॥ ९३७ ॥
 तमभ्येत्याथ सौमित्रिरमित्रं त्रिदिवौकसाम् ।
 पात्रीचकार बाणानां दीप्तानामिव मन्युना ॥ ९३८ ॥
 अतिकायभुजोत्सृष्टान्सायकान्स्तम्भसन्निभान् ।

चिक्षेप लक्ष्मणः क्षिप्रं वज्राश्रिनिशितैः शरैः ॥ ९३९ ॥
 तस्य ज्यातलघोषेण निर्घोषेणाशनेरिव ।
 बभूव रक्षसां कोऽपि कम्पः कपिमदप्रदः ॥ ९४० ॥
 असकृद्विनिकृत्तेषु लक्ष्मणेनाशुकारिणा ।
 शरैः शरसहस्रेषु विस्मितोऽभून्निशाचरः ॥ ९४१ ॥
 सोऽथ सौमित्रिणा गाढं ललाटे पत्रिणा हतः ।
 श्रमस्तस्मारुणोष्णीष इवाभूद्भूरिशोणितः ॥ ९४२ ॥
 रक्षसा सायकेनाथ हतो वक्षसि लक्ष्मणः ।
 पुष्यच्छत्र इवाशोकश्चकाशे रुधिरोक्षितः ॥ ९४३ ॥
 अथाग्नेयं ससर्जसै महास्त्रं राघवानुजः ।
 तच्चातिकायः सौरेण चकारास्त्रेण निष्फलम् ॥ ९४४ ॥
 ऐषीकमभिमन्त्र्यास्त्रं जघानास्त्रेण लक्ष्मणः ।
 आग्नेयं पवनास्त्रेण प्रतिजघ्ने च तद्विपुः ॥ ९४५ ॥
 ततः सौमित्रिनिर्मुक्ता पत्रिणो वज्रघातिनः ।
 अतिकायस्य कवचे ब्राह्मे भग्नाः क्षितिं ययुः ॥ ९४६ ॥
 ब्रह्मदत्तवरं रक्षो ब्रह्मास्त्रेणैव बाध्यते ।
 इति कर्णे समभ्येत्य लक्ष्मणं मारुतोऽभ्यधात् ॥ ९४७ ॥
 अथ प्रादुश्चकारास्त्रं ब्राह्मं दशरथात्मजः ।
 त्रैलोक्यत्रासगुरुणा येन विश्वमकम्पत ॥ ९४८ ॥
 तदस्त्रमतिकायस्य दीप्तायुधपरम्पराम् ।
 हत्वा जहाराशु शिरः स्फुरन्मुकुटकुण्डलम् ॥ ९४९ ॥
 अतिकाये निपतिते शिखरे त्रिदशद्विषाम् ।
 ययौ सहस्रधा क्षिप्रं श्वभ्रम्रष्टेव वाहिनी ॥ ९५० ॥
 इत्यतिकायवधः ॥ ३२ ॥
 श्रुत्वातिकायप्रमुखान्निहतान्नावणः सुतान् ।
 आतारौ च महावीरौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ ९५१ ॥

शोकमन्युसमाविष्टः कष्टं व्यसनमाश्रितः ।
 शुशोच साश्रुनयनः काले फलति दुर्नयः ॥ ९५२ ॥
 तमुवाचेन्द्रजिद्वीरः शेखरस्त्रिदशद्विषाम् ।
 तात विक्रमकालेऽस्मिन्न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ९५३ ॥
 शत्रुक्षये भुजाधीने बाष्पैर्नारीजनोचितैः ।
 हासायसनमात्मानं कुर्वते हितमानिनः ॥ ९५४ ॥
 चिन्ता तवापि निर्मग्ना यदि शत्रुकृता हृदि ।
 तत्किमेभिर्यशोभिर्मे मिथ्याशत्रुजयोजितैः ॥ ९५५ ॥
 अद्य लोकं विधायाहमवानरमराधवम् ।
 अवमानोदधेः पारं गच्छाम्यायुधसेतुना ॥ ९५६ ॥
 मेघनादो निगद्येति तूर्णं गत्वा निकुम्भिलाम् ।
 असितच्छागकण्ठास्त्रैर्वहिं हुत्वा च पूर्ववत् ॥ ९५७ ॥
 जगामान्तर्हितो युद्धमहीं ब्रह्मास्त्रदुर्जयः ।
 जगत्प्रलयसंक्षोभं सहसा दर्शयन्निव ॥ ९५८ ॥
 अदृश्यत ततो रात्रिः संहारसहचारिणी ।
 तस्य मायेव दुर्लक्ष्या कालरात्रिर्वनौकसाम् ॥ ९५९ ॥
 घोरा हरिशरीरेषु शस्त्रपातपरम्परा ।
 पपात वितता व्योम्नः सर्वतः प्राणहारिणी ॥ ९६० ॥
 प्रवरेषु प्लवङ्गेषु शरशूलपरश्वधैः ।
 राक्षसैर्भाव्यमानेषु निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥ ९६१ ॥
 छिन्नजानुशिरोग्रीवैश्च्युतपादशिरोरुभिः ।
 पतितैर्वानरवरैर्दुःसंचारा बभूव भूः ॥ ९६२ ॥
 नलनीलमुषेणेषु कुमुदद्विविदादिषु ।
 गवाक्षगजमुख्येषु निहतेषु तरस्त्रिषु ॥ ९६३ ॥
 हतशेषेषु भग्नेषु शस्त्रवृष्टिर्निरन्तरा ।
 एकीभूता पपातेव रामलक्ष्मणयोर्युधि ॥ ९६४ ॥

निहते वानरानीके शरैराच्छादिताकृतिः ।
 जगाद लक्ष्मणं रामः शस्त्रवृष्टिविदारितम् ॥ ९६५ ॥
 पश्य शक्रजितो युद्धं ब्रह्मास्त्रेण प्रमाथिना ।
 निरुद्धे भुवनालोके ककुभः संहता इव ॥ ९६६ ॥
 अहो वत ममानेन सैन्यं निर्दलितं क्षणात् ।
 पक्वं क्षेत्रमिवाकाले मेघेनाशनिवर्षिणा ॥ ९६७ ॥
 निःसंचारा दिशः सर्वा अदृश्या व्योम्नि राक्षसाः ।
 ब्रह्मास्त्रमप्रतिहतं नात्र विद्मः प्रतिक्रियाम् ॥ ९६८ ॥
 इति ब्रुवाणः प्रसभं रामः शस्त्रास्त्रसंचयैः ।
 विदारितः स सौमित्रिर्निश्चेष्टः समपद्यत ॥ ९६९ ॥
 कृत्वा तदद्भुतं युद्धं शक्रजिद्विजयोजितः ।
 प्रविश्य लङ्कां विदधे हर्षमानोत्सवं(?) पितुः ॥ ९७० ॥
 इतीन्द्रजिद्युद्धम् ॥ ३३ ॥
 घोरे तस्मिन्निरालोके निःशब्दे यामिनीमुखे ।
 कपिसैन्ये निपतिते प्रसुप्त इव भूतले ॥ ९७१ ॥
 एको विभीषणस्तत्र धीरः सह हनूमता ।
 संचचार हतान्द्रष्टुं प्रज्वाल्योल्कां शराकुलः ॥ ९७२ ॥
 सुग्रीवाङ्गदमुख्यानां प्लवगानां प्रहारिणाम् ।
 सप्त संनिहताः कोट्यः कपीनां तत्र राक्षसैः ॥ ९७३ ॥
 तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरौ वायुपुत्रविभीषणौ ।
 जाम्बवन्तं ददृशतुः किञ्चिदालक्ष्यजीवितम् ॥ ९७४ ॥
 शरतल्पगतं वृद्धं मर्मच्छेदव्यथातुरम् ।
 तं सुप्तकरणग्रामं धीमानृचे विभीषणः ॥ ९७५ ॥
 कच्चिदार्यं तव प्राणास्तिष्ठन्ति दलिताकृतेः ।
 विलुप्तविभवस्यान्ते सुहृदः सज्जना इव ॥ ९७६ ॥

१. 'मेघनादेन वर्षिणा' शा०. २. 'हर्ष मानो' स्यात्.

विभीषणवचः श्रुत्वा कण्ठप्राप्ताल्पजीवितः ।
 तं शनैर्जाम्बवानूचे कृच्छ्रेणाल्पतरस्वनः ॥ ९७७ ॥
 त्वत्संगमो मे पौलस्त्य दिष्ट्या प्रचलितायुषः ।
 त्वां स्वरेणाभिजानामि न तु पश्यामि चक्षुषा ॥ ९७८ ॥
 इष्टसंदर्शनं दानं सुकृतोदीरणं जनैः ।
 दीर्घप्रवासे प्राणानां दुःखसंमार्जनं परम् ॥ ९७९ ॥
 कच्चिज्जीवति तेजस्वी हनुमान्वायुनन्दनः ।
 कच्चिन्नु तद्विरहितं निरालोकमिदं जगत् ॥ ९८० ॥
 इति क्षपाचरः श्रुत्वा वचस्तस्य विभीषणः ।
 तमुवाच धियो ज्ञातुं मारुतेरेव शृण्वतः ॥ ९८१ ॥
 अहो बत वयं सर्वे निरपेक्षाः स्वजीविते ।
 ययोरर्थे न तौ कस्मादार्यं पृच्छसि राघवौ ॥ ९८२ ॥
 प्रभुं सुग्रीवमुत्सृज्य युवराजं तथाङ्गदम् ।
 दयितान्सुहृद्भ्रान्तान्कस्मात्पृच्छसि मारुतिम् ॥ ९८३ ॥
 तस्मिन्संनिहिते रामः सर्वथा कुशलास्पदाम् ।
 तस्मिन्हते हतं सैन्यं तस्मिज्जीवति जीवति ॥ ९८४ ॥
 श्रुत्वैतद्वचनं तस्य यथार्थं रावणानुजः ।
 उवाच जीवन्नेष त्वां हनुमान्द्रष्टुमागतः ॥ ९८५ ॥
 ततोऽभिवाद्य हनुमाञ्जाम्बवन्तं यशोनिधिः ।
 ततो बभूव निष्यन्दस्तद्व्यथाव्यथितेक्षणः ॥ ९८६ ॥
 वायुसूनुं स्थितं ज्ञात्वा धृतिमासाद्य जाम्बवान् ।
 तमुवाच परं पारं प्राप्तः शोकोदधेरिव ॥ ९८७ ॥
 एषेहि हरिशार्दूल गात्रं मे स्पृश पाणिना ।
 दिष्ट्या त्वामक्षततनुं पश्याम्यानन्दबान्धवम् ॥ ९८८ ॥
 सुग्रीवाङ्गदमुख्यानां कपीनां राघवस्य च ।
 घोरे विनाशकालेऽस्मिस्त्वमेवैकः परायणम् ॥ ९८९ ॥

सुकृतस्य विवेकस्य हेमः साधुजनस्य च ।
 उपयोगो विशेषेण कृच्छ्रकाले शरीरिणाम् ॥ ९९० ॥
 विलङ्घ्य जलधिं धीरो हिमवन्तं च भूधरम् ।
 सुवर्णशृङ्गमृषभं कैलासशिखरं तथा ॥ ९९१ ॥
 दीप्तौषधिं गिरिं दिव्यं तन्मध्ये प्राप्य दुर्गमम् ।
 औषधीर्भासराकाराश्चतस्रस्तूर्णमाहर ॥ ९९२ ॥
 विशल्या जीवनी वर्णा संधिनी चेति तास्त्वया ।
 इहानीताः करिष्यन्ति व्यसनेऽस्मिन्प्रतिक्रियाम् ॥ ९९३ ॥
 इति जाम्बवतो वाक्यं निशम्य पवनात्मजः ।
 तथेत्युक्त्वा ययौ क्षिप्रमुरुवेगहताचलः ॥ ९९४ ॥
 नभसा व्रजतस्तस्य नादेनाकल्पकारिणा ।
 लङ्कायां रक्षसां कोऽपि बभूव प्रलयभ्रमः ॥ ९९५ ॥
 स हिमाचलमासाद्य व्याप्तं मुनितपोधनैः ।
 ब्रह्मकोशं पदं धाम्नां रजताद्रिं च सिद्धिदम् ॥ ९९६ ॥
 शकालयं रुद्रनगं प्रमोक्षं तुरगाननम् ।
 ब्रह्मशीर्षं यमस्थानं वज्रं वैश्रवणालयम् ॥ ९९७ ॥
 सूर्यधाम ब्रह्मपदं कार्मुकं च पिनाकिनः ।
 नासां वसुंधरायाश्च कैलासं स हिमाचलम् ॥ ९९८ ॥
 स विलङ्घ्य समादाय दीप्तमौषधिपर्वतम् ।
 तूर्णं तद्ग्रहणत्रासात्सहसान्तर्हितौषधम् ॥ ९९९ ॥
 तदन्तर्धानकुपितो नादेनावृत्य रोदसीम् ।
 स शृङ्गमौषधिगिरेरुत्पाद्य प्रययौ जवात् ॥ १००० ॥
 मुहूर्तेन समासाद्य स्वसैन्यं तेजसां निधिः ।
 दिशो वितिमिराः सर्वाश्चकारौषधिरश्मिभिः ॥ १००१ ॥
 अथौषधीनां गन्धेन विशल्यौ रामलक्ष्मणौ ।
 रूढव्रणौ क्षणात्संज्ञां नष्टशोकाववापतुः ॥ १००२ ॥

आमोदेनौषधिगिरेर्विप्रकीर्णेन वायुना ।
 वानरेषु विशल्येषु क्षिप्रं सुप्तोत्थितेष्विव ॥ १००३ ॥
 हनुमान्कृतकार्यस्तं दीप्तमौषधिशेखरम् ।
 गत्वा निजपदे तूर्णं निक्षिप्य पुनराययौ ॥ १००४ ॥
 इत्यौषध्यानयनम् ॥ ३४ ॥
 ततः प्रहृष्टाः प्लवगाः परिष्वज्य परस्परम् ।
 नादेन चक्रिरे क्षोभं राक्षसक्षयशंसिना ॥ १००५ ॥
 ते शासनं समासाद्य सुग्रीवस्य महौजसः ।
 उल्कासहस्रैः प्रज्वालय दीप्तां लङ्कां प्रचक्रिरे ॥ १००६ ॥
 क्रोधेनेव प्लवङ्गानां निशि सा ज्वालिता पुरी ।
 चुक्रोश विद्रुवत्कान्तारशनानूपुरैरिव ॥ १००७ ॥
 बहेश्चटचटारावं मुखरस्य प्रधावतः ।
 उत्सवे प्राकृतस्येव संरम्भोऽभूदितस्ततः ॥ १००८ ॥
 मणिवेश्मसु हृद्येषु प्रासादेषु परेषु च ।
 ज्वालाहस्तैर्मुहुश्चक्रे संविभागमिवानलः ॥ १००९ ॥
 जलाशयेभ्यः सलिलं प्रतिबिम्बाम्बिपिङ्गलम् ।
 समादातुमपि प्राप्तौ न पस्पर्श भयाज्जनः ॥ १०१० ॥
 दीप्ता रामप्रतापेन पुनरुक्तेन चाग्निना ।
 निशीथे विवभौ लङ्का तटे हेमगिरेरिव ॥ १०११ ॥
 अनिलोद्धूलितज्वालाकलापवदनोऽनलः ।
 दग्धा न वेति नगरी ददर्शेति पुनः पुनः ॥ १०१२ ॥
 तेन बहिप्रकाशेन दिगन्तालोककारिणा ।
 ग्रस्तेव क्षणदा क्षिप्रं रक्षसां पक्षपातिनी ॥ १०१३ ॥
 ततः प्रदीप्तामालोक्य प्राकाराट्टालमालिकाम् ।
 लङ्कानल इव क्रोधात्प्रज्ज्वाल दशाननः ॥ १०१४ ॥
 तथा सैन्येन महता तद्गिरा कुम्भकर्णजौ ।
 निकुम्भकुम्भौ संग्रामं जग्मतुर्भङ्गदौ द्विषाम् ॥ १०१५ ॥

घोरैः प्रवृत्ते समरे रक्षसां वानरैर्निशि ।

उन्मीलिता इव दिशो बभुर्दोसायुधांशुभिः ॥ १०१६ ॥

निर्मर्यादे रणे तस्मिन्नाविष्टेषु भटेष्विव ।

कम्पनः कम्पितारातिर्जघान गदयाङ्गदम् ॥ १०१७ ॥

गदाभिघातपतितः समाश्वस्य प्लवङ्गमः ।

१..... ।

बाणेनाकर्णकृष्टेन विव्याध द्विविधं(दं) हृदि ॥ १०१८ ॥

द्विविधे(दे) भूधराकारे विह्वले पतिते भुवि ।

मैन्दः शिलां समुद्यम्य कुम्भमत्याद्रवद्रुषा ॥ १०१९ ॥

क्षिप्तां तां तेन बलिना शिलां विपुलविग्रहः ।

जघान पञ्चभिर्बाणैः कुम्भो मैन्दं च पन्निषा ॥ १०२० ॥

मूर्छिते पतिते भूमौ मैन्दे हृदि शराहते ।

अङ्गदो मातुलस्नेहात्कुम्भाय प्राहिणोद्गुमम् ॥ १०२१ ॥

कुम्भश्छित्त्वा शरैस्तूर्णं तरुशैलपरस्पराम् ।

अङ्गदं विदधे धन्वी स्रवद्रुधिरनिर्झरम् ॥ १०२२ ॥

शराभिघाताकुलिते मूर्छिते वालिसंभवे ।

कुम्भमभ्याद्रवत्कोपात्कपयो जाम्बवन्मुखाः ॥ १०२३ ॥

ते कुम्भशरवर्षेण वृता निःस्पन्दविग्रहाः ।

नैवाभिमुखमाजग्मुः प्रययुर्न च लज्जया ॥ १०२४ ॥

ततोऽभिपत्य सुग्रीवः सालतालशिलाशतैः ।

क्षिप्तैश्चकार ककुभः कुम्भक्रोधान्निरन्तराः ॥ १०२५ ॥

छित्त्वा द्रुमशिलाः कुम्भः शरैरापूर्य सर्वतः ।

वीरश्चकार सुग्रीवं सूर्यं मैघैरिवावृतम् ॥ १०२६ ॥

सुग्रीवो रथमाप्लुत्य कराभ्यां तस्य कार्मुकम् ।

द्विधा विधाय प्रोवाच धीरो युध्यस्व राक्षसौ ॥ १०२७ ॥

१. त्रुटिचिह्नं तु पुस्तकेषु न दृश्यते, तथापि संदर्भभङ्गेनानुमीयते त्रुटिः.

रावणाभ्यधिकं दर्पे कुम्भकर्णाधिकं बले ।
 मेघनादाधिकं शौर्ये जानामि त्वां निशाचर ॥ १०२८ ॥
 पश्य मे भुजयोर्वेगं वज्रनिष्पेषगौरवम् ।
 इति ब्रुवाणं सुग्रीवं मुष्टिना राक्षसोऽवधीत् ॥ १०२९ ॥
 मुष्टिप्रहारपिष्टास्थिसंजाताग्निः कपीश्वरः ।
 मुष्टिनैवोग्रवेगेन जघान क्षणदाचरम् ॥ १०३० ॥
 मुष्टिघातेन निर्भिन्नः कुलिशेनेव भूधरः ।
 पपात भूतले कुम्भः प्रभूतोद्भूतशोणितः ॥ १०३१ ॥
 इति कुम्भवधः ॥ ३५ ॥
 सुग्रीवेण हते कुम्भे निकुम्भः कपिवाहिनीम् ।
 पिपेष परिघाघातैर्धोरनिर्धोषभीषणः ॥ १०३२ ॥
 अपातयत्स परिधं दृढं वक्षसि मारुतेः ।
 विपुलापातवेगेन सहसा शतधा गतम् ॥ १०३३ ॥
 गाढप्रहारामिहतश्चकम्पे पवनात्मजः ।
 कैलाश इव पौलस्त्यभुजस्तम्भसमुद्धृतः ॥ १०३४ ॥
 व्यथां संस्तम्भ्य हनुमान्मुष्टिना क्षणदाचरम् ।
 निजघानास्थिनिष्पेषजातज्वालाजटाजुषा ॥ १०३५ ॥
 मुष्टिघाताहतः कोपान्निकुम्भः पवनात्मजम् ।
 जहार भुजबन्धेन बद्धागाढनिपीडितम् ॥ १०३६ ॥
 स रक्षसा गृहीतोऽपि मुष्टिना तमताडयत् ।
 तत्पीडितेन तेनासौ विमुक्तो भुजपञ्जरात् ।
 पृष्ठे निपतितं चक्रे व्यसुं भग्नशिरोधरम् ॥ १०३७ ॥
 इति निकुम्भवधः ॥ ३६ ॥
 हते निकुम्भे भूतानां भयस्थाने हनूमता ।
 प्लवङ्गसंगरे भङ्गः कोऽप्यभूत्पिशिताशिनाम् ॥ १०३८ ॥
 ततः सैन्येन महता वृतो रावणशासनात् ।
 अभ्याययौ खरसुतो मकराक्षः क्षपाचरः ॥ १०३९ ॥

स शरैरशनिस्पर्शैर्विदार्य हरिवाहिनीम् ।
 क रामः क च सौमित्रिरित्यपृच्छन्परान्मुहुः ॥ १०४० ॥
 ततो राघवमासाद्य कर्णान्ताकृष्टकार्मुकम् ।
 सोऽब्रवीदद्य गच्छामि पारं पितृवधात्क्रुधः ॥ १०४१ ॥
 शरवृष्टिं तदुत्सृष्टां छित्त्वा रामः शितैः शरैः ।
 सूतं रथं धनुश्चास्य चिच्छेदाद्भुतविक्रमः ॥ १०४२ ॥
 स शूलं राघवायोग्रं चिक्षेप ज्वलनप्रभम् ।
 ददृशुस्त्रिदशास्तच्च कृत्तं रामशरैस्त्रिभिः ॥ १०४३ ॥
 शूलभङ्गक्रुधा क्षिप्रं मुष्टिमुद्यम्य राक्षसः ।
 दष्टौष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति गर्जनराघवमाद्रवत् ॥ १०४४ ॥
 ततः प्रादुश्चकारोग्रमखं रामो विभावसोः ।
 निर्भिन्नहृदयो येन निपपात निशाचरः ॥ १०४५ ॥
 इति मकराक्षवधः ॥ ३७ ॥
 मकराक्षे हते कोपादिन्द्रजिद्विजयोजितः ।
 पुनरभ्याययौ युद्धभुवं रक्षोबलैर्वृतः ॥ १०४६ ॥
 आवृते राक्षसानीके बद्धप्लक्षैः प्लवंगमैः ।
 चकार तेषां संहारं क्रुद्धो रुद्र इवेन्द्रजित् ॥ १०४७ ॥
 एकेनैकेन बाणेन वानरान्नव सप्त च ।
 दारयन्प्रधने धन्वी यातुधानश्चचार सः ॥ १०४८ ॥
 गन्धमाघ(द)नमुख्येषु नलनीलाङ्गदादिषु ।
 तद्बाणभिन्नदेहेषु विद्रुतेषु दिशो दश ॥ १०४९ ॥
 पुनः प्रविश्य नगरं पितुरादाय शासनम् ।
 पूर्वोक्तेनैव विधिना हुत्वा तूर्णं हुताशनम् ॥ १०५० ॥
 अन्तर्हितः स्वमुत्पत्य रथी ब्रह्मास्त्रदुर्जयः ।
 प्रययाविन्द्रजिद्वीरो यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥ १०५१ ॥
 स ववर्ष शरासारं तयोरुपरि दुःसहम् ।
 येन बाणमयो लोकः क्षणेनाभून्निरन्तरः ॥ १०५२ ॥

रामसौमित्रिविशिखैरनासादितराक्षसैः ।
 निर्वृते शस्त्रसंघाते विस्मयोऽभूद्विकसाम् ॥ १०५३ ॥
 ततो निर्विविरेर्धोरैः शरैः शिखरिभेदिभिः ।
 इन्द्रजिह्मजनिर्मुक्तैस्तावद्वयौ बभूवतुः ॥ १०५४ ॥
 सर्वभूतक्षयभयान्निवार्य करुणानिधिः ।
 ब्रह्मास्त्रं नाम सौमित्रिं रामः सेहे शरोत्करम् ॥ १०५५ ॥
 रथे मायामयीं सीतां कृत्वा कपटविग्रहः ।
 अथेन्द्रजित्कृपाणेन कृपणां हन्तुमुद्ययौ ॥ १०५६ ॥
 गिरिशृङ्गं समुद्यम्य तं मारुतिरभिद्रुतः ।
 ददर्श मेरुसंभ्रान्तस्तत्सीतावधवैशसम् ॥ १०५७ ॥
 घोरं नृशंस पापिष्ठ विषमं कर्म मा कृथाः ।
 इति ब्रुवाणो हनुमान्साश्रुनेत्रस्तमाद्रवत् ॥ १०५८ ॥
 सानुगं मारुतसुतं कोपादावार्य सायकैः ।
 खड्गेन हत्वा साक्रन्दां सीतां चिक्षेप राक्षसः ॥ १०५९ ॥
 इति मायासीतावधः ॥ ३८ ॥
 तदृष्ट्वा मलिनं कर्म मारुतिः पिशिताशिनः ।
 उत्ससर्ज जवात्प्राज्यभुजः शैलोपमां शिलाम् ॥ १०६० ॥
 तां दृष्ट्वेन्द्रजितः सूतो रथं वश्यतुरङ्गिणम् ।
 हित्वा दूरापसारेण व्यक्तां चक्रे महाशिलाम् ॥ १०६१ ॥
 सा दुराशेव विपुला शिला निष्फलतां गता ।
 भूमिं भित्त्वासिवेगेन गुर्वीं पातालमाविशत् ॥ १०६२ ॥
 क्रोधशोकाभिभूतानां हरीणां सह राक्षसैः ।
 शरीरनिरपेक्षाणां घोरं युद्धमवर्तत ॥ १०६३ ॥
 ततो निकुम्भिलां गत्वा होमं कर्तुं प्रचक्रमे ।
 महारम्भेण विधिना विजयायेन्द्रजिद्विषाम् ॥ १०६४ ॥
 प्रजज्वालानलस्तस्य यागे मन्त्राभिसंस्कृतः ।
 दैत्यशोणितसंसिक्तस्फुरदिन्द्रायुधद्युतिः ॥ १०६५ ॥

सर्वात्मना सन्निविष्टान्प्राणत्यागकृतक्षणान् ।
 वध्यमानान्कपिवरानुवाच पवनात्मजः ॥ १०६६ ॥
 उत्सृज्य राक्षसभयं नियतध्वं प्लवङ्गमाः ।
 यदर्थमयमुद्योगः सैव सीता हता सती ॥ १०६७ ॥
 निवेद्य वृत्तं रामाय वयं भाग्यतिरस्कृताः ।
 यथोचितं करिष्यामः स यत्पूर्वं करिष्यति ॥ १०६८ ॥
 इत्युक्त्वा महतीं सेनां विनिवर्त्य शनैः कपिः ।
 शोकाभितप्तः प्रययौ सानुगो यत्र राघवः ॥ १०६९ ॥
 साहाय्ये रघुनाथेन विसृष्टं बहुभिर्बलैः ।
 दृष्ट्वा पुरः समायान्तं जाम्बवन्तं सहानुगः ॥ १०७० ॥
 तेनैव सह संप्राप स रामं साश्रुलोचनः ।
 वाग्वज्रपाते स क्षिप्रं नैव स प्रतिभोऽभवत् ॥ १०७१ ॥
 वृत्तं कपिबलैर्युद्धं श्रमश्वासप्रयासितैः ।
 दृष्ट्वा मारुतिमायान्तं राघवः सादरोऽभवत् ॥ १०७२ ॥
 तमुवाच ततो धैर्यं विहाय हरिपुंगवः ।
 दुर्जनेनेव शोकेन महता मुखरीकृतः ॥ १०७३ ॥
 तमसामास्पदीभूतस्त्यक्तधैर्योचितस्थितिः ।
 त्वामहं दुःसहं देव विज्ञापयितुमुद्यतः ॥ १०७४ ॥
 संहारसारे संसारे ते धन्याः सुखभागिनः ।
 अदृष्ट्वैव क्षयं यान्ति दुःखं प्रियजनस्य ये ॥ १०७५ ॥
 हता शक्रजिता सीता क्रोशन्ती करुणस्वना ।
 विनष्टचेष्टैरस्माभिर्नृशंसैरवलोकिता ॥ १०७६ ॥
 इति श्रुत्वैव सहसा मोहेन महता हतः ।
 पपात भूमौ काकुत्स्थः स्रस्तबाणशरासनः ॥ १०७७ ॥
 तं परिष्वज्य पतितं भुजाभ्यामथ लक्ष्मणः ।
 उवाच निष्फलः क्लेशः समन्तात्खिन्नमानसः ॥ १०७८ ॥

अहो बत सदाचारे लोको मिथ्यैव सादरः ।
 षण्डस्येव सुतो यस्य कश्चिन्नास्ति फलोदयः ॥ १०७९ ॥
 धिग्धर्मं यददुःखार्हा धर्मिष्ठा दुःखभागिनः ।
 नमः पापाय संसक्तो यस्मिन्सात्युदयो जनः ॥ १०८० ॥
 आर्येण धर्मो मिथ्यैव क्लेशाय परिरक्षितः ।
 किं तेन कृच्छ्रकालेषु यो न रक्षति धीरताम् ॥ १०८१ ॥
 धर्मानुरोधादार्येण त्यक्तं राज्यं पितुर्गिरा ।
 विनष्टो यत्परित्यागादर्थोऽनर्थनिबर्हणः ॥ १०८२ ॥
 विपन्नार्थस्य सहसा कुलीनस्यार्थचेतसः ।
 मन्दाग्रेरिव वर्धन्त दोषाः शोषाय केवलम् ॥ १०८३ ॥
 निवर्तन्ते दरिद्राणां प्रवर्तन्ते ससंपदाम् ।
 धनाधीनाः क्रियाः सर्वा वेश्या इव शरीरिणाम् ॥ १०८४ ॥
 अन्धः संदर्शनस्येव वधिरः श्रवणस्य वा ।
 स्मृत्वा क्रियाकलापस्य दरिद्रो दीर्यते शुचा ॥ १०८५ ॥
 शीलं तेषां कुलं तेषां तेषामेव प्रगल्भता ।
 भूतिर्विभूषणं येषां गजेन्द्राणामिवोज्ज्वला ॥ १०८६ ॥
 यशस्तेजः श्रुतं रूपं वयः प्रज्ञा कुलं धनम् ।
 धनेन लभ्यते सर्वं धनमेतैर्न लभ्यते ॥ १०८७ ॥
 बालकः केलिलीलासु संभोगावसरे युवा ।
 वृद्धः संमानपूजासु धनवानेव नापरः ॥ १०८८ ॥
 लज्जया निर्धनो बन्धुः पर इत्युच्यते जनैः ।
 परैः परोऽभिमानार्थमीश्वरो बन्धुरुच्यते ॥ १०८९ ॥
 मित्राणां बान्धवानां च न ते जीवन्ति जन्तवः ।
 वित्तं न विद्यते येषां जीवितस्यापि जीवितम् ॥ १०९० ॥
 धर्मकामौ हतौ तेन येन नोपार्जितं धनम् ।
 छिन्नं पुष्पफलं तेन मूलं येन हतं तरोः ॥ १०९१ ॥

जनास्त्यजन्ति स्वजनं नोन्मत्तं न च कुष्ठिनम् ।
 धनहीनो प्रयत्नेन पुत्रेण त्यज्यते पिता ॥ १०९२ ॥
 सादरो न दरिद्रस्य जनः सर्वगुणैरपि ।
 शिल्पिनश्छिन्नहस्तस्य स्नानशीलव्रतैरिव ॥ १०९३ ॥
 राज्यं संत्यजता त्यक्तं सर्वमर्थेण सर्वदा ।
 सीताहरणदुःखस्य वनवासो हि कारणम् ॥ १०९४ ॥
 उत्तिष्ठ रघुशार्दूल पश्य पौलस्त्यजं मया ।
 निहतं युधि दर्पान्धं लङ्कां दग्धां च सायकैः ॥ १०९५ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते युद्धासक्तो विभीषणः ।
 संघातं विपुलं दृष्ट्वा शनैस्तं देशमाययौ ॥ १०९६ ॥
 स विलोक्य स्थितं रामं भूतलाखण्डलं भुवि ।
 सिच्यमानं हरिवरैर्जलैरुत्पलगन्धिभिः ॥ १०९७ ॥
 किमेतदिति तान्पृष्ट्वा श्रुत्वा सीतां तथा मृताम् ।
 धिगेतदिति सासूयमवदत्सस्मिताननः ॥ १०९८ ॥
 देवोत्तिष्ठ न तां हन्ति कश्चिज्जीवति रावणे ।
 तस्य तत्प्रणये वाञ्छा न हतस्यापि शाम्यति ॥ १०९९ ॥
 इयं तु महती चिन्ता संप्रवृत्तो यदिन्द्रजित् ।
 निकुम्भिलायां हुत्वाग्निं घोरे संहारकर्मणि ॥ ११०० ॥
 न तं समाप्तकर्माणं जेतुं शक्ताः सुरासुराः ।
 कर्मण्यपूर्णे तस्याशु क्रियतामुद्यमो वधे ॥ ११०१ ॥
 तूर्णं प्रयातु तं हन्तुं सौमित्रिस्तव शासनात् ।
 हता मायामयी सीता शोकं मिथ्यैव मा कृथाः ॥ ११०२ ॥
 अपूर्णे यागसमये यस्त्वामेध्यति युद्धधीः ।
 वध्योऽसि तस्येत्यवदत्पूर्वमिन्द्रजितं विधिः ॥ ११०३ ॥
 विभीषणस्येति वचः सत्यार्थं रघुनन्दनः ।
 निशम्य शान्तसंतापस्तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ११०४ ॥
 इति रामाश्वासनम् ॥ ३९ ॥

ततः पुनरसैन्येन वृतो राघवशासनात् ।
 प्रययौ लक्ष्मणो योद्धुं संनद्धो रावणात्मजम् ॥ ११०५ ॥
 गत्वा विभीषणादिष्टवर्त्मना स निकुम्भिलाम् ।
 ददर्श राक्षसव्यूहं मेघसंघातसंनिभम् ॥ ११०६ ॥
 तत्ततो राक्षसानीकं विभीषणगिरा शरैः ।
 विदार्येन्द्रजितश्चक्रे स सुदृश्यां क्रतुक्षितिम् ॥ ११०७ ॥
 दारितं लक्ष्मणशरैर्वानरैश्च प्रहारिभिः ।
 स्वसैन्यमिन्द्रजिहृष्टा यागमुत्सृज्य निर्ययौ ॥ ११०८ ॥
 असमाप्ते मखविधौ निर्गते रावणात्मजे ।
 बभूव समरे घोरे सैन्ययोः सुभटक्षयः ॥ ११०९ ॥
 विचित्ररत्नकवचः किरीटी रत्नकुण्डलः ।
 रथेन घोरघोषेण मारुतिं समुपाद्रवत् ॥ १११० ॥
 दृष्ट्वेन्द्रजितमायातं विभीषणनिवेदितम् ।
 आकृष्टचापस्तस्याशु सौमित्रिः पुरतोऽभवत् ॥ ११११ ॥
 लक्ष्मणस्यान्तिके दृष्ट्वा धीसहायं विभीषणम् ।
 कोपादुवाच सासूय इन्द्रजित्प्रज्वलन्निव ॥ १११२ ॥
 कुलमानसदाचारभ्रष्टः शोच्योऽसि बालिश ।
 स्वजनं यत्परित्यज्य शत्रूणां भृत्यतां गतः ॥ १११३ ॥
 मानावमाननिर्यन्त्रस्नेहभूः क निजो जनः ।
 क परः प्रस्तुतोदारपूजाशैथिल्यशल्यकृत् ॥ १११४ ॥
 न दुर्जनोऽपि स्वजनस्त्याज्योऽभिजनगौरवात् ।
 सुसेवितोऽपि सुजनो न स्यात्किल परः सदा ॥ १११५ ॥
 स्निग्धं परिचितं त्यक्त्वा प्रयान्ति चपलाः परम् ।
 परस्य भाजने मृष्टं जनो जानाति भोजनम् ॥ १११६ ॥
 स्वजनं यः परित्यज्य प्रयाति निरपत्रपः ।
 परस्य स कथं मित्रं भविष्यति निजो जनः ॥ १११७ ॥

धिक्त्वां सत्त्वपरिभ्रष्टं शठं नीचानुकारिणम् ।
 दास्येऽभिरमते बुद्धिर्यस्योत्सृष्टनिजश्रियः ॥ १११८ ॥
 त्वत्संदर्शनसंक्रान्तपातकस्यास्य चक्षुषः ।
 जायते नैव वैमल्यं सत्यं वर्षशतैरपि ॥ १११९ ॥
 इत्युक्ते मेघनादेन वचः श्रुत्वा विभीषणः ।
 उवाच विपुलाक्षेपकोपस्मितसिताननः ॥ ११२० ॥
 अहो स्वजनवात्सल्याद्गुणवानिव भाषसे ।
 पापभीत्या मयेत्युक्तो दुराचारः पिता तव ॥ ११२१ ॥
 क्षुद्रश्च द्वेषवांस्त्याज्यः स्वजनोऽपि विपश्चिता ।
 बान्धवं सहजं नास्ति साधवो बान्धवः सताम् ॥ ११२२ ॥
 त्याज्य एव मम आता मह्यं पापं न रोचते ।
 यो यद्धृतः स तद्धृते रमते नात्र संशयः ॥ ११२३ ॥
 उपालम्भो ममैकस्य मिथ्यैव क्रियते त्वया ।
 जीवितेन निजेनापि यूयं व्यक्ताः प्रमादिनः ॥ ११२४ ॥
 निकुम्भिलावने हुत्वा न्यग्रोधान्तर्हितेन यत् ।
 युद्धं कृतं त्वया पाप चौरकर्म तदुच्यते ॥ ११२५ ॥
 अधुना लक्ष्मणशरैः शस्त्रैरिव दिवौकसाम् ।
 खदुर्नयैरिवात्युग्रैर्हतो मन्तासि मे वचः ॥ ११२६ ॥
 विभीषणवचः श्रुत्वा कोपाद्दशमुखात्मजः ।
 उपसैन्यं च सौमित्रि शरासारैरपूरयत् ॥ ११२७ ॥
 लक्ष्मणोऽपि शरैस्तस्य प्रतिजग्राह सायकान् ।
 ज्याकर्षाशनिनिर्घोषघोषैरापूरयन्दिशः ॥ ११२८ ॥
 लेभे तं शब्दमाकर्ण्य वैवर्ण्यं रावणात्मजः ।
 आरूढमेव जानाति शूरः शूरं हि यो यथा ॥ ११२९ ॥
 शब्दादुद्विजते शत्रोः शूर एव पराङ्मुखः ।
 पूर्वं पलायनमतेर्निर्लेजस्य भयं कुतः ॥ ११३० ॥

तं विवर्णमुखं दृष्ट्वा हृदयज्ञो विभीषणः ।
 उवाच लक्ष्मणं भग्नः शत्रुस्ते वधमर्हति ॥ ११३१ ॥
 ततः कार्मुकमाकृष्य सौमित्रिः शत्रुसूदनः ।
 रजनीचरराजस्य पुत्रं पत्रिमयं व्यधात् ॥ ११३२ ॥
 स लक्ष्मणशरैर्विद्धः संज्ञां कृच्छ्रेण मीलितः ।
 समासाद्य निरालोकाः कुर्वन्वाणैर्दिशो दश ॥ ११३३ ॥
 हनुमत्प्रमुखान्वीरान्विदार्य सविभीषणान् ।
 लक्ष्मणस्येन्द्रजिच्चक्रे स मृगस्येव पञ्जरम् ॥ ११३४ ॥
 तस्य हेममयं दीप्तं कवचं राघवानुजः ।
 चिच्छेद विशिखैर्मूर्ते प्रतापमिव रक्षसः ॥ ११३५ ॥
 स विध्वस्ततनुत्राणः स्रवद्गुधिरनिर्झरः ।
 उदधेर्विदधे रक्ततटिनीनवसंगमम् ॥ ११३६ ॥
 स तीव्रक्रोधविधुरः प्रवृद्धचरितो रणे ।
 चकार कपिसंहारं निजदोर्दण्डतोमरैः ॥ ११३७ ॥
 ततो विभीषणगिरा चक्रुस्तीव्रपराक्रमाः ।
 जाम्बवन्मारुतिमुखाः संक्षयं रक्षसां क्षणात् ॥ ११३८ ॥
 सोत्साहान्विपुलोत्साहस्तानुवाच विभीषणः ।
 विलोक्येन्द्रजितं युद्धे वर्धमानमिवानलः ॥ ११३९ ॥
 हन्यतां राक्षसबलं भवद्भिर्वलवत्तरैः ।
 अल्पावशेषे कार्येऽस्मिन्विलम्बो नात्र वः क्षमः ॥ ११४० ॥
 स्वयं निसूदयाम्येष समरे आतुरात्मजम् ।
 राघवार्थं ममाकार्यं लोके किञ्चिन्न विद्यते ॥ ११४१ ॥
 उपेक्षितो दहत्येष क्षणेनैव प्लवंगमान् ।
 स्वहस्तेन वधस्तस्य स्वयं मे जायते घृणा ॥ ११४२ ॥
 इत्युक्त्वा राक्षसचमूं राक्षसेन्द्रानुजः स्वयम् ।
 जघान घननिर्घोषैर्वाणैरशनिगौरवैः ॥ ११४३ ॥

तं शरैरशनिस्पर्शैः शीघ्रं संपूर्य शक्रजित् ।
 सायकाचितसर्वाङ्गं विदधे लक्षणं पुनः ॥ ११४४ ॥
 तयोरत्यद्भुतं युद्धं जम्भारिप्रमुखाः सुराः ।
 द्रष्टुं समाययुः सर्वे विमानोद्भासिताम्बराः ॥ ११४५ ॥
 तयोराधानसंधानलक्ष्यलाघवसौष्ठवे ।
 ददर्श नान्तरं कश्चिद्वैचित्र्ये कृतहस्तयोः ॥ ११४६ ॥
 त्रस्तेषु सुरसिद्धर्षिसंघेषु पिहिते रवौ ।
 तमसा संवृताः प्रापुः प्रलयोपद्रवं दिशः ॥ ११४७ ॥
 ततः शरेण सौमित्रिः सूतं तस्य न्यपातयत् ।
 विमुक्तसंयमाङ्गघ्नः प्लवगाश्च तुरङ्गमान् ॥ ११४८ ॥
 विरथो रावणसुतः शरैराच्छाद्य लक्ष्मणम् ।
 विभीषणवधायोग्रं याम्यमल्लमथासृजत् ॥ ११४९ ॥
 कुबेरास्त्रेण सौमित्रिस्तदस्त्रं शत्रुदारणम् ।
 अभिहत्याददे रौद्रं महास्त्रं वज्रिणार्पितम् ॥ ११५० ॥
 सत्यधर्मास्पदं रामो यदि सत्येन तेन मे ।
 अस्त्रं प्रयातु साफल्यमित्युक्त्वा समसर्जयत् ॥ ११५१ ॥
 तेनोत्कृतं महास्त्रेण पपातेन्द्रजितः शिरः ।
 लङ्घिद्विम्बितमार्तण्डमण्डलोच्चण्डमण्डलम् ॥ ११५२ ॥
 इतीन्द्रजिद्वधः ॥ ४० ॥
 प्रतापेन प्रभावेण महत्त्वेन च विश्रुतः ।
 तेजस्त्रिषु सहस्रांशुर्वरो यश्च सुरारिषु ॥ ११५३ ॥
 तस्मिञ्जगन्नयीशत्रौ वीरे सौमित्रिणा हते ।
 प्रवृत्तस्त्रिदशैस्तूर्णै बभूव भुवनोत्सवः ॥ ११५४ ॥
 हरीणां हर्षमत्तानां प्रभग्नानां च रक्षसाम् ।
 तदभूद्भूधरव्यापी निखनो लोमहर्षणः ॥ ११५५ ॥
 विभीषणप्रभृतिभिर्मरुतिप्रमुखैः सह ।
 हतामित्रो ययौ द्रष्टुं सौमित्रिस्तूर्णमग्रजम् ॥ ११५६ ॥

हतमिन्द्रजितं श्रुत्वा निकृत्ताङ्गं च लक्ष्मणम् ।
 दृष्ट्वा बभूव हृष्टश्च व्यथितश्च स राघवः ॥ ११५७ ॥
 स भ्रातरं परिष्वज्य धृत्वाङ्गे साश्रुलोचनः ।
 पस्पर्शास्य तनुं शल्यसंहतस्रुतशोणितम् ॥ ११५८ ॥
 शासनादथ रामस्य सुषेणः कपियूथपः ।
 विशल्यकरणीं दिव्यामाजहार महौषधिम् ॥ ११५९ ॥
 तां लक्ष्मणः समाग्राय विशल्यो निर्त्रेणः क्षणात् ।
 बभूव बलवान्स्वस्थः काकुत्स्थेनाभिपूजितः ॥ ११६० ॥
 अत्रान्तरे दशमुखः श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ।
 न ददर्श न शुश्राव छिन्नशीर्ष इव क्षणम् ॥ ११६१ ॥
 स लब्धसंज्ञः शनकैः शुशोचाकुलितेन्द्रियः ।
 शोकक्रोधाग्निसंतप्तैर्दिशः श्वासैर्दहन्निव ॥ ११६२ ॥
 हा शक्रविजयोदारयशःकुसुममाधव ।
 अस्मिन्व्यसनकाले मां क परित्यज्य गच्छसि ॥ ११६३ ॥
 अहो बत तवेन्द्रस्य भयदीक्षागुरुर्गुरुः ।
 भुजस्तम्भः कथं नाम लक्ष्मणे लघुतां गतः ॥ ११६४ ॥
 शिरसामुन्नतिः श्लाघ्या द्वाभ्यामेव ममाभवत् ।
 वत्स त्वया च पुत्रेण वरेण च पिनाकिनः ॥ ११६५ ॥
 अधुना मम का शोभा राज्येऽस्मिन्का च जीविते ।
 कुलचूडामणिर्यस्य हतः पुत्रः सुरेन्द्रजित् ॥ ११६६ ॥
 हा हा पुत्र क यातोऽसि दर्शय क्षणमाननम् ।
 संभावय हतं चेतो नैराश्यं न यथा भवेत् ॥ ११६७ ॥
 इति प्रलापिनस्तस्य शोकः पुत्रवियोगजः ।
 ययौ मृतस्थान इव प्रौढेन क्रोधवह्निना ॥ ११६८ ॥
 तस्य स्रोतोमुखैः सर्वैरमर्षदहनोद्भवः ।
 जगत्क्षयक्षमाश्चित्रं घोरा निश्चेरुरर्चिषः ॥ ११६९ ॥

स मूलकारणं मत्वा सीतामिन्द्रजितो वधे ।
 आकृष्टखङ्गस्तां हन्तुमशोकवनिकां ययौ ॥ ११७० ॥
 करालकरवालोग्रं तं दृष्ट्वा क्रुद्धमागतम् ।
 दशाननसहस्राणि दिक्षु सीता व्यलोकयत् ॥ ११७१ ॥
 सीतां व्यवसितुं हन्तुं रावणं क्रोधमूर्छितम् ।
 उवाच दोर्भ्यामाकृष्य सुपाश्वर्षो वृद्धराक्षसः ॥ ११७२ ॥
 अवदाततरे जन्म कुले कमलजन्मनः ।
 विश्रुतं चरितं दिक्षु त्रिजगद्विजयोजितम् ॥ ११७३ ॥
 श्रुतिः श्रुतवती शान्ता मतिर्मनोन्नतं शिरः ।
 यथा तव तथान्यस्य कस्य लोके विलोक्यते ॥ ११७४ ॥
 स त्वं सत्त्ववतामग्र्यः स्त्रीवधे कथमुद्यतः ।
 द्विजोत्तमः सुरापाने श्रोत्रियः श्रुतवानिव ॥ ११७५ ॥
 श्रुतं विवेकः कारुण्यं दमः साधुसमागमः ।
 मोहप्रपञ्चे पञ्चैते पापसंचयवञ्चकाः ॥ ११७६ ॥
 त्यजैतामबलां बालां मा कृथाः कीर्तिविप्लवम् ।
 हतो यैरिन्द्रजिद्वीरः कोपस्तेषु निपात्यताम् ॥ ११७७ ॥
 सुपाश्वर्षेनेत्यभिहिते विनिवृत्य दशाननः ।
 आदिदेश निजानीकं सज्जः संग्रामकर्मणि ॥ ११७८ ॥
 ततो विनिर्ययुर्घोरा राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।
 मेघध्वस्ता इव दिशः कुर्वन्तो गजवाजिभिः ॥ ११७९ ॥
 उदिते तिग्मकिरणे युद्धं तेषां प्लवंगमैः ।
 अवर्तताश्मशस्त्रास्त्रनिर्घर्षामलपिङ्गलम् ॥ ११८० ॥
 शतं शतं वानराणामेकैकस्य तु रक्षसः ।
 अदृश्यताग्रे संसक्तनखदन्तप्रहारिणाम् ॥ ११८१ ॥
 ततः प्रविततं दिक्षु राक्षसक्षयदीक्षितम् ।
 चुकूज चापं रामस्य विरामस्यास्य संपदाम् ॥ ११८२ ॥

अर्धोद्धृतैश्च कृष्टैश्च निष्पतद्भिश्च निर्गतैः ।
 रामबाणच्युतैर्वाणैर्नादश्यन्त दिशो दश ॥ ११८३ ॥
 हतो हस्ती च्युतः सप्तिरयमुन्मथितो रथः ।
 इत्यभूद्विपुलः शब्दो राक्षसानामितस्ततः ॥ ११८४ ॥
 ते शराशनिनिर्भिन्ना दिवि दिक्षु महीतले ।
 क्षणं रामसहस्राणि ददृशुर्भयविद्रुताः ॥ ११८५ ॥
 नादश्यत रणे रामश्चक्रं दीप्तमदश्यत ।
 हेमपृष्ठस्य धनुषो दिक्षु भ्रान्तस्य केवलम् ॥ ११८६ ॥
 तेन संमोहनास्त्रेण मोहितास्ते निशाचराः ।
 जम्बुः परस्परं शक्तिशूलप्रासासिपट्टिशैः ॥ ११८७ ॥
 छिन्नोरुबाहुचरणैः स्तब्धवक्रशिरोधरैः ।
 निःसंचाराभवद्भूमिः पतितैः पिशिताशिभिः ॥ ११८८ ॥
 हतेषु रक्षोलक्षेषु भग्नेषु भुजशालिषु ।
 हतशेषा ययुस्तूर्णं यत्रास्ते दशकन्धरः ॥ ११८९ ॥
 इति रामास्त्रयुद्धम् ॥ ४१ ॥
 ततो निहतनाथानां क्षणदाचरयोषिताम् ।
 उदभूच्छोकतप्तानां प्रलापः करुणस्वनः ॥ ११९० ॥
 अहो वत हता सीता शिखेवाग्नेर्मनस्विनी ।
 रक्षसां राक्षसेन्द्रेण क्षयायैव प्रमादिनी ॥ ११९१ ॥
 को हि रामस्य समरे शक्तः सोढुं शराशनिम् ।
 याता नक्तंचरा यस्य प्रतापाग्निपतङ्गताम् ॥ ११९२ ॥
 कष्टं प्राणप्रवासाय कृतं रामाय विप्रियम् ।
 विराधखरमारीचप्रमुखैः क्षणदाचरैः ॥ ११९३ ॥
 न केनचिदयं रामः कथितो रावणस्य किम् ।
 यस्य ज्यातलनिर्घोषैर्गीयते धनुषा यशः ॥ ११९४ ॥
 केतुतां वालिकङ्कालं कोपकापालिकस्य यः ।
 निनाय स कथं रामो राक्षसेन्द्रेण न श्रुतः ॥ ११९५ ॥

सेतुबन्धानुबन्धेन लङ्कासंरोधबन्धुना ।
 कुम्भकर्णवधेनापि न प्रबुद्धो दशाननः ॥ ११९६ ॥
 शिरश्छेदोपमेनापि वधेनेन्द्रजितः परम् ।
 लाभोऽयं यदि पौलस्त्य शेषं युद्धं समाप्यते ॥ ११९७ ॥
 इयं रामशरैर्लङ्का प्राकाराजालकेलिभिः ।
 स्पष्टीकृता कृतान्तस्य दुर्गमार्गनिराकुला ॥ ११९८ ॥
 इत्युच्चचार विपुलप्रलापो जननिस्वनः ।
 रामाप्रलापदग्धानां राक्षसानां गृहे गृहे ॥ ११९९ ॥
 क्रुद्धस्तं शब्दमाकर्ण्य सामात्यो राक्षसेश्वरः ।
 निर्ययौ रथसंघातरेणुग्रस्तनभस्तलः ॥ १२०० ॥
 ततो बभूव भूतानां भयकृद्भूमिकम्पनः ।
 गम्भीरारम्भसंरम्भो विमर्दः कपिरक्षसाम् ॥ १२०१ ॥
 रणे रावणनाराचनिचयैरायतोऽज्झितैः ।
 वज्राहता इव नगाः पेतुर्वानरयूथपाः ॥ १२०२ ॥
 यत्र यत्र प्रतापोग्रपौलस्त्याप्ताः शिलीमुखाः ।
 तत्र तत्रोदभून्नादः प्रधानवधसूचनः ॥ १२०३ ॥
 दशग्रीवभुजोत्सृष्टशरकृत्तभुजाननैः ।
 वानरैः पतितैर्भूमिरभूमिर्वाजिनामभूत् ॥ १२०४ ॥
 लङ्केश्वरशरासारदारिते हरिमण्डले ।
 ददर्श राघवौ दूरादाकृष्टोरुशरासनौ ॥ १२०५ ॥
 स तौ सावेगमभ्येत्य मण्डलीकृतकार्मुकः ।
 चकार शरनीहारैश्चन्द्रसूर्याविवावृतौ ॥ १२०६ ॥
 क्षिप्तां राक्षसराजेन दीप्तां बाणपरम्पराम् ।
 चिच्छेद राघवः क्षिप्रं चन्द्रार्धवदनैः शरैः ॥ १२०७ ॥
 घोरे व्यतिकरे तस्मिन्सुभटप्राणहारिणि ।
 जधान रावणामात्यौ विरूपाक्षमहामुखौ ॥ १२०८ ॥

सुग्रीवो विग्रहोदग्रं महानादं तथाङ्गदः ।
 तत्कोपादथ पौलस्त्यः स्वस्ति हर्ता दिवौकसाम् ।
 नाराचमालां चिक्षेप ललाटे रघुभूपतेः ॥ १२०९ ॥
 स रत्नमुकुटोद्देशे संहतासक्तया तया ।
 नीलोत्पलस्रजा क्षिप्रं कृतोत्तंस इवावभौ ॥ १२१० ॥
 रौद्रं ततोऽस्त्रं रामेण क्षिप्तं रक्षःक्षयक्षमम् ।
 रुद्रदत्तवरे भङ्गं ययौ रावणवर्त्मनि ॥ १२११ ॥
 असुरास्त्रचितैर्बाणैर्व्याघ्रसिंहगजाननैः ।
 दिशः संछाद्य पौलस्त्यश्चक्रे त्रैलोक्यसंभ्रमम् ॥ १२१२ ॥
 काकुत्स्थः पावकास्त्रेण घोरं हत्वा महासुरम् ।
 दिशो वितिमिराः सर्वाश्चकार तरणिप्रभाः ॥ १२१३ ॥
 रावणास्त्रं ततो रौद्रमयं मायाविनिर्मितम् ।
 जघानायुधसंबाधं गन्धर्वास्त्रेण राघवः ॥ १२१४ ॥
 दारितेषु महास्त्रेषु क्रोधान्धो दशकन्धरः ।
 रामं प्रच्छाद्य विशिखैर्जगर्ज घनसंनिभः ॥ १२१५ ॥
 सायकैः सारथैर्वक्त्रं ध्वजचक्रं च लक्ष्मणः ।
 चापं च राक्षसेन्द्रस्य चिच्छेदाद्भुतविक्रमः ॥ १२१६ ॥
 ततो विभीषणोऽभ्येत्य मेघसंघातसंनिभम् ।
 उन्ममाथ रथं आतुः शरैर्भग्नतुरङ्गमम् ॥ १२१७ ॥
 स हताश्वादथोत्प्लुत्य रथात्प्रव्यथितः क्रुधा ।
 विभीषणाय चिक्षेप शक्तिं शक्तां रिपुक्षये ॥ १२१८ ॥
 वेगसूत्कारिणी घोरा सनिश्वासेव पन्नगी ।
 सा पपात क्षितितले कृता रामेषुभिस्त्रिभिः ॥ १२१९ ॥
 तं शक्तिभङ्गकुपितं विभीषणवधोद्यतम् ।
 प्रतिजग्राह सौमित्रिः पत्रिभिः शत्रुभेदिभिः ॥ १२२० ॥
 शोणपट्टोपमज्वालामष्टघण्टारवोत्कटाम् ।
 परां मयकृतां शक्तिं लक्ष्मणायोत्ससर्ज सः ॥ १२२१ ॥

सा तस्य हृदयं भित्त्वा त्रिदशत्रासकारिणी ।
 विवेश नैव वसुधां वसुधामप्रमाथिनी ॥ १२२२ ॥
 शक्तिस्यूतं निपतितं लक्ष्मणं वीक्ष्य राघवः ।
 बभ्राम भूर्छितः क्षिप्रमन्तरे क्रोधशोकयोः ॥ १२२३ ॥
 समाश्रुलोचनः कोपाद्विग्रहे गिरिविग्रहम् ।
 शरैर्निर्विर्विरैश्चक्रे दुर्लक्षं राक्षसेश्वरम् ॥ १२२४ ॥
 बाणपातादपावृत्ते भग्नशौर्ये दशानने ।
 विसंज्ञं आतरं रामः शुशोच आतृवत्सलः ॥ १२२५ ॥
 ततः सुषेणनिर्दिष्टं हनुमान्गरुडोपमः ।
 आनिनायोषधिगिरिं मन्थाचलमिवाच्युतः ॥ १२२६ ॥
 सुषेणेनोद्धृतां तस्मात्तूर्णं संजीवनोषधिम् ।
 आप्राय नासायोगेन लक्ष्मणः स्वास्थ्यमाप्तवान् ॥ १२२७ ॥
 इति लक्ष्मणविशल्यकरणम् ॥ ४१ ॥
 अत्रान्तरे समारुह्य घोरं मायाविनिर्मितम् ।
 रथं पृथुहयोदग्रं दशग्रीवः समाययौ ॥ १२२८ ॥
 क्रूरक्रोधोद्धतं युद्धं ततः पुनरवर्तत ।
 काकुत्स्थस्य क्षितिस्थस्य रथस्थस्य च रक्षसः ॥ १२२९ ॥
 तयोः स्फारशरासारमेधयोर्युद्धच्यमानयोः ।
 नैतदेकरथं तुल्यं युद्धमित्यूचिरे सुराः ॥ १२३० ॥
 ततः कान्तस्वरोदाररत्नाभरणभासुरः ।
 सहस्रसंख्यैस्तुरगैः संयुक्तो बल्लगुवल्गिभिः ॥ १२३१ ॥
 विलोलकिंकिणीजालवैजयन्तीध्वजोर्जितः ।
 अदृश्यतोम्रनिर्घोषो मातलिप्रेरितो रथः ॥ १२३२ ॥
 वातोद्यतपताकेन स्वच्छच्छत्रापहासिना ।
 अवतीर्याम्बरात्तेन रथेन सुरसारथिः ॥ १२३३ ॥
 उवाच प्रणतो रामं मुकुटावर्जिताञ्जलिः ।
 दत्तक्रान्तिच्छलेनास्य जयोष्णीषमिवावार्पयन् ॥ १२३४ ॥

एष ते त्रिजगज्जेतुः शत्रुवित्रासनिस्वनः ।
 दीप्तः सचापकवचः सर्वयुधविभूषितः ॥ १२३५ ॥
 विसृष्टः सुरराजेन दशास्यदलनक्षमः ।
 संग्रामाश्चर्यचर्यासु रथः पूर्णमनोरथः ॥ १२३६ ॥
 इत्युक्ते शक्रसूतेन संपूज्य रघुनन्दनः ।
 आरुरोह रथं दिव्यं जयं मूर्तमिवागतम् ॥ १२३७ ॥
 ततो बभूव दिव्यास्त्रप्रभावोद्भ्रान्तखेचरम् ।
 रामरावणयोर्युद्धं संशयायासितामरम् ॥ १२३८ ॥
 नागास्त्रं रावणेनास्तं सुपर्णास्त्रेण राघवः ।
 निवार्य विदधे दिक्षु पक्षाक्षिसमहानिलम् ॥ १२३९ ॥
 ततः शरसहस्रेण रामं सरथसारथिम् ।
 अभिपूर्योऽससर्जोऽग्रां रक्षः शस्त्रपरम्पराम् ॥ १२४० ॥
 शरनिर्भिन्नसर्वाङ्गे मूर्छिते राघवे क्षणम् ।
 व्यथां लक्ष्मणसुग्रीवविभीषणमुखा ययुः ॥ १२४१ ॥
 दशास्ये विंशतिभुजे वर्द्धमानपराक्रमे ।
 प्राजापत्ये बुधेनैत्य नक्षत्रे परिपीडिते ॥ १२४२ ॥
 अङ्गारकेन ज्येष्ठाख्ये राघवर्क्षे निपीडिते ।
 साचला चञ्चला चोर्वी क्षुब्धाब्धिध्वाननादिनी ॥ १२४३ ॥
 चन्द्रवर्णेन सूर्येण रेणुपूर्णेन वायुना ।
 स निर्घातेन भूतानां घोरमाविरभूद्भयम् ॥ १२४४ ॥
 राघवोऽथ समाश्वस्य कोपरक्तान्तलोचनः ।
 चकर्ष कार्मुकं येन विवर्णो रावणोऽभवत् ॥ १२४५ ॥
 रामबाणवृते लोके पौलस्त्यः शूलमुत्कटम् ।
 अयं न भवसीत्युक्त्वा रामाय प्राहिणोत्कुधा ॥ १२४६ ॥
 शूलध्वंसाय रामेण मुक्ता शरपरम्परा ।
 तदग्नि(?)देशमासाद्य भस्मसादभवत्क्षणात् ॥ १२४७ ॥

ततः सुरपतेः शक्तिर्दीप्ता रामभुजोर्जिता ।
 पीता बभञ्ज सावेगं शूलं शूलमिवौषधिः ॥ १२४८ ॥
 शूलविध्वंसकुपितं रावणं बाणवर्षिणम् ।
 उवाच राघवः कोपस्मितप्रस्फुरिताधरः ॥ १२४९ ॥
 दिष्ट्यावबोधितः पाप दिवारात्रं विचिन्तितः ।
 चक्षुषोर्गोचरं यातस्त्वमद्य सुचिरेण नः ॥ १२५० ॥
 वैदेही भिक्षुरूपेण विजने कानने त्वया ।
 हृता हेममृगव्याजादहो वीरव्रतं कृतम् ॥ १२५१ ॥
 परदारापहरणे ब्रह्मशीलस्य दुर्मतेः ।
 तवैतानि न लज्जन्ते वक्राणि न परस्परम् ॥ १२५२ ॥
 समरे यदि वीरोऽसि तत्संदर्शय पौरुषम् ।
 निर्जने हरणे स्त्रीणां स्थापिनाम (?) प्रगल्भते ॥ १२५३ ॥
 बन्धुस्वजनमित्राणां शोच्याः शूलविनाकृताः ।
 ऐश्वर्यं क्षणिकं येषु जलं भग्नघटेष्विव ॥ १२५४ ॥
 इन्द्रजित्प्रमुखाः पुत्राः कुम्भकर्णादयोऽनुजाः ।
 इयं विभूतिरात्मा च दुर्नयाग्नौ त्वया हुताः ॥ १२५५ ॥
 धिक्त्वां परवधूचौरं क्षुद्रं क्षुद्रपथे स्थितम् ।
 किं करोमि शरस्पर्शोऽप्येष मे त्वयि नोचितः ॥ १२५६ ॥
 इत्युक्ते चण्डकोदण्डमण्डलोदरनिर्गतः ।
 रामेषवस्तं विविशुस्तमः सूर्यकरा इव ॥ १२५७ ॥
 शरनिर्भिन्नसर्वाङ्गस्तेजोविरहितः क्षणम् ।
 बभूव गलितोत्साहः शिथिलो राक्षसेश्वरः ॥ १२५८ ॥
 विवर्णवदनं दृष्ट्वा सारथिस्तं ससंभ्रमम् ।
 अपसृत्य रथेनाशु जहार समराङ्गनात् ॥ १२५९ ॥
 लब्धधैर्योऽथ पौलस्त्यो विलोक्यापसृतं रथम् ।
 सूतं बभाषे भ्रूभङ्गधूमकोपानलाकुलः ॥ १२६० ॥

१. 'वापिता न' स्यात्.

अहो तु सुभृतेनापि स्नेहसस्मानवृत्तिना ।
 सुभृत्येन त्वया सूत प्रभुभक्तिः प्रदर्शिता ॥ १२६१ ॥
 मानिनो रणसक्तस्य मूर्ध्नि लज्जारजस्त्वया ।
 क्षपिता शत्रुमध्ये मे किं नाह सुकृतं कृतम् ॥ १२६२ ॥
 मिथ्यैव लज्जाजननी देहरक्षा मम त्वया ।
 कृता परेषां हासाय मूर्खेणैव गुणस्तुतिः ॥ १२६३ ॥
 नूनं शत्रुप्रयुक्तेन मानम्लानिरियं च मे ।
 विहिता भवता युद्धे वीरवृत्तान्तसाक्षिणा ॥ १२६४ ॥
 इति कोपेन सासूयं भाषमाणे दशानने ।
 रथी सारथिना रक्ष्य इति सूतस्तमभ्यधात् ॥ १२६५ ॥
 ततः प्रजविनाशेन रथेन घननादिना ।
 रावणे पुनरायाते प्रादुरासीज्जनस्वनः ॥ १२६६ ॥
 ऐन्द्रं धनुः समादाय रामे मेघ इवोद्यते ।
 दुर्निमित्ता व्यदृश्यन्त रावणस्य रथं प्रति ॥ १२६७ ॥
 प्रवृत्ते दारुणे युद्धे रामलङ्काधिनाथयोः ।
 प्रेक्षकत्वं प्रयातेषु रक्षःसु प्लवगेषु च ॥ १२६८ ॥
 क्रमेण वर्द्धमानेषु चित्रलाघवकर्मसु ।
 रामचक्रे जये बुद्धिं भरणे च दशाननः ॥ १२६९ ॥
 शत्रुध्वजं रावणेन क्षिप्ताश्छेतुं शिलीमुखाः ।
 वृथा जग्मुस्तमप्राप्य दूता अप्रतिभा इव ॥ १२७० ॥
 अथ रामशरोत्कृत्तः केतुर्नक्तं चरप्रभोः ।
 पपातोत्पातसूर्यार्चिः प्रताप इव मूर्तिमान् ॥ १२७१ ॥
 केतौ निपतिते तस्मिन्नक्षसां तनुतां ययौ ।
 आशाबन्धोरिव जये भुजयोर्जीवितेषु च ॥ १२७२ ॥
 ततः क्षपाचरपतिः शस्त्रवृष्टिं निरन्तराम् ।
 चिक्षेप राघवायोग्रां मूर्तां मायामिवात्मनः ॥ १२७३ ॥

रामस्तां सायकैश्चित्वा कवचं काञ्चनाचितम् ।
 धनुश्च राक्षसपतेश्चकर्ताभ्यर्चितः सुरैः ॥ १२७४ ॥
 रावणः क्रोधदीप्तोऽथ संक्रान्तज्वलनैरिव ।
 विविधैरायुधैश्चक्रे रामं निष्पन्दकार्मुकम् ॥ १२७५ ॥
 गोचरे पतितं शत्रुं देव कस्मादपेक्षसे ।
 विभीषणप्रभृतयो राममित्यूचिरे मुहुः ॥ १२७६ ॥
 ततस्तरुणजीमूतसंघातप्रतिमान्हयान् ।
 रिपोर्जघान काकुत्स्थस्ते चासत्राक्षसा हताः ॥ १२७७ ॥
 शरेण सारथेः कायाश्छिरस्तरलकुण्डलम् ।
 हतं विलोक्य रामेण चकम्पे रावणः क्रुधा ॥ १२७८ ॥
 तस्यौघतायुधस्याद्य मुकुटं रघुनन्दनः ।
 उन्मथार्धचन्द्रेण साम्राज्यस्येव जीवितम् ॥ १२७९ ॥
 भल्लेनोत्पतता वेगाद्वक्रमेकं सुरद्विषः ।
 रामश्चिच्छेद नवभिर्वक्त्रैर्दृष्टं सविस्मयैः ॥ १२८० ॥
 दृष्ट्वा कृत्तावशेषाणि न निजं मेनिरे क्षणात् ।
 दशमेनैव वक्त्रेण पापं मन्येऽधिकं कृतम् ॥ १२८१ ॥
 च्युतानि नव वक्त्राणि पुरो दृष्टानि तेन यत् ।
 ज्वलत्कुण्डलमालोक्य वक्रमण्डलमग्रतः ।
 सस्मार रावणः पूर्वं निकृत्तवदनाहुतीः ॥ १२८२ ॥
 स शक्तिं प्राहिणोद्दीप्तां कोपवह्नेः शिखामिव ।
 लक्ष्मणायोपरि क्षीणशक्तिश्छिन्नैर्मुखैरपि ॥ १२८३ ॥
 सा शक्तिर्लक्ष्मणशरैर्याता शतसहस्रधा ।
 पौलस्त्यजीविताशेव नैव कचिददृश्यत ॥ १२८४ ॥
 स विभीषणसुग्रीवलक्ष्मणानाद्रवत्क्रुधा ।
 क्तिवस्त्यक्तमर्यादसर्वस्वमिव निर्जितः ॥ १२८५ ॥
 विलोक्यादृष्टपूर्वाणि पतितानि मुखानि सः ।
 मदतान्द्रीं परित्यज्य रामं रामममन्यत ॥ १२८६ ॥

स क्रुधादायुधवनं प्रवणं दारणे रिपोः ।
 धीरः ससर्ज नोत्साहं त्यजन्त्यन्येऽपि मानिनः ॥ १२८७ ॥
 रणे प्रगल्भमालोक्य तं पर्यन्तेऽपि मातलिः ।
 उवाच राघवं मेघघोषगम्भीरनिस्वनः ॥ १२८८ ॥
 द्वौ शत्रुदलेन श्लाघ्यौ वैकुण्ठस्त्वं च राघवः ।
 यौ दृष्टौ कृतवक्त्राभ्यां राहुणा रावणेन च ॥ १२८९ ॥
 एकशीर्षावशेषेऽयं जय्यस्ते जयतां वर ।
 त्रैलोक्यजयिनं शत्रुं हेलया किमुपेक्षसे ॥ १२९० ॥
 ब्रह्मास्त्रेण जहि क्षिप्रं भग्वेगं क्षपाचरम् ।
 अयं व्याधिरिवासाध्यो वध्यः कालव्यतिक्रमात् ॥ १२९१ ॥
 इति मातलिना वीरः प्रेरितो रघुनन्दनः ।
 ब्रह्मास्त्रमादधे दीप्तं यदगस्त्यादवाप्तवान् ॥ १२९२ ॥
 सर्वदेवमयं दृष्ट्वा रामेणास्त्रमुदीरितम् ।
 सस्मार सुरसंघातस्त्रिपुरारिपराक्रमम् ॥ १२९३ ॥
 स धूमदहनोद्गारं तदस्त्रं घोरनिस्वनम् ।
 पपात राघवोत्सृष्टं हृदये राक्षसप्रभोः ॥ १२९४ ॥
 पौलस्त्यवक्षो निर्भिद्य स शरोऽस्त्राभिमन्त्रितः ।
 राममेवाययौ तूर्णं प्रत्यग्ररुधिरारुणः ॥ १२९५ ॥
 ततः पपात पौलस्त्यः स्रस्तसायककार्मुकः ।
 कृत्तः सीतानिकारेण क्रकचेनेव पादपः ॥ १२९६ ॥
 तस्मिन्निपतिते वीरे शेखरे त्रिदशद्विषाम् ।
 अताड्यत सुरैर्व्योम्नि काकुत्स्थजयदुन्दुभिः ॥ १२९७ ॥
 शत्रुं शल्यमिवोन्मूल्य स्वस्थः पारं परं ययौ ।
 वियोगस्याभियोगस्य प्रकोपस्य च राघवः ॥ १२९८ ॥
 इति रावणवधः ॥ ४२ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविरचिते रामायणकथासारे संपूर्णं युद्धकाण्डम् ।

सुरैरवध्यं समरे हतं श्रुत्वा दशाननम् ।
 तं देशमाययुस्तूर्णं रावणान्तःपुराङ्गनाः ॥ १ ॥
 ताश्छिन्नहारकेयूरधम्मिल्लकुसुमसजः ।
 लङ्केश्वरं निपतितं ददृशुर्वल्लभं भुवि ॥ २ ॥
 गतासुं गाढमालिङ्ग्य तं कुरङ्गविलोचनाः ।
 सृजन्त्यो वाष्पसलिलं शुशुचुः शोकविह्वलाः ॥ ३ ॥
 कथं सुरासुरपुरप्रोद्वीतगुरुविक्रमः ।
 त्रिविक्रमविजेता त्वं मानुषेण रणे हतः ॥ ४ ॥
 विवशास्त्रिदशा येन कृताः प्रथितपौरुषाः ।
 स त्वमद्य कथं नाम शेषे निःशेषितः परैः ॥ ५ ॥
 एते ते शेरते राजन्कैलासोल्लासलाञ्छनाः ।
 भुजाः स्तम्भनिभा भूमौ मन्त्रान्ता भुजगा इव ॥ ६ ॥
 विकीर्णहारं वक्षस्ते रुधिरोद्धान्तु चन्दनम् ।
 ललनाकेलिशयनं पांशुदिग्धं न शोभते ॥ ७ ॥
 आकृष्टशिष्टाचारेण निष्पिष्टगुणसंपदा ।
 अत्र सीतापहारेण कृतान्तेनासि मोहितः ॥ ८ ॥
 शिखेवाग्नेः पतङ्गेन रूपलुब्धेन जानकी ।
 मृत्युरात्मविनाशाय स्वयमालिङ्गितस्त्वया ॥ ९ ॥
 प्रत्यासन्नविनाशेन श्रुतं तद्विस्मृतं श्रुतम् ।
 स्थलीकृतोऽम्बुधिर्येन कुम्भकर्णश्च पातितः ।
 स मर्त्य इति किं मिथ्या काकुत्स्थश्चिन्तितस्त्वया ॥ १० ॥
 अपाकृतं च बन्धूनां वचनं हितवादिनाम् ।
 भुखं रजःपुटेनेव किं ह्रिया विनिगूहसे ॥ ११ ॥
 सीताहृतेरसि हतः किमस्माभिः कृतं तव ।
 देहि प्रतिवचो नाम न प्रियां त्यक्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

अहो च पाशहस्तेन त्वं युक्त्यैव प्रमाथिना ।
 जानकीकरिणीलोभादाकृष्टो नरकुञ्जरः ॥ १३ ॥
 स्वदारान्क परित्यज्य परस्त्रीलुब्ध गच्छसि ।
 तव केनोपदिष्टोऽयं विवेकः साध्वसंमतः ॥ १४ ॥
 अधुना बन्धुभिर्विरैः पतितस्य स्वदुर्नयात् ।
 राघवस्तव संस्कारं चौरस्येवाभियुज्यते ॥ १५ ॥
 धिगेतत्पवनौदञ्चद्वीचिसंचयचञ्चलम् ।
 ऐश्वर्यं यत्त्वमद्यैव परायत्तौर्ध्वदैहिकः ॥ १६ ॥
 क्व सा सुरासुरशिरःशायिनी विश्वकम्पिनी ।
 आज्ञा तवाप्रतिहता निहतारातिसंपदः ॥ १७ ॥
 यत्र यत्र दृशः पेतुस्तव षड्वनोपमाः ।
 तत्र तत्रावभौ श्रीमानञ्जलिप्रणयी जनः ॥ १८ ॥
 स त्वमेको निपतितः क्षितौ क्षितिभृतां वर ।
 भृत्यशेषोऽपि यस्याग्रे नास्ति कव्यादवारणे ॥ १९ ॥
 भृत्याः सनाथाः सामात्याः सनाथा पृथिवी पुनः ।
 नाथे त्वयि गते नाथ विनाथस्तु बधूजनः ॥ २० ॥
 इति मन्दोदरी देवी सर्वाश्चान्तःपुराङ्गनाः ।
 चक्रुर्मुन्मदनोद्यानसंभोगस्मरणाकुलाः ॥ २१ ॥
 इत्यन्तःपुरप्रलापः ॥ १ ॥
 ततो विभीषणं रामः सदाचैराब्धिरभ्यधात् ।
 सत्कारः क्रियतां भ्रातुः सान्त्वयतां च बधूजनः ॥ २२ ॥
 एतद्विभीषणः श्रुत्वा तं जगाद कृताञ्जलिः ।
 नृशंसस्यास्य सत्कारे न मे चेतः प्रवर्तते ॥ २३ ॥
 कृतघ्नं त्यक्तसदृत्तं निष्कृपं निरपत्रपम् ।
 वायसा अपि नाश्रन्ति कथं दहति पावकः ॥ २४ ॥
 परामुन्नतिमासाद्य श्वभ्रे क्षिपति यस्तनुम् ।
 तस्यात्महन्तुर्भूढस्य क्रियते केन सत्क्रिया ॥ २५ ॥

शक्त्या कूरान्गुणैर्दृष्टान्प्रभावेण प्रमादिनः ।
 ऐश्वर्येण कदर्याश्च धिगनार्यान्वृथोन्नतान् ॥ २६ ॥
 परदारपरामर्षसंजातेनाजितेन्द्रियः ।
 जनवादेन दग्धोऽयं तर्कि दग्धस्य दह्यते ॥ २७ ॥
 इति ब्रुवाणं रामस्तं प्रीत्या स्पृष्ट्वाशु पाणिना ।
 उवाच प्रणयस्मेरत्विषा कुसुमिताधरः ॥ २८ ॥
 उद्धृत्तो दैन्यमापन्नः शत्रुर्व्यसनमागतः ।
 माननीयोऽभिरक्ष्यश्च विशेषेण मनस्विभिः ॥ २९ ॥
 महाजनो वा दीनो वा वयस्यः शत्रुरेव वा ।
 गतासवः समा रागद्वेषः कस्य कलेवरे ॥ ३० ॥
 गुणिनो गुणहीना वा ज्ञातयः प्रच्युताः पदात् ।
 अनुग्राह्याश्च पूज्याश्च स्थितिरेषा सतां सदा ॥ ३१ ॥
 हतेऽस्मिन्पतिते कोपं परित्यज्य विभीषण ।
 यातजीवस्य कः शत्रुर्विग्रहान्तो हि विग्रहः ॥ ३२ ॥
 तस्मात्कुरुष्व सत्कारं भ्रातुर्निजकुलोचितम् ।
 अकार्यमपि ते कार्यं सुहृदो वचनं मम ॥ ३३ ॥
 शासनादिति रामस्य बन्धूनामग्रजस्य च ।
 वृद्धामात्यैरविन्धायैर्विदधे देहसत्क्रियाम् ॥ ३४ ॥
 कृतोदकः समाश्वास्य वृद्धैरन्तःपुराङ्गनाः ।
 निदेशकारी रामस्य पुरस्तस्थौ विभीषणः ॥ ३५ ॥
 इति रावणसत्क्रिया ॥ २ ॥
 ततो विमुक्तकवचः शिथिलीकृतकार्मुकः ।
 विसृज्य मातलिं रामः प्रीत्या सौमित्रिमब्रवीत् ॥ ३६ ॥
 अधुना वत्स सुहृदः सतः पूर्वोपकारिणः ।
 विभीषणस्याभिषेकं द्रष्टुमिच्छति मे मनः ॥ ३७ ॥
 अनुरक्तस्य भक्तस्य रतस्य च हिते सदा ।
 स्निग्धस्य सुहृदः कृत्स्ना पृथिवी मूल्यमल्पकम् ॥ ३८ ॥

विभीषणो निजयशःशुभ्रोष्णीषविभीषणः ।
 अलंकरोतु लङ्कायां प्रशान्तातङ्कमासनम् ॥ ३९ ॥
 एवंविधः सदाचारस्तरूपां कुसुमागमः ।
 पुण्यैः प्रजाभिः श्रुतवान्धर्मात्मा लभ्यते प्रभुः ॥ ४० ॥
 धनी दाता गुणी नम्रः शूरः शान्तो द्विजः क्षमी ।
 भूलं कृतयुगस्यैतद्धर्मशीलश्च भूपतिः ॥ ४१ ॥
 सत्वे सैन्ये दमे धैर्ये कुले शीले श्रुतौ श्रुते ।
 विभीषणसमः कोऽस्ति बुधेषु विबुधेषु च ॥ ४२ ॥
 प्रौढप्रकाशयशसा गुणिना पक्षपातिना ।
 लङ्कातेजस्विनानेन द्यौरिवार्केण राजितः ॥ ४३ ॥
 सद्गर्भनि स्थितं पुत्रममित्रं व्यसनाहतम् ।
 मित्रं च विभवारूढं पश्यन्ति सुकृतौचिताः ॥ ४४ ॥
 रत्नोत्तमानि चत्वारि सन्ति संसारवारिधेः ।
 मित्रं कैरायि सक्तं च संपूर्णश्च सुधाकरः ॥ ४५ ॥
 सोऽयं मम सुहृन्मान्यः स्नेहप्रणयभाजनम् ।
 क्रियतामभिषेकार्द्रः प्रत्यग्रविभवोचितः ॥ ४६ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथेन लक्ष्मणः शुभलक्ष्मणः ।
 मङ्गलैर्विदधे मित्रं क्षेत्रं साम्राज्यसंपदाम् ॥ ४७ ॥
 हेमरत्नघटन्यस्तसर्वौषधिफलाक्षतैः ।
 बभौ शक्र इव श्रीमानभिषिक्तो विभीषणः ॥ ४८ ॥
 विभीषणाभिषेकेऽभूत्स कोऽप्यग्र्यग्रहोदयः ।
 प्राज्यो यस्य फलं राज्यमाभूमिगिरिसागरम् ॥ ४९ ॥
 इति विभीषणाभिषेकः ॥ ३ ॥
 शासनाद्रघुनाथस्य हनुमान्दर्षनिर्भरः ।
 गत्वा विजयवृत्तान्तं रामपत्न्यै न्यवेदयत् ॥ ५० ॥

१. 'प्रशङ्का' शा०. २. 'सैन्ये दमे धर्मे' शा०. ३. 'तोज्ज्वलाः' शा०. ४. 'कार्या-
 वस' शा०. ५. 'कोऽपि न ग्रहो' शा०.

सा भर्तुर्वचनं श्रुत्वा प्रहर्षोत्तम्भिताशया ।
 न शशाक क्षणं वक्तुं क्षीबेवामृतनिर्झरैः ॥ ५१ ॥
 ततश्चिरेण वैदेही वभाषे पवनात्मजम् ।
 आनन्देन निरुद्धं मे वचनं न प्रवर्तते ॥ ५२ ॥
 प्रियाख्यानस्य पृथिवी मूलस्यास्य ददानि किम् ।
 इति दैन्येन मे चेतः संतोषं नाधिगच्छति ॥ ५३ ॥
 इति ब्रुवाणां वैदेहीं मारुतिः प्रत्यभाषत ।
 इदं मे वचनं मातः परमं पारितोषिकम् ॥ ५४ ॥
 हतामित्रं कुशलिनं तव पश्यामि यत्पतिम् ।
 याभिस्त्वं तर्जिता कृच्छ्रे राक्षसीभिर्भयाकुला ॥ ५५ ॥
 आशैव विग्रहं तासां प्रसादो मे विधीयताम् ।
 इत्युक्ते वायुपुत्रेण जगाद जनकात्मजा ॥ ५६ ॥
 प्रेष्यासु परतन्त्रासु वीर न क्रोद्धुमर्हसि ।
 अपराधे वधाहेऽपि क्षमावानुन्नताशयः ॥ ५७ ॥
 इति व्याघ्रस्य पुरतो मुनिः कश्चिदभाषत ।
 आर्यपुत्रं कुशलिनं द्रष्टुमिच्छामि मारुते ॥ ५८ ॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा स ययौ यत्र राघवः ।
 तस्मै निवेद्य सानन्दां जायां जनकनन्दिनीम् ॥ ५९ ॥
 उवाच हनुमान्देवं देवी त्वां द्रष्टुमिच्छति ।
 श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं विचार्य सुचिरं धिया ॥ ६० ॥
 हर्षशोकसमाविष्टः कृच्छ्रेणोवाच राघवः ।
 कृतोदको गताशोचः स्वयं राजा विभीषणः ॥ ६१ ॥
 स्नातामलंकृतां सीतां समादायोपगच्छतु ।
 इति रामस्य वचसा लङ्कां गत्वानिलात्मजः ॥ ६२ ॥
 विभीषणाय सीतार्थं यथावृत्तं न्यवेदयत् ।
 ततः स्नाता शशिमुखी वस्त्राभरणभूषिता ॥ ६३ ॥

तां रत्नशिबिकारूढां पुरस्कृत्य विभीषणः ।
 वृद्धामात्यैः परिवृतः काकुत्स्थं समुपाययौ ॥ ६४ ॥
 आगतां जानकीं दृष्ट्वा वानराः कौतुकाकुलाः ।
 उन्मुखा विपुलं वर्त्म निःसंचारं प्रचक्रमुः ॥ ६५ ॥
 किं नु वक्ष्यति वैदेही रामः किं प्रतिवक्ष्यति ।
 कान्तिर्वा कीदृशी तस्या यदर्थं रावणो हतः ॥ ६६ ॥
 समागमो वा दम्पत्योः कीदृशोऽयं भविष्यति ।
 इत्येनंकविकल्पोऽभूज्जल्पस्तेषामनल्पकः ॥ ६७ ॥
 ततो विभीषणोऽभ्येत्य राममूत्रे कृताञ्जलिः ।
 निरस्य वेत्तिप्रवरैर्जनं दर्शनसंगतम् ॥ ६८ ॥
 जयश्रीरिव ते मूर्ता जानकी विक्रमाजिता ।
 इयमग्रे स्थिता देव कौमुदीवामृतत्विषः ॥ ६९ ॥
 इत्युक्तं राक्षसेन्द्रेण श्रुत्वा रघुपतिः क्षणम् ।
 प्रमोदक्रोधैर्न्यानां तुल्यं प्राप विधेयताम् ॥ ७० ॥
 सोऽवदत्किमयं मिथ्या जनः प्रोत्सार्यते पुरः ।
 युद्धे ममैते स्वजनाः कथं नु परतां गताः ॥ ७१ ॥
 यत्कृतो विस्मयो मूर्ते इव सेतुर्महोदधौ ।
 बत सा कीदृशी सीतेत्येषामेवास्ति संशयः ॥ ७२ ॥
 पुत्रपक्षे प्रजा राज्ञस्तस्मात्पश्यन्तु जानकीम् ।
 व्यसनोत्सवयुद्धेषु नादृश्या राजयोषितः ॥ ७३ ॥
 नान्तःपुरैर्न वासोभिर्न जनोत्सारणैः पुरः ।
 भवन्ति पूजिता नार्यः शीलं तासां समुन्नतिः ॥ ७४ ॥
 विधेवात्मविवेकेन सत्येनेव सरस्वती ।
 प्रज्ञेव धर्ममार्गेण नारी शीलेन पूज्यते ॥ ७५ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथेन प्लवङ्गाः सह राक्षसैः ।
 सीतां समुपसर्पन्तीं ददृशुर्विस्मयाकुलाः ॥ ७६ ॥

सीतादर्शनसंक्रान्तप्रकोपाताम्रलोचनम् ।
 सर्वे राघवमालोक्य शल्यविद्धा इवाभवन् ॥ ७७ ॥
 मानार्हमालिनी भर्त्रा मानसंभाषिता सती ।
 लज्जिता स्वानि गात्राणि विवेशेव विषादिनी ॥ ७८ ॥
 चिरदर्शनवैलक्ष्यविक्लवा सा विमानिता ।
 तन्वी लतेव तुहिनस्फारभारानताभवत् ॥ ७९ ॥
 अनुरागावमानाम्नितामालोक्य मैथिलीम् ।
 मा कस्यचिल्लियः कश्चिद्भूयादित्यवदज्जनः ॥ ८० ॥
 चिरसंभृतलावण्यललितामवलोक्य ताम् ।
 विवर्णवदनो रामः कोपस्नेहाकुलोऽभवत् ॥ ८१ ॥
 दृशं तद्वदनाम्भोजादपसार्य विनिश्चसन् ।
 वर्जयन्दर्शनस्पर्शं काकुत्स्थः क्षमां निरैक्षत् ॥ ८२ ॥
 सुग्रीवलक्ष्मणमुखाः प्रत्याख्यातामधोमुखीम् ।
 तां दृष्ट्वा वाससा वक्त्राण्याच्छाद्य रुरुदुः शुचा ॥ ८३ ॥
 वलिना संनिरुद्धेन ततः कोपाग्निना ज्वलन् ।
 भ्रुकुटीधूमलेखां कः काकुत्स्थः शङ्कितोऽवदत् ॥ ८४ ॥
 मानिना दारहरणे कर्तव्यं यत्कुलोचितम् ।
 तदस्माभिः कृतं तावद्वैर्यनिर्यातनं युधि ॥ ८५ ॥
 लज्जावमानपङ्केन लिप्तं यन्मेऽखिलं यशः ।
 क्षालितं निहितारातिवनितावाष्पनिर्झरैः ॥ ८६ ॥
 शत्रुहस्तात्त्वमाकृष्टा न भ्रष्टा शल्यमानिता ।
 अधुना गच्छ वैदेहि स्वाधीनास्ते दिशो दश ॥ ८७ ॥
 मानिनः परिभूतस्य दातुः कृशधनस्य च ।
 शङ्कितस्य च दारेषु कुतो निद्रा कुतः सुखम् ॥ ८८ ॥
 रक्षद्विरार्यमर्यादां साधुशब्दपदैर्वधूः ।
 सापशब्दाविपश्चिद्विर्वाणीव परिवर्ज्यते ॥ ८९ ॥

देवराणां गृहे वा त्वं सुग्रीवस्य गृहेऽथवा ।
 पुरे वा राक्षसेन्द्रस्य वस देशान्तरेषु वा ॥ ९० ॥
 गृहे स्थितां रावणस्य निर्लज्जस्याजितात्मनः ।
 कथं नु धारयामि त्वां मालां परिधृतामिव ॥ ९१ ॥
 इति प्रियेण निर्दोषा मिथ्यादोषेण दूषिता ।
 असूत्रहारं कुचयोश्चक्रे सीताश्रुविन्दुभिः ॥ ९२ ॥
 अवमानेन कोपेन लज्जया विस्मितेन च ।
 सुकुमारं मनस्तस्या भागीकृतमिवाभवत् ॥ ९३ ॥
 स वाससा वाष्पजलं परिमृज्य मृगेक्षणा ।
 उवाच वाष्पसंतप्ता दीर्घं निश्चस्य मानिनी ॥ ९४ ॥
 अहो विसदृशं नाथ पुरुषं जनसंनिधौ ।
 श्राविताहं कुलवधूरवधूतगुणा त्वया ॥ ९५ ॥
 स्थाने मनस्ते साशङ्कं स्त्रियो हि तरलाशयाः ।
 किं तु मां नाभिजानासि शीलज्ञोऽपि कथं प्रभो ॥ ९६ ॥
 कुले जनकराजस्य जाता दशरथस्नुषा ।
 पत्नी ननाम रामस्य सहते दूषणामिमाम् ॥ ९७ ॥
 प्राकृतस्त्रीसमुचितैः किं प्रलापैरसंगतैः ।
 अस्य मिथ्याव्यलीकस्य प्रमाणं मे हुताशनः ॥ ९८ ॥
 चितां रचय सौमित्रे पत्युर्वक्त्रेन्दुनिर्गताम् ।
 उल्कामादाय हृदये कथं जीवितुमुत्सहे ॥ ९९ ॥
 इति सीतावचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शोकविह्वलः ।
 अधोमुखस्य रामस्य विज्ञायेङ्कितचेष्टितम् ॥ १०० ॥
 विदधे दुःखसदृशं ज्वलितं जातवेधसम् ।
 शीलशैलस्य वैदेह्या मिथ्यादोषस्य भेषजम् ॥ १०१ ॥
 पावकाभिमुखी गत्वा ततो जनकनन्दिनी ।
 अभ्यधादवमानस्य प्रायश्चित्तार्थिनी सती ॥ १०२ ॥

मनोवाक्कायचेष्टाभिर्यथाहं राघवात्परम् ।

दैवतं नाभिजानामि तेन मां पातु पावकः ॥ १०३ ॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणेभ्यश्च देवेभ्यश्च मनस्विनी ।

प्रणामं मनसा कृत्वा प्रविवेश हुताशनम् ॥ १०४ ॥

इति वह्निप्रवेशः ॥ ४ ॥

ततः शचीपतिः श्रीमांल्लोकपालैः सहाखिलैः ।

अदृश्यत स्वयं ब्रह्मा देवश्च गिरिजापतिः ॥ १०५ ॥

ते सूर्यशतसंकाशैर्विमानैः पूरिताम्बराः ।

शक्रप्रभावविभवो राजा दशरथस्तथा ॥ १०६ ॥

राक्षसक्षयसंहृष्टा राममूचुः कृताञ्जलिम् ।

किरन्त इव दन्तांशुनिवहैः कुसुमस्रजः ॥ १०७ ॥

कथं पृथग्जन इव प्रजानाथ कुलोचितम् ।

परित्यजसि निर्दोषां सीतां कीर्तिमिवात्मनः ॥ १०८ ॥

अहो वत न जानासि स्वयमात्मानमच्युत ।

कथं जगन्निवासस्य प्रभावो विस्मृतस्तव ॥ १०९ ॥

इत्युक्ते सादरं व्योम्ना सहस्राक्षमुखैः सुरैः ।

शक्रेण प्रेरितो वक्तुं स्वयमूचे प्रजापतिः ॥ ११० ॥

देवो नारायणः श्रीमान्पद्मनाभो विभुर्भवान् ।

स्वेच्छामात्रसमुन्मेषो यस्यायं विश्वसंभ्रमः ॥ १११ ॥

चराचरस्य स्रष्टारं भ्रातारं जगतामपि ।

संहर्तारं च पर्यन्ते त्वामाहुः कारणं त्रिधा ॥ ११२ ॥

सर्वयज्ञमयं धाम सर्वदेवमयं वपुः ।

सर्वदेवमयश्चात्मा कस्यान्यस्य यथा तव ॥ ११३ ॥

पराकाशावकाशेऽस्मिन्नेकोऽर्कस्त्वं सदोदितः ।

हंसो हिरण्यवर्णश्च मानसोरुसरोरुहे ॥ ११४ ॥

पुरुषस्याप्रमेयस्य शाश्वतस्य प्रजापतेः ।

स्तुतौ शक्तात्र नैवैषा तावती यदि भारती ॥ ११५ ॥

सर्वावतारलीलासु तव विस्रम्भसाक्षिणी ।

लक्ष्मीः क्षितिसमुद्भूता सती जनकनन्दिनी ॥ ११६ ॥

इति महापुरुषस्तवः ॥ ५ ॥

उक्ते पितामहेनेति भगवान्भूतभावनः ।

स्वयं विभावसुः सीतामादाय प्रत्यदृश्यत ॥ ११७ ॥

स समभ्येत्य काकुत्स्थं तेजोनिधिरभाषत ।

निर्दोषां राम वैदेहीं गृहाणाभिजनोज्ज्वलाम् ।

विमोहजननीं मिथ्या न शङ्कां कर्तुमर्हसि ॥ ११८ ॥

इत्युक्ते वह्निना रामस्तमुवाच कृताञ्जलिः ।

गृहीतेयं मया देव वैदेही तव शासनात् ॥ ११९ ॥

शुद्धस्वभावां सततं ननु जानामि जानकीम् ।

किं त्वस्या विहिता शुद्धिलोकप्रत्ययकारिणी ॥ १२० ॥

सर्वथा रञ्जनीयोऽयं जनो निर्दोषदोषभाक् ।

लोकप्रत्ययसारो हि सदाचारपरिग्रहः ॥ १२१ ॥

उक्त्वेति सीतां जग्राह राघवो वह्निनार्पिताम् ।

स्वयं महेश्वरेणापि पवित्रितगुणस्तवः ॥ १२२ ॥

ततो दशरथः पुत्रं राममूचे दिवि स्थितः ।

सत्यं ममैव नान्यस्य पुत्र मानोज्ञतं शिरः ॥ १२३ ॥

धन्योऽहं यस्य मे राम त्वं सुतस्त्रिदशार्चितः ।

स्नुषा चेयं सती सूता पावकी कुलसंततेः ॥ १२४ ॥

यशःशुभ्रांशुकः श्रीमान्सत्यधर्मविभूषणः ।

स्वच्छन्ददेहविरहौ भविष्यसि वरान्मम ॥ १२५ ॥

श्रुत्वेति राघवो वाक्यं पितुः प्रणतशेखरः ।

उवाच तात धन्योऽहं प्रसादेन तवामुमा ॥ १२६ ॥

मद्विप्रवासकोपस्ते योऽभूत्केकयजां प्रति ।

भरते वा तदुद्भूतस्तयोः शापो निवर्तताम् ॥ १२७ ॥

इत्युक्ते रघुनाथेन तथेत्युक्त्वा नभोगतः ।

गुणैः प्रशंसन्सौमित्रिं नृपः सीतामपूजयत् ॥ १२८ ॥

किं तदा नीतिचक्रेण प्रेरितो राघवः प्रियम् ।

हतानां कपिवीराणां ययाचे जीवितं विभुः ॥ १२९ ॥

ततः पीयूषवर्षेण शक्रोत्सृष्टेन वानराः ।

लब्धजीवाः समुत्तस्थुः सर्वत्रेच्छाफलोदकाः ॥ १३० ॥

ततो रामं समाभाष्य पूजयित्वा पुनः पुनः ।

सुराः ससिद्धगन्धर्वाः प्रययुः प्रीतिशालिनः ॥ १३१ ॥

इति लोकपालदर्शनम् ॥ ६ ॥

ततो रामस्य वचसा रत्नैरापूर्य वानरान् ।

स्वपुरीमुद्यतो गन्तुं तमुवाच विभीषणः ।

शक्रस्येवाभिषेकं ते द्रष्टुमिच्छामि मानद ॥ १३२ ॥

इदं च पुष्पकं नाम विमानाग्र्यं मनोजवम् ।

मयोपनीतमारुह्य सनाथीक्रियतां विभो ॥ १३३ ॥

एतदाकर्ण्य काकुत्स्थस्तथेत्युक्त्वा बधूसखः ।

आरुरोह विमानं तत्सानुजः सविभीषणः ॥ १३४ ॥

ततो वानरराजस्य सैन्ये बलजयोजिते ।

भुवनोलङ्घनायैव त्रिविक्रम इवोद्यते ॥ १३५ ॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातमथ कैलाससंनिभम् ।

जगाहे गगनं वेगात्पुष्पकं कीर्णपुष्पकम् ॥ १३६ ॥

जवोद्धूतपताकेन केतुना पुष्पकं दिशाम् ।

चक्रे रत्नांशुमायूरव्यजिनेनैव जीवनम् ॥ १३७ ॥

पुष्पकेन व्रजत्रामो व्योमः क्षमामवलोकयन् ।

जगाद जानकीं दन्तज्योत्स्नारञ्जितदिङ्मुखः ॥ १३८ ॥

एतदायोधनं यत्र सीते ते निधनं गताः ।

इन्द्रजित्प्रमुखा व्रीरास्तदर्थं क्षणदाचराः ॥ १३९ ॥

१. 'व्यजनेनेव वीजनम्' इति स्यात्.

अयं तरङ्गसंघट्टविस्फुटः शुक्तिमौक्तिकैः ।

व्यक्ताट्टहासो जलधिल्लङ्काविभ्रमदर्पणः ॥ १४० ॥

अयं स पौलस्त्य इवोग्रसत्वः क्रान्तोऽम्बुधिर्मरुतनन्दनेन ।

उल्लोलदोलावलयेन यस्य लङ्कावधूर्भाति दुकूलिनीव ॥ १४१ ॥

अयं स सेतुगिरिभिर्निबद्धः सीमन्तिताम्भोधिरिवावभाति ।

यशांसि येन प्लवगर्षभाणां भुजोर्जितानां सततं तरन्ति ॥ १४२ ॥

वेलावने इयामलतालतालीतालीसहिन्तालतमालयाली ।

भात्यस्य भर्गाग्निपतङ्गवृत्तेर्धूमावली वासमसायकस्य ॥ १४३ ॥

सोऽयं गिरीन्द्रः सुमहान्महेन्द्रः क्लान्तः कपीन्द्रेण विलङ्घनेऽब्धेः ।

मानोन्नतः साधुरिवाकुलीनो याच्या हि सा खर्वशिरा बभूव ॥ १४४ ॥

एतन्महन्माल्यवतो महाद्रेः संदृश्यते शृङ्गमनङ्गरङ्गम् ।

यत्कन्दरे वानरराजजुष्टा रत्नोज्ज्वला राजति राजधानी ॥ १४५ ॥

त्वया विहीनेन मयास्य सानौ कृच्छ्रेण पीतो विधिनोपरीतः ।

वियोगमुद्वन्मनसाप्यकाले कालः सकालो नवमेघकालः ॥ १४६ ॥

सेन्द्रायुधान्यम्बुदमण्डलानि नृत्यन्मयूराणि च काननानि ।

स्मृत्वा ममाद्याप्यधिवासलीनं वियोगदुःखं न जहाति चेतः ॥ १४७ ॥

एतत्तदम्भोजरजःपिशङ्गं पम्पासरसारसनादह्वयम् ।

नीता निशास्त्वद्विरहे मयास्य तीरे वियुक्तैः सह चक्रवाकैः ॥ १४८ ॥

सोऽयं जनस्कारनिवासपूज्यो वनस्पतिर्यत्र स गृध्रराजः ।

हतस्त्वदर्थे जनसाधुवादं शृणोति सर्वत्र यशःशरीरः ॥ १४९ ॥

मुनेरगस्त्यस्य पवित्रकीर्तितपःपवित्रस्य तथायमत्रेः ।

पुण्याश्रमस्तीव्रभवाध्वतापः श्रमापहस्त्यक्तविरोधसत्वः ॥ १५० ॥

सोऽयं गिरिर्निर्झरधौतसानुः संदृश्यते जानकि चित्रकूटः ।

बभूव सौजन्यसुधाकरेण समागमो मे भरतेन यत्र ॥ १५१ ॥

अग्र्यं विभात्यग्रकलत्रमब्धेस्त्रिमार्गगा स्वर्गनिसर्गमार्गः ।

यस्यां त्रिलोक्याः कथयत्यजस्रं पवित्रतां त्र्यम्बकमौलिमाली ॥ १५२ ॥

इयं कलिन्दाद्रिगजेन्द्रसान्द्रमदाम्बुशोभां यमुना विभर्ति ।
 तरङ्गिणीभूषितमध्यदेशा रोमावलीवावनिनायिकायाः ॥ १५३ ॥
 अत्राश्रमो विश्रमहेतुरक्षणां पुण्यो भरद्वाजमुनेर्विभाति ।
 यस्याविदूरे नगरी गुहस्य विलोक्यते प्रीतिरिवाक्षया मे ॥ १५४ ॥
 इयं सरित्सा सरयूरयोध्यावधूनिबद्धा मणिमेखलेव ।
 करोति वेष्टकलहंसमालाकोलाहलैर्विभ्रमशिञ्जितानि ॥ १५५ ॥
 एषाप्ययोध्या रघुराजधानी स्फारस्फुटस्फाटिकसौधभाभिः ।
 भात्युल्लिखन्ती निखिलं खमुच्चैर्मूर्तेव राज्ञो भरतस्य कीर्तिः ॥ १५६ ॥
 उक्त्वेति रामः स्वपुरांसकामस्तूर्णं विमानादवरुह्य वीरः ।
 ज्ञानेक्षणं ज्ञातसमस्तवृत्तं नत्वा भरद्वाजमुनिं प्रतस्थे ॥ १५७ ॥
 इति पुनराख्यायिकम् ॥ ७ ॥
 सत्यः समुद्भूतविकासपुष्पाः फलाकुलास्तस्य पुरः समस्ताः ।
 अश्रान्तसंतोषवसन्तकान्ता वृक्षा भरद्वाजवराहभूवुः ॥ १५८ ॥
 निशम्य तस्मात्कुशलं गुणाब्धेः कृतं च दीप्तं भरतस्य राज्ञः ।
 पुनः प्रहर्षाय समीरसूनुं मनःसमानं विससर्ज वक्तुम् ॥ १५९ ॥
 गत्वा ततो राघवशासनेन कपिः पितुः स्वस्य गतिं क्षणेन ।
 गुहाय सर्वं विनिवेद्य वृत्तमवाप धर्म्यं भरतस्य धाम ॥ १६० ॥
 स तं निशातव्रतकर्षिताङ्गं ददर्श दर्शोदितचन्द्रतुल्यम् ।
 जटाधरं राज्यमिवाभिरामं रामं विना प्रव्रजितं वनान्ते ॥ १६१ ॥
 निवेद्य तस्मै निरवद्यवृत्तेर्वृत्तं समस्तं रघुनन्दनस्य ।
 सीतावियोगव्यसनार्तिकृच्छ्रं दशाननोच्छेदभयोजितं च ॥ १६२ ॥
 प्राप्तं च सुग्रीवविभीषणाद्यैर्जयोदयश्रीसचिवैः सहैव ।
 सीतासहायं तमुदारशीलं कपिप्रवीरो विरराम वाक्यात् ॥ १६३ ॥
 श्रुत्वा समुत्तीर्य वनव्रतं तं समागतं आतरमात्तजीवः ।
 नवेन हर्षेण निरुद्धमूर्तिनिस्पन्दमूर्तिर्भरतो बभूव ॥ १६४ ॥

स धैर्यमासाद्य शनैः समस्तं पुनर्जगज्जातमिवाकलय्य ।
 हर्षाश्रुसंपूर्णविलोचनाग्रः स्पृशन्कराग्रेण कपिं जगाद ॥ १६५ ॥
 दिष्ट्या स देवः कुशली हतारिस्त्वत्तः श्रुतः स्वं विषयं प्रविष्टः ।
 किं ते प्रियाख्यानमुखस्य मूल्यं कोटीसहस्राणि ददानि हेम्नः ॥ १६६ ॥
 सर्वात्मना वर्षशतादपीह जीवन्तमायाति नरं प्रहर्षः ।
 इत्येष सत्यः किल लोकवादः कल्याणशंसी प्रतिभाति मेऽद्य ॥ १६७ ॥
 उक्त्वेति सर्वाः प्रकृतीर्नियोज्य पुरोत्सवालंकृतिसक्तियासु ।
 सामात्यभृत्यो जननीजनेन सार्धं प्रतस्थे भरतोऽग्रजाग्रम् ॥ १६८ ॥
 इति भरतानन्दः ॥ ८ ॥

स वानरानीकमहाब्धिमध्ये दृष्ट्वा समायान्तमनन्तवीर्यम् ।
 मान्यं विमानस्थगिताम्बराग्रं रामं प्रहृष्टः प्रणनाम दूरात् ॥ १६९ ॥
 तमादराद्दीर्घतरप्रवाससमागतौ सुख्यपरीतचेताः ।
 रामः सरामोऽप्यविमानशृङ्गमुत्सङ्गसक्तं मुहुरालिलिङ्ग ॥ १७० ॥
 ततः समुत्सृज्य विमानमुच्चैः स्वयं कुबेराय विसृज्य तच्च ।
 वशिष्टमाप्तं पुरतो ववन्दे रघूद्वहः स्वं जननीजनं च ॥ १७१ ॥
 निवेदिते न्यास इव स्वराज्ये रामस्य हर्षाद्भरतेन राज्ञः ।
 समुच्चारासमसाधुवादैर्जनस्य सौजन्यगुणप्रवादः ॥ १७२ ॥
 गुणप्रकर्षे भरतस्य तत्र सौभ्रात्रजे राघववर्ण्यमाने ।
 जनस्तथेत्याह विलज्जिताभ्यामन्यत्र सुग्रीवविभीषणाभ्याम् ॥ १७३ ॥
 यथोचितं नूतनसंगमेन हृष्टाः परिष्वज्य मिथः प्रणामैः ।
 ते भ्रातरस्ताश्च परं जनन्यः सीता च सर्वे च चिरं ननन्दुः ॥ १७४ ॥
 पौलस्त्यकारागृहबन्धमुक्तनाकौकसां हर्षफलैः कलत्रैः ।
 आकीर्यमाणः कुशुमैर्विवेश ततः पुरीं स्वां रघुराजचन्द्रः ॥ १७५ ॥
 इति भरतसमागमः ॥ ९ ॥

स्नाता विमुक्तव्रतकेशबन्धाः पुष्पोज्ज्वला रत्नविभूषिताश्च ।
 ते राघवास्तत्र बभुर्वसन्ते वृक्षा इवाप्तास्तरुणस्वभावम् ॥ १७६ ॥

प्रसादिता भूषणरत्नमाल्यैः कौशल्यया मैथिलराजपुत्री ।
 लतेव तन्वी नवचैत्रलक्ष्म्या विभ्राजिता चारुतरा बभूव ॥ १७७ ॥
 ततः कपीन्द्रस्य गिरा चतुर्भ्यो रत्नाकरेभ्यः सलिलेन पूर्णान् ।
 आजग्मुरादाय सुवर्णकुम्भान्नदीशतेभ्यश्च तदङ्गदाद्याः ॥ १७८ ॥
 वसिष्ठमुख्यैर्मुनिभिः समस्तैरथाभिषिक्तो विधिना निजेन ।
 रत्नासने शासनसंविभक्तसमान्तचक्रः स रराज राजा ॥ १७९ ॥
 यथैष रामश्चरिताभिरामस्तथाविधं नैव नृपं स्मरामः ।
 विलोक्य रामस्य महाभिषेकमित्यूचिरे खे सुरसिद्धसंघाः ॥ १८० ॥
 लक्ष्मीप्रहर्षसितचारु तस्य च्छत्रं यशःस्वच्छमतुच्छकीर्तः ।
 सानन्दशत्रुघ्नधृते रराज राज्याम्बुधेः फेणमहादृहासः ॥ १८१ ॥
 स वीज्यमानः सितचामराभ्यां हर्षेण सुग्रीवविभीषणाभ्याम् ।
 बभौ शशाङ्कच्छविलाञ्छनाभ्यां नीलाम्बुदाभ्यामिव शैलराजः ॥ १८२ ॥
 प्रावारकेयूरमहार्हहार्विभूषणापूरितपात्रहस्ताः ।
 सुरासुरेन्द्रैः प्रहिताः समुद्रमुख्यास्तमव्यग्रतयोपतस्थुः ॥ १८३ ॥
 ततो ददौ दिव्यविभूषणानि रामो यथार्थं हरिपुंगवेभ्यः ।
 यैरावभुर्भूधरविग्रहास्ते मेघा इवेन्द्रायुधसंविभक्ताः ॥ १८४ ॥
 विमुच्य हारं हरिणायताक्षी मतेन पत्युः प्रददौ च बाढम् ।
 स तेन संपूर्णतुषाररश्मितारेण हारेण रराज वीरः ॥ १८५ ॥
 क्षीरेण मन्थोत्थितफेनहाससमुल्लसत्कान्तिरिवामृताब्धिः ।
 ततः कृतार्थः सुहृदर्थसिद्धिः संपूर्णमानः प्लवगप्रवीरः ॥ १८६ ॥
 रामं समामन्त्रय ययुः पुरीं स्वां संपूर्णमाना दिवि देवसंघाः ।
 सौमित्रिरग्न्योर्पितयौवराज्यं प्राप्यं न जग्राह यदार्थितोऽपि ॥ १८७ ॥
 तदा नियुक्तः प्रणथेन राज्ञा निदेशकारी भरतः प्रपेदे ।
 सधर्ममूलः शतयज्ञशाखः सत्यप्रसूनः सितकीर्तिपुष्पः ।
 गुणद्विरेफो विरराज रा.....जसद्गुमस्तापहरः प्रजानाम् ॥ १८८ ॥

स्वर्गोपमा यदभवत्सकला धरित्री
 देवानुकारिचरितो यदभूज्जनश्च ।
 कल्पद्रुमा यदभवत्सकलाश्च वृक्षा
 राजा प्रजापतिकृताभिनवस्थितिश्च ॥ १८९ ॥
 तस्यादरः सुचरितेन सितातपत्रे
 निर्व्याजसत्त्वविभवेषु न चामरेषु ।
 आसीज्जनार्तिहरणेषु न संचयेषु
 धर्मोज्ज्वलेषु च गुणेषु न भूषणेषु ॥ १९० ॥
 त्यागेन वित्तं प्रशमेन विद्या शीलेन रूपं क्षमया प्रभावः ।
 अश्लाघया तेन गुणाश्च सर्वे विभूषिताः सत्त्वविभूषणेन ॥ १९१ ॥
 स्वच्छाशये कुवल्याभरणे विचित्र-
 शब्दैः सदा द्विजवरैरुपजीव्यमाने ।
 विभ्राजते गुणगणैः कृतसंनिधानो
 यस्मिन्नवाप कमलाकरनिर्वृतिं श्रीः ॥ १९२ ॥
 नृपतिमुकुटरत्ने राघवे शासति क्षमां
 गुणगणपरिपूर्णः सर्वसंपत्समृद्धः ।
 समुचितनिजकर्मा धर्ममार्गप्रवृत्तः
 सुतपरिजनयुक्तः प्राज्यजीवो जनोऽभूत् ॥ १९३ ॥
 इति रामाभिषेकः ॥ १० ॥

उत्तरकाण्डः ।

जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ।
 अजेन विश्वरूपेन निर्गुणेन गुणात्मना ॥ १ ॥
 शरांशुनिहितारातितिमिरं तेजसां निधिम् ।
 राज्योदयस्थं मुनयः काकुत्स्थं द्रष्टुमाययुः ॥ २ ॥
 अत्रिर्वशिष्ठः पुलहः कश्यपो गोतमस्तथा ।
 च्यवनो व्याघ्रकश्वैव देवलो रोमहर्षणः ॥ ३ ॥

कश्यपो दीर्घतपसः पाराशर्यः पराशरः ।
 विश्वामित्रोऽथ जाबालिर्भारद्वाजश्च शौनकः ॥ ४ ॥
 सनन्दः पिप्पलादश्च लोकाक्षः कपिलस्तथा ।
 आपस्तम्भः सुमन्तुश्च बौधायनवलायनौ ॥ ५ ॥
 ऋष्यशृङ्गोऽथ कुशिकः गर्गवत्ससनातनाः ।
 एते ते मुनयः पूज्याः पृथग्द्रव्यादिसंचयाः ॥ ६ ॥
 पूजितास्ते विधानेन प्रधानेन पुरोधसा ।
 हेमरत्नासनजुषः प्रणतं राममूचिरे ॥ ७ ॥
 दिष्ट्या स निहतो वीर रावणः सानुगस्त्वया ।
 स्मृतेऽपि यस्मिन्मुञ्चन्ति न संत्रासं दिवौकसः ॥ ८ ॥
 दिष्ट्या कुशलिनं राम पश्यामस्त्वां हताहितम् ।
 यस्येयं भुजवीर्येण पुनर्जाता जगन्नयी ॥ ९ ॥
 धर्मोक्तधियो धाम्नां निधयो विधयः स्थितेः ।
 त्वद्विधानुजायन्ते लोकत्राणाय साधवः ॥ १० ॥
 रक्ष्यते त्वादृशैरेव मार्गः स्वर्गौकसां हितैः ।
 क्रमैस्त्रिविक्रमस्येव त्रैलोक्याक्रमणक्षमैः ॥ ११ ॥
 अद्भुतं त्वत्प्रभावेण स्वयमेतत्प्रदर्शितम् ।
 महाब्धौ सेतुबन्धश्च वधश्चेन्द्रजितो युधि ॥ १२ ॥
 कम्पं यत्कीर्तने वक्ति सुरस्त्रीरशनारवः ।
 वधादिन्द्रजितस्तस्य जातः कस्य न विस्मयः ॥ १३ ॥
 धनुस्त्रैलोक्यरक्षार्थं यज्ञार्थमखिलं धनम् ।
 जीवितं साधुवादार्थमहो श्लाघ्यं तव त्रयम् ॥ १४ ॥
 इत्युक्ते मुनिचक्रेण शक्रजिद्वधविस्मयम् ।
 उवाच विनयानम्रः काकुत्स्थस्तान्सकौतुकः ॥ १५ ॥
 कुम्भकर्णदशग्रीवमुखेभ्योऽभ्यधिकः कथम् ।
 इन्द्रजित्प्रवरश्चास्य कीदृशो वाभवद्वरः ॥ १६ ॥

प्रणयादिति पृष्टेषु राघवेण महर्षिषु ।
 त्रिकालञ्च ऋषिः श्रुत्वा प्रहसन्दिव्यलोचनः ।
 मुनिर्जगादागस्त्यस्तं दक्षिणाशविशेषकः ॥ १७ ॥
 मेरुपार्श्वे तपस्तेपे पुरा कृतयुगे मुनिः ।
 तृणाङ्गेराश्रमे पुण्ये पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥ १८ ॥
 तं देशं सुरसिद्धिर्धिराजर्षिवरकन्यकाः ।
 क्रीडन्त्यः काञ्चनलता कान्तं सततमाययुः ॥ १९ ॥
 मत्वा तास्तपसो विभ्रं पुनः प्रोवाच संयमी ।
 ममाश्रमं या प्रविशेत्सा गर्भं धारयेदिति ॥ २० ॥
 श्रुत्वैतत्कन्यकाः सर्वास्तं देशं नाययुः पुनः ।
 तृणविन्दोस्तु राजर्षेर्न तच्छुश्राव कन्यका ॥ २१ ॥
 सा सखीदर्शनरसा तं देशं हरिणेक्षणा ।
 मुनिं स्वाध्यायसंसक्तं ददर्शभ्येत्य निर्भया ॥ २२ ॥
 तस्य श्रुतिं श्रुतिसुखामाकर्ण्यलोक्य चाकृतिम् ।
 लेभे वसन्तवल्लीव प्रकामकमनीयताम् ॥ २३ ॥
 ततः सा व्यक्तसंदर्भगर्भजम्बालमस्थितिः ।
 जगामापाण्डुरमुखी लज्जिता पितुराश्रमम् ॥ २४ ॥
 राजर्षिर्ध्यानयोगेन सर्वं विज्ञाय दिव्यधीः ।
 पुलस्त्यायैव तां गत्वा ददौ भिक्षामिवात्मजाम् ॥ २५ ॥
 तस्यामजनयत्पुत्रं स मुनिर्विश्वविश्रुतम् ।
 श्रुतिश्रवणजन्मानं नाम्नां विश्रवसं सुतम् ॥ २६ ॥
 पितुः समानचरितः स कालेन महातपाः ।
 भरद्वाजात्मजां कान्तां पत्नीं प्राप पतिव्रताम् ॥ २७ ॥
 सा तस्मादुचितं पुत्रं पवित्रचरितं सती ।
 लेभे वैश्रवणं नाम तुल्यं विश्रवसो गुणैः ॥ २८ ॥

तस्य वर्षसहस्रेषु प्रयातेषु तपस्यतः ।
 ददौ वरान्वरान्प्रीतः सुरैः सह पितामहः ॥ २९ ॥
 स प्राप्य लोकपालत्वं दितैश्वर्यं स पुष्पकम् ।
 गत्वा पप्रच्छ पितरं निवासं विभवोचितम् ॥ ३० ॥
 सोऽब्रवीत्काञ्चनमयी विश्वकर्मकृता पुरा ।
 लङ्का नामास्ति रक्षोभिस्यक्ता विष्णुभयार्पितैः ॥ ३१ ॥
 सा तवैवोचिता पुत्र गच्छेत्याकर्ण्य तद्वचः ।
 ययौ वैश्रवणस्तूर्णं तां पुरीं रत्नतोरणाम् ॥ ३२ ॥
 तस्यां सुरार्चितः श्रीमान्निवसन्गुह्यकेश्वरः ।
 काले काले ययौ द्रष्टुं पितरं पुष्पकेन सः ॥ ३३ ॥
 इति वैश्रवणोत्पत्तिः ॥ १ ॥

इति कुम्भोद्भवेनोक्तमाकर्ण्य रघुनन्दनः ।
 लङ्काख्यानप्रसङ्गेन विस्मितस्तमभाषत ॥ ३४ ॥
 पुलस्त्यवंशसंभूताः श्रूयन्ते किल राक्षसाः ।
 तेभ्योऽप्यन्ये बभूवुः के लङ्का येषामभूत्पुरी ॥ ३५ ॥
 रामेणेति पुनः पृष्टः चुलुकापीतसागरः ।
 ऊचे दन्तांशुभिः कुर्वन्दिशो मुक्ताङ्किता इव ॥ ३६ ॥
 पुरा प्रजासु जातासु रक्षोभिः क्षुभितैर्विधिः ।
 प्रार्थितो विदधे रक्षयरक्षिणौ यक्षरक्षसाम् ॥ ३७ ॥
 ततो हेतिः प्रहेतिश्च सत्यधर्मव्रतोऽभवत् ।
 हेतेर्मयायामभवद्विद्युत्केशाभिधः सुतः ।
 स्वयं संध्या ददौ तस्मै सुतां सालकटां कटाम् ॥ ३८ ॥
 विद्युत्केशेन सततं रममाणा घनस्तनी ।
 गर्भमाधत्त सा काले विघ्नं संभोगसंपदाम् ॥ ३९ ॥
 सा गत्वा तूर्णमुत्सृज्य गर्भं मन्दरकन्दरे ।
 विद्युत्केशान्तिकं प्रायादश्रान्तसुरतार्थिनी ॥ ४० ॥

स त्वया शिशुरुत्सृष्टः संध्यारुण इवांशुमान् ।
 निक्षिप्य वदने पाणिं रुरोदाम्बुदनिस्वनः ॥ ४१ ॥
 ब्रजन्गगनमार्गेण देवस्तं वृषवाहनः ।
 ददर्श सह पार्वत्या भगवान्भूतभावनः ॥ ४२ ॥
 कारुण्यादथ रुद्राण्या स्वयमभ्यर्थितः शिशोः ।
 पुरामाकाशं प्रादादमरत्वं च शंकरः ॥ ४३ ॥
 अम्बिकानुग्रहादुग्रतेजः शक्तिपराक्रमः ।
 जातमात्रः प्रववृधे ततः प्रभृति राक्षसः ॥ ४४ ॥
 स सुकेशाभिधः श्रीमान्राक्षसेन्द्रो वरोऽर्जितः ।
 विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु हरस्यानुचरोऽभवत् ॥ ४५ ॥
 ग्रामणीं नाम गन्धर्वस्तस्मै देववतीं सुताम् ।
 दत्त्वा कृतार्थमात्मानं भेने गिरिशगौरवात् ॥ ४६ ॥
 बभूवुस्तनयास्तस्य तस्यामग्निप्रभास्त्रयः ।
 माल्यवांश्च सुमाली च माली च बलशालिनः ॥ ४७ ॥
 सर्वभूतैरजय्यास्ते तपसा ब्रह्मणो वरात् ।
 अमर्त्यचक्रमाक्रम्य चक्रुर्विस्मृतविक्रमम् ॥ ४८ ॥
 ते दुर्गमां पुरीं पूर्वनिर्मितां विश्वकर्मणा ।
 लङ्कां तद्वचसा प्रापुः शङ्कां खिन्नां समन्ततः ॥ ४९ ॥
 तस्यां वसद्विस्तैर्दीप्तप्रतापैर्विजिताः सुराः ।
 ययुः स्वर्गं समुत्सृज्य प्राणरक्षाकृतक्षणाः ॥ ५० ॥
 गन्धर्वपुत्रिकास्तिस्रः प्रापुस्ते दीप्तचन्द्रिकाः ।
 विभवे सर्वरत्नानामयत्नेनैव संगमः ॥ ५१ ॥
 तासां तु सुकृती नाम ज्येष्ठा माल्यवतः प्रिया ।
 पुत्रानजनयद्वीरान्युधि ये निहितास्त्वया ॥ ५२ ॥
 वज्रमुष्टिर्विरूपाक्षः सुसप्तो दुर्मुखस्तथा ।
 मद्गुमान्यज्ञकोपश्च कन्या चैकानिलाधिकाम् ॥ ५३ ॥
 सुमाली केतुमत्याश्च पुत्रान्प्राप्य बलाधिकात् ।
 प्रहस्तः कम्पनश्चण्डो विकटः कङ्कटामुखः ॥ ५४ ॥

धूमाक्षः कम्पनो ह्रादी सुपार्श्वः प्रघसस्तथा ।
 हासवर्णश्च बलवानिति तुल्यपराक्रमाः ॥ ५५ ॥
 पुष्पोत्कटा केकसी च वाका कुम्भीरसा तथा ।
 चतस्रः कन्यकाः श्लाघ्या बभूवुर्मृगलोचनाः ॥ ५६ ॥
 अभवन्वसुधाख्यायां चत्वारो धर्मवर्तिनः ।
 अनिलानिलसंपातिहराख्या मालिनः सुताः ॥ ५७ ॥
 एतैर्विभीषणामात्यैः सत्वगाम्भीर्यसागरैः ।
 यशश्च युद्धविपुलं प्राप्तं दुष्कर्म संस्कृतात् ॥ ५८ ॥
 एवं प्रविस्मृते तेषामक्षये रक्षसां कुले ।
 सुराणां संचुकोच श्रीः पद्मिनीव हिमाहता ॥ ५९ ॥
 ब्रह्मयज्ञद्विषां तेषां भयेन महतार्दिताः ।
 त्रिदशाः शरणं जग्मुर्देवदेवं पिनाकिनम् ॥ ६० ॥
 पक्षमपातात्सुकेशस्य जगतामप्यनुग्रहात् ।
 दोलायितमनाः क्षिप्रं तानुवाच वृषध्वजः ॥ ६१ ॥
 ते सुकेशस्य तनयाः कथं वश्येयाः स्वयं मम ।
 कार्येऽस्मिन्कुशलो विष्णुरर्थ्यतामसुरान्तकः ॥ ६२ ॥
 अथ त्रिनेत्रस्य गिरा गीर्वाणा देवमच्युतम् ।
 विष्णुं शरणमभ्येत्य राक्षसेभ्यो भयं जगुः ॥ ६३ ॥
 ततस्तेषां प्रपन्नानामभयं भूतभृद्विभुः ।
 ददौ नारायणो येन तत्पुत्रजुर्मनसो ज्वरम् ॥ ६४ ॥
 चरैस्त्रिदशवृत्तान्तं सर्वं विज्ञाय माल्यवान् ।
 उवाच भ्रातरौ धीमानिति चिन्ताविचक्षणः ॥ ६५ ॥
 श्रुतमस्माभिरन्विष्य यथा देवेन चक्रिणा ।
 दत्तमस्मद्भयार्त्तानामभयं त्रिदिवौकसाम् ॥ ६६ ॥
 अस्मदभ्यधिकः पूर्वं येन ते दानवर्षभाः ।
 प्रतिबिम्बभयेनेव चक्रधारां प्रवेशिताः ॥ ६७ ॥

स दैत्यदहनो विष्णुः प्रभविष्णुर्वधे द्विषाम् ।
 संधेयः सर्वथास्माकं स्पृहा यद्यस्ति जीविते ॥ ६८ ॥
 योद्धुमिच्छन्ति ते मूढा हरिणा हरिणा इव ।
 दूरात्साचीकृताक्षेण ये कृतान्तेन रक्षिताः ॥ ६९ ॥
 अनागतं बलं वेत्ति यः संचिन्त्य बलावलम् ।
 अप्रमादोपगूढस्य र्यस्यैता निर्भया दिशः ॥ ७० ॥
 दूरारूढप्रभाषेषु न कुर्यादुद्धतं शिरः ।
 उत्पतन्निपतत्येव सिंहो मेघजिगीषया ॥ ७१ ॥
 इति मात्यवतो वाक्यं श्रुत्वा श्रीरक्षणक्षमम् ।
 सुमालिमालिनौ वीरौ सभ्रूभङ्गं तमूचतुः ॥ ७२ ॥
 हुतं दत्तं च भुक्तं च जिताश्च यदि विद्विषः ।
 किमन्यत्कृतकृत्यानामस्माक्रमवशिष्यते ॥ ७३ ॥
 निधनं धातुरायत्तं जयो भुजयुगानुगः ।
 चित्तोचितानि वित्तानि भाग्ययुक्तानि देहिनाम् ॥ ७४ ॥
 लोभोऽभिमाने न धने तृष्णा यशसि नायुषि ।
 एतावदेव महतां वीरव्रतमखण्डितम् ॥ ७५ ॥
 मानमूलस्य यशसः परिरक्षैव जीवनम् ।
 कृतान्तेन कृता कस्य मुहूर्तं हस्तधारणा ॥ ७६ ॥
 हरिश्चक्रं गदा वास्तु वस्तु तन्न नवं युधि ।
 परीक्षा क्रियतां तस्य उभयोर्विक्रमेन च ॥ ७७ ॥
 वराहकेसरिच्छन्नप्रकारैर्निघ्नता रिपून् ।
 तेनात्मानः प्रकटितौ पृष्ठयुद्धेष्वशक्ता ॥ ७८ ॥
 व्याजध्वजे बलिजये त्रैलोक्याक्रान्तिकारिणा ।
 अपवादः खहस्तेन लिखितस्तेन शाश्वतः ॥ ७९ ॥
 इत्युक्त्वाग्रजमव्यग्रौ सैन्येन महता वृतौ ।

१. 'ल' शा०. २. 'त' शा०. ३. 'ग्यायत्तानि' शा०. ४. 'ताः सृष्टा' शा०.
 ५. धैर्येण च महाबलौ । सैन्येन सहितौ युद्धं जग्मतुस्तौ सुरालयम् ॥' शा०.

तेनैव सहितं योद्धुं जग्मतुस्तौ सुरालयम् ॥ ८० ॥
 सुकेशितनयैर्वीरैर्निरुद्धे स्वर्गवर्त्मनि ।
 उत्पातशतसंवाधा चकम्पे भुवनत्रयी ॥ ८१ ॥
 ततो नवघनश्यामस्तडित्पुञ्जोपमांशुकः ।
 ऊह्यमानः सुपर्णेन सपक्षेणेव मेरुणा ॥ ८२ ॥
 शक्रचापगदाखड्गप्रभापरिकरैः करैः ।
 किरन्निव प्रतापाम्नि मुरारिः प्रत्यभाषत ॥ ८३ ॥
 अथ क्षपाचरोत्सृष्टशरनीहारपीडिताः ।
 भीता इव ययुः कापि निरालोका दिशो दश ॥ ८४ ॥
 ततो युद्धाब्धिपूर्णेन्दुरदृहासो जयश्रियः ।
 ननाद विष्णुना शङ्खः प्राणेन परिपूरितः ॥ ८५ ॥
 तेनायुधानि दीप्तानि शब्देन क्षोभकारिणा ।
 धट्टितानीव चेतांसि पेतुर्मूर्तानि रक्षसाम् ॥ ८६ ॥
 ततो विविशुराश्रान्ताः शरीराणि सुरद्विषाम् ।
 शराः साङ्गसमुद्गीर्णाः प्रदीप्ताः प्राणहारिणः ॥ ८७ ॥
 प्रभमे राक्षसबले ताक्ष्यपक्षानिलाहते ।
 मेघसङ्घ इव सस्ते त्रस्ते ग्रस्त ईवेषुभिः ॥ ८८ ॥
 सुमाली विष्णुमभ्येत्य तूर्णं निर्विविरैः शरैः ।
 अदृश्यं विदधे व्याप्तं महाद्रुममिवाण्डजैः ॥ ८९ ॥
 ततः सुमालिसूतस्य शरेण रुचिरं शिरः ।
 हरिर्जहार येनासौ हृतो दूरं ययौ हयैः ॥ ९० ॥
 राक्षसे विद्रुते तस्मिन्मालिनः शरवर्षिणः ।
 रथं धनुः किरीटं च चिच्छेद मधुसूदनः ॥ ९१ ॥
 विरथः स समादाय दीप्तहेमाङ्गदां गदाम् ।
 जघान गरुडं मूर्ध्नि येनाभूत्स पराङ्मुखः ॥ ९२ ॥

१. 'च' शा०. २. 'तत्रायुधानां दीप्तानां' शा०. ३. 'वाण्डजैः' शा०.

चक्रप्रान्तानलज्वालाकपिलीकृतदिक्तटम् ।
ततश्चक्रं ससर्जासै कुपितः कैटभान्तकः ॥ ९३ ॥
भ्रुकुटीकुटिलं तेन कृतमुद्यतकुण्डलम् ।
निपपात शिरः स्फारबलिनो हेममालिनः ॥ ९४ ॥

इति मालिवधः ॥ २ ॥

पतितं राक्षसा वीक्ष्य मालिनं भुजशालिनम् ।
दुद्रुवुः पांशुनिचयाः पवनप्रेरिता इव ॥ ९५ ॥
पृष्ठतो वध्यमानास्ते गदाचक्रासिसायकैः ।
छिन्नस्कन्दोदरग्रीवा निपेतुर्लवणाम्भसि ॥ ९६ ॥
स्वसैन्यं क्षीणमालोक्य क्रोधात्मा तोषमात्यवान् ।
उवाच शरनिर्भिन्नः परावृत्यासुरान्तकम् ॥ ९७ ॥
अहो नु वीरमर्यादां न जानीषे जनार्दन ।
विशृङ्खलः खल इव प्रह्वेष्वतिप्रगल्भसे ॥ ९८ ॥
त्रस्तैः किमेतैर्निहतैर्मयि दर्शय पौरुषम् ।
याते वात्र हरो वायुर्गिरिमासाद्य पङ्कताम् ॥ ९९ ॥
इति मात्यवतः श्रुत्वा वचः प्रोवाच केशवः ।
वध्या ममैते सर्वत्र त्रैलोक्यभयकारिणः ॥ १०० ॥
गुणेष्वेव गुणा योज्या दोषा दोषेषु संगताः ।
अमर्यादेषु मर्यादा क्रियमाणा न शोभते ॥ १०१ ॥
इति ब्रुवाणं गोविन्दं शक्त्या विद्युत्प्रदीप्तया ।
जघानोरसि वेगेन मात्यवान्क्रोधमूर्छितः ॥ १०२ ॥
ममां नारायणः शक्तिं तामुद्धृत्य खवक्षसः ।
चिक्षेप राक्षसायैव चिन्तामिव दिवौकसाम् ॥ १०३ ॥
मूर्छाविनष्टसंज्ञोऽथ निर्भिन्नहृदयस्तथा ।
चिरेण जीवितं प्राप्य राक्षसः शूलमादधे ॥ १०४ ॥

१. 'प्राप्तवार्ता' शा०. २. 'पु' शा०. ३. 'ततः कुधाकुलो रक्षः शक्तिं चिक्षेप विष्णवे ।
क्षणमात्रं ममो हासो हृदये ताडितो यया ॥' इति शा० पुस्तके अधिको लिखितः.

स दीप्तशूलकपिलः शूलपाणिरिवापरः ।
 वैनतेयमभिद्रुत्य मुष्टिना मूर्ध्न्यताडयत् ॥ १०५ ॥
 क्रुद्धस्याथ सुपर्णस्य पक्षवातेन राक्षसाः ।
 सुमाल्यमाल्यवान्मुख्याः क्षिप्ता जग्मुर्दिशो दश ॥ १०६ ॥
 ततो लङ्कां परित्यज्य कैटभारिभयार्दिताः ।
 पातालं व्यालकलिलं विविशुस्ते निशाचराः ॥ १०७ ॥
 इति राक्षसभङ्गः ॥ ३ ॥
 एते निशाचरा घोराः ख्याताः सालकटाः कटाः ।
 पौलस्त्यास्तु परे विष्णुमूर्तिना ये त्वया हताः ॥ १०८ ॥
 ततः कदाचित्पातालादुद्गतोऽम्बुधिसंनिभः ।
 दीप्तः कुण्डलकेयूररत्नांशुशरकार्मुकः ॥ १०९ ॥
 आदाय यौवनवर्ती तनयामायतेक्षणाम् ।
 चचार चिन्ताकुलितः सुमाली भूतले स्वयम् ॥ ११० ॥
 स ददर्श समायान्तं पुष्पकेन धनाधिपम् ।
 ऐश्वर्यमिव साकारं स्पृहणीयं शरीरिणाम् ॥ १११ ॥
 पुलस्त्यजं गुरुं द्रष्टुं तं व्रजन्तं विलोक्य सः ।
 सुतामुवाच संजातस्तनलज्जानताननाम् ॥ ११२ ॥
 पुत्रे प्रधानकालस्ते तारुण्येन सहामुना ।
 करोम्युपेक्षितश्चिन्तां ऋणशेष इवैष नः ॥ ११३ ॥
 यचते नाधिकाः कन्यां हीनेभ्यो दीयते कथम् ।
 तूर्णं प्रयाति कालश्च धिक्कन्याजन्म दुःखदम् ॥ ११४ ॥
 आशेष सहसा वृद्धिं प्रयाता शोककारिणी ।
 कष्टं कन्यावमानाय सेवेव महतामपि ॥ ११५ ॥
 येन नैव कृता याच्ञा जाता यस्य न कन्यका ।
 स्वाधीना यस्य वृत्तिश्च धन्या जीवन्ति ते त्रयः ॥ ११६ ॥
 पितुर्मातुश्च दुःस्त्राय यत्र च प्रतिपाद्यते ।
 कन्या करोति संदेहदोलारूढं कुलत्रयम् ॥ ११७ ॥

सा त्वं गत्वानवद्याङ्गि स्वयं विश्रवसं मुनिम् ।
 वरदं वरय प्रीत्या यस्यायं धनदः सुतः ॥ ११८ ॥
 इति पित्रा समादिष्टा सा प्रविश्य तपोवनम् ।
 लज्जानता मुनेरग्रे तस्थौ कुवलेक्षणा ॥ ११९ ॥
 तामुवाच मुनिर्दृष्ट्वा रूपलावण्यविस्मितः ।
 कस्य त्वं चन्द्रवदने किमर्थं वनमागता ॥ १२० ॥
 सावदद्भगवन्सर्वं जानीहि ज्ञानचक्षुषा ।
 कथं नु त्वद्विधस्याग्रे वक्तुं कन्या प्रगल्भते ॥ १२१ ॥
 इत्युक्तः स तया ध्यानायोगेन ज्ञाततत्कथाः ।
 तामूचे विश्रवाः सुभ्रु जातं यत्ते समीहते ॥ १२२ ॥
 दारुणे मां मुहूर्तेऽस्मिन्संध्यायां त्वामुपस्थिता ।
 तस्मात्ते दारुणाचारः क्रूरः पुत्रो भविष्यति ॥ १२३ ॥
 श्रुत्वैतत्साब्रवीत्कान्ता प्रणिपत्य महामुनिम् ।
 कथं मे त्वत्प्रसादस्य सदृशो दारुणः सुतः ॥ १२४ ॥
 तामुवाच मुनिः प्रीत्या पश्चिमस्ते भविष्यति ।
 असूत तनयं श्यामं मणिवाक्योर्जिताशयम् ।
 ब्रह्मण्यो गुणवान्पुत्रः सदाचारो वरानने ॥ १२५ ॥
 इति पुष्पोत्कटा प्रीत्या मुनिना भाषिता रहः ।
 कालेन कालसंकाशमसूत सुतमुत्कटम् ॥ १२६ ॥
 दशास्यो विंशतिभुजो दीप्तास्ये कज्जलत्विषि ।
 उत्पातसदृशे तस्मिज्जाते जगदकम्पत ॥ १२७ ॥
 वर्धमाने दशग्रीवे घोररूपा क्षपाचरी ।
 अतिप्रमाणमपरं कुम्भकर्णमजीजनत् ॥ १२८ ॥
 पश्चिमोऽप्यभवत्तस्या यथोक्तो मुनिना सुतः ।
 सदाचार इव श्लाघ्यः सत्वशीलो विभीषणः ॥ १२९ ॥

तेषु प्रवर्धमानेषु राक्षसेषु तपोवने ।
 आययौ पितरं द्रष्टुं श्रीमान्वैश्रवणः स्वयम् ॥ १३० ॥
 तं दृष्ट्वा पुष्पकारूढं निवासं सर्वसंपदाम् ।
 दशग्रीवं समभ्येत्य जननी विस्मितावदत् ॥ १३१ ॥
 एष पुत्र तव आता विभवो मूर्तिमानिव ।
 कुबेरस्तपसा भाति तिग्मांशुरिव तेजसा ॥ १३२ ॥
 आतृत्वे वत्स तुल्येऽपि श्रीमानेष त्वमीदृशः ।
 आत्माधीनस्य तपसः फलमेता विभूतयः ॥ १३३ ॥
 इति मातुर्वचः श्रुत्वा सानुजो दशकन्धरः ।
 जगाम गोकर्णतटं तपसे कृतनिश्चयः ॥ १३४ ॥
 ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्तः शीते सलिलमध्यगः ।
 दशवर्षसहस्राणि कुम्भकर्णोऽभवद्भ्रती ॥ १३५ ॥
 ऊर्ध्वबाहुशिरः सूर्यन्यस्तचक्षुर्विभीषणः ।
 दशैवाब्दसहस्राणि तपश्चक्रे प्रसन्नधीः ॥ १३६ ॥
 दिव्ये वर्षसहस्रेऽथ प्रयाते प्रथमं शिरः ।
 निराहारः स्वयं छित्वा जुहावाग्नौ दशाननः ॥ १३७ ॥
 एवं सहस्रैर्वर्षाणां नवभिर्नव निश्चलः ।
 हुत्वा शिरांसि दशमं स शिरश्छेत्तुमुद्ययौ ॥ १३८ ॥
 ततः पितामहोऽभ्येत्य देवैः सह सविस्मयः ।
 तपःफलं वरं वीर गृहाणेति तमभ्यधात् ॥ १३९ ॥
 सोऽवदत्सुरगन्धर्वदैत्यकिन्नरभोगिनाम् ।
 अवर्ध्योऽहं तव वरात्तृणं मे मानुषादयः ॥ १४० ॥
 इत्युक्ते दशकण्ठेन तथेत्युक्त्वा प्रजापतिः ।
 स्वेच्छारूपं ददौ तस्मै शिरसां चोद्भवं पुनः ॥ १४१ ॥
 ततो वरं गृहाणेति प्रेरितः पद्मजन्मना ।
 धर्मे मे रमतां बुद्धिरित्युवाच विभीषणः ॥ १४२ ॥

अमरत्वं ददौ तस्मै धर्मप्रीत्या पितामहः ।
 शीलेन लभ्यते सर्वं याच्ञा लज्जैव केवलम् ॥ १४३ ॥
 असुराः कुम्भकर्णस्य वरदानोद्यतं ततः ।
 ऊचुश्चतुर्मुखं नास्मै वरो देयस्त्वया विभो ॥ १४४ ॥
 त्रैलोक्यं भक्षयन्नेष क्रूरो ब्रह्मर्षिकण्टकः ।
 वरव्याजेन शापोऽस्य दीयतां विश्वशान्तये ॥ १४५ ॥
 इत्यर्थितो सुरैर्ब्रह्मा स्मृत्वा देवीं सरस्वतीम् ।
 जिह्वाग्रे कुम्भकर्णस्य विवदे व्यक्तवादिनीम् ॥ १४६ ॥
 ततो वरं गृहाणेति स्वयमुक्तः प्रजासृजा ।
 कुम्भकर्णोऽवदद्देव निद्रा मे चिरमीप्सिता ॥ १४७ ॥
 षड्भिर्मासैः प्रबुद्धस्य दिनमेकं तु भोजनम् ।
 ममास्तिर्वैत्यर्थितस्तेन तथेत्युक्त्वा ययौ विधिः ॥ १४८ ॥
 प्रजापतौ वरान्दत्त्वा देवैः सह तिरोहिते ।
 नोक्तं युक्तं भैयेत्यासीत्कुम्भकर्णोऽतिदुःखितः ॥ १४९ ॥
 एवं लब्धवराः सर्वे आतरस्ते क्षपाचराः ।
 श्लेष्मान्तकवनं गत्वा प्रहृष्टा रेमिरे चिरम् ॥ १५० ॥
 श्रुत्वा लब्धवरान्वीरान्दौहित्रान्वलशालिनः ।
 उदतिष्ठत्स पातालात्सुमाली च समालयवान् ॥ १५१ ॥
 इति पौलस्त्योत्पत्तिः ॥ ४ ॥
 प्रहस्तमारीचमुखैः सह कालकटङ्कटाः ।
 ते दशग्रीवमाश्रित्य ननन्दुर्निर्भयाः सुखम् ॥ १५२ ॥
 सानुगस्त्वं परिष्वज्य जगाद दशनांशुभिः ।
 सुमाली मालिनं मानं कुलस्य क्षालयन्निव ॥ १५३ ॥
 चतुर्मुखवरावाप्त्या दिष्ट्या पुत्र विवर्धसे ।
 दिष्ट्या सनाथाः संवृत्ता वयं विष्णुतिरस्कृताः ॥ १५४ ॥
 एकः स एव सुकृती स जातः स च जीवति ।
 यस्य नाम्ना समुन्नद्धाः सर्वे जीवन्ति बान्धवाः ॥ १५५ ॥

१. 'त्रैलोक्य' शा०. २. 'स्तिभ्य' शा०. ३. 'ममेत्यासीत्कुम्भ' शा०.

वंशमुक्तामणिर्लोकैः कश्चिदेव स जायते ।
 यस्याग्रे याति सकलं कुलमुत्तानपाणिताम् ॥ १५६ ॥
 त्रिकूटविकटे लङ्का रत्नहेममयी पुरी ।
 अस्माकमभवत्कान्ता संतोषजननी रतेः ॥ १५७ ॥
 ममानुजे हते वीरे रणे मालिनि विष्णुना ।
 भग्नेष्वस्मासु शून्यां तां लङ्कां वैश्रवणोऽविशत् ॥ १५८ ॥
 सास्माकं सततं तात पाताले वसतां सताम् ।
 विद्येव धीमतां लङ्कां नापैति हृदयात्क्षणात् ॥ १५९ ॥
 श्रुत्वास्माभिर्वरोदारं त्वां विष्णुर्भवसंभवाः ।
 त्यक्तैव लङ्का शङ्का च लब्धेव हृदये कृताः ॥ १६० ॥
 लङ्कां स्फाटिकसौधानां ज्योत्स्नाहोसविकासिनीम् ।
 निद्रां नायान्ति पाताले स्मरन्त्यो राक्षसाङ्गनाः ॥ १६१ ॥
 समुद्रदर्शनालक्ष्यहर्म्यस्थललैलाननाम् ।
 लङ्कामितः कथायातां सदा शोचन्ति राक्षसाः ॥ १६२ ॥
 सा धर्मेण स्वयं प्राप्ता मातामहपुरी त्वया ।
 नार्हत्येव कुबेरस्तां वृद्धो नववधूमिव ॥ १६३ ॥
 सुमालिवचनं श्रुत्वा दशास्यः क्षमां विलोकयन् ।
 वित्तेशो गुरुराराध्य समभ्येत्य वदन्मुहुः ॥ १६४ ॥
 ततः काले सुविपुले याते प्रथितविक्रमम् ।
 प्रहस्तः प्रश्रयोपेतं दशग्रीवमभाषत ॥ १६५ ॥
 विद्वानिव दुराचारः कदर्यो धनवानिव ।
 न पूजते जनो राजन्सप्रभावो निरुद्यमः ॥ १६६ ॥
 सौभ्रात्रं गणयन्कस्मान्निजां लङ्कामुपेक्षसे ।
 एकद्रव्याभिलाषेण शत्रुर्वैश्रवणस्तव ॥ १६७ ॥

१. 'भय' शा०. २. 'कामप्रकाशिनाम्' शा०. ३. 'गणाननाम्' शा०. ४. 'धनैः राजा' शा०.

स ते स्निग्धो यदि आता लङ्कां नोज्झति किं स्वयम् ।
 य एवावनतां नित्यं विजिगीषुः स बान्धवः ॥ १६८ ॥
 किं न श्रुतं त्वया वीर राज्यार्थे योऽभवत्क्षयः ।
 सुरासुराणां आतृणां पुरा कश्यपजन्मनाम् ॥ १६९ ॥
 प्रहस्तेनेत्यभिहिते क्षणं ध्यात्वा दशाननः ।
 तमुवाच रेवोद्भूतलङ्कालाभमनोरथः ॥ १७० ॥
 गत्वा त्वमेव धनदं लङ्कां याचस्व मद्विरा ।
 प्रतिभाप्रभविष्णुस्ते संदेशः कोपयुज्यते ॥ १७१ ॥
 इति शासनमादाय प्रहस्तो राक्षसप्रभोः ।
 जातपक्ष इव क्षिप्रं जगाम धनदान्तिकम् ॥ १७२ ॥
 स सभाभुवमभ्येत्य देवगन्धर्वसेविताम् ।
 पित्रा सह स्थितं देवं धनाधिपमभाषत ॥ १७३ ॥
 श्लेष्मान्तकवनादेत्य त्रिकूटस्य तटे स्थितः ।
 अभिधत्ते दशग्रीवस्त्वां सुमालिमुखैर्वृतः ॥ १७४ ॥
 त्वमेव सर्वं जानीषे यथास्माकमिमां पुरीम् ।
 परद्रव्यं निजं तावद्यावन्नार्थयते परः ॥ १७५ ॥
 साम्रैव त्यज्यतां लङ्का लोभशङ्का निवार्यताम् ।
 निरातङ्गे कुले चास्मिन्निष्कलङ्कं यशोऽस्तु नः ॥ १७६ ॥
 त्वमेव धनवांल्लोके समृद्धस्त्वत्समोऽस्ति कः ।
 दैवायत्तानि वित्तानि भुजाधीनस्तु विक्रमः ॥ १७७ ॥
 प्रहस्तेनेत्यभिहिते नोचे किञ्चिदवाञ्मुखः ।
 कुबेरः स्वेदसंसिक्तं ललाटं पाणिना स्पृशन् ॥ १७८ ॥
 ततः प्रहस्तं निर्भर्त्स्य कुपितो विश्रवाः स्वयम् ।
 उवाच साममधुरं पुत्रप्रीत्या धनाधिपम् ॥ १७९ ॥
 त्यज लङ्कामिमां वैत्स दुराशामिव पण्डितः ।
 गौरवेणाभिजानाति वरदत्तः स राक्षसः ॥ १८० ॥

१. 'स्वयम्' शा०. २. 'न' शा०. ३. 'वीरं' शा०. ४. 'वने' शा०. ५. 'पुत्र' शा०.

दर्शने नेत्ररोगात्तः श्रवणे कर्णशूलिनः ।
 मूका विनयवाक्येषु भवन्ति विभवस्थिताः ॥ १८१ ॥
 काले सुविपुलेंऽप्यस्मिन्न स दृष्टो महाशयः ।
 यः सोन्मादो न संपद्भिर्विपद्भिर्वा न विक्लवः ॥ १८२ ॥
 गौरिवाचाररहितैर्निर्विचारैः प्रमादिभिः ।
 क्षुद्रैर्गतत्रपैर्वैरं कः कुर्याद्यो न तद्विधः ॥ १८३ ॥
 अस्ति चारुतरः श्रीमान्स्फारस्फटितभूधरः ।
 लभते तिमिरं यस्य नावकाशं गुहास्वपि ॥ १८४ ॥
 शशाङ्कतिलकं कृत्वा तारहारविभूषिता ।
 तस्मिन्विलोकयत्येव द्यौर्दर्पणमिवामलम् ॥ १८५ ॥
 तटी मन्दाकिनी यस्य कचत्काञ्चनपङ्कजा ।
 भाति वक्षसि मालेव लीलालोला महीभृतः ॥ १८६ ॥
 तत्रोचितो निवासस्ते विलासवसतेः श्रियः ।
 गच्छावः सहितौ क्षिप्रमित्युक्त्वा विरराम सः ॥ १८७ ॥
 ततो धनपतिर्गत्वा सद्भृत्यबलवाहनः ।
 रत्नाङ्कामलकां नाम कैलासे निर्ममे पुरीम् ॥ १८८ ॥
 प्रहस्तवाक्याद्विज्ञाय यातं वैश्रवणं स्वयम् ।
 अभिषेकोत्सवं चक्रे लङ्कां लब्ध्वा दशाननः ॥ १८९ ॥
 स ददौ कालखञ्जाय दानवाय निजानुजाम् ।
 विद्युज्जिह्वाभिधानाय यत्र शूर्पणवाभिधाम् ॥ १९० ॥
 इति लङ्काप्रवेशः ॥ ५ ॥
 ततः कदाचिमृन्गयारसाकृष्टो दशाननः ।
 ददर्श कानने कन्यासहितं दानवं मयम् ॥ १९१ ॥
 पौलस्त्येन स पृष्टोऽथ वनवासस्य कारणम् ।
 उवाच तस्य भावेन तेजसा तस्य विस्मितः ॥ १९२ ॥

१. 'ननम्' शा. २. 'रत्नाङ्कामलकां नाम यत्र शूर्पणवाभिधः' इत्यधिकम्. ३. 'स प्रभावेण' शा०.

दानवोऽहं मयो नाम हेमा नाम ममाप्सराः ।
 बभूव वल्लभा यस्याः कन्येयं सुन्दरी सुता ॥ १९३ ॥
 याते वर्षसहस्रेऽथ यस्यां सक्तस्य मे सदा ।
 वियोगो दैवयोगेन दुःसहः सुचिरादभूत् ॥ १९४ ॥
 तत्संभोगसुखोल्लासलीलविभ्रमसाक्षिणीम् ।
 ज्वलितामिव पश्यामि हेमहर्म्यावलीं गृहे ॥ १९५ ॥
 चन्द्रोदयः सुहृद्गोष्ठी हर्म्ये वीणा मधूत्सवः ।
 सत्यं सुखाय कल्पन्ते न वियुक्तस्य चेतसः ॥ १९६ ॥
 इयं मन्दोदरी कन्या योग्येव तव वल्लभा ।
 स तां संभाषणाचारैर्जायते हि कुलोन्नतिः ॥ १९७ ॥
 अस्यास्तौ आतरौ वीरौ दैत्यावपरमानतः ।
 त्रैलोक्यविजयोदग्रौ मायावी दुर्मतिस्तथा ॥ १९८ ॥
 इत्युक्त्वा दशकण्ठस्य नाम कर्म कुलं वयः ।
 श्रुत्वा ददौ तां विधिना मयः कन्यामनिन्दिताम् ॥ १९९ ॥
 शक्तिं च दीप्तरत्नाङ्गां मूर्तीं शक्तिमिवोत्कटाम् ।
 तस्मादवाप पौलस्त्यः सौमित्रिमवधीक्षया ॥ २०० ॥
 स प्रविश्योत्सवस्मेरलङ्कां मन्दोदरीसखः ।
 कुलोचितः परिणयो आतोरविहितोऽभवत् ॥ २०१ ॥
 वैरोचनस्य दौहित्रीं वज्रज्वालाभिधां ततः ।
 आनिनाय स यत्नेन कुम्भकर्णाय कन्यकाम् ॥ २०२ ॥
 गन्धर्वाधिपतेः पुत्रीं शैलूषस्य सुलोचनाम् ।
 विभीषणाय स ददौ धर्मचौरानुवर्तिनीम् ॥ २०३ ॥
 जातां जलागमे दृष्ट्वा तां माता मनसेऽवदत् ।
 सरो मा वृद्धिमेहीति तेन सा सरमाभवत् ॥ २०४ ॥
 इति रावणदिविवाहः ॥ ६ ॥

१. 'विसम्भ' शा०. २. 'दुन्दुभि' शा०. ३. 'त्रिरवधीक्षया' शा०. ४. 'मार्गो' शा०.

तेष्वेवं कृतदारेषु देवी मन्दोदरी सुतम् ।
 असूत नूतना लक्ष्मीरहंकारमिवोन्नतम् ॥ २०५ ॥
 स ननाद यथा मेघा घोषघट्टितदिक्ताटाः ।
 मेघनादेति नामास्य तदा चक्रे दशाननः ॥ २०६ ॥
 स ययौ सहसा वृद्धिं पितुर्मूर्त इवोदयः ।
 येनेन्द्रविजयोदग्रं स्वनाम्ना लिखितं यशः ॥ २०७ ॥
 अथाविवेश हृदयं निद्रा नयनवर्त्मना ।
 मोहाय कुम्भकर्णस्य प्रौढार्मरवधूरिव ॥ २०८ ॥
 तस्य हेममणिस्तम्भं षड्व्यामशतमग्रजः ।
 ततोऽपि षड्गुणायामं निद्रागृहमकारयत् ॥ २०९ ॥
 ततो रत्नगृहे तस्य तस्मिन्कैलाससंनिभे ।
 ययुर्वर्षसहस्राणि सुखसुप्तस्य रक्षसः ॥ २१० ॥

इतीन्द्रजिज्जन्म ॥ ७ ॥

निद्राभिभूते दुर्वृत्ते प्रजापुण्यैः क्षपाचरैः ।
 सक्तो बभूव पौलस्त्यः स्वर्गोद्यानविलोडने ॥ २११ ॥
 स सुरासुरसंहारदीक्षितो राक्षसेश्वरः ।
 विश्वक्षयमतिं चक्रे कालः काल इवोत्थितः ॥ २१२ ॥
 तेन भग्ने त्रिभुवने स पावनतपोवने ।
 विद्रुतेषु दशाशेषा त्रिदशेषु दिशो दश ॥ २१३ ॥
 व्याप्तैर्वृषमनोद्भूतैर्भूतले भूतलोहितैः ।
 तमो जजाले पाताले प्रज्वालित इवाहिभिः ॥ २१४ ॥
 निःस्वाध्यायवषट्कारे समुत्पन्ने क्रियाक्रमे ।
 विकारे निष्प्रतीकारे गते रक्षःप्रकारताम् ॥ २१५ ॥
 अनुग्रहाय लोकानां भूतले स्वकुलस्य च ।
 लङ्कां दूतं दशास्याय विससर्ज धनेश्वरः ॥ २१६ ॥

स पौलस्त्यपुरीं गत्वा दूतः प्राप्य विभीषणम् ।
 यथायुक्तं निवेद्यासौ विवेशास्थानमन्दिरम् ॥ २१७ ॥
 कुबेरगौरवात्तत्र संप्राप्तकनकासनः ।
 स प्रणम्य दशग्रीवं जगाद जगतां हितम् ॥ २१८ ॥
 आह त्वां आतरं प्रीत्या देवो वैश्रवणः स्वयम् ।
 श्रूयतामवधानेन श्रुत्वा सद्भिर्विचार्यताम् ॥ २१९ ॥
 इमा धर्मद्रुमोद्भूता विपुलाः फलसंपदः ।
 नापुण्यवद्भिर्लभ्यन्ते विजयव्यञ्जनाः श्रियः ॥ २२० ॥
 काकतालीययोगिन्यः सर्वस्यैव विभूतयः ।
 लब्धानां रक्षणे त्वासां विरलः कुशलो जनः ॥ २२१ ॥
 कीर्तयः पुण्यशीलस्य सदाचारस्य संपदः ।
 विद्याप्रज्ञाप्रगल्भस्य भवन्ति स्थिरयौवनाः ॥ २२२ ॥
 स्पृहणीया जगत्सिंस्तस्यैव प्रभविष्णुता ।
 निर्भयं सर्वभूतानि यं समाश्रित्य शेरते ॥ २२३ ॥
 धिक्तस्य निरपेक्षस्य विभूतिं रौद्रकर्मणः ।
 दीप्तादिव चितावद्वैर्यस्मादुद्विजते जनः ॥ २२४ ॥
 आचारः साधुवादाय विभवो विनयाय च ।
 शक्तिः परोपकाराय भवत्युज्ज्वलजन्मनाम् ॥ २२५ ॥
 व्ययेन ज्ञायते वित्तं शीलेन ज्ञायते कुलम् ।
 सत्येन ज्ञायते सत्त्वं धर्मेण ज्ञायते श्रुतम् ॥ २२६ ॥
 त्रयं परस्परं क्षिप्तं तुल्यमेवं प्रजायते ।
 पापाज्जनापवादश्च तस्माच्च विभवक्षयः ॥ २२७ ॥
 न तत्कुर्यात्कुले जातः श्रुतवान्विश्रुतो जनः ।
 येनोन्नतपदभ्रष्टो याति प्रत्युत वाच्यताम् ॥ २२८ ॥
 हसन्तो हेलया कर्म तत्कुर्वन्ति प्रमादिनः ।
 जन्मान्तरशतैरन्ते शोचन्ते न भवन्ति यत् ॥ २२९ ॥

यत्त्वया स्वर्गविध्वंसे कृतं किञ्चिदसांप्रतम् ।
 अधुना संयमेनास्तु तस्य प्रक्षालनक्रिया ॥ २३० ॥
 स्वर्गोद्यानानि भग्नानि मुनयो निहताश्च यत् ।
 किमेतदुचितं भ्रातः कुले कमलजन्मनः ॥ २३१ ॥
 प्रजाक्षये यदि भवेत्सक्तो विश्रवसः सुतः ।
 तद्राज्याभिजनश्लाघ्या कस्यान्यस्य भविष्यति ॥ २३२ ॥
 वारितोऽपि मया पूर्वं पुनरप्येव वार्यते ।
 राक्षसेऽस्मिन्निपतिते निपतत्यश्रुबिन्दवः ॥ २३३ ॥
 चिन्त्यते निधनोपायः शङ्कितैस्त्रिदशैस्तव ।
 व्रतात्प्रतिनिवृत्तेन चिरात्सर्वं मया श्रुतम् ॥ २३४ ॥
 मया हिमाद्रिशिखरे दृष्टः शीतांशुशेखरः ।
 देवः प्रीतिसमासक्तः सतीप्रणयकेलिषु ॥ २३५ ॥
 तत्र कोऽयमिति स्फारलोचनं विस्मयान्मया ।
 निक्षिप्तमम्बिकागात्रे निर्लेपेनान्तरात्मना ॥ २३६ ॥
 ततो देव्याः प्रभावेण तद्वामं मम लोचनम् ।
 संपूरितं विषेणेव निष्प्रभं पिङ्गतां ययौ ॥ २३७ ॥
 अथो गत्वा मया तीव्रं मौनिना तत्कृतं तपः ।
 येन मां स्वयमभ्येत्य बभाषे भगवान्भवः ॥ २३८ ॥
 अहोरात्रं व्रतमिदं दुश्चरं चरितं त्वया ।
 मया कृतं पुरा चैतत्तृतीयो नोपलभ्यते ॥ २३९ ॥
 व्रतस्यास्य प्रभावेण सख्यमस्तु मम त्वया ।
 एकपिङ्गेक्षणो नाम्ना विश्रुतश्च भविष्यति ॥ २४० ॥
 इत्युक्त्वा प्रययौ देवः प्रीतिमान्वृषभध्वजः ।
 ततस्तपोवनादेत्य श्रुतं त्वच्चरितं मया ॥ २४१ ॥
 तस्मादस्मान्निवर्तस्व कर्मणः कुलदूषणात् ।
 कस्मादकस्माद्बुद्धिस्ते कुपथेनैव धावति ॥ २४२ ॥

इति दूतवचः श्रुत्वा क्रोधधूम्रारुणेक्षणः ।
 निष्पिष्य पाणिना पाणिं तं जगाद दशाननः ॥ २४३ ॥
 अहो धनाधिनाथोऽसौ ज्येष्ठो लोकहिते रतः ।
 आत्मसंभावितो वक्तुं दम्भारम्भात्प्रगल्भते ॥ २४४ ॥
 स देवोऽन्यत्र नास्मासु धनं कस्य न विद्यते ।
 ततोऽप्यभ्यधिका ज्येष्ठा भृत्यवर्गे मम स्थिताः ॥ २४५ ॥
 अहं यशस्वी लोकेऽस्मिन्ययमेव यशस्विनः ।
 ईति तात्पर्यमेवास्य वाक्यस्य स्वामिनस्तव ॥ २४६ ॥
 स्वगुणख्यातये नित्यं परेषां भूषणाय च ।
 प्रत्ययाय च लोकानां जिह्वा जल्पन्ति कोमलम् ॥ २४७ ॥
 धनदो यदि नामासौ लोकेऽस्मिन्करुणापरः ।
 तर्त्किं सुविपुलं वित्तं न दीनेभ्यः प्रयच्छति ॥ २४८ ॥
 न देवानां न चास्माकं हितं तस्य प्रयोजनम् ।
 युक्त्या वदति संदेशैः सख्यं देवेन शूलिना ॥ २४९ ॥
 सुरार्थे यदसौ वक्ति तत्तेषां विप्रिये स्थितः ।
 अद्यैव तद्वाक्यरुषा करोम्यविबुधं जगत् ॥ २५० ॥
 यदसौ स्वगृहे दृष्टः प्रागल्भ्याद्भूत भाषसे ।
 किं तच्छ्रुत्वा इव श्रुत्वा दूत त्वमभिभाषसे ॥ २५१ ॥
 वध्यानां लोकपालानां कुबेरोऽस्तु पुरःसरः ।
 अद्य कैलासशिखरे रथो मे समनोरथः ॥ २५२ ॥
 इत्युक्त्वा दूतमुत्कृत्य स्वयं खड्गेन राक्षसः ।
 अमात्यैः सहितः षड्भिः प्रतस्थे सानुगो रथैः ॥ २५३ ॥
 स महोदरधूम्राक्षमारीचशुकसारणैः ।
 प्रहस्तेन च कैलासं सह प्राप प्रतापवत् ॥ २५४ ॥
 ततो बभूव यक्षाणां राक्षसैः कूटयोधिभिः ।
 युद्धं प्रलयमेघानां गर्जद्भिः स्वजनैरिव ॥ २५५ ॥

बलिना राक्षसेन्द्रेण भग्नास्ते युधि गुह्यकाः ।
 आता प्रभोरिति भयाद्बभूव शिथिलोद्यमः ॥ २५६ ॥
 ततः कुबेरनिर्दिष्टा निर्ययुर्यक्षराक्षसाः ।
 हेमरत्नोरुसंनाहा मेघाः सेन्द्रायुधा इव ॥ २५७ ॥
 तेषां प्रवृत्ते तुमुले संग्रामे खण्डितिर्मुकः(?) ।
 चक्रे चक्रेण मारीचं मूर्छितं गुह्यकाग्रणीः ॥ २५८ ॥
 लब्धसंज्ञोऽथ मारीचस्तं विद्राव्य भयोत्कटः ।
 रणे चकार यक्षाणां क्षयं रक्षःपतेः पुरः ॥ २५९ ॥
 विद्रुतेष्वथ यक्षेषु पुरीं प्राप्य दशाननः ।
 रत्नतोरणमुत्पाट्य जघान द्वाररक्षिणः ॥ २६० ॥
 वध्यमानेषु यक्षेषु लब्धलक्षैः क्षपाचरैः ।
 धनदस्याज्ञया तूर्णं मणिभद्रः समाययौ ॥ २६१ ॥
 धूम्राक्षस्ताडितस्तेन गदया मूर्ध्नि विह्वलः ।
 पतिः क्षमातले वेगात्क्षणं व्यसुरिवाभवत् ॥ २६२ ॥
 स दशाननमभ्येत्य शक्तिमान्गिरिविग्रहम् ।
 शक्तित्रयेन भिन्नोरःकपाटपिकटं व्यधात् ॥ २६३ ॥
 ततो जघान गदया मुकुटे तं दशाननः ।
 लोकेऽस्मिन्विश्रुतो येन पार्श्वमौलिर्बभूव सः ॥ २६४ ॥
 मणिभद्रेऽपि विजिते वरदत्तेन रक्षसा ।
 निर्घोषैर्घटिते लोके निर्ययौ धनदः स्वयम् ।
 शुष्कप्रोष्ठपदायुक्तः शङ्खपद्मादिभिर्वृतः ॥ २६५ ॥
 स युद्धभुवमभ्येत्य पौलस्त्यं कुपितोऽवदत् ।
 पापान्निवार्यमाणोऽपि विद्वेषादिव दुर्जनः ॥ २६६ ॥
 कस्तस्य वैभवेनार्थः प्रभावेन बलेन वा ।
 क्षपितान्त(?)जनोच्छ्वासमलिनं यस्य जीवितम् ॥ २६७ ॥

१. 'खण्डितिन्दुकः' क; 'खण्डिकामुकः' शा०.

अहो वत न ते कश्चिदस्ति दुर्नयकृत्सुहृत् ।
 विषं भक्षयतो मोहाद्यः करोति करग्रहम् ॥ २६८ ॥
 शोचते नित्यशोच्यस्य किं तस्याशुचिचेतसः ।
 जीवितान्तरितो यस्य नरकेषु क्षयः क्षयः ॥ २६९ ॥
 शरीरावधि जन्तूनां स्वाधीने शुभदुष्कृते ।
 समुत्तीर्णः समुत्तीर्णः पतितः पतितस्ततः ॥ २७० ॥
 पापी निरयगामी त्वं न मे संभाषणोचितः ।
 इत्युक्त्वा विमुखान्वाणैः स चक्रे तस्य मन्त्रिणः ॥ २७१ ॥
 ताडितस्तेन गदया मूर्ध्नि नक्तंचरेश्वरः ।
 नाकम्पत दुराचारो निन्दयेवोग्रपातकी ॥ २७२ ॥
 दिव्यास्त्रदीप्तिदुष्प्रेक्ष्ये प्रवृत्ते समरे तयोः ।
 युयुधे राक्षसपतिर्मायारूपसहस्रकृत् ॥ २७३ ॥
 ततः शस्त्रास्त्रवर्षेण विक्षिताङ्गो धनप्रभुः ।
 पपात शोणितासिक्तः स्यन्दने मूर्छितः क्षणम् ॥ २७४ ॥
 शङ्खपद्मादिभिस्तस्मिन्नीते नन्दनकाननम् ।
 राक्षसेन्द्रो जहारास्य पुष्पकं रत्नपुष्पकम् ॥ २७५ ॥
 इति कुबेरनिर्जयः ॥ ८ ॥
 जित्वा वैश्रवणे श्रीमान्दशग्रावः सहानुगम् ।
 ब्रजन्नवाप कौमारं रौक्मं शरवनं महत् ॥ २७६ ॥
 तत्रास्य ब्रजतो व्योम्नि स्तब्धतां पुष्पकं ययौ ।
 चित्रस्थमिव निस्पन्दपताकारिक्रिणीकुलम् ॥ २७७ ॥
 प्रतिग्रहाद्विमानस्य चिन्ताविस्मयनिश्चलम् ।
 तमभ्येत्योद्धतगतिः प्राह माहेश्वरो गणः ॥ २७८ ॥
 भोः पौलस्त्यगतिर्नेह सुरसिद्धिर्षिभोगिनाम् ।
 विमानानां स्वयं देवः क्रीडत्यत्र त्रिलोचनः ॥ २७९ ॥
 दर्पो मोहः प्रमादो वा तव वा बलचापलम् ।
 भवान्स्तब्धितजृम्भारिभुजस्तब्धं न वेत्ति यत् ॥ २८० ॥

इति धीरं गणेनोक्तः प्रकोपकलुषेक्षणः ।
 कोऽसौ कास्ते त्रिनयनः प्रोवाचेति स निःश्वसन् ॥ २८१ ॥
 पुष्पकादवतीर्याथ शैलमूलमुपेत्य सः ।
 नन्दिरुद्धं ददर्शाग्निं स्थितं देवस्य धूर्जटेः ॥ २८२ ॥
 तं शूलहस्तमालोक्य भासुरं वानराननम् ।
 मुमोचाशनिनिर्घोषमट्टहासं दशाननः ॥ २८३ ॥
 तदाट्टहासकुपितः प्रोवाचाञ्चितशेखरः ।
 उद्यम्य तर्जनीमग्रे नन्दी भैरवविग्रहः ॥ २८४ ॥
 वानराननमालोक्य सोन्मादं हसितं त्वया ।
 त्वत्कुले वानरकुलान्मृत्युरेव भविष्यति ॥ २८५ ॥
 इति ब्रुवाणं दर्पान्धस्तमनादृत्य राक्षसः ।
 गतिग्रहरुषा चक्रे कैलासोन्मूलने मतिम् ॥ २८६ ॥
 स शैलमूले विपुले विन्यस्य भुजकाननम् ।
 ददौ स्कन्दशिलाबन्धनिर्घोषोद्भूतपावकम् ॥ २८७ ॥
 तद्भुजोत्तालपातालनीलमूलशिलातलः ।
 चिरं चचाल कैलाशः सविलास इव द्विपः ॥ २८८ ॥
 विशृङ्खलपरिभ्रष्टं निर्जलं वारि रक्षसः ।
 पीनांसशिखरे प्राप स्फारहारप्रकारताम् ॥ २८९ ॥
 शैलकम्पाकुलवधूपरिष्वङ्गोत्सवप्रदः ।
 विद्याधराणामभवद्भामाचारोऽपि रक्षसः ॥ २९० ॥
 ततो विहस्य भगवान्पादाङ्गुष्ठेन लीलया ।
 अपीडयन्मृडः शैलं घूर्णमानमहाद्रुमम् ॥ २९१ ॥
 गम्भीरभूधरभरप्राग्भारपरिपीडितः ।
 विरुराव दशग्रीवः खण्डिताङ्गदमण्डलः ॥ २९२ ॥
 भुजावपीडनरुषा तस्यारावेण रक्षसः ।
 समुरासुरगन्धर्वा विचचार जगन्नयी ॥ २९३ ॥

शंकरस्तेन शब्देन परितुष्टस्तमभ्यधात् ।
 प्रायेणोत्सिक्तचरितः प्रभूणां बलभो जनः ॥ २९४ ॥
 प्रीतोऽस्मि तव नादेन बलेन च दशानन ।
 पुष्पकेन यथाकामं गच्छ खेच्छाविलासकृत् ॥ २९५ ॥
 त्रैलोक्यरावणाच्छब्दान्त्वं भविष्यसि रावणः ।
 इति स्वयं भगवता कृतनामा निशाचरः ।
 पुनः पुष्पकमारुह्य विचचार महीतले ॥ २९६ ॥
 इति कैलासोल्लासकम् ॥ ९ ॥
 स चलन्भूतले वीरान्क्षत्रियान्वलशालिनः ।
 जघानाह्वय समरे पौरुषादपराङ्मुखान् ॥ २९७ ॥
 ततस्तुहिनशैलस्य शृङ्गमारुह्य रावणः ।
 ददर्शैकां तपस्यन्तीं कन्यां लावण्यकौमुदीम् ॥ २९८ ॥
 संलक्षदक्षिणकुचां भोगकृष्णाजिनावृताम् ।
 दिवं विनिर्यदर्धेन्दुविम्बाम्बुधिमतीमिव ॥ २९९ ॥
 संपूर्णशर्वचापस्य पुष्पचापस्य जीवनीम् ।
 वरावासितपःसक्तां गिरिराजसुतामिव ॥ ३०० ॥
 स्फाटिकेनाक्षसूत्रेण कलितां ललिताननाम् ।
 मूर्तीं पूर्णेन्दुनक्षत्रराजितां रजनीमिव ॥ ३०१ ॥
 दोर्मृणालीलतां पाणिसुप्ताब्जां लोचनोत्पलाम् ।
 संचारिणीमिवायातां नन्दिनीं भूतपद्मिनीम् ॥ ३०२ ॥
 तां दृष्ट्वा विस्मयावेशनिष्पन्दः क्षणदाचरः ।
 कासि कस्येति पप्रच्छ विच्छायवदनः क्षणम् ॥ ३०३ ॥
 सा तमूचे कृतातिथ्या मिथ्याचारं निशाचरम् ।
 दर्शयन्तीं तपःपुण्यं दन्तांशुनिवहैरिव ॥ ३०४ ॥
 अभूत्कुशध्वजो नाम बृहस्पतिसुतो मुनिः ।
 तस्याध्ययनसक्तस्य जाताहं वाङ्मयी सुता ॥ ३०५ ॥

१. 'न्भुज' ख-शा०. २. 'भोगकृष्णा' शा०. ३. 'विम्बां बुधवतीमिव' शा०.
 ४. 'न नाम्' ख.

साहं देववती नाम सुरगन्धर्वकिंनरैः ।
 याचिता सिद्धसाध्यैश्च न च मां प्रददौ पिता ॥ ३०६ ॥
 सोऽवदद्विष्णुरेवैकस्तुल्यो मे दुहितुः पतिः ।
 कौस्तुभाभरणस्यैषा वनमालेव शोभते ॥ ३०७ ॥
 ततो दैत्याधिनाथेन जम्बुना पापचेतसा ।
 कालेनैव प्रसुप्तो मे रजन्यां निहतः पिता ॥ ३०८ ॥
 तेनैव सह दुःखाम्रितसामिव चितां सती ।
 बन्धुबाष्पौघजननी प्रविष्टा जननी मम ॥ ३०९ ॥
 पितुर्मनोरथेनादौ स्वसंकल्पेन चाकुला ।
 करोम्येतदहं तीव्रं तपो नारायणार्थिनी ॥ ३१० ॥
 जानाम्यहं त्वां पौलस्त्य तपसा दिव्यचक्षुषा ।
 इत्युक्ता प्रश्रयोपेतं विरराम सुमध्यमा ॥ ३११ ॥
 पुष्पकादवतीर्याथ मन्मथाकुलिताशयः ।
 तां समभ्येत्य पौलस्त्यः स्रस्तधैर्योऽभ्यभाषत ॥ ३१२ ॥
 अहो विरुद्धं लोलाक्षि तव व्यवसितं श्रुतम् ।
 तपोऽर्हति कथं तीव्रमिदं रूपमिदं वयः ॥ ३१३ ॥
 तपः संयमसिद्धानां वृद्धानामेव शोभते ।
 वपुः पीनस्तनयुगाभोगसंभोगमिच्छति ॥ ३१४ ॥
 यदि त्वं तापसा सुभ्रु स्वाधीना न मनोभुवः ।
 तत्कस्यैताः कृते जाताश्चन्द्रोद्यानमधुश्रियः ॥ ३१५ ॥
 इदं कान्ताकचाकर्षसीत्कारोचितमाननम् ।
 माननं मन्मथस्यास्तु जटाभिर्न विराजते ॥ ३१६ ॥
 अस्थाने तव निर्बन्धः को नाम स जनार्दनः ।
 नीचतुल्यो न तुल्योऽसौ शतांशेनापि मे गुणैः ॥ ३१७ ॥
 श्रुत्वैतत्कोपदीप्ता सा मैवमित्यब्रवीन्मुहुः ।
 केशपांशं परामृश्य राक्षसस्तामभर्त्सयत् ॥ ३१८ ॥

ततः सा केशसंस्पर्शन्यक्कारदहनार्दिता ।
 तमूचे त्वद्वधे शक्ता न करौमि तपोव्ययम् ॥ ३१९ ॥
 जन्मान्तरे वधायैव तव स्यान्मे तनुग्रहः ।
 इत्युक्त्वा पश्यतस्तस्य सा विवेश हुताशनम् ॥ ३२० ॥
 सैवेयं जानकी जाता त्वत्कलत्रमयोनिजम् ।
 कृते युगे देववती त्रेतायां सैव मैथिली ॥ ३२१ ॥
 क्षेत्रे हलमुखाकृष्टे जनकस्य महीपतेः ।
 श्रीरेषा राम पत्नी ते देवो विष्णुस्त्वमच्युतः ॥ ३२२ ॥
 इति देववत्युपाख्यानम् ॥ १० ॥

ततः पुष्पकमारुह्य विचरन्भुवि रावणः ।
 उशीरबीजनामानमारुरोह महाचलम् ॥ ३२३ ॥
 "इत्तं तत्र राजानं यजमानं ददर्श सः ।
 स्वयं बृहस्पतिभ्राता संवर्तो यस्य चाजकः ॥ ३२४ ॥
 यज्ञभूमिस्थिता देवा वरदत्तं दशाननम् ।
 दृष्ट्वा प्रदुद्रुवुर्भीताः कृत्वा रूपविपर्ययम् ॥ ३२५ ॥
 शक्रः शिखी यमः काकः कृकलासो धनाधिपः ।
 हंसो भूत्वा च वरुणः प्रययुस्ते मनोजवाः ॥ ३२६ ॥
 ततो युद्धं प्रयच्छेति रावणेनार्थितः स्वयम् ।
 ससंभ्रमो मरुत्तस्तं को भवानित्यभाषत ॥ ३२७ ॥
 तमूचे स स्वयं हासमुक्त्वा नक्तंचरेश्वरः ।
 अहो प्रौढावलेपेऽस्मिन्प्रीतोऽस्मि तव भूपते ॥ ३२८ ॥
 कस्तापस जगत्यस्मिन्देशोऽस्ति त्रिदिवाधिकः ।
 दृश्यते यत्र नोष्णांशुः श्रूयते न च रावणः ।
 पौलस्त्यं मां न जानासि भ्रातुर्येन धनप्रभोः ॥ ३२९ ॥
 श्रुत्वैतदूचे तं राजा धन्यो जातः कुले भवान् ।
 ज्येष्ठो भ्राता गुरुर्येन सदाचारेण मानितः ॥ ३३० ॥

कर्मणा धनहीनेन जननिन्दारजोजुषा ।
 दुर्जनः श्लाघते नित्यं लज्जते येन सज्जनः ॥ ३३१ ॥
 इत्युक्त्वा चापमादाय सायकांश्च महीपतिः ।
 उद्ययौ रावणं योद्धुं सर्वतोऽथ तमब्रवीत् ॥ ३३२ ॥
 असंपूर्णो निहत्येष राजन्माहेश्वरः क्रतुः ।
 दीक्षा हि क्षीणरजसां किल्बिषक्षयसाक्षिणी ॥ ३३३ ॥
 क दीक्षितः क्षमापात्रसंक्षिप्तसकलेन्द्रियः ।
 क च क्रोधारजोध्वस्तं युद्धं कलिसमुद्धतम् ॥ ३३४ ॥
 इति संवर्तकेनोक्तो मरुतः पृथिवीपतिः ।
 उत्सृज्य सशरं चापं बभूव निरुपद्रवः ॥ ३३५ ॥
 ततः पौलस्त्यसचिवैर्जयशब्दे कृते पुनः ।
 ब्रह्मर्षिशोणितपानमत्तो रक्षःपतिर्ययौ ॥ ३३६ ॥
 वरान्दत्त्वा विहङ्गेभ्यस्ततः सुतनृपान्वितः ।
 पुनर्यज्ञभुवं देवा मरुत्तप्रीतये ययुः ॥ ३३७ ॥
 बर्हे बर्हे सहस्राक्षः सहस्राक्षवरादभूत् ।
 अद्यापि चाग्रशब्देन शक्रप्रीत्यैव नृत्यति ॥ ३३८ ॥
 हंसोऽपि हिमकर्पूरशीतांशुरजतद्युतिः ।
 वरुणस्य वराज्जातस्तोयेशप्रीतिमान्सदा ॥ ३३९ ॥
 कृकलासः सुवर्णाभः सदा सद्रव्यमस्तकः ।
 बभूव भासुराकारः श्रीमद्वैश्रवणाश्रयात् ॥ ३४० ॥
 बलिभुक्परितृप्तश्च पितृणां प्रीतिकृत्सदा ।
 अरोगश्चिरजीवी च काकोऽभूद्यमशासनात् ॥ ३४१ ॥
 एवं ते प्राणिनः प्रापुस्तद्वरात्कृतकृत्यताम् ।
 न हि सत्पुरुषैः सङ्गः कचिद्भवति निष्फलः ॥ ३४२ ॥
 इति मरुत्तसमागमः ॥ ११ ॥
 दुष्यन्तः सुरथो गोप्ता गयो गाधिः पुरुरवाः ।
 एते चान्ये च भूपाला रावणेन जितास्ततः ॥ ३४३ ॥

अथाभवदयोध्यायामनरण्येन भूभुजा ।
 युद्धं राक्षसराजस्य शस्त्रालग्रामदुःसहम् ॥ ३४४ ॥
 ततस्तलाभिघातेन निहतस्तेन भूपतिः ।
 निपपात महातालः कृत्तमूल इव क्षितौ ॥ ३४५ ॥
 क्षणावशेषजीवोऽपि स जगाद दशाननम् ।
 श्लाघमानं स्वविजयं संदष्टदशनच्छदः ॥ ३४६ ॥
 निहतः प्राप्तकालोऽहं क्षत्रियः किं प्रगल्भसि ।
 भविष्यति तवावश्यं राज्ञो मद्दंशजाद्वधः ॥ ३४७ ॥
 इत्युक्ते सत्यशीलेन भूभुजा देवदुन्दुभिः ।
 ननाद पुष्पवृष्टिश्च निपपात महीतले ॥ ३४८ ॥
 इत्यनरण्यवधः ॥ १२ ॥
 एतदाकर्ण्य पप्रच्छ रामः कुम्भोद्भवं मुनिम् ।
 किं तदा भगवन्कृत्स्ना वीरशून्याभवन्मही ॥ ३४९ ॥
 एवंविधा नृपतयः प्रवराश्चक्रवर्तिनः ।
 जिताः स इत्यभाषन्त कथं वीर दशाननम् ॥ ३५० ॥
 न कश्चिदपि संजातः क्षत्रियः क्षत्रियस्तदा ।
 दर्पेण सर्वसामान्या ये न प्रक्षालिता युधि ॥ ३५१ ॥
 इति रामेण भगवान्पृष्टोऽगस्त्यस्तभब्रवीत् ।
 नृपाः कुर्वन्ति किं राम वरदृष्टे क्षपाचरे ॥ ३५२ ॥
 ततो माहिष्मतीं येन पुरीं दशमुखो ययौ ।
 स सहस्रभुजो यस्यां कार्तवीर्योऽर्जुनः पतिः ॥ ३५३ ॥
 जयकेलिरते राज्ञि नर्मदां फेनहासिनीम् ।
 अन्तःपुरैः सह गते राजधानीं विवेश सः ॥ ३५४ ॥
 युद्धार्थी स महामात्यान्मुहुः पप्रच्छ दुर्भेदः ।
 क्व स राजार्जुनो नाम वीरो भूरिभुजोर्जितः ॥ ३५५ ॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा कालज्ञास्तस्य मन्त्रिणः ।
 न स्थितो भूपतिरिति प्राहुर्नयविचक्षणाः ॥ ३५६ ॥

ततो विन्ध्याचलं गत्वा शनैर्बद्धमनोरथः ।
 मध्याहे नर्मदातीरमाससाद दशाननः ॥ ३५७ ॥
 दक्षिणाम्भोधिमहिषीं स्वच्छफेनदुकूलिनीम् ।
 तां हंसमालिनीं वीक्ष्य नर्मदां नर्मदां रतेः ॥ ३५८ ॥
 प्रहर्षोत्फुल्लनयनश्चिरेणासाद्य निर्वृतिम् ।
 उवाच मारीचमुखान्सचिवान्विगतक्लमः ॥ ३५९ ॥
 लोलफेनावलीहारा चक्रवाकोन्नतस्तनी ।
 मनो मे रसयत्येषा तरुणीव तरङ्गिणी ॥ ३६० ॥
 एते विन्ध्योपलस्फालस्फारशीकरदन्तुराः ।
 भान्ति विश्रान्तिसुहृदो नर्मदातीरमारुताः ॥ ३६१ ॥
 इयं विलोक्य मां सुसकल्लोलवल्या सरित् ।
 लीनमीनविहङ्गाक्षी भीतेव निभृतं स्थिता ॥ ३६२ ॥
 तपत्यतप्तं तपनः पवनः पङ्क्ततां गतः ।
 सुसंगतविहङ्गापि नो ननाद च नर्मदा ॥ ३६३ ॥
 अस्मिन्संतोषविषदे वाहिनीपुलिने मम ।
 हरपुष्पोपहाराय भृशमुत्कण्ठते मनः ॥ ३६४ ॥
 किं तैः कुविभवैर्भूत पीत्वा संभृतभोजनैः ।
 हरार्चनोपकरणे संतता न भवन्ति ये ॥ ३६५ ॥
 हरार्चनैकव्यापारा यद्भवन्ति विभूतयः ।
 तज्जन्मान्तरलब्धस्य तत्प्रसादस्य तत्फलम् ॥ ३६६ ॥
 एतावदेव विपुलैश्वर्यकल्पतरोः फलम् ।
 राजोपचारपूजाभिः पूज्यन्ते यन्महेश्वराः ॥ ३६७ ॥
 पूजानुरागहेवाकः पुण्यभाजां प्रजायते ।
 एकजन्मावशेषाणां भवे भवति भावना ॥ ३६८ ॥
 भवद्विरूपनीतेन पूजोपकरणेन मे ।
 प्रवर्ततामयं पूर्णं तूर्णं लिङ्गार्चनोत्सवः ॥ ३६९ ॥

इत्युक्त्वा विरते तस्मिन्सर्वं पूजामयोचितम् ।
 पुरः पुष्पाणि निचितं चक्रुस्ते क्षणदाचराः ॥ ३७० ॥
 ततो आत्रा कृतजपः शुद्धात्मा हृदि योगकृत् ।
 सदाचितं हेममयं लिङ्गमादाय सैकते ॥ ३७१ ॥
 सर्वोपचारपूजाभिः पूजयित्वा यथेप्सितम् ।
 नामाष्टशतकं गायन्ननर्त दशकन्धरः ॥ ३७२ ॥
 विधानेन सदा पूजां कृत्वा सोऽभूज्जगज्जयी ।
 तस्मिन्दिने समुत्सेको विधिहीनक्रियोऽभवत् ॥ ३७३ ॥
 सा पूजा महती शंभोर्दिव्यपुष्पविनिर्मिता ।
 खेचराणां क्षणं चक्रे रत्नादिशिखरभ्रमम् ॥ ३७४ ॥
 मन्दारैः सौरभोदारैः कचद्भिः काञ्चनाम्बुजैः ।
 सुजातैः पारिजातैश्च सा पूजा शुशुभे विभोः ॥ ३७५ ॥
 अत्रान्तरे तटस्याधस्तीरे माहिष्मतीपतिः ।
 विल्लासार्जुनो राजा सलिले ललनाशतैः ॥ ३७६ ॥
 तस्य कङ्कणकेयूररत्नांशुवलयैर्जलम् ।
 बभौ प्रावृद्धनभ्रष्टैर्व्याप्तं चक्रायुधैरिव ॥ ३७७ ॥
 तत्करास्फालितजलस्फारशीकरसंततिः ।
 तरुणीनां स्तनतटे प्रययौ भारहारताम् ॥ ३७८ ॥
 जलं पिञ्जरितं रेजे कामिनीकुचकुङ्कुमैः ।
 हेमाम्बुजस्रजो राज्ञः किंजल्कैरिव पूरितम् ॥ ३७९ ॥
 भुजानां भूपतिस्तत्र सारं ज्ञातुं तरङ्गिणीम् ।
 धृत्वा चकार सावेगं प्रतिस्रोतः पराङ्मुखाम् ॥ ३८० ॥
 निरुद्धा बलिना तेन प्रवृद्धेन महाम्भसा ।
 मन्युनेव परावृत्ता सा जगाम यथागतम् ॥ ३८१ ॥
 अर्धे सलिलकलोलदुकूलवलिता सरित् ।
 अर्धे भ्रमरतटे श्रेणीहृततोयांशुकाभवत् ॥ ३८२ ॥

इतः सहस्रगुणिता प्रापाथ तनुतामितः ।
 तुल्यं मेघागमशरद्विरक्तेन बभूव सा ॥ ३८३ ॥
 राज्ञा भुजसहस्रेण रुद्धा सागरगामिनी ।
 मुखं वर्त्मसहस्रेण दत्त्वा दत्त्वा न्यवर्तत ॥ ३८४ ॥
 तटी भग्नवरोद्याना तस्याः कूलंकषैर्जलैः ।
 तन्मार्गगामिनी दूरात्सा सर्वजनवर्जिता ॥ ३८५ ॥
 बभ्राम रावणाज्ञेव पुण्याश्रमविनाशिनी ।
 तां रावणकृतां पूजामुन्मत्तेव विशृङ्खला ॥ ३८६ ॥
 जहार वीचिहस्तैः सा स्फीतफेनाट्टहासिनी ।
 हृतपूजां नदीं रक्षश्चक्षुषा क्षणमैक्षत ॥ ३८७ ॥
 ईर्ष्यालुरिव सोत्सेकां दयितामपकारिणीम् ।
 क्षुभितां नर्मदां दृष्ट्वा निर्विकारामिव स्थिताम् ॥ ३८८ ॥
 दिदेश संज्ञया ज्ञातुं रावणः शुकसारणौ ।
 तौ गत्वा तटिनीमध्ये रोद्धारं सलिलं भुजैः ॥ ३८९ ॥
 वृतं कान्तासहस्रेण दृष्टं ददृशतुर्नृपम् ।
 तौ तु दृष्ट्वा समभ्येत्य दशकन्धरमूचतुः ॥ ३९० ॥
 निरुद्धा कार्तवीर्येण परावृत्ता तरङ्गिणी ।
 पौलस्त्यः सुचिरान्विष्टं स्थितं श्रुत्वा महीपतिम् ॥ ३९१ ॥
 अमर्षहर्षसंपूर्णः सानुगस्तां ययौ भुवम् ।
 स तस्य सचिवानेत्य जगाद समरोन्मुखः ॥ ३९२ ॥
 क स राजार्जुनो नाम सहस्रभुजदुर्मदः ।
 दशाननोऽहं युद्धार्थी रसेन खयमागतः ॥ ३९३ ॥
 न सेहे त्रिजगत्यसिन्वीरमानोन्नतं जनम् ।
 इति ब्रुवाणं सावेगं मन्त्रिणस्तं बभाषिरे ॥ ३९४ ॥
 खैरं स्थितो नरपतिः कान्ताकेलिकुतूहली ।
 दृश्यो भवति नास्माकं कालेऽसिन्मदनिर्भरः ॥ ३९५ ॥

युद्धस्यावसरो नायं क्षपामेकां क्षमस्व नः ।
 नायं विबुद्धो युद्धेन प्रातर्गन्तासि भूपतेः ॥ ३९६ ॥
 एतदाकर्ण्य पौलस्त्यस्तात्राजसचिवान्वली ।
 चकार सानुगच्छन्नान्धोराभिः शरवृष्टिभिः ॥ ३९७ ॥
 ततः श्रुत्वा नरपतिर्दशाननमसंभ्रमः ।
 युद्धार्थिनं समायातमुन्ममज्ज जलान्तरात् ॥ ३९८ ॥
 स स्तम्भभुजसंभारः प्रांशुः कनकसप्रभः ।
 हेमवृक्षसहस्राङ्कः स मुमेरुरिवावभौ ॥ ३९९ ॥
 भदोद्धतः समादाय गदां जाम्बुनदाङ्गदः ।
 समभ्यधावत्तेजस्वी राक्षसेन्द्रं क्षितीश्वरः ॥ ४०० ॥
 तस्मै प्रहस्तश्चिक्षेप मुशलं ज्वलनाकुलम् ।
 जग्राह गदया तच्च सावेगं पृथिवीपतिः ॥ ४०१ ॥
 प्रहस्तस्ताडितस्तेन गदया वज्रवेगया ।
 वमन्मुखेन रुधिरं पपात भुवि मूर्छितः ॥ ४०२ ॥
 ततोऽभूदुद्धतं युद्धं नरराक्षसराजयोः ।
 मही यच्चरणन्यासैरुन्ममज्ज ममज्ज च ॥ ४०३ ॥
 गदाभिघातप्रभवैरश्रान्तं युध्यमानयोः ।
 तयोः सावेगनिर्घोषैः प्रलयाभ्रभ्रमोऽभवत् ॥ ४०४ ॥
 गदाप्रहारनिष्पिष्टरत्नाभरणवहिना ।
 व्याप्तौ तौ रेजतुर्वीरौ सविद्योता इवाचलौ ॥ ४०५ ॥
 ततः क्षितिपतिः क्षिप्रं सर्वप्राणेन तां गदाम् ।
 अपातयन्महावेगां राक्षसेन्द्रस्य वक्षसि ॥ ४०६ ॥
 रावणस्योरसि दृढे सा पपात द्विधा गता ।
 अपमृत्युं धनुर्मात्रं राक्षसो निषसाद च ॥ ४०७ ॥
 तं मूर्छितं निपतितं बद्ध्वा जग्राह भूपतिः ।
 सुरैः स साधुशब्दाभिः पूजितः पुष्पवृष्टिभिः ॥ ४०८ ॥

बन्धनं पवनस्येव समुद्रस्येव शोषणम् ।
 आकर्षणमिवार्कस्य सुमेरोरिव पातनम् ॥ ४०९ ॥
 दशग्रीवस्य दृष्ट्वैव ग्रहणं क्रोधमूर्छिताः ।
 ग्रहस्तमारीचिमुखा योद्धुमभ्याद्रवन्मुहुः ॥ ४१० ॥
 तान्स विद्राव्य तरसा दीप्ताभिः शरवृष्टिभिः ।
 बद्धं रावणमादाय प्रविवेश निजां पुरीम् ॥ ४११ ॥
 इति रावणग्रहणम् ॥ १३ ॥
 पौत्रस्य ग्रहणं श्रुत्वा कथ्यमानं सुरैर्दिवि ।
 कम्पमान इव खेहात्पुलस्त्यः स्वयमाययौ ॥ ४१२ ॥
 तेनार्थितो नरपतिर्मुनिना ब्रह्मसूनुना ।
 तत्याज रावणं बन्धात्सख्यं कृत्वाग्निसाक्षिकम् ॥ ४१३ ॥
 न विश्वासः प्रभावेऽस्ति दर्पो मानाशतिः परम् ।
 को जानीते विकाराणां विधेरेव हि संनिधिम् ॥ ४१४ ॥
 धनिभ्यो धनिनः सन्ति वादिभ्यः सन्ति वादिनः ।
 बलिभ्यो बलिनः सन्ति तस्मादर्पं विवर्जयेत् ॥ ४१५ ॥
 गुणानां संपदां लोके यशसामथ तेजसाम् ।
 अविच्छिन्नः प्रकर्षोऽयमुपर्युपरि वर्तते ॥ ४१६ ॥
 इति रावणमोक्षः ॥ १४ ॥
 बलाधिकान्बाधमानः पुनर्भुवि चचार सः ।
 प्रशाम्यति प्रभावो हि देहेन सह देहिनाम् ॥ ४१७ ॥
 स शौर्याभ्यधिकं श्रुत्वा वालिनं वानरेश्वरम् ।
 तूर्णं जगाम युद्धार्थी किष्किन्धां सचिवैः सह ॥ ४१८ ॥
 तं वालिवधसंनद्धं दर्पादुद्धतवादिनम् ।
 तारानुजोऽवदद्भीरुस्तारो वानरयूथपः ॥ ४१९ ॥
 संध्यामुपासितुं वाली यातोऽम्बुधिचतुष्टयम् ।
 क्षणं तिष्ठ पुरस्तस्य दर्पं निक्षिप्य यास्यसि ॥ ४२० ॥

एता वालिहतानेकवीरकङ्कालमालिताः ।
 दिशो विभ्रति पौलस्त्य कापालिकवधून्नतम् ॥ ४२१ ॥
 मृत्युना यदि ते मैत्री यदि त्वममरो वरात् ।
 तथापि वालिनं प्राप्य कथाशेषो भविष्यसि ॥ ४२२ ॥
 सोत्कण्ठेनेव कालेन हृष्टश्चेन्न प्रतीक्षसे ।
 तदितः स्वेच्छया गच्छ सक्षणो दक्षिणार्णवम् ॥ ४२३ ॥
 इति ब्रुवाणं कुपितस्तारं निर्भर्त्स्य रावणः ।
 पुष्पकेण ययौ तूर्णं संध्यायां दक्षिणार्णवम् ॥ ४२४ ॥
 स तत्र संध्याध्यानस्थं वालिनं मलिनाशयः ।
 दृष्ट्वा जिघृक्षन्निःशब्दं पञ्चामनुययौ शनैः ॥ ४२५ ॥
 लोचने किञ्चिदुन्मील्य वाली हेमाचलोपमः ।
 विलोक्य रावणं पश्चान्न चंचाल जपव्रतः ॥ ४२६ ॥
 अभिप्रायं स विज्ञाय रावणस्य महाभुजः ।
 तं जग्राह तपस्यान्ते सुपर्ण इव पन्नगम् ॥ ४२७ ॥
 लम्बबाहुवनं वाली कक्षायां राक्षसेश्वरम् ।
 कृत्वा खमुत्पपाताशु नखैरुल्लेखकारिणम् ॥ ४२८ ॥
 तमाद्रवन्तं गगने क्रुद्धाः पौलस्त्यमन्त्रिणः ।
 वालिवेगानलहताः पेतुर्मैघा इव क्षितौ ॥ ४२९ ॥
 स समुद्रत्रये संध्यामर्चयित्वा यथाविधि ।
 अश्रान्तः स्वपुरं प्राप कक्षानिक्षिप्तराक्षसः ॥ ४३० ॥
 विमुच्य रावणं तत्र वाली स्मितसिताननः ।
 उवाच कस्त्वं केनेह विन्यस्तः कथमागतः ॥ ४३१ ॥
 सोपहासं निशम्यैतद्वचनं राक्षसेश्वरः ।
 श्रमश्चासाकुलतनुः प्रोवाच घूर्णितेक्षणः ॥ ४३२ ॥
 अहो बलमसामान्यमहो व्रतगतिः परा ।
 तवाप्रतिमसत्त्वस्य येन बद्धोऽस्मि रावणः ॥ ४३३ ॥

बक्ति ताक्षर्योपमां कस्ते लज्जेवाविलतुल्यता ।
 यदि वा साम्यविरहान्मनसैवोपमीयते ॥ ४३४ ॥
 दंशवन्मां समादाय त्वदन्यः को नु दिक्त्रये ।
 क्षणेन भ्राम्यति व्यक्तमवधिर्नास्ति तेजसाम् ॥ ४३५ ॥
 अहो सुविपुलेऽप्यस्मिन्संसारे विबुधान्मुते ।
 रोमाञ्चकारिचरितो न दृष्टो त्वद्विधो जनः ॥ ४३६ ॥
 लज्जा भवेन्मम परं यदि स्यान्त्वत्समोऽपरः ।
 एकस्यैव तु शक्तिः कैर्लक्ष्यते ते विधेरिव ॥ ४३७ ॥
 अविच्छिन्नधनप्राणं सख्यमस्तु मम त्वया ।
 हृत्युक्त्वा तेन सौहार्दं स चकाराग्निसाक्षिकम् ॥ ४३८ ॥
 भासं बालिगृहे स्थित्वा पूज्यमानो दशाननः ।
 जगज्जयाय सचिवैस्तैः समेत्यार्थितो ययौ ॥ ४३९ ॥
 एवं त्रैलोक्यजयिनो बालिनो बलशालिना ।
 गोष्ठीषु दशकण्ठस्य स्मृतपात्रकृतं यशः ॥ ४४० ॥
 सर्गायैव नमस्तस्मै यस्मिन्काले मनोमुषाम् ।
 अद्भुतानामनित्यानां परिसंख्या न विद्यते ॥ ४४१ ॥
 इति बालिरावणसख्यम् ॥ १५ ॥
 तं मर्त्यलोके वीराणां वधायैव कृतक्षणम् ।
 ददर्श नारदो मेघारूढः पुष्पकवाहनम् ॥ ४४२ ॥
 सोऽब्रवीत्तिष्ठ पौलस्त्य प्रियं मे तव दर्शनम् ।
 यत्त्वं सर्वास्ववस्थामु युद्धान्न विरतः क्वचित् ॥ ४४३ ॥
 हरिणा दैत्यसंहारे ताक्षर्येण फणिभक्षणे ।
 त्वया जगज्जये चास्मिस्तोषितोऽहं कुतूहली ॥ ४४४ ॥
 किं मिथ्या मर्त्यनिधने प्रयत्नोऽयं तवाधिकः ।
 अनिशं येन जागर्ति संक्षयाय स्वयं यमः ॥ ४४५ ॥
 जातः प्रजापतिकुले मानुषान्सा वृथावधीः ।
 एते हि निहता एव मर्त्या मरणधर्मिणः ॥ ४४६ ॥

पदे पदे सुखोत्सेकदुःखदैन्यभयार्दिताः ।
 मूढाः संसारिणः सर्वे धीमतां करुणास्पदम् ॥ ४४७ ॥
 यमवक्त्रं विशन्त्येते नदीवेगा इवार्णवम् ।
 तस्मिन्नेव जिते सर्वे जगज्जाने त्वया जितम् ॥ ४४८ ॥
 नारदेनेत्यभिहितस्तथेत्युक्त्वा दशाननः ।
 प्रतस्थे सचिवैः सार्धं जेतुं वैवस्वतं जवात् ॥ ४४९ ॥
 शमनं सर्वभूतानामीश्वरं रक्षसां कथम् ।
 जेष्यतीत्यद्भुताक्रान्तो नारदोऽपि ययौ पुनः ॥ ४५० ॥
 स गत्वा रावणोद्योगं यमाय च न्यवेदयत् ।
 तत्क्षणं चार्कसंकाशं पुष्पकं समदृश्यत् ॥ ४५१ ॥
 प्रविशन्पुष्पकारूढः पौलस्त्यः प्रेतभूमिषु ।
 ददर्श जन्मनिर्माणकर्मवर्मावृतं जनम् ।
 करपत्रशिलापाततप्तसैकतपीडितम् ॥ ४५२ ॥
 निमग्नान्पूयविस्त्रासृक्सारवैतरणीजले ।
 गिरिसंघट्टनिष्पिष्टान्वज्रकण्टकपाटिताम् ॥ ४५३ ॥
 तप्ततैलवसाकुम्भकाथ्यमानार्थविग्रहान् ।
 शस्त्रतुण्डखगाकृष्टजिह्वानयननासिकान् ॥ ४५४ ॥
 ज्वालास्तम्भपरिष्वङ्गविलीनमलिनाङ्गकान् ।
 ताडितानुल्मुकैः शूलमुसलप्रासमुद्गरैः ॥ ४५५ ॥
 दृष्ट्वा दुष्कृतिनस्तत्र नरकावर्तमूर्छितान् ।
 सुकृतोज्ज्वलदेहांश्च रुचिराभरणस्रजः ॥ ४५६ ॥
 दिव्योद्यानगृहाभोगसंभोगसुखभागिनः ।
 जगद्व्रित्तिमिरं सर्वं तं देशं पुष्पकांशुभिः ॥ ४५७ ॥
 प्रभावशक्त्या पौलस्त्यः सर्वानार्तप्रलापिनः ।
 उज्जहार हताशेषं किंकरो रौरवान्तरात् ॥ ४५८ ॥
 मोक्षिते राक्षसेन्द्रेण निरयात्सर्वतो जने ।
 बभूव तुमुलः शब्दः संभृतो यमसन्ननि ॥ ४५९ ॥

ततः शमननिष्ठाभिरनिष्ठाभिः शरीरिणाम् ।
 सेनाभिर्घोररूपाभिर्युद्धं रक्षःपतेरभूत् ॥ ४६० ॥
 तस्यास्त्रवृष्टिभिर्योमि पुष्पकं शकलीकृतम् ।
 प्रजापतिवरोदग्रमभून्नवनवं पुनः ॥ ४६१ ॥
 दीप्तास्त्रवलयव्याप्तः सानुगो राक्षसेश्वरः ।
 अस्त्रं पाशुपतं क्रुद्धः संदधे रुधिरोक्षितः ॥ ४६२ ॥
 तेनास्त्रेण प्रयातेऽथ सैन्ये सपदि भस्मसात् ।
 स्वयं विनिर्ययौ मृत्युकालाभ्यां सहितो यमः ॥ ४६३ ॥
 तस्मिन्मूर्तेन दण्डेन सह स्यन्दनमास्थिते ।
 विश्वक्षयभयात्क्षिप्रं चकम्पे भुवनत्रयी ॥ ४६४ ॥
 तं दृष्ट्वा रावणामात्याः क्रोधदीप्तं रथे स्थितम् ।
 निमीलिताक्षाः संत्रासाद्गतसत्त्वा विदुद्रुवुः ॥ ४६५ ॥
 ततः प्रवृत्ते संग्रामे यमरावणयोः क्रुधा ।
 सुरा द्रुहिणरुद्रेन्द्रमुख्यास्तत्प्रेक्षितुं ययुः ॥ ४६६ ॥
 सप्तरात्रमभूद्युद्धं निर्विशेषं तयोर्मिथः ।
 दिव्यास्त्रशस्त्रज्वलनज्वालाजटिलिताम्बरम् ॥ ४६७ ॥
 यमस्य रावणशरैश्छाद्यमानतनोर्मुखात् ।
 रक्ताशोक इवोत्फुल्लः क्रोधवहिरजायत ॥ ४६८ ॥
 तं मृत्युरवदत्कोपाद्विनिष्पिष्य करे करम् ।
 अनुजानीहि मामेकं रक्षःपातकसंक्षये ॥ ४६९ ॥
 त्वमेव वेत्सि यद्येता युगान्तेषु मदोत्कटाः ।
 दंष्ट्राः सुरासुरग्रामरोमन्थशिथिलीकृताः ॥ ४७० ॥
 न तं पश्यामि नागेषु नरेषु त्रिदशेषु वा ।
 यमदंष्ट्राघटीयन्त्रान्मुक्तो यः स्वास्थ्यमागतः ॥ ४७१ ॥
 हिरण्यकशिपुर्वृत्रः शम्बरो नमुचिर्मधुः ।
 व्यग्रस्य मे जगद्भासक्षणेनैकेन विस्मृताः ॥ ४७२ ॥

एष त्वामुद्यतो बालः कियान्मे क्षणदाचरः ।
 स्वयं विमुञ्च संरम्भं मया स्पृष्टो न जीवति ॥ ४७३ ॥
 इति मृत्युवचः श्रुत्वा विश्वसंयमनो यमः ।
 पश्य मे बलमित्युक्त्वा स्वयं रावणमाद्रधत् ॥ ४७४ ॥
 तदग्रे मुद्गरो घोरः पाशश्च विपुलत्विषः ।
 कम्पमानेषु लोकेषु संनिधानं प्रचक्रतुः ॥ ४७५ ॥
 ततः कोपात्समुद्यम्य दण्डं दण्डधरो जवात् ।
 अभिद्रुते दशमुखे स्वयं ब्रह्मा समाययौ ॥ ४७६ ॥
 सोऽब्रवीन्मद्वरादृप्तस्तव वध्यो न रावणः ।
 अमोघः सर्वभूतानां कृतो दण्डः क्षयाय च ॥ ४७७ ॥
 निहते वा दशमुखे दण्डे वा मोघतां गते ।
 असत्यं मामुभयतः स्पृशेत्स्थितिविनाशकृत् ॥ ४७८ ॥
 इति साक्षाद्भगवता ब्रह्मणाभिहतो यमः ।
 सर्वं तथेति संचिन्त्य सरथोऽन्तरधीयत ॥ ४७९ ॥
 लब्धलक्षे दशग्रीवे याते यमजयोजिते ।
 अधोमुखा नारदेन सह देवा दिवं ययुः ॥ ४८० ॥
 इति यमविसर्गः ॥ १६ ॥
 ततो जलधिमार्गेण पातालं राक्षसेश्वरः ।
 विशालं व्यालकलिलं प्रविश्य सचिवैः सह ॥ ४८१ ॥
 जित्वा बलाद्भोगवतीं पुरीं वासुकिपालिताम् ।
 गत्वा मणिमयीं दैत्यनगरीं रत्नभासुराम् ।
 निवातकवचैः सार्धं वत्सरं युयुधे युधि ॥ ४८२ ॥
 तेषां तत्र च संग्रामे तुल्ये तुल्यबलौजसाम् ।
 ब्रह्मवाक्यात्कृतं सख्यं प्रीत्यै पावकसाक्षिकम् ॥ ४८३ ॥

१. 'तस्याग्रे' शा०. २. 'द्विषः' शा०. ३. 'मणि' शा०.

ततः शमननिष्ठाभिरनिष्ठाभिः शरीरिणाम् ।
 सेनाभिर्घोररूपाभिर्युद्धं रक्षःपतेरभूत् ॥ ४६० ॥
 तस्यास्त्रवृष्टिभिव्योम्नि पुष्पकं शकलीकृतम् ।
 प्रजापतिवरोदग्रमभून्नवनवं पुनः ॥ ४६१ ॥
 दीप्तास्त्रवलयव्याप्तः सानुगो राक्षसेश्वरः ।
 अस्त्रं पाशुपतं क्रुद्धः संदधे रुधिरोक्षितः ॥ ४६२ ॥
 तेनास्त्रेण प्रयातेऽथ सैन्ये सपदि भस्मसात् ।
 स्वयं विनिर्ययौ मृत्युकालाभ्यां सहितो यमः ॥ ४६३ ॥
 तस्मिन्मूर्तेन दण्डेन सह स्यन्दनमास्थिते ।
 विश्वक्षयभयात्क्षिप्रं चकम्पे भुवनत्रयी ॥ ४६४ ॥
 तं दृष्ट्वा रावणामात्याः क्रोधदीप्तं रथे स्थितम् ।
 निमीलिताक्षाः संत्रासाद्गतसत्त्वा विदुद्रुवुः ॥ ४६५ ॥
 ततः प्रवृत्ते संग्रामे यमरावणयोः क्रुधा ।
 सुरा द्रुहिणरुद्रेन्द्रमुख्यास्तत्प्रेक्षितुं ययुः ॥ ४६६ ॥
 सप्तरात्रमभूद्युद्धं निर्विशेषं तयोर्मिथः ।
 दिव्यास्त्रशस्त्रज्वलनज्वालाजटिलिताम्बरम् ॥ ४६७ ॥
 यमस्य रावणशरैश्छाद्यमानतनोर्मुखात् ।
 रक्ताशोक इवोत्फुल्लः क्रोधवहिरजायत ॥ ४६८ ॥
 तं मृत्युरवदत्कोपाद्विनिष्पिष्य करे करम् ।
 अनुजानीहि मामेकं रक्षःपातकसंक्षये ॥ ४६९ ॥
 त्वमेव वेत्सि यद्येता युगान्तेषु मदोत्कटाः ।
 दंष्ट्राः सुरासुरग्रामरोमन्थशिथिलीकृताः ॥ ४७० ॥
 न तं पश्यामि नागेषु नरेषु त्रिदशेषु वा ।
 यमदंष्ट्राघटीयन्त्रान्मुक्तो यः स्वास्थ्यमागतः ॥ ४७१ ॥
 हिरण्यकशिपुर्वृत्रः शम्बरो नमुचिर्मधुः ।
 व्यग्रस्य मे जगद्भासक्षणेनैकेन विस्मृताः ॥ ४७२ ॥

एष त्वामुद्यतो बालः कियान्मे क्षणदाचरः ।
 स्वयं विमुञ्च संरम्भं मया स्पृष्टो न जीवति ॥ ४७३ ॥
 इति मृत्युवचः श्रुत्वा विश्वसंयमनो यमः ।
 पश्य मे बलमित्युक्त्वा स्वयं रावणमाद्रवत् ॥ ४७४ ॥
 तदग्रे मुद्गरो घोरः पाशश्च विपुलत्विषः ।
 कम्पमानेषु लोकेषु संनिधानं प्रचक्रतुः ॥ ४७५ ॥
 ततः कोपात्समुद्यम्य दण्डं दण्डधरो जघात् ।
 अभिद्रुते दशमुखे स्वयं ब्रह्मा समाययौ ॥ ४७६ ॥
 सोऽब्रवीन्मद्वरादृप्तस्तव वध्यो न रावणः ।
 अमोघः सर्वभूतानां कृतो दण्डः क्षयाय च ॥ ४७७ ॥
 निहते वा दशमुखे दण्डे वा मोघतां गते ।
 असत्यं मामुभयतः स्पृशेत्स्थितिविनाशकृत् ॥ ४७८ ॥
 इति साक्षाद्भगवता ब्रह्मणाभिहतो यमः ।
 सर्वं तथेति संचिन्त्य सरथोऽन्तरधीयत ॥ ४७९ ॥
 लब्धलक्षे दशग्रीवे याते यमजयोजिते ।
 अधोमुखा नारेदेन सह देवा दिवं ययुः ॥ ४८० ॥
 इति यमविसर्गः ॥ १६ ॥
 ततो जलधिमार्गेण पातालं राक्षसेश्वरः ।
 विशालं व्यालकलिलं प्रविश्य सचिवैः सह ॥ ४८१ ॥
 जित्वा बलाद्भोगवतीं पुरीं वासुकिपालिताम् ।
 गत्वा मणिमयीं दैत्यनगरीं रत्नभासुराम् ।
 निवातकवचैः सार्धं वत्सरं युयुधे युधि ॥ ४८२ ॥
 तेषां तत्र च संग्रामे तुल्ये तुल्यबलौजसाम् ।
 ब्रह्मवाक्यात्कृतं सख्यं प्रीत्यै पावकसाक्षिकम् ॥ ४८३ ॥

१. 'तस्याग्रे' शा०. २. 'द्विषः' शा०. ३. 'मणि' शा०.

पूज्यमानः स्थितो वर्षे तेषां वैश्वमनि रावणः ।
 तेभ्यो दुर्नयमायानामेकोनं शतमाप्तवान् ॥ ४८४ ॥
 अथाश्मनगरे हत्वा दैत्यानन्यान्सहस्रशः ।
 प्राप कैलाससंकाशं शुभं वरुणमन्दिरम् ॥ ४८५ ॥
 यत्र सा सुरभिर्नाम संज्ञा दिव्योषधिप्रसूः ।
 स्थिता चन्द्रामृतोत्पत्तेर्जननी क्षीरवारिधेः ॥ ४८६ ॥
 तत्रामान्यान्स पप्रच्छ क स राजा जलेश्वरः ।
 युद्धार्थं निर्जितयमः प्राप्तोऽहं रावणः स्वयम् ॥ ४८७ ॥
 इति वादिनि सावेगं सानुगे राक्षसेश्वरे ।
 अभूत्संनाहसंरम्भस्तुरङ्गरथदन्तिनाम् ॥ ४८८ ॥
 ततः सलिलनाथस्य रथे वीराः प्रहारिणः ।
 पुत्राः पौत्राश्च सामात्याः सैन्येन सह निर्ययुः ॥ ४८९ ॥
 तेषां युद्धमभूत्स्वर्गप्रभापटलपल्लवम् ।
 भिन्नोरुमुक्ताकुसुमं कृत्तवीरशिरःफलम् ॥ ४९० ॥
 दारिते वरुणानीके रावणेन प्रमाथिना ।
 पुष्करप्रमुखा व्योम विविशुर्वरुणात्मजाः ॥ ४९१ ॥
 रथिभिः पुष्करैस्तस्य तैर्लङ्काधिपतेरभूत् ।
 युद्धं विपुलशस्त्रास्त्रज्वालालोलरसातलम् ॥ ४९२ ॥
 तेषां महोदरः क्षिप्रं रथात्पृथुपराक्रमः ।
 तान्ममाथ गिरिस्फारान्गदया रिपुभङ्गदः ॥ ४९३ ॥
 रणे वरुणपुत्रेषु भग्नेषु भुजशालिनाम् ।
 रावणं वरुणामात्यः प्रभासः स्वयमभ्यधात् ॥ ४९४ ॥
 अलं युद्धेन पौलस्त्य न स्थितो यादसां पतिः ।
 गान्धर्वं निखिलं श्रोतुं ब्रह्मलोकमितो गतः ॥ ४९५ ॥

१. 'मायानां शतमेकं समाप्तवान्' इति रामायणे. २. 'नाभि' क-ख. 'क्षरन्ती' च
 पयस्तत्र सुरभिं गामवस्थिताम्' इति रामायणे. ३. 'स्वधा' इति भवेत्. ४. 'प्रहासः'
 इति रामायणे.

श्रुत्वैतद्वरुणं जित्वा तत्पुरं दशकन्धरः ।
 वीरश्चचाल पाताले लब्धलक्षः सहानुगः ॥ ४९६ ॥
 ततश्चारुतरं हेमरुचिरं रत्नमन्दिरम् ।
 हसन्तमिव संसक्तव्यक्तमौक्तिकजालकैः ॥ ४९७ ॥
 ददर्श चन्द्रकान्तोरुशेखरं रावणः स्थितम् ।
 अपरेणैव रूपेण पाताले स्फटिकाचलम् ॥ ४९८ ॥
 कस्येदमिति तेनाशु ग्रहस्ते प्रेरिते पुरः ।
 प्रविश्य सप्तकक्षाभिः ज्वालामन्तर्व्यलोकयत् ॥ ४९९ ॥
 तन्मध्ये पुरुषं दीप्तं मौलिनं हेममालिनम् ।
 तदालोकेन जातेन हासेन महता मुहुः ॥ ५०० ॥
 कुर्वाणं धैर्यविध्वंससाध्वसायासकारिणा ।
 दृष्ट्वा प्रहस्तो निर्गत्य रावणाय न्यवेदयत् ॥ ५०१ ॥
 पुष्पकादवरुद्धाथ प्रविश्य दीप्तभूषणम् ।
 ददर्श द्वारि पौलस्त्यः पुरुषं मुशलायुधम् ॥ ५०२ ॥
 तं दृष्ट्वा जातरोमाञ्चः स साकम्पो व्यचिन्तयत् ।
 चिन्ताकुलं स पुरुषः प्रोवाच घननिःस्वनः ॥ ५०३ ॥
 युद्धार्थिनं त्वामायातं जानामि जगतां रिपुम् ।
 अत्राहं बलिरत्रास्ते केन युद्धं समीहसे ॥ ५०४ ॥
 एतद्दृशाननः श्रुत्वा कोपकण्टकिताकृतिः ।
 बलिना योद्धुमिच्छामीत्युक्तवैवान्तरमाविशत् ॥ ५०५ ॥
 स ददर्श बलिं तत्र पवित्रचरितव्रतम् ।
 विभवे भुवनव्यापी वैश्वरूप्यं बभार यः ॥ ५०६ ॥
 यस्य त्यागसमुद्भूता श्लाघ्यस्य तनुता श्रियः ।
 अर्थिभिः खिन्नशाखस्य चन्दनस्यैव शोभते ॥ ५०७ ॥
 दानेनातिप्रमाणेन यस्य बद्धस्य विष्णुना ।
 विविक्तं त्रिषु लोकेषु भ्रमति स्वेच्छया यशः ॥ ५०८ ॥

केनान्येन वदान्येन क्रियतामुपमा बलेः ।
 त्यागेनात्युन्नतिं नीतो येन स्वल्पोऽपि याचकः ॥ ५०९ ॥
 स्पृहणीयैव समरे शूरस्येव विरूपिता ।
 तुल्यं(?) संपत्सहस्रेण दातुर्दानोद्भवा विपत् ॥ ५१० ॥
 तं दृष्ट्वा तेजसां राशिं प्रगल्भोऽपि दशाननः ।
 अभून्निष्प्रतिभः प्राप्य मूर्खो विद्वत्सभामिव ॥ ५११ ॥
 तमुत्सङ्गे समारोप्य दूरागमनकारणम् ।
 प्रीतिप्रसारितोष्ठाग्रः पप्रच्छ स्वच्छधीर्बलिः ॥ ५१२ ॥
 तं रावणोऽवदद्वन्द्वं श्रुत्वाहं त्वां मुरारिणा ।
 शक्तः प्राप्तोऽस्मि मोक्षाय निर्जिताशेषनिर्जरः ॥ ५१३ ॥
 दशस्यवचनं श्रुत्वा हासोल्लाससिताननः ।
 उवाच रुचिरं कुर्वन्पाताले चन्द्रिकां बलिः ॥ ५१४ ॥
 एष द्वारि स्थितः श्यामः किरीटी दीर्घकुण्डलः ।
 पुरुषः शाश्वतः श्रीमान्वद्धोऽहं येन लीलया ॥ ५१५ ॥
 मधुकैटभमुख्यास्ते हिरण्याक्षपुरोगमाः ।
 तस्योदरदरीं सर्वे प्रविष्टाः कालरूपिणः ॥ ५१६ ॥
 एष स्रष्टा च संहर्ता विश्वरूपः सनातनः ।
 यं मोक्षगामिनः सिद्धा यतयः पर्युपासते ॥ ५१७ ॥
 सर्वात्मा भगवानेष प्रत्यक्षोऽपि न दृश्यते ।
 प्रकाशबन्धुर्नोहान्धैः सहस्त्रांशुरिवाम्बरे ॥ ५१८ ॥
 तं जेतुं तव संकल्पो हास्यं कस्य न जायते ।
 पूर्णेन्दुयाच्चा रुदिते(?) बालस्येव फलाशया ॥ ५१९ ॥
 इत्युक्त्वा बलिना श्रुत्वा ततो निर्गत्य रावणः ।
 न तं ददर्श पुरुषं देहस्थमिव मूढधीः ॥ ५२० ॥
 स समुन्मज्ज्य पातालासेनैवाम्बुधिवर्त्मना ।
 शशाङ्कलोकं निःशङ्कः प्रतस्थे जेतुमञ्जसा ॥ ५२१ ॥
 इति पातालविजयः ॥ १७ ॥

१. वामनोऽप्युत्क्रमतां नीत इति भावः.

व्योम्नि ब्रजन्विमानेन मेरुशृङ्गगवाप्य सः ।
 विमानान्यर्कवर्णानि पश्यन्सुकृतिनां पुरः ॥ ५२२ ॥
 पप्रच्छ विस्मितस्तेषां प्रभावं पर्वतं मुनिम् ।
 स पृष्टो दशकण्ठेन देवर्षिस्तमभाषत ॥ ५२३ ॥
 एष सूर्यपथोत्तीर्णः संन्यासी मोक्षमास्थितः ।
 भासुरः सोमपश्चायं ब्रह्मवादी रथे स्थितः ॥ ५२४ ॥
 अयं शक्राधिकैश्वर्यो रणानलहुताकृतिः ।
 अयं सुवर्णदः श्रीमानेते सुकृतिनः परे ॥ ५२५ ॥
 मान्धाता चैव राजर्षिर्विवस्वानिव राजते ।
 एतदाकर्ण्य पौलस्त्यः स्वर्गमार्गं व्यगाहत ॥ ५२६ ॥
 विजेतुं भूपतेस्तत्र तेनाहूतस्य मानिनः ।
 बभूव सुमहद्युद्धं जम्भेनेव शचीपतेः ॥ ५२७ ॥
 तस्मिन्नस्त्रास्त्रसंघट्टघट्टिताशेषदिक्ते ।
 संहारो(?)घोरसमरे भुवनानि चकम्पिरे ॥ ५२८ ॥
 ततः पाशुपतं राजा क्षीणे दिव्यास्त्रमण्डले ।
 अस्त्रं जग्राह येनभूत्रिजगत्क्षोभविभ्रमः ॥ ५२९ ॥
 तां युद्धभुवमभ्येत्य महर्षिप्रवरौ तयोः ।
 पुलस्त्यगालवौ सख्यं चक्रतुर्विश्वशान्तये ॥ ५३० ॥
 इति मान्धातुयुद्धम् ॥ १८ ॥
 ततो दशसहस्राणि योजनानां मरुत्पथम् ।
 प्रथमं हंसमालाङ्कं जगामाक्रम्य रावणः ॥ ५३१ ॥
 तत्तुल्यमपरं वातस्कन्धमाचक्रमे जवात् ।
 आग्नेयाः पक्षिणो ब्राह्मा त्रिविधा यत्र वारिदाः ॥ ५३२ ॥
 तृतीयं धाम सिद्धानां तुर्यं भूतगणाश्रितम् ।
 पञ्चमं दिग्द्विपक्षिसगङ्गाम्बुहिमशीकरम् ॥ ५३३ ॥
 षष्ठं सुपर्णनिलयं सप्तमं मुनिसेवितम् ।
 अतिक्रम्य दशग्रीवः स्फीतां च व्योमवाहिनीम् ॥ ५३४ ॥

अशीतिं योजनानां तु सहस्राणीन्दुमण्डलम् ।
 शतलक्षांशुविषदं भयदं प्राप्य रावणः ॥ ५३५ ॥
 पपात सानुगस्तत्र यत्स शीतसमाहतः ।
 सा कापि महती शक्तिर्हिमस्य दहनात्मिका ॥ ५३६ ॥
 तं प्रहस्तोऽवदहन्तवाद्यप्रस्खलिताक्षरः ।
 निवर्तस्व दशग्रीव निधनायेह संनिधिः ॥ ५३७ ॥
 श्रुत्वैतत्कोपसंतप्तः पौलस्त्यः सोममण्डले ।
 चिक्षेप दीप्तान्नाराचान्प्राप्तजीवितसंशयः ॥ ५३८ ॥
 ततः स्वयं समभ्येत्य स्वयंभूस्तमभाषत ।
 इतः पुत्र निवर्तस्व संरम्भं मा कृथाः परम् ॥ ५३९ ॥
 प्राणक्षये स्वरक्षार्थं मन्त्रराजं गृहाण च ।
 रौद्रं नामाष्टकशतं विजयो येन लभ्यते ॥ ५४० ॥
 शिवः शिवप्रदो लोके भवो भवविनाशनः ।
 हरः क्लेशहरो देवः शिवः सर्वार्थसिद्धिदः ॥ ५४१ ॥
 विभुः स्वयंभूर्भगवान्भर्गः सर्गलयोदयः ।
 शंभुः स्तम्भितजम्भारिभुजस्तम्भो महेश्वरः ॥ ५४२ ॥
 सर्वदेवमयो वेत्ता विदितो वेदवादिनाम् ।
 योगज्ञो योगिनां ध्येयः परमात्मा सनातनः ॥ ५४३ ॥
 भूतकृद्भूतहृद्भूतमर्ता भूतिसिताकृतिः ।
 स्तोत्रेणानेन विश्वेशः शंकरः परितुष्यति ॥ ५४४ ॥
 इत्युक्त्वा राक्षसेन्द्राय नामाष्टशतकं विधिः ।
 दत्त्वा जगाम भगवान्सिद्धर्षिगणवन्दितः ॥ ५४५ ॥
 इति सोमलोकगमनम् ॥ १९ ॥
 ततः प्रभृति निर्वृत्तो वरदृप्तो दशाननः ।
 जहार सुरगन्धर्वनागकिंनरकन्यकाः ॥ ५४६ ॥

बलाधिकः समादाय कलत्राणि दिवौकसाम् ।
 ययौ तत्कर्मणा क्रन्दसंपूरितदिगन्तरः ॥ ५४७ ॥
 परदारोत्सुकः पापः परदारापहारकः ।
 क्षयं प्रयास्यतीत्युचुस्तं सुरासुरयोषितः ॥ ५४८ ॥
 ततो जगज्जयोद्धूतः सदाभरणविग्रहः ।
 संपूर्णविग्रहः प्राप लङ्कां राक्षसकुञ्जरः ॥ ५४९ ॥
 अथ शूर्पणखा नाम तत्र लङ्कापतेः स्वसा ।
 निपत्य पादयोर्दुःखाद्वाष्पाम्बुवदनावदत् ॥ ५५० ॥
 अहो वत महाराज त्रैलोक्यजयिना त्वया ।
 उचितं श्लाघनीयं च बन्धुकार्यं महत्कृतम् ॥ ५५१ ॥
 सुहृदामुपकाराय बन्धूनामुदयाय च ।
 अर्थ्यते विभवः सद्भिर्भोजनं कस्य दुर्लभम् ॥ ५५२ ॥
 विश्वप्रसिद्धयशसा भुवनप्रभविष्णुना ।
 विभवे संविभागार्हः पतिर्मे निहतस्त्वया ॥ ५५३ ॥
 कालेया नाम ये दैत्याः समरे निहतास्त्वया ।
 तेषां मध्ये मम पतिर्विद्युज्जिह्वो निपातितः ॥ ५५४ ॥
 श्रुत्वैतदप्रियं क्षिप्रं लज्जमानो दशाननः ।
 तां समाश्वास्य प्रोवाच राक्षसं क्षमां विलोकयन् ॥ ५५५ ॥
 भ्राता ममाधिकगुणः प्रियो मातृस्वसुः सुतः ।
 पूजयिष्यति मद्वाक्यात्स्वरः स्वजननीमिव ॥ ५५६ ॥
 मयास्य दण्डकारण्ये स्वं राज्यं प्रतिपादितम् ।
 निर्देशकारी वश्यश्च तत्रायं ते भविष्यति ॥ ५५७ ॥
 याते भर्तरि नारीणां संभोगविभवे गते ।
 अयाच्चा सुलभा वृत्तिः दुःखशूलापहारिणी ॥ ५५८ ॥
 इत्युक्त्वा दण्डकारण्यं ससैन्यं दूषणानुगम् ।
 विससर्ज सुरारातिः खरं शूर्पणखां च ताम् ॥ ५५९ ॥
 इति दण्डकारण्यप्रदानम् ॥ २० ॥

१. 'कालकेया इति ख्याताः' इति रामायणे.

ततो निकुम्भिलां नाम लङ्कापर्यन्तकाननम् ।
 सोऽपश्यच्चैत्ययूपाङ्कं मेघनादकृतैर्मखैः ॥ ५६० ॥
 पुत्रं कृष्णाजिनधरं स परिष्वज्य दीक्षितम् ।
 शुश्राव तद्व्यवसितं सर्वमौशनसाद्विजात् ॥ ५६१ ॥
 अग्निष्टोमोऽश्वमेधश्च क्रतुर्वहुसुवर्णकः ।
 राजसूयो गोसवश्च वैष्णवश्च सुतेन ते ॥ ५६२ ॥
 संप्राप्ता दुर्लभा यज्ञाः पूर्णे माहेश्वरे क्रतौ ।
 रणोपकरणं दिव्यं लब्धं रुद्रस्य शासनात् ॥ ५६३ ॥
 संप्राप्ता तामसी माया स यज्ञोऽद्य समाप्यते ।
 एतदाकर्ण्य पौलस्त्यः पुत्रमूचे स्मिताननः ॥ ५६४ ॥
 न शोभनं कृतं वत्स यत्त्वया मम शत्रवः ।
 यज्ञेष्वभ्यर्चिता देवाः क्षये येषामहं स्थितः ॥ ५६५ ॥
 इत्युक्त्वा सह पुत्रेण राजधानीं विवेश सः ।
 चक्रे शत्रुजिता सार्धं सैन्यं संनाहसंभृतम् ॥ ५६६ ॥
 विभीषणस्तु ता दृष्ट्वा हतास्त्रिदशयोषितः ।
 उवाच भ्रातरं धीमान्पापाचारपराङ्मुखः ॥ ५६७ ॥
 त्रैलोक्यविजयो राजन्परदारविमर्षिणः ।
 क्रतुर्न श्रोत्रियस्येव तवायं न विराजते ॥ ५६८ ॥
 निर्दयत्यागसंभोगैः क्षीयन्ते नैव संपदः ।
 श्रीलतामूलपरशुः प्राप्तो यावन्न दुर्नयः ॥ ५६९ ॥
 श्रुतेन शोभते प्रज्ञा वाणी सत्येन शोभते ।
 शमेन शोभते विद्या लक्ष्मीः शीलेन शोभते ॥ ५७० ॥
 परित्यज्य कलत्राणि धर्म्याणि त्रिदिवौकसाम् ।
 स्वचिन्ता क्रियन्तां तावत्सदाचारानुवर्तिनी ॥ ५७१ ॥
 पुष्पोत्कटायास्तनया कन्या कुम्भीनसी बलात् ।
 मधुना राक्षसेनैव निशि नीता प्रमाथिना ॥ ५७२ ॥

श्रुत्वैतत्क्रोधसंतप्तः श्वसन्नूचे दशाननः ।
 प्रबुद्धः कुम्भकर्णोऽद्य मेघनादः कृतक्षणः ।
 गच्छामस्त्रिदशाज्जेतुं लङ्का संरक्ष्यतां त्वया ॥ ५७३ ॥
 इत्युक्त्वा विपुलानीकः पौलस्त्यः सह मन्त्रिभिः ।
 निर्ययौ ककुभः कुर्वन्नजोजीमूतलाञ्छनाः ॥ ५७४ ॥
 दैत्यैः सुरेन्द्रविद्वेषादनुयातस्तरस्त्रिभिः ।
 पूर्वं मधुपुरं गत्वा स ददर्शाग्रजां पुरः ॥ ५७५ ॥
 तथा पादप्रणामेन भर्तृप्रीत्यार्थितो हि सः ।
 तद्वैधव्यानुपाताच्च विरराम मधोर्वधात् ॥ ५७६ ॥
 तं खर्गविजयोद्योगे कृत्वा सेनापुरःसरम् ।
 स कैलासतटीं प्राप्य न्यषीदन्मुक्तवाहनः ॥ ५७७ ॥
 इति सेनानिवेशः ॥ २१ ॥

विश्रान्तकटके तस्मिन्स्फाटिके कटके गिरेः ।
 शृङ्गं विद्याधरीहर्म्यमारुरोह दशाननः ॥ ५७८ ॥
 अथ कर्पूरधवलः श्यामामुखविशेषकः ।
 प्राप तारापतिर्व्योम मानसे राजहंसताम् ॥ ५७९ ॥
 प्राप ज्योत्स्नाट्टहासेन स्पष्टतां स्फटिकाचलः ।
 बभौ चन्द्रोदयोद्भूतसुधाम्भोधिखिवापरः ॥ ५८० ॥
 कुसुमामोदमुदिता बभ्रुमुर्भमराः परम् ।
 तदा विरहिणीसृष्टा मूर्ताः कामाक्षरां इव ॥ ५८१ ॥
 पृष्टे कैलासशृङ्गेषु चन्द्रस्य प्रतिबिम्बितैः ।
 बिम्बितैः प्रतिबिम्बैश्च बभूवेन्दुमयं जगत् ॥ ५८२ ॥
 घनैर्निशाकरालोकैर्नखोल्लेखसहैरिव ।
 घटिताः स्फाटिकेनेव शुभ्राः शुशुभिरे दिशः ॥ ५८३ ॥
 चन्द्रांशुमालाधवलैः फुल्लैर्मन्दारपादपैः ।
 मुहुर्जहास कैलासः शोभां चन्दनशाखिनाम् ॥ ५८४ ॥

सुराभिसारिकापीनस्तनोत्सङ्गततरङ्गिणः ।
 पवनाश्चन्दनामोदप्रमोदसुहृदो ववुः ॥ ५८५ ॥
 निशाकरकरैः स्फेरस्सरचामरचारुभिः ।
 रेजे द्यौर्वीज्यमानेव स्पर्शशीलिततारका ॥ ५८६ ॥
 धम्मिल्लपुष्परचनाव्यग्रसिद्धवधूजने ।
 सोत्कण्ठा किंनरीगीतमीलितालिकुलस्वने ॥ ५८७ ॥
 व्रजन्विद्याधरीस्त्रैरनारीनूपुरनादिते ।
 ज्योत्स्नाहासिनि कैलासे प्रीतिं प्राप्य दशाननः ॥ ५८८ ॥
 सोऽचिन्तयदियं कान्ता कामिनीं कौमुदीं विना ।
 करोति हृदि संतापं लुब्धश्रीरिव निष्फला ॥ ५८९ ॥
 अस्मिन्नवसरे रम्भा रम्भोरुरभिसारिका ।
 आययौ वर्त्मना तेन कान्ता स्वर्गविलासिनी ॥ ५९० ॥
 स्सरपुण्यैरसामान्यैर्लावण्यैरेव भूषिता ।
 गृहीतरतिनेपथ्या मिथ्यारचितभूषणा ॥ ५९१ ॥
 तारा हारांशुविशदा ज्योत्स्नस्वच्छदुगूलिनी ।
 मूर्तेव शशिनः स्फीता कीर्तिः कैलासचारिणी ॥ ५९२ ॥
 धम्मिल्लकुसुमामोदकृष्टशिञ्जानसंमदैः ।
 आवेद्यमाना गमनाचारैरिव मनोभुवः ॥ ५९३ ॥
 तां मुखेन्दुद्युतिमुधाधौताखिलदिगन्तराम् ।
 जहर्ष रावणो दृष्ट्वा मरौ मन्दाकिनीमिव ॥ ५९४ ॥
 स सादरः समुत्थाय पाणौ कमलकोमले ।
 आलम्ब्योवाच रभसात्तां नवानन्दकौमुदीम् ॥ ५९५ ॥
 खयमागमने सुभ्रु कस्यायं तदनुग्रहः ।
 कस्य मन्मथसाम्राज्यमौलिर्मूर्ध्नि विराजते ॥ ५९६ ॥
 इदं मधुमदाताम्रलोललोचनमाननम् ।
 केन दष्टोष्ठसीत्कारतारं धन्येन धीमता ॥ ५९७ ॥

को नाम त्रिजगत्यस्मिन्प्राप्तः स्मरनिधानताम् ।
 दोर्घृणालीयते यत्ते याति यस्योपदानताम् ॥ ५९८ ॥
 कस्य जन्मान्तरे वक्षः खड्गैर्विदलितं युधि ।
 इयं कुचतटी यस्मिन्याति चन्दनचौरताम् ॥ ५९९ ॥
 पूर्णपुण्यपणप्राप्यं संभोगविभवास्पदम् ।
 कस्ते स्वर्गमिवानर्घं नितम्बमधिरोहति ॥ ६०० ॥
 रोमावलीपताकाङ्कं मेखलाकिंकिणीयुतम् ।
 श्रोणीविमानं कस्येदं सज्जं सुकृतिशालिनः ॥ ६०१ ॥
 निवर्तस्व न शक्नोमि त्वां त्यक्तुं चारुलोचने ।
 अयत्नोपनतां रम्भे सुधां त्यजति कः सुधीः ॥ ६०२ ॥
 शक्तिः प्रभावः प्रभुता भोगः संभोगसंपदाम् ।
 सुदुर्लभानां लाभश्च तीव्रस्य तपसः फलम् ॥ ६०३ ॥
 इति तस्य वचः श्रुत्वा बलिनस्तनुमध्यमा ।
 कम्पमाना तमवदद्वल्लीवानिललोलिता ॥ ६०४ ॥
 स्नुषाहं तव धर्मेण लङ्केश्वर विमुञ्च माम् ।
 प्रभविष्णुरमर्यादं(?)स्थितिलोपोऽपि दुःसहः ॥ ६०५ ॥
 य एव विश्रुतः श्रीमान्भ्राता वैश्रवणस्तव ।
 तस्य पुत्रो गुणनिधिः प्रियो मे नलकूवरः ॥ ६०६ ॥
 इदमेतत्कृते सर्वं संभोगार्हं प्रसाधनम् ।
 सौभाग्यलुब्धाः कामिन्यो मधुरेष्वधिकदाराः ॥ ६०७ ॥
 कुले महति जातानां सुधियां श्रुतशालिनाम् ।
 अकीर्तिर्न भवत्येव न च शीलच्युता मतिः ॥ ६०८ ॥
 इति ब्रुवाणां रक्षस्तां न मुमोच स्पृहामिव ।
 प्रबलः कुलजां लज्जां सहते नहि मन्मथः ॥ ६०९ ॥
 तां रानणः परित्यज्य भयमीलितलोचनाम् ।
 चकर्ष स्पर्शरसिकः कम्पमानघनस्तनीम् ॥ ६१० ॥

सा बलाहलिना तेन मातङ्गेनेव दूषिता ।
 अभूलावण्यनलिनीपरिम्लानमुखाम्बुजा ॥ ६११ ॥
 ततः सुरतविस्तृतकवरीकुसुमच्छदा ।
 अधोमुखी वेपमाना खण्डिताधरपल्लवा ॥ ६१२ ॥
 स्तनौ नखमुखोच्छिष्टौ गूहमाना मनस्विनी ।
 सोच्छ्वासा प्रययौ रम्भा खेदधौतानुलेपना ।
 सा कुबेरपुरीं गत्वा समेत्य नलकूबरम् ॥ ६१३ ॥
 पादयोर्विनिपत्यास्य स्ववृत्तान्तं न्यवेदयत् ।
 स दृष्ट्वा दयितां भुक्तां रावणेन प्रमादिना ॥ ६१४ ॥
 पीतोज्झिताधरः क्रोधात्प्रज्ज्वाल विलोकयन् ।
 ततः सलिलमादाय पाणिना धनदात्मजः ॥ ६१५ ॥
 उपस्पृश्योत्ससर्जोऽग्रं शापं पापस्य रक्षसः ।
 अकामां योषितं कामात्स यदा धर्षयिष्यति ॥ ६१६ ॥
 सप्तधा यास्यति शिरस्तदा तस्य न संशयः ।
 इति शापं प्रतीहार्यं प्रदत्तानुमतं सुरैः ॥ ६१७ ॥
 मुक्तहालाहलो नाग इव तस्थौ विनिश्चसन् ।
 घोरं श्रुत्वा दशग्रीवस्तं शापं जीवितापहम् ॥ ६१८ ॥
 इति नलकूबरशापः ॥ २२ ॥
 ततस्त्रिदिवमासाद्य सहसैन्यैर्दशाननः ।
 संनाहव्यग्रगीर्वाणं गणं गहनमाविशत् ॥ ६१९ ॥
 क्रुद्धे रावणसैन्येन समन्तान्निदशालये ।
 विष्णुः शरणमायातमभापत शतक्रतुम् ॥ ६२० ॥
 तैन्नाप्तकालो वध्यो मे वध्योऽपि दशकन्धरः ।
 युत्तया बुध्यस्व देवेश काले हन्तास्मि तं युधि ॥ ६२१ ॥
 इत्युक्ते विष्णुना शक्रः सह सर्वैर्मरुद्गणैः ।
 युयुधे युधि संनद्धः पौलस्त्येन प्रहारिणा ॥ ६२२ ॥

१. 'विस्तृत' शा० शो०. २. 'क्रुद्धे' इति स्यात्. ३. 'नावाम' शा०. ४. 'देवै' शा०.

वस्वादित्याश्विरुद्रेन्दुशस्त्रास्त्रज्वलिते रणे ।
 जीमूतव्यूहमलिना विवभुः क्षणदाचराः ॥ ६२३ ॥
 समरे दुःसहे तस्मिन्संसारे युधि रक्षसाम् ।
 सुमालिना राक्षसेन युयुधे वसुरष्टमः ॥ ६२४ ॥
 तौ मिथः शरनिर्घोषहेमज्वालाविभीषणौ ।
 'दीप्तौषधिवनौ तत्र(?) शिखाविव बभूवतुः ॥ ६२५ ॥
 शरैः पूरितगात्रोऽथ वसुर्दीप्तैः सुमालिनः ।
 रथमुन्मथ्य विशिखैर्गदां चिक्षेप मूर्धनि ॥ ६२६ ॥
 गदानिपातदलिते हते वीरे सुमालिनि ।
 बध्यमानेषु रक्षःसु युयुधे रावणात्मजः ॥ ६२७ ॥
 इति सुमालिवधः ॥ २३ ॥
 मेघनादोऽथ समरे दयितं वज्रिणः सुतम् ।
 जित्वा जयन्तं समरे रक्षसा हर्षमादधौ ॥ ६२८ ॥
 ततो बभूव तुमुलं युद्धं पौलस्त्यशक्रयोः ।
 प्रापुः प्रेक्षकतां यस्मिन्विस्मिताः सासुराः सुराः ॥ ६२९ ॥
 कुम्भकर्णोऽपि देवानां शैलशस्त्रास्त्रवृष्टिभिः ।
 चकार कदनं घोरं कृतान्तमिव(?) देहिनाम् ॥ ६३० ॥
 ततः सर्वैः सुरैः सार्धं रक्षसां त्रिदशेश्वरः ।
 संहारं विदधे धीरस्तमसामिव भास्करः ॥ ६३१ ॥
 सुरसैन्यविशेषाय क्रुद्धो योजुं दशाननः ।
 तं वज्रपाणिः सावेगं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ६३२ ॥
 अस्तश्चक्रेण पौलस्त्य इति नादे समुत्थिते ।
 रथेन घनघोषेण मेघनादः समाययौ ॥ ६३३ ॥
 मायातिरोहितः शक्रं स समाच्छाद्य सायकैः ।
 उन्ममाथ रथे तस्य विजये च मनोरथम् ॥ ६३४ ॥

कुद्धमैरावणारूढं पुरस्तं रावणात्मजः ।
 बबन्ध विबुधानीकमध्ये विध्वस्तविक्रमम् ॥ ६३५ ॥
 प्रहृष्टस्तं समादाय रणे विद्रवितामरः ।
 पित्रा सह ययौ लङ्कामिन्द्रजिद्विपुलैर्वलैः ॥ ६३६ ॥
 जित्वा हत्वा रणे शक्रं गते शक्रजिति स्वयम् ।
 सह विश्वसृजा सर्वे लङ्काभेव ययुः सुराः ॥ ६३७ ॥
 ततः प्रजापतिगिरा मुमोचेन्द्रं जगज्जये ।
 बभूव चेन्द्रजिन्नाम्ना विश्रुतो रावणात्मजः ॥ ६३८ ॥
 वीरः पितामहवरादमरत्वमवाप च ।
 अन्यत्रावसमाप्ताग्निहोमस्य रणसंगमात् ॥ ६३९ ॥
 मुक्तस्तेनामरपतिर्भग्नमानोऽतिलज्जितः ।
 तस्थौ प्रजापतेरग्रे मूकश्चिरमधोमुखः ॥ ६४० ॥
 तमब्रवीत्कमलभूश्चिन्तां मिथ्यैव मा कृथाः ।
 शक्र स्वदुर्नयेनैव प्राप्तमेतत्फलं त्वया ॥ ६४१ ॥
 एकवर्णवयोरूपाः पुरा सृष्टा मया प्रजाः ।
 विशेषायैव तासां च निर्मिता ललना ततः ॥ ६४२ ॥
 उचित्योचित्य भूतानामङ्गेभ्यो रूपमुत्तमम् ।
 अहल्या नाम सा कान्ता कृता शशिमुखी मया ॥ ६४३ ॥
 स्पृहास्पदं सा लोकस्य तव चाभ्यधिकं सती ।
 न्यासीकृता स्वयं हस्ते गौतमस्य मुनेर्मया ॥ ६४४ ॥
 चिरादभ्रष्टशीलाया तस्मै सा प्रतिपादिता ।
 पत्नी बभूव प्रययुर्निराशाश्च दिवौकसः ॥ ६४५ ॥
 धर्षितायां त्वया त्वस्यां मुनिः कोपानलाकुलः ।
 त्वां शापादफलं चक्रे तेन मेघवृषो भवान् ॥ ६४६ ॥
 बन्धस्ते शत्रुणा चायं मुनेस्तस्यैव शासनात् ।
 अहल्या च शिलारूपा रामसंदर्शनावधिः ॥ ६४७ ॥

१. 'पुरस्थं' स्यात्. २. 'येन मेघवृषो' शा०.

सर्वसाधारणं रूपं ततः प्रभृति चाभजत् ।
 कदाचिद्गौतमे याते स्नातुं नद्यां यथाविधि ॥ ६४८ ॥
 विचित्रतच्चरित्रेभ्यो राज्यमाशङ्क्य नश्वरम् ।
 गृहीतमुनिरूपश्च तदाश्रममगाद्भुतम् ॥ ६४९ ॥
 त्वं प्राप्य गौतममुनेराश्रमद्वारमञ्जसा ।
 आहूतवान्मुनिवधूरर्गलं वार्यतामिति ॥ ६५० ॥
 अज्ञातकैतदा साथ भार्या साध्वी महामुनेः ।
 आश्रमस्था तमोराग्रात्स्वभर्तारमवैक्षत ॥ ६५१ ॥
 ततोऽहल्या निजं ज्ञात्वा भर्तारमसमञ्जसम् ।
 निरर्गलद्वारमादौ तदज्ञालाभसादरा ॥ ६५२ ॥
 त्वं प्रविश्यैव तां साध्वीं हतशीलमहानिधिम् ।
 अकार्षीः पापनिरतो भवदुःखमचिन्तयन् ॥ ६५३ ॥
 क्षणिकस्य कृते मूढाः सुखस्येव हि भुञ्जते ।
 नरकेष्वक्षयाः पीडाः कामबाणवशीकृताः ॥ ६५४ ॥
 ततः स गौतममुनिः स्नानं कृत्वा यथोचितम् ।
 आजगामोज्जुहाव स्वां पत्नीं यज्ञार्थकोविदाम् ॥ ६५५ ॥
 हे पत्नि वार्यतां क्षिप्रमर्गलं द्वारसंश्रयम् ।
 रममाणेति शुश्राव त्वया सह ससंभ्रमा ॥ ६५६ ॥
 त्वं ततः शापवित्रस्तः कृत्वा शीलनिधिव्ययम् ।
 प्रविष्टो दुर्लिमेतस्या भ्रामरं रूपमाश्रयन् ॥ ६५७ ॥
 ततस्तां निजभर्ता स गौतमस्तमसा वृतः ।
 अभाषत कथं पत्नि चकितेवाभिलक्ष्यसे ॥ ६५८ ॥
 नूनं शीलमहारत्नं हृतं केनाप्यसाधुना ।
 न चेदीदृग्विधोद्भूतदुःखावस्थासि किं प्रिये ॥ ६५९ ॥
 नूनं स निजसाम्राज्यविभ्रंशाशङ्किचेतनः ।
 शक्रो वराक एवं मे चकारामिविडम्बनात् ॥ ६६० ॥

भ्रामरं रूपमाश्रित्य प्रविष्टो भगमण्डलम् ।
 तत्सहस्रभगो भूयाः सर्वाङ्गेषु महाधम ॥ ६६१ ॥
 यदा गवाक्षां स्नात्वैव वितस्तासिन्धुसंगमे ।
 स्नास्यसि त्वं तदा शक्र सहस्रनयनो भव ॥ ६६२ ॥
 इत्थं परस्त्रीसङ्गेन प्राप्यते दुःखमव्ययम् ।
 यतस्ते मुनिशापेन बद्धः सोऽयं विलभ्यते ॥ ६६३ ॥
 पापः संभजते च त्वां परदारापहारिणम् ।
 वैष्णवं क्रतुमाराध्य धूतपापः शचीपते ॥ ६६४ ॥
 भुक्त्वा राज्यं चिरं कालं न भविष्यति रावणः ।
 इत्युक्त्वा त्रिदशाधीशः स्थितिं त्रातुं प्रजासृजा ।
 जगाम सहितो देवैश्चिन्तयन्नावणक्षयम् ॥ ६६५ ॥
 इत्याहल्यम् ॥ २४
 ततः कालेन महता रावणः सचिवैः सह ।
 ब्रजन्नवाप विपुलं द्वीपं पश्चिमवारिधेः ॥ ६६६ ॥
 ददर्श पुरुषं तत्र निर्धूमज्वलनप्रभम् ।
 हेमाचलमिव व्याप्तचण्डमार्तण्डतेजसा ॥ ६६७ ॥
 युद्धार्थी रावणस्तस्मै दीप्तशस्त्रपरंपराम् ।
 प्राहिणोन्न चकम्पे च पुरुषो दीप्तविग्रहः ॥ ६६८ ॥
 देवदेव तपोयज्ञदानलोकमयाकृतिः ।
 स विश्वात्मा बभौ तत्र सुरसिद्धनमस्कृतः ॥ ६६९ ॥
 मुष्टिना पीडितस्तेन हेलयैव दशाननः ।
 पपाताञ्जनशैलाभः कृत्तपक्ष इव क्षितौ ॥ ६७० ॥
 मूर्छिते पतिते तस्मिन्भगवान्कपिलः क्षेणम् ।
 विवेश पातालतलं विद्युत्पुञ्ज इवाम्बुधिम् ॥ ६७१ ॥
 लब्धसंज्ञो दशग्रीवः सचिवेभ्यो निशम्य तम् ।
 देवं प्रविष्टं पातालं प्रविवेशोग्रखड्गभृत् ॥ ६७२ ॥

१. 'विमलं' इति स्यात्. २. 'क्षणात्' शा०.

तत्राञ्जनसवर्णानां दिव्याभरणवाससाम् ।
 दृष्टास्तेन प्रवृत्तानां तिस्रः कोट्यः प्रभावताम् ॥ ६७३ ॥
 तुल्यवर्णबलाकारान्दृष्ट्वा तान्कपिलात्मजान् ।
 चभूव रावणः क्षिप्रं जातरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ६७४ ॥
 ततः स शेषनिर्मोककान्तिस्वच्छोत्तरच्छदे ।
 शयानं दिव्यशयने ददर्श पुरुषं परम् ॥ ६७५ ॥
 पीतांशुकोपमानेन तेजसा व्याप्तविग्रहम् ।
 नाभिपद्मरजःपुञ्जपटेनेवावगुण्ठितम् ॥ ६७६ ॥
 तस्याग्रे ललिताकारां कीर्तिसंतानकौमुदीम् ।
 ददर्श लक्ष्मीमक्षेण पीयूषकिरणाननाम् ॥ ६७७ ॥
 सुतारचामरकरां लीलाकमललाञ्छनाम् ।
 शशाङ्कपद्मयोर्लङ्गामिव वैरिनिवारणे ॥ ६७८ ॥
 नयनग्राहिणीं निद्रामिव दूराद्विलोक्य ताम् ।
 सस्माराकुलिताः क्षिप्रं पूर्णमानाश्चोऽवदत् ॥ ६७९ ॥
 आदातुकामस्तां मोहात्पतङ्गोऽग्निशिखामिव ।
 ससर्प सर्पकुटिलां गतिमाश्रित्य राक्षसः ॥ ६८० ॥
 तस्य व्यवसितं ज्ञात्वा समुत्सार्यांशुकं मुखात् ।
 उन्मील्य नयने विष्णुर्जहासोच्चैर्विलोक्य तम् ॥ ६८१ ॥
 ज्वलता तेजसा तस्य छिन्नमूल इव द्रुमः ।
 पपात राक्षसपतिर्मोहमूर्छितमानसः ॥ ६८२ ॥
 तमुवाच ततो देवः किञ्चिदागतजीवितम् ।
 उत्तिष्ठ राक्षस क्षिप्रं रक्ष्यस्त्वं ब्रह्मणो वरात् ।
 सदाचारपरिभ्रष्टो बध्योऽसि न चिरान्मम ॥ ६८३ ॥
 एतदाकर्ण्य शनकैर्लब्धसंज्ञो दशाननः ।
 सहसोद्गतरोमाञ्चस्तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ ६८४ ॥
 भगवन् यदि मे मृत्युस्त्वत्करे वेधसा धृतः ।

तदेकस्त्रिजगत्यस्मिन्धन्योऽहं यशसां निधिः ॥ ६८५ ॥

इत्युक्त्वा स ददर्शास्यं लीनं विश्वात्मनस्तनौ ।

ससुरासुरगन्धर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ६८६ ॥

गत्वा ततो दशग्रीवस्तान्प्राप्य सचिवान्निजान् ।

प्रययौ शनकैर्लङ्कामाश्चर्यं तद्विचिन्तयन् ॥ ६८७ ॥

इति महापुरुषदर्शनम् ॥ २५ ॥

इत्युक्तमग्रे रामस्य मुनिना कुम्भयोनिना ।

आकर्ष्य सर्वं स्मृत्वा च तथेत्यूचे विभीषणः ॥ ६८८ ॥

ततः समुद्यतं गन्तुमगस्त्यं राघवोऽब्रवीत् ।

भगवन्भवतः सर्वमस्माभिः श्रुतमद्भुतम् ॥ ६८९ ॥

प्राप्तप्रतापः पौलस्त्यः पुत्रश्चास्य किमुच्यते ।

अहं प्रभावमधिकं तेभ्यो मन्ये हनूमतः ॥ ६९० ॥

अचिन्त्यश्वासकृल्लोके कालः सर्गे प्रजापतिः ।

युद्धे च हनुमानेष चतुर्थो नोपलभ्यते ॥ ६९१ ॥

कस्य शक्तिरिवाश्रान्तमकराकरलङ्घने ।

देवादन्यत्र पवनात्तत्पुत्राद्वा हनूमतः ॥ ६९२ ॥

हतोऽनेन न यद्वाली सुग्रीवहितकारणात् ।

तद्विस्मृतप्रभावोऽयं मन्ये स्वप्न इवाभवत् ॥ ६९३ ॥

इत्युक्तं रघुनाथेन श्रुत्वा कुम्भोद्भवो मुनिः ।

उवाच सत्यमन्तस्थं यत्त्वयोक्तं हनूमति ॥ ६९४ ॥

अञ्जनायामयं जातः क्षेत्रे केसरिणोऽनिलात् ।

शिशुर्बालार्कमादातुमुत्पपात बलाशयात् ॥ ६९५ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु राहुः पर्वणि भास्करे ।

सहायातो ददर्शाग्ने कर्पि सूर्यग्रहोद्यतम् ॥ ६९६ ॥

तं दृष्ट्वा कुपितो राहुर्गत्वा शक्रं समास्थितम् ।

उवाच बत मिथ्यैव युष्माकं सत्यवादिता ॥ ६९७ ॥

शिरश्छित्त्वा कृतो यो मे ग्रासाभ्यासविनोदनम् ।
 कथमेतौ च चन्द्रार्कौ त्वयान्यत्र समन्वितौ ॥ ६९८ ॥
 सूर्यग्रहे मयाद्यैव पृष्टो राहुस्तदम्बरे ।
 येन स्फारशरीरेण प्रायः क्षिप्तो मुखे रविः ॥ ६९९ ॥
 इत्युक्तो राहुणा शक्रः स्थितिविप्लवशङ्कितः ।
 ययावैरावणारूढः कृत्वा राहुं पुरःसरम् ॥ ७०० ॥
 पुरंदरं समाश्रित्य निर्भयं सिंहिकासुतः ।
 विस्तार्य वदनं श्वभ्रं सहस्रांशुं समाद्रवत् ॥ ७०१ ॥
 तं विलोक्यैव हनुमानभ्यधावज्जिगीषया ।
 शक्र शक्रेति चुक्रोश राहुस्तं भयविद्रुतः ॥ ७०२ ॥
 न भेतव्यं त्वयेत्युक्त्वा वज्रिणा पवनात्मजः ।
 ऐरावणं समादातुं बलाद्बालः समाद्रवत् ॥ ७०३ ॥
 हनुं जघान वज्रेण तं कोपात्पाकशासनः ।
 येनाद्रौ पतितस्यास्य वामो हनुरभज्यत ॥ ७०४ ॥
 पुत्रप्रहारकुपितस्ततो देवः प्रभञ्जनः ।
 चकार सर्वथा तानि काष्ठभूतानि भूतकृत् ॥ ७०५ ॥
 इति हनुमज्जन्मवर्णनम् ॥ २६ ॥
 ततो जगत्क्षयभयाद्देवैरभ्यर्थितः स्वयम् ।
 गत्वा वायुप्रसादाय ब्रह्मा पुत्रमजीवयत् ॥ ७०६ ॥
 पितामहकरस्पृष्टं तनयं लब्धजीवितम् ।
 आसाद्य हृष्टः पवनः स्वस्थश्चक्रे जगत्क्षणात् ॥ ७०७ ॥
 ततः प्रजापतिगिरा वरान्पवनसूनवे ।
 प्रददुस्त्रिदशाः सर्वे येनायं प्रवरोऽभवत् ॥ ७०८ ॥
 हनुमानिति नामास्य कृत्वा वज्रविभेदिनीम् ।
 ददौ शतक्रतुर्विधां तेजोभावं च भास्करः ॥ ७०९ ॥
 अमरत्वं च वरुणः स्वदण्डादभयं यमः ।
 निष्कम्पतां गदाघाते स्वायुधेषु च वित्तपः ॥ ७१० ॥

शूलपाशुपतादिभ्योऽप्यभयं भगवान्भवः ।
 ब्रह्मास्त्रब्रह्मदण्डाद्यैरवध्यत्वं प्रजापतिः ॥ ७११ ॥
 सर्वायुधप्रतीघातं विश्वकर्मास्त्रशस्त्रकृत् ।
 इत्येष वरसंपूर्णः पितुर्गेहे व्यवर्धत ॥ ७१२ ॥
 ततस्तपोवनं गत्वा मुनीनां बालचापलात् ।
 कपिर्विकारमकरोद्धनदादेष निर्भयः ॥ ७१३ ॥
 वल्कलाजिनभाण्डेषु कृत्वा पूर्णस्वनेन ते ।
 मुनयो विस्मृतबलं चक्रुः क्रोधावशादिमम् ॥ ७१४ ॥
 कश्चित्कालं बभूवायं शापाद्विस्मृतविक्रमः ।
 तस्माद्बालिवधे बुद्धिर्नास्य स्वप्नेऽप्यजायत ॥ ७१५ ॥
 सूर्याद्विचाकरणं साङ्गमुदयादस्तपर्वतम् ।
 ब्रजन्नवासवानेष वासरेण महामतिः ॥ ७१६ ॥
 आश्चर्याणामयं भूमिः सत्त्वानामिव सागरः ।
 कोऽस्य शक्तो गुणान्वक्तुं यो न जिह्वासहस्रभृत् ॥ ७१७ ॥
 इत्युक्ते मुनयः सर्वे राममामन्त्र्य सानुगम् ।
 अगस्त्यप्रमुखा जग्मुः पुण्यं स्वं स्वं तपोवनम् ॥ ७१८ ॥
 इति ऋषिप्रयाणम् ॥ २७ ॥
 अथापरेऽहि काकुत्स्थः साभिषेकोत्सवागतान् ।
 रत्नैः संपूज्य भूपालान्विससर्ज निजा दिशः ॥ ७१९ ॥
 मैथिलो जनकः श्रीमान्युधिजित्केकयाधिपः ।
 प्रमर्दितः काशपतिर्भूपाश्चान्ये सहस्रशः ॥ ७२० ॥
 ब्रजन्तो राममामन्त्र्य चक्रिरे छत्रचामरैः ।
 सादृहासमिवाशेषे गजवाजिमयं जगत् ॥ ७२१ ॥
 आसाद्य पूजामतुलां पुनः प्लवगपुंगवाः ।
 सुग्रीवाङ्गदमुख्यास्ते किष्किन्धां प्रययुस्ततः ॥ ७२२ ॥

असयाप्तसुरास्वादसुहृन्नेममहोत्सवः ।
 जगाम रामसर्वस्वं हृष्टो लङ्कां विभीषणः ॥ ७२३ ॥
 ततः समुद्यतो गन्तुं हनूमान्प्रेमनिर्भरः ।
 उवाच राघवं वीरस्तृप्तिमप्राप्य दर्शनम् ॥ ७२४ ॥
 त्वत्कथामृतपाथेयः शिखरेषु महीभृताम् ।
 चिरं प्रीतिमवाप्स्यामि सुकृतस्मरणात्तव ॥ ७२५ ॥
 यशः श्रोष्यामि ते यावद्गीतमप्सरसां गणैः ।
 तावत्पुण्यमिदं श्लाघ्यं जीवितं मे भविष्यति ॥ ७२६ ॥
 इति ब्रुवाणं प्रणयात्काकुत्स्थः पवनात्मजम् ।
 परिष्वज्यादरादूचे वाष्पपूर्णयतेक्षणः ॥ ७२७ ॥
 महार्हंस्त्रिदशश्लाघ्यः स्थिरो लोके भविष्यति(?) ।
 (?) समस्तभवनोज्जीतमायुषो वयसश्च मे ॥ ७२८ ॥
 निष्कारणप्रणयिना यत्त्वयोपकृतं सखे ।
 कन्यका यौवनमिव स्वाङ्गे जीर्णं तदेव नः ॥ ७२९ ॥
 यशोधनस्य विख्यातगुणरत्ननिधेस्तव ।
 उपकारफलं तुल्यं न पश्यामि जगन्त्रये ॥ ७३० ॥
 इत्युक्त्वा सगुणोदारं स सदा हृदयस्थितम् ।
 सौहार्दमिव साकारं हारं कण्ठे न्यवेशयत् ॥ ७३१ ॥
 ततः प्रयाते काकुत्स्थः स्वपदं पवनात्मजे ।
 हरिराक्षससैन्येन चिरेण धृतिमाप्तवान् ॥ ७३२ ॥
 इति नृपकपिरक्षःप्रयाणम् ॥ २८ ॥
 ततः सीतामुखाम्भोजमधुपो रघुनन्दनः ।
 निनाय मदनोदग्रसंभोगसुभगाः क्षपाः ॥ ७३३ ॥
 ज्योत्स्नास्मिते हर्म्यतले कानने कुसुमस्मिते ।
 हारस्मिते तैनतटे लेभे स सुकृती रतिम् ॥ ७३४ ॥

१. 'पानेषु' शा०. २. 'स्तनतटे' स्यात्.

अत्रान्तरे व्योममार्गादवतीर्याशु पुष्पकम् ।
 विमानोऽप्यवदद्विव्यवपुषा रघुनन्दनम् ॥ ७३५ ॥
 विसृष्टोऽहं रघुपते राज्ञा वैश्रवणेन ते ।
 भुजोर्जितस्य क्रियतां मम भोगादनुग्रहः ॥ ७३६ ॥
 तमुवाचार्धकुसुमैः संपूज्य रघुनन्दनः ।
 खैरं हि विहरत्वेष समेध्यसि समं स्मृतः ॥ ७३७ ॥
 श्रुत्वैतत्पुष्पके पूर्वं प्रयाते स्वेच्छया दिवम् ।
 विवेशाशोकवनिकां राघवो जानकीसखः ॥ ७३८ ॥
 तत्र लावण्यनलिनीं तां फुल्लकमलाननाम् ।
 प्रीतिं रामश्चिरं लेभे नलिनीं च विलोकयन् ॥ ७३९ ॥
 स सीतार्चदनोपम्यप्रीत्या निक्षिप्य लोचने ।
 मुहुः शशिनि पद्मेव जगन्मेने प्रियामयम् ॥ ७४० ॥
 ससंभोगमुखाम्भोजसनाथीकृतमन्मथः ।
 विललास विलासाङ्गे शशाङ्कवदनासखः ॥ ७४१ ॥
 स कदाचित्प्रियतमामुवाच प्रेमनिर्भरः ।
 पिबन्निव दृशा तस्या वदनं मदनामृतम् ॥ ७४२ ॥
 आपाण्डुरमुखे सुभ्रु सचन्द्रेव विभावरी ।
 दृश्यसेऽभिनवारम्भगर्भाविर्भूतलक्षणा ॥ ७४३ ॥
 किमयं ते प्रियं देवि करोतु प्रणयी जनः ।
 न दुर्लभं जगत्यसित्यत्र ते रमते मतिः ॥ ७४४ ॥
 इति प्रियेण प्रणयात्पृष्टा जनकनन्दिनी ।
 तमुवाच सितमुखी सृजन्तीं चन्द्रिकां पुरः ॥ ७४५ ॥
 पुण्यानि मुनिसेव्यानि काननानि त्वया सह ।
 चिरं स्मृतानि मे द्रष्टुं क्षणमुत्कण्ठते मनः ॥ ७४६ ॥
 इति कान्तावचः श्रुत्वा तां तथेत्यभिधाय च ।
 अन्तःपुरचरो रामः कामं निर्वृतिमाप्तवान् ॥ ७४७ ॥

अथ कक्षान्तरं रामो गत्वान्तःपुरमन्दिरम् ।
 नानाकथाभिश्चित्राभिश्चिरं तस्थौ सुहृद्गतः ॥ ७४८ ॥
 विजयो मधुमान्भद्रः कश्यपः पिङ्गलः कुरुः ।
 सुराजको वैज्रदन्तो मागधश्च मनीषिणः ॥ ७४९ ॥
 नवैते नन्दसुहृदा रामस्य हृदयप्रियाः ।
 परिहासकथाशीलैस्तैः स गोष्ठीरतोऽभवत् ॥ ७५० ॥
 ततः कथान्ते पप्रच्छ भद्रं राजा यशःप्रियः ।
 पुरे जनपदे वास्मिन्प्रवादः कीदृशो मम ॥ ७५१ ॥
 किमाहुर्मे शुभं लोके किमाहुरशुभं जनाः ।
 ज्ञात्वा मनोभयं कुर्यान्निर्दोषं गुणसंग्रहम् ॥ ७५२ ॥
 गुणदोषं स्फुटं वाच्यं सुहृद्भिः सर्वथा जनः ।
 छन्नदोषं गुणं वक्ति यः स मित्रमुखो रिपुः ॥ ७५३ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथेन भद्रः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
 राजन्नानाविधो लोकः परनिन्दास्तुतिव्रतः ॥ ७५४ ॥
 शुभाशुभकथां कामं जनः सूर्योऽपि भाषते ।
 शक्तिर्दशाननवधे कथमत्यद्भुतं तव ॥ ७५५ ॥
 जनः सीतापहारे च शीलशङ्कासहिष्णुताम् ।
 अनाश्चर्यद्वयं लोके राघवस्यैव दृश्यते ॥ ७५६ ॥
 क्षमा कलत्रदोषे च सेतुबन्धश्च सागरे ।
 व्रयमप्यधुना सर्वे दारदोषान्सहामहे ॥ ७५७ ॥
 महाजनानुयायिन्यः प्रायेण सततं प्रजाः ।
 इति प्रवादो लोकस्य मिथ्यादोषैर्दर्शिनः ।
 मिथः कथासु रथ्यासु गृहेषूपवनेषु च ॥ ७५८ ॥
 इत्येतदशनिस्पर्शं वचो निपतितं हृदि ।
 आकर्ण्य राघवो दुःखाच्चक्रारूढ इवाभवत् ॥ ७५९ ॥

१. 'सुहृद्गतः' शा०. २. 'विजयो मधुमन्तश्च कश्यपो मङ्गलः कुलः । सुराजिः
 कालियो भद्रो दन्तवक्त्रः सुमागधः ॥' इत्येवं शा० रामायणे. ३. 'राजदन्तो' शा०

स तान्विसृज्य सुहृदश्चिन्तासंतप्तमानसः ।
 द्वाःस्यं विसृज्यानुमतानानिनाय निजानुजान् ॥ ७६० ॥
 इति जनापवादः ॥ २९ ॥
 ततो भरतसौमित्रिशत्रुघ्नास्तूर्णमागताः ।
 प्रविश्य रामं ददृशुः प्रणामनतशेखराः ॥ ७६१ ॥
 तं बाष्पपूर्णनयनं शोकम्लानमुखाम्बुजम् ।
 ते दृष्ट्वा संभ्रमोद्भ्रान्ता बभूवुः कम्पिताशयाः ॥ ७६२ ॥
 सहसा हारिते हर्षं वीक्ष्यमान इवावनौ ।
 उपविश्य बभ्रुवुस्ते चिन्ताशान्तमुखत्विषः ॥ ७६३ ॥
 चिरं ध्यात्वाप्यपश्यन्तस्ते आतुः शोककारणम् ।
 किं वक्ष्यतीति निष्पन्दं पप्रच्छुः स्वमिवाशयम् ॥ ७६४ ॥
 तानुवाच ततो रामः शोकसंतप्तमानसः ।
 अयं मे हृदये सक्तः शोकशङ्कुरिवापरः ॥ ७६५ ॥
 दारापवादसंजातो यत्काकुत्स्थकुलेन वा ।
 धर्मो जानाति वैदेहीमन्तरात्मा ममैव या ॥ ७६६ ॥
 शीलं न वेत्ति कस्तस्यालोको निर्दोषनिन्दकः ।
 अस्मिन्सीतापवादाग्रौ पतितस्य ममाधुना ॥ ७६७ ॥
 न जाने तापशमनी विद्यते का प्रतिक्रिया ।
 श्रूयते पुरुषस्येह यावत्कीर्तिरविष्टुता ॥ ७६८ ॥
 तावत्स जीवति परः श्वासैरायास्यते जनः ।
 अकीर्तिमलिनः पुंसः पुत्रपौत्रास्त्रपातिर्ना ॥ ७६९ ॥
 नरकाग्रेः स्थितस्याग्रे धूमलेखेव जायते ।
 धिक्त्वं आम्रयति यस्योग्रपापपङ्ककलङ्किता ॥ ७७० ॥
 उन्मत्तेव जगत्यस्मिन्नपवादपिशाचिका ।
 अपि प्राणाधिका सीता त्यज्यते तृणवन्मया ॥ ७७१ ॥
 न तु कीर्तिं सहे लोके शतांशेनापि खण्डिताम् ।
 दुःखं वो यदि मद्दुःखे भक्तिर्यदि परा मयि ॥ ७७२ ॥

तद्भवद्विर्वचः कार्यं देयं प्रतिवचो न मे ।
 ईप्सितं प्रतिषेधाय ब्रूयाद्योऽनुनयं मम ॥ ७७३ ॥
 शापितः स मयैवाग्रे भुजाभ्यां जीवितेन च ।
 सुमन्नाधिष्ठितं प्रातः सौमित्रे यात्रिकं रथम् ॥ ७७४ ॥
 सीतामारोप्य गङ्गायाः पारे पारे परित्यज ।
 जानकीं विजनेऽरण्ये वाल्मीकेराश्रमे मुनेः ॥ ७७५ ॥
 उत्सृज्य तूर्णमागच्छ यदलङ्घ्यं वचो मम ।
 अभिप्रायश्च वैदेह्यास्तपोवनविलोकने ॥ ७७६ ॥
 तस्मात्तवाप्रियाख्यानवैक्लव्यं न भविष्यति ।
 इत्युक्त्वा राघवो रात्रिं निनायाद्दशतोपमाम् ॥ ७७७ ॥
 न बाला न प्रकुपितः कुञ्जरेन्द्र इव श्वसन् ।
 प्राप्तः सुमन्त्रसंयुक्तं रथमादाय लक्ष्मणः ॥ ७७८ ॥
 उवाच सीतामभ्येत्य गूढशोकानलाकुलः ।
 अनुजानाति देवस्त्वां तपोवनविलोकने ॥ ७७९ ॥
 आदेश इव शीघ्रस्ते पत्युः सज्जीकृतो रथः ।
 एतदाकर्ण्य वैदेही हर्षनिर्भरमानसा ॥ ७८० ॥
 जग्राहाभरणं भूरि प्रदातुं मुनियोषिताम् ।
 ततः समारुह्य रथं व्रजन्ती जनकात्मजा ॥ ७८१ ॥
 अभ्यधादनिमित्तेन व्याप्ता शोकेन लक्ष्मणम् ।
 अकस्माद्वेचते चित्तं वामं स्फुरति लोचनम् ॥ ७८२ ॥
 औत्सुक्यं चाधिकं जातं पतिसंदर्शने मम ।
 शून्यां पश्यामि पृथिवीमरतिर्बाधते परम् ॥ ७८३ ॥
 सानुजस्य क्षितिपतेः स्वयं शंसन्ति देवताः ।
 इत्युक्त्वा लक्ष्मणं सीता रजनीं गोमतीतटे ॥ ७८४ ॥
 अतिवाह्य पुनः प्रातः प्रतस्थे रथमाश्रितः (?) ।
 ततो गङ्गां समुत्तीर्य नावा कल्लोलमालिनीम् ॥ ७८५ ॥

परं पारं जनकजामवासां लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
 अहो ममातिकठिनं जीवितं वज्रनिर्मितम् ॥ ७८६ ॥
 धन्यास्ते निधनं येषां स्वाधीनं शोकविह्वले ।
 दृष्टनष्टाः प्रियजनाः सुखिनः स्वल्पजीवितैः ॥ ७८७ ॥
 न पश्यन्ति वियोगोऽग्रे यो दुर्विलसितं विधेः (?) ।
 अप्युक्तमात्रं प्राणेषु निपतत्येव यद्विषम् ॥ ७८८ ॥
 नृशंसकूरचरितं तदहं कर्तुमुद्यमः ।
 इति ब्रुवाणं शोकाग्निसंतप्तं साश्रुलोचनम् ॥ ७८९ ॥
 पप्रच्छ भ्रातृशापेन तं सीताशोककारणम् ।
 अहो सुखपरिम्लानवदनो दैन्यधूसरः ॥ ७९० ॥
 सोऽवदत्कृच्छ्रपतितः सीतामुत्कम्पिताशयाम् ।
 धिक्कां वचोविषं यस्य सर्पस्येव मुखाच्च्युतम् ॥ ७९१ ॥
 घोरां करोति ते मातर्दुःसहं हृदयव्यथाम् ।
 मिथ्यार्पवादः संजातः पुरे जनपदे तव ॥ ७९२ ॥
 मातश्छिन्दन्ति मर्माणि हृदये राघवस्य यः ।
 गुणदोषविपर्यासविलासरसिकः सदा ॥ ७९३ ॥
 स्वच्छन्दवादी लोकोऽयं केन प्रत्याप्यते गिरा ।
 परापवादे सततं स्वव्यापारपराद्भुखः ॥ ७९४ ॥
 यथा जनोऽयं वदते न तथा गुणकीर्तने ।
 तपोवनेऽस्मिन्वाल्मीकेर्मुनेर्मित्रस्य नः पितुः ॥ ७९५ ॥
 जनापवादभीतेन त्यक्तासि जगतीभुजा ।
 तदपूर्वतरं श्रुत्वाप्यप्रविष्टो वशानये (?) ॥ ७९६ ॥
 किमेतदिति निस्पन्दा विचिन्त्योवाच जानकी ।
 अहो नु मम रामेण किं कृतं दुष्कृतं पुरा ॥ ७९७ ॥
 निर्दोषैर्यदुणोदारैर्धर्मदारैर्वियुज्यते ।
 तदाज्ञां कुरु सौमित्रे त्यज मां दुःखभागिनीम् ॥ ७९८ ॥

जीवितत्यागशापेन कथं वा योजयामि तम् ।
 आर्यपुत्र क नु स्मेरकान्तं कमललोचनम् ॥ ७९९ ॥
 जनापवादभीरोस्ते द्रक्ष्यामि वदनं पुनः ।
 हा नाथ त्वद्विहीनाहं कथं नु विजने वने ॥ ८०० ॥
 करोमि करुणासिन्धो दारुणप्राणधारणम् ।
 वपुर्मे भक्षतां सिंहय्यातुधानाविदं वने ।
 जनापवादशोकामिभाजनं न जनेश्वरः ॥ ८०१ ॥
 इति प्रलापिनीं सीतां बाष्पपूरप्लुतस्तनीम् ।
 न शशाक परं वक्तुं सौमित्रिः शोकविक्लवः ॥ ८०२ ॥
 स तां प्रणम्य प्रययौ दुःखभारस्खलद्गतिः ।
 परित्यज्य वने शून्ये सीतां धृतिमिवात्मनः ॥ ८०३ ॥
 शरीरशोषणं तीव्रं न कुर्युर्मुनयस्तपः ।
 पर्यन्तविरसं सर्वं न स्यात्संसारिणां यदि ॥ ८०४ ॥
 स मुहुर्वलितग्रीवः सीतामेकां विलोकयत् ।
 निनिन्दे पातकस्पष्टमिवात्मानं विनिश्चसन् ॥ ८०५ ॥
 दृक्पथादपयातेऽथ लक्ष्मणे जनकात्मजा ।
 हा राघवेति चुक्रोश मूर्छिता निपपात यत् ॥ ८०६ ॥
 चिरेण संज्ञामासाद्य सा चकार प्रलापिनी ।
 निष्पन्दभोनमकरां सचिन्तामिव जाह्नवीम् ॥ ८०७ ॥
 शोचन्तीं भुवि विभ्रष्टविद्यां विद्याधरीमिव ।
 तां दृष्ट्वा साञ्जुनयनास्तापसा विस्रयं ययुः ॥ ८०८ ॥
 तामभ्येत्य कृपासिन्धुर्मुनिशिष्यैर्निसेवितः ।
 सुतामिव समाश्वास्य शनैर्वाल्मीकिरभ्यधात् ॥ ८०९ ॥
 पुत्रि जानामि निर्दोषा त्यक्ता त्वं रघुभूभुजा ।
 तापस्यः पालयन्ति त्वां स्वाधीनोऽयं तवाश्रमः ॥ ८१० ॥

१. 'यातुकव्याधाना' शा०. २. 'विरक्तपातवः' क-ख. ३. 'दिङ्मुखा' क-ख

करुणार्द्रमनाः सीतामित्युक्त्वा भगवान्मुनिः ।

न्यवेशयत्तापसीभिः सान्त्वयमाना तपोवने ॥ ८११ ॥

इति सीतापरित्यागः ॥ ३० ॥

ब्रजत्रयेन सौमित्रिः शोकसंतप्तमानसः ।

सुमन्तं नेत्रजं वारि वर्षन्मेघ इवाभ्यधात् ॥ ८१२ ॥

दृष्ट्वा प्रवासदुःखस्य महतो धैर्यवारिधेः ।

आर्यस्य शोकनैराश्यार्द्रजयोर्योऽयं भविष्यति ॥ ८१३ ॥

घिष्णां निष्करुणं पापमार्यदुःखैकसाक्षिणम् ।

त्यक्ता सीता गिरा येन मया श्वभ्रादिवोज्झिता ॥ ८१४ ॥

प्रियसंगमनैराश्यादुःसहव्यसनाकुलम् ।

खहस्तेनैव हत्वा तां प्रविश्यामि (?) कथं पुरीम् ॥ ८१५ ॥

अपुनःसंगमत्यागपरिभाषणनिष्ठुरः ।

सीतां कापालिको द्रष्टुं लक्ष्मणो नापरः क्षमः ॥ ८१६ ॥

नृशंसो मत्समः कोऽस्ति येन सीता विलोकिता ।

सहसा निष्प्रतीकारत्यागसंभ्रमकातरा ॥ ८१७ ॥

इति शोचन्तमसकृद्वादानुशयमूर्छितम् ।

उवाच लक्ष्मणं धीमान्सुमन्त्रो मन्त्रिणां वरः ॥ ८१८ ॥

देवस्य गतयश्चित्राः कालः सर्वकशस्तदा ।

एवंविधैव भावानां पर्यन्ते विशरारुता ॥ ८१९ ॥

भवितव्यमिदं सर्वं त्वत्पितुः पुरतो मया ।

उक्तं दुर्वाससा साक्षाद्वसिष्ठस्याश्रमे श्रुतम् ॥ ८२० ॥

इति सौमित्रिमाश्वास्य सुमन्त्रः कौशिकीवटे ।

निनाय नयतत्त्वज्ञस्तेनैव सहितः क्षपाम् ॥ ८२१ ॥

अथान्यस्मिन्दिनस्यान्ते प्रविश्य विमनाः पुरीम् ।

विषार्तं इव सौमित्रिर्भर्तुर्मन्दिरमाविशत् ॥ ८२२ ॥

स ददर्श प्रियाहीनं राघवं साश्रुलोचनम् ।
 नीहारपटलस्पृष्टं भाविहीनमिवोड्डपम् ॥ ८२३ ॥
 मुहुर्निरीक्षमाणं क्षमां सीताचारित्रसाक्षिणीम् ।
 मिथ्यापवादसंतप्तं तं प्रविश्यानुजोऽवदत् ॥ ८२४ ॥
 देव सीता परित्यक्ता कानने तव शासनात् ।
 मा शुचः सर्पकुटिलाः कालस्य गतयः किल ॥ ८२५ ॥
 [भावाभवो(?)ऽस्मिन्भूतानामभावश्चभ्रवर्तिनाम् ।
 अन्तवन्तः स्वभावेन प्रभावविभवादयः ॥ ८२६ ॥
 देहिनां सुखसंभोगैर्विभवं(?) वसु जीवितम् ।
 कालः पिवति किञ्जल्कं पुष्पाणामिव षट्पदः ॥ ८२७ ॥
 असारसारे संसारे वैरस्योपरता मतिः ।
 सुखं दुःखे समुत्खातं विपरीताश्च संपदः ॥ ८२८ ॥
 कालपाकपरिज्ञानं सुखं शुष्यति देहिनाम् ।
 जराघ्रातं हि पुष्पस्य न पुनर्जायते मधु ॥ ८२९ ॥
 भोगा वियोगरोगेण जरया चारु यौवनम् ।
 आक्रान्तमन्ते सर्वस्य निधनेन च जीवितम् ॥ ८३० ॥
 परावरजो भावानामार्थं संसारतत्त्ववित् ।
 विवेकालोकविकलं न शोकं कर्तुमर्हसि ॥ ८३१ ॥
 मोहः करोति न पदं हृदये विजितात्मनाम् ।
 नहि रत्नप्रदीपानां प्रविशत्यन्तरं तमः ॥ ८३२ ॥
 एतदेव परं लक्ष्म निधानानां महात्मनाम् ।
 यत्कृच्छ्रेषु न सीदन्ति न नृत्यन्ति सुखेषु च ॥ ८३३ ॥
 विद्यानां दर्पणं चेतः सत्यस्य वसतिर्मतिः ।
 धृतेर्वैश्व विवेकश्च येषां मुह्यन्ति ते कथम् ॥ ८३४ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते निशम्य रघुनन्दनः ।
 तमुवाच शुचं त्यक्त्वा सदाचारविचारधीः ॥ ८३५ ॥

१. कोष्टक्रान्तर्गतश्लोकानां स्थानं रिक्तमेव दृश्यते क-ख-पुस्तकयोः.

एवमेतत्समुचितं यथा वदसि लक्ष्मण ।
 कालप्रवाहो बलवान्मार्गनाशाय गच्छति ॥ ८३६ ॥
 इदं दहति मे चेतः स्थितित्वात्तन्नृपस्य यत् ।
 चत्वारो वासरा याताः प्रजाकार्याण्यशृण्वतः ॥ ८३७ ॥
 अयमेव नरेन्द्राणां हेतुर्नरकसंचये ।
 लम्बन्ते दुष्प्रवेशे यद्वारे कार्यार्थिनो जनाः ॥ ८३८ ॥
 श्रूयते किल विप्रेभ्यो नृगो नामा महीपतिः ।
 गवां कोटीः सहस्राणि पुष्करेषु ददौ पुरा ॥ ८३९ ॥
 ब्राह्मणस्याग्निवेशस्य होमधेनुः पयस्विनी ।
 सङ्क्षमध्यगता तेन विप्राय प्रतिपादिता ॥ ८४० ॥
 तामन्वेष्टुं स सुचिरं वनेषु नगरेषु च ।
 द्विजश्चचार न च तां प्रियां विद्यामिवाप्तवान् ॥ ८४१ ॥
 ततः काले कनखले विवत्सां जीर्णविग्रहाम् ।
 स तां ददर्श दयितां धेनुं ब्राह्मणवेश्मनि ॥ ८४२ ॥
 एहेहि बहले दूरादित्याहूता द्विजेन सा ।
 ग्रीत्या हुंकारिणी सास्ता तमेवानुययौ जवात् ॥ ८४३ ॥
 प्रतिग्रहासां तां दृष्ट्वा ह्रियमाणां द्विजेन गाम् ।
 ब्राह्मणेभ्यः.....द्विवादोऽभूत्तयोस्ततः ॥ ८४४ ॥
 नृगेण मद्यं दत्तेयं जातेयं स्वगृहे मम ।
 इति प्रवादमुखरौ जग्मतुस्तौ नृगालयम् ॥ ८४५ ॥
 सुचिरं स्थितयोस्तत्र विवादे निर्णयार्थिनोः ।
 गम्भीरे राजसदने प्रवेशो नाभवत्तयोः ॥ ८४६ ॥
 बहुभिर्दिवसैः कृच्छ्रात्क्षुत्क्षामौ प्रापितं नृपम् ।
 ऊचतुर्मन्युसंताप]मुद्गिरन्ताविवाक्षरैः ॥ ८४७ ॥

१. 'विवदन्तौ ततोऽन्योन्यं दातारमभिजग्मतुः । तौ राजभवनद्वारि न प्राप्तौ नृग-
 शासनम् । अहोरात्राण्यनेकानि वसन्तौ क्रोधमीयतुः ॥' इति रामायणानुसारेण 'नापतां'
 इति पाठः स्यात्.

कार्यार्थिनां प्रजानां राजन्यस्मान्न दृश्यसे ।
 तस्माददृश्यः श्वभ्रेऽस्मिन्कृकलासो भविष्यसि ॥ ८४८ ॥
 अष्टादश युगे काले प्रयाते यदुनन्दनः ।
 वसुदेवात्मजो विष्णुः शापात्त्वां मोक्षयिष्यति ॥ ८४९ ॥
 वसिष्ठवंशे भगवान्कुरुवंशप्रवर्तकः ।
 व्यासः कलियुगे धर्म्यं तदा काव्यं करिष्यति ॥ ८५० ॥
 इत्युक्त्वा तौ द्विजौ धेनुं दत्त्वान्यस्मै द्विजाय ताम् ।
 जग्मतुः शापदष्टश्च पश्चात्तापं ययौ नृगः ॥ ८५१ ॥
 सोऽभिषिच्य वसुं पुत्रं श्वभ्रेदेशं सुखोचितम् ।
 जालवल्लीद्रुमैः कृत्वा जगाम कृकलासताम् ॥ ८५२ ॥
 इति नृगशापः ॥ ३१ ॥
 तस्मात्तूर्णं नृपैः कार्यं कार्यार्थिजनदर्शनम् ।
 महाजनो दहत्येव यदि द्वारि विलम्बते ॥ ८५३ ॥
 इक्ष्वाकूणामभूद्वीरो निमिर्नाम महीपतिः ।
 यः स्वयं स्वर्गसदृशं वैजयन्तं व्यधात्पुरम् ॥ ८५४ ॥
 वसिष्ठस्तेन यज्ञार्थं कृतः कुलगुरुर्मुनिः ।
 तमुवाचास्मि शक्रेण क्रतौ पूर्वतरं वृतः ॥ ८५५ ॥
 मुनिं गौतममभ्यर्च्य स राजा याजकं ततः ।
 चकार हिमवत्पार्श्वे यज्ञं तीरे महोदधेः ॥ ८५६ ॥
 पञ्च वर्षसहस्राणि दीक्षितस्याभवन्मखे ।
 त्रिदशेन्द्रस्य दीक्षा तु पञ्चवर्षशतान्यभूत् ॥ ८५७ ॥
 ततः समाप्ते विधिवत्पूर्वं यज्ञे शतक्रतोः ।
 यज्ञभूमिं निमेः प्रायाद्वसिष्ठो होत्रकर्मणि ॥ ८५८ ॥
 स राजा दर्शनाकाङ्क्षी तत्र यावत्प्रतीक्षते ।
 प्रौढनिद्रान्वितस्तावद्भूपतिर्न व्यबुध्यत ॥ ८५९ ॥

१. 'राजदर्शना' स्यात्.

तं वसिष्ठः शशापाथ चिरं यस्मान्न दृश्यसे ।
 तस्माददृश्यो नृपते देहहीनो भविष्यसि ॥ ८६० ॥
 ततः प्रबुद्धस्तच्छापं श्रुत्वोवाच महीपतिः ।
 सुप्तः शप्तोऽस्मि भवता त्वमप्येवं भविष्यसि ॥ ८६१ ॥
 शापाद्वसिष्ठभूपालौ मिथः प्राप्तौ विदेहताम् ।
 अदृश्यौ वासनात्मानौ वायुभूतौ विचेरतुः ॥ ८६२ ॥
 इति वसिष्ठनिमिशापः ॥ ३२

याचितोऽथ वसिष्ठेन देहार्थं कमलोद्भवः ।
 तमूचे गच्छ तेजस्त्वं मैत्रावरुणमाविश ॥ ८६३ ॥
 अत्रान्तरे सुधासिन्धुर्मित्रो वरुणसंगतः ।
 पुरो ददृशतुः कान्तामुर्वशीं स्वेच्छयागताम् ॥ ८६४ ॥
 प्रीता तुल्यं वृता ताभ्यां सा बभापे सुमध्यमा ।
 मित्रेण पूर्वमेवाहं वृता नान्यं भजे प्रियम् ॥ ८६५ ॥
 इति ब्रुवाणां वरुणस्तामुवाच सुलोचनाम् ।
 तेजःकुम्भे क्षिपाम्यद्य मयि त्वं भावमुत्सृज ॥ ८६६ ॥
 अस्तु ते सह मित्रेण प्रीतये रतिसंगमः ।
 इत्युक्त्वा स निजं तेजः प्रज्वलज्ज्वलनोपमम् ॥ ८६७ ॥
 कुम्भे निक्षिप्य भावं च तस्मिन्व्यसृजदुर्वशी ।
 ततस्तमागतं मित्रः प्रकोपाकुलितोऽभ्यधात् ॥ ८६८ ॥
 भावमन्यत्र निक्षिप्य किं मां प्राप्तासि पुंश्चलि ।
 मनुष्यलोकं चपले किञ्चित्कालमुपागता ।
 त्वं पुरुरवसो राज्ञः कामं श्रेयसा भविष्यसि ॥ ८६९ ॥
 इत्युर्वशीशापः ॥ ३३ ॥

ततः कुम्भवृतात्तस्मात्तेजस्वी तेजसो मुनिः ।
 त्रैलोक्यपूज्यो भगवानगस्त्यः प्रागजायत ॥ ८७० ॥

उर्वशीशापसंक्रान्तमैत्रधाम्ना तु तेजसः ।
 वारुणादथ संस्पृष्टोऽप्यपरो मुनिरुद्धतः ॥ ८७१ ॥
 वसिष्ठस्तेजसां राशिः स मैत्रावरुणो मुनिः ।
 गुरुर्बभूव भगवानिक्ष्वाकूणां परायणम् ॥ ८७२ ॥
 मुनयोऽपि निमेर्यज्ञे शरीरं मन्त्रसंस्कृतम् ।
 रक्षन्तः कर्मणः पारं प्रययुर्देवतैः सह ॥ ८७३ ॥
 ततः सुराणां वचसा लोचनेषु शरीरिणाम् ।
 निमेषवासी सततं बभूव नृपतिर्निमिः ॥ ८७४ ॥
 मुनिभिस्तस्य पुत्रार्थं यज्ञान्ते मथितारणिः ।
 अजीजनन्मिथिं नाम [जननाज्जननी नृपम् ॥ ८७५ ॥
 मिथिना मिथिला नाम] विदेहेषु कृता पुरी ।
 निमिर्यत्र विदेहोऽभूद्विदेहास्ते जनाः स्मृताः ॥ ८७६ ॥
 इति मैथिलसंभवः ॥ ३४

एतदाकर्ण्य रामेण कथितो राघवानुजः ।
 निर्निद्रामखिलां रात्रिं तमपृच्छत्पुनः पुनः ॥ ८७७ ॥
 दीक्षितो गुणवान्वीरो राजा शक्राधिकोऽपि सः ।
 क्षमां निर्मिर्वसिष्ठस्य तस्मान्न कृतवान्वशी ॥ ८७८ ॥
 कोपना कातराः क्षुद्रा भवन्ति विभवे खलाः ।
 क्षमयैव विभाव्यन्ते कुलीनाः प्रभदिष्णवः ॥ ८७९ ॥
 इति सौमित्रिणा पृष्टः काकुत्स्थः पुनरब्रवीत् ।
 कोपः समुद्गतो घोरः कस्यार्चैरमपेक्षते ॥ ८८० ॥
 न क्षमां क्षमते कोपः साधुतामिव दुर्जनः ।
 चण्डालेनेव येनात्मा स्पृष्टो यात्यपवित्रताम् ॥ ८८१ ॥

१. कोष्ठकान्तर्गतपाठः शारदालिपिपुस्तके नोपलभ्यते. २. 'जननाज्जनकोऽभवत्—'
 इति रामायणानुसारेण 'जननाज्जनकं' इति पाठो भवेत्. ३. 'अभाव्येत' क ख. ४. 'चारं
 प्रतीक्षते' शा०.

पुरा ययातिना राज्ञा शप्तेनोशनसा रुषा ।
 शक्तेनापि प्रतीकारे शान्तमेव जितात्मना ॥ ८८२ ॥
 नहुषस्याभवत्पुत्रो ययातिः पृथिवीपतिः ।
 शुक्रात्मजा देवयानी तस्याभूत्प्रथमा वधूः ॥ ८८३ ॥
 सुता च दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः ।
 देवयानी यदुं पुत्रं शर्मिष्ठा पूर्वमात्मजम् ॥ ८८४ ॥
 सुषुवाते नरपतेस्तयोः पूरुभूत्प्रियः ।
 ततो यदुर्देवयानीं जननीं शिशुरब्रवीत् ॥ ८८५ ॥
 द्वेष्ट्यां त्वं भूपते मातरहं च त्वदगौरवात् ।
 धन्योऽयं मातृसौभाग्यात्पूरुर्भूषतिवल्लभः ॥ ८८६ ॥
 इति पुत्रवचः श्रुत्वा देवयानी भृशं शुचा ।
 किरन्ती बाष्पसलिलं सस्मार पितरं सती ॥ ८८७ ॥
 स्मृतमात्रस्तया शुक्रः संप्राप्तो ज्ञानलोचनः ।
 शुश्राव पुत्र्या कथितं भर्तृद्वेषोद्धवं शुचम् ॥ ८८८ ॥
 स सुतावत्सलस्तत्र शशाप नृपतिं रुषा ।
 येनासौ यौवनं त्यक्त्वा जराजीर्णोऽभवत्क्षणात् ॥ ८८९ ॥
 अतृप्तः कामिनीभोगे दुःखितोऽथ महीपतिः ।
 अयाचत यदुं पुत्रं तारुण्यं जरयादितः ॥ ८९० ॥
 तमब्रवीद्यदुः पूरुं याचस्व दयितं सुतम् ।
 भोगभागी हि सहते स्नेहेन क्लेशयातनाम् ॥ ८९१ ॥
 इत्युक्ते यदुना राजा तं शशाप रुषा ज्वलन् ।
 अराज्यभागिनो जाता वंशे येनास्य यादवाः ॥ ८९२ ॥
 ततः पूरुर्ददौ पित्रे जरामादाय यौवनम् ।
 विजहार नृपो येन कंचित्कालं प्रियासखः ॥ ८९३ ॥
 कालेन तस्मै नृपतिर्निजपुत्राय यौवनम् ।
 राज्यं च दत्त्वा सुकृती तपसा प्रययौ दिवम् ॥ ८९४ ॥

एवं शुकेण शप्तेऽसौ प्रतिशापं महीपतिः ।
 शक्तोऽपि न ददौ तस्मै प्रादात्कुद्धो यथा निमिः ॥ ८९५ ॥
 इति ययातिशापः ॥ ३५ ॥
 रामस्येवं कथयतस्तारकास्तुकणाकुला ।
 सा चैत्ररात्रिरमला सतीवेन्दुमुखी ययौ ॥ ८९६ ॥
 ततो रघुपतिः प्रातः कृतकृत्यः सहानुजैः ।
 मुनिर्मन्त्रिनृपाकीर्णां प्रविवेश विभुः सभाम् ॥ ८९७ ॥
 तं राजभास्करं सर्वे सभासीनं ववन्दिरे ।
 यस्योदयेषु निर्दोषा भवन्ति सकला दिशः ॥ ८९८ ॥
 ततो नृपाज्ञया तत्र द्वारि कार्यार्थिनं जनम् ।
 विचिन्त्य लक्ष्मणः क्षिप्रं प्रविश्योवाच राघवम् ॥ ८९९ ॥
 न कश्चिद्दृश्यते देव कार्यार्थी याचकोऽपि वा ।
 त्वयि राजनि नास्त्येव विप्लवो दैवमानुषः ॥ ९०० ॥
 स राजा राजते राज्ये प्रजानां धर्मपालनात् ।
 नो चरन्ति पुरे यस्य दीनाः कार्यार्थिनश्चिरम् ॥ ९०१ ॥
 त्वयि शासति निःशेषां पृथिवीं पृथिवीपतौ ।
 उपतापोऽस्ति लोकस्य न शारीरो न मानुषः ॥ ९०२ ॥
 इति ब्रुवाणः सौमित्रिः पुनः कार्यार्थदर्शने ।
 नियुक्तः सादरं राज्ञा दृष्ट्वाभ्येत्यावदपुनः ॥ ९०३ ॥
 द्वारि देवः स्थितो दीनः प्रहाराभिन्नमस्तकः ।
 एकः श्वा वक्तुकामश्च सभादर्शनमिच्छति ॥ ९०४ ॥
 इत्युक्ते शासनात्तूर्णं भूपतिः श्वा प्रविश्य सः ।
 उवाच कौतुकालोललोके सदसि निर्भयः ॥ ९०५ ॥
 भूतानां भूपतेरन्यत्परित्राणं न विद्यते ।
 भुजेन धर्मस्तम्भेन भूतधार्त्री बिभर्ति यः ॥ ९०६ ॥

यशःशशाङ्कशुभ्रस्य प्रतापानलतेजसः ।
 धर्मोऽस्मिन्दृश्यते लोके प्रभावाद्भूतभासुरः ॥ ९०७ ॥
 इयं ते सर्वसामान्या भूतेष्वभयदा स्थितिः ।
 सभायामुत्सहे वक्तुं प्रगल्भः श्वापि नाम यत् ॥ ९०८ ॥
 भिक्षुः सर्वार्थसिद्धाख्यो ब्राह्मणावसथे स्थितः ।
 तेन दण्डप्रहारेण कृतोऽहं भिन्नमस्तकः ॥ ९०९ ॥
 इत्युक्ते सारमेयेन द्वाःस्थेनाहूय तं द्विजम् ।
 अनागसि प्रहारस्य हेतुं पप्रच्छ राघवः ॥ ९१० ॥
 अदोषः किमयं ब्रह्मन्दण्डेन श्वा हतस्त्वया ।
 दयावान्सर्वभूतेषु ब्राह्मणो मैत्र उच्यते ॥ ९११ ॥
 वाग्विषो भुजगोत्तीर्णः सर्वच्छेदी परश्वधः ।
 भ्रूमङ्गभीमो दहनः क्रोधो मृत्युः शरीरिणः ॥ ९१२ ॥
 यज्ञो जपस्तपो दानं सत्यं च सुकृतं कृतम् ।
 क्रोधेनाशुचिना स्पृष्टं सर्वं यात्यपवित्रताम् ॥ ९१३ ॥
 यस्यात्मा संनिकर्षस्थः क्रोधावेगेन विस्मृतः ।
 स कथं परलोकस्थं धर्मं स्मरति दुर्मतिः ॥ ९१४ ॥
 स श्वा सदन्तनिष्पेषभीषणः सद्यते न कैः ।
 यस्य क्रोधपिशाचेन घोरेणाधिष्ठितं मनः ॥ ९१५ ॥
 कालस्यान्यः प्रकारोऽयं क्रुद्धो यस्मिन्प्रयात्यलम् ।
 सुहृद्वन्धुः पिता पुत्रः शरीरं चोपहारताम् ॥ ९१६ ॥
 पश्यति द्रविणं लुब्धः कामी पश्यति कामिनीम् ।
 पश्यति भ्रममुन्मत्तः क्रुद्धः किञ्चिन्न पश्यति ॥ ९१७ ॥
 क्रोधे संनिहितो वह्निः क्रोधे संनिहितं विषम् ।
 क्रोधे संनिहितो मृत्युः क्रोधो नरकदैशिकः ॥ ९१८ ॥
 इत्युक्ते भूभुजा विप्रः प्रोवाच रचिताञ्जलिः ।
 मया क्रोधाभिभूतेन कृतं किञ्चिदसांप्रतम् ॥ ९१९ ॥

भिक्षाकाले व्यतिक्रान्ते क्षुत्क्षामेन क्रुधा मया ।
 अयं श्वा मार्गमावृत्य स्थितो दण्डेन ताडितः ॥ ९२० ॥
 कृतमेतन्मया पापं शासनीयोऽस्मि ते नृप ।
 भवता कृतदण्डस्य नास्ति मे नरकाद्भयम् ॥ ९२१ ॥
 ब्राह्मणेनेत्यभिहिते सामात्या दण्डसंशये ।
 ऊचुः कौत्सवसिष्ठात्रिभृग्वाङ्गिरसगौतमाः ॥ ९२२ ॥
 विप्रः सूक्ष्मापराधेषु न दण्ड्यो भूभुजा क्वचित् ।
 धर्मस्थैरित्यभिहिते सारमेयोऽवदन्नृपम् ॥ ९२३ ॥
 प्रतिश्रुतं मे भवता किं कार्यमिति भूपते ।
 अनुग्राह्यो विशेषेण दृष्टिपातादहं तव ॥ ९२४ ॥
 क्रियतां मद्रचस्तस्माद्विजोऽयमभिषिच्यताम् ।
 कालाञ्जरे कौलपत्ये गोब्राह्मणसुरान्प्रति ॥ ९२५ ॥
 इत्युक्ते सारमेयेन सोऽभिषिक्तो महीभुजा ।
 मातङ्गवरमारुह्य ययौ देवद्विजाधिपः ॥ ९२६ ॥
 तस्मिन्प्रमुदिते याते मन्त्रिणः पृथुविस्मयाः ।
 वरोपमोऽयं शापोऽस्य दत्त इत्यूचिरे पृथक् ॥ ९२७ ॥
 ततः सितप्रभापुञ्जशबलाधरपल्लवः ।
 उवाच राघवः सर्वं श्वा जानात्येव कारणम् ॥ ९२८ ॥
 उक्त्वेति राज्ञा सृष्टोऽथ स श्वा जन्मान्तरस्मृतिम् ।
 अवदद्विदितानोकसूक्ष्मधर्मार्थसंचयः ॥ ९२९ ॥
 अहं कुलपतिः सन्ने धर्मनित्योऽभवं पुरा ।
 शुचिर्देवद्विजार्थेषु संविभागी जितेन्द्रियः ॥ ९३० ॥
 तथापि तापसीं योनिमापन्नोऽस्म्यधमामिमाम् ।
 को जानाति कदा किं मे मतिमोहेन विस्मृतम् ॥ ९३१ ॥
 अयं तु पुरुषः क्रूरो ब्रह्मबन्धुः क्रुधा ज्वलन् ।
 सस्पृहः कौलपत्येन न जाने किं भविष्यति ॥ ९३२ ॥

गोब्राह्मणसुरार्थेषु स गच्छेदधिकारताम् ।
 पापशापसखी यस्य नरकाभिमुखी मतिः ॥ ९३३ ॥
 स्पृहां कुर्यादमर्यादः स ब्राह्मणजने धने ।
 यस्यावीचौ परिचये सुचिरोपचिता मतिः ॥ ९३४ ॥
 जातोत्कण्ठाः प्रतीक्षन्ते यस्योन्नरकामयः ।
 कुर्यात्सुरालये स्वाम्यं स ब्राह्मणधर्नाधिपः ॥ ९३५ ॥
 इत्युक्तस्तेन रामोऽभूद्विस्मयस्मेरलोचनः ।
 गत्वाप्यनशनेन श्वा वाराणस्यां व्यपद्यत ॥ ९३६ ॥
 इति कौलपतिकम् ॥ ३६ ॥

ततः कदाचिदभ्येत्य मुनयश्चयवनादयः ।
 णाद्यासनादिसत्कारैः पूजिता राममूचिरे ॥ ९३७ ॥
 निम्नता मलिनाचारानसकृत्क्षणदाचरान् ।
 त्वया प्रतापनिधिना जगद्व्रित्तिमिरं कृतम् ॥ ९३८ ॥
 पुत्रो मधोर्दैत्यपतेर्लवणो नाम दुःसहः ।
 अधुना बाधते लोकान्द्रावणस्य स्वसुः सुतः ॥ ९३९ ॥
 एकपुत्रावधि प्राप्तं तत्पित्रा त्रिपुरान्तकात् ।
 शूलं शूलमिवासह्यं स विभर्ति दिवौकसाम् ॥ ९४० ॥
 शासनादेव रुद्रस्य रौद्रकर्मा जगज्जयी ।
 स शूलरहितो वध्यः सशूलः क्षयकृद्विषाम् ॥ ९४१ ॥
 दिक्प्रतीची कृता तेन मुनिशून्यतपोवना ।
 स कालः सर्वभूतानां प्रमाणमधुना भवान् ॥ ९४२ ॥
 एतन्मुनिवचः श्रुत्वा रामो विरचिताञ्जलिः ।
 करोमि भवतामिष्टमित्युक्त्वा विससर्ज तान् ॥ ९४३ ॥
 ततो ययाचे शत्रुघ्नः काकुत्स्थं पृथुविक्रमः ।
 लवणस्य वधारम्भे शासनं शत्रुशासनः ॥ ९४४ ॥

स रामेणाभ्यनुज्ञातो लवणाधिष्ठिते पुरे ।
 अभिषिक्तश्च विधिवत्प्रतस्थे रथिनां वरः ॥ ९४५ ॥
 दीप्तं तस्मै ददौ रामः सायकं ब्रह्मनिर्मितम् ।
 बभूवुस्तत्प्रभापुञ्जैः कृशानुकपिशा दिशः ॥ ९४६ ॥
 शूलेन रहितो वध्यः स दैत्य इति संविदा ।
 सैन्यस्याग्रे जगामैकः शत्रुघ्नः शक्रविक्रमः ॥ ९४७ ॥
 स व्रजव्रजनीमेकां वाल्मीकेराश्रमे मुनेः ।
 उवाच विहितातिथ्यस्तेन वन्यफलाम्बुभिः ॥ ९४८ ॥
 तत्र यूपाङ्कितां भूमिं विलोक्य भरतानुजः ।
 मुनिं पप्रच्छ कस्यैषा यज्ञभूर्भगवन्निति ॥ ९४९ ॥
 सोऽब्रवीत्पूर्वपुरुषो बभूवेक्ष्वाकुभूभुजाम् ।
 सुदासो यस्य सौदासः पुत्रोऽमित्रमहाशनिः ॥ ९५० ॥
 स बालो मृगयाशीलः कानने सिंहरूपिणौ ।
 ददर्श राक्षसौ याभ्यां गहनं निर्मृगं कृतम् ॥ ९५१ ॥
 एकस्ततो हतस्तेन सायकेनाभवद्वधुः ।
 तत्कोपादपरं रक्षः प्रदध्यौ तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ९५२ ॥
 अथ कालेन सौदासोऽप्यश्वमेधं महाक्रतुम् ।
 आजहार वसिष्ठेन कृतकृत्यः पुरोधसा ॥ ९५३ ॥
 ततः स राक्षसोऽभ्येत्य यज्ञस्यान्ते नरेश्वरम् ।
 वसिष्ठरूपी मायावी ययाचे मांसभोजनम् ॥ ९५४ ॥
 तथेत्युक्ते नरेन्द्रेण सूदरूपोऽपि राक्षसः ।
 मानुष्यमांसं संस्कृत्य तस्थौ भोज्यगृहे पुरः ॥ ९५५ ॥
 उपनीतं तदशनं राज्ञा राक्षससंस्कृतम् ।
 दृष्ट्वा वसिष्ठः कुपितस्तस्मै शापमवासृजत् ॥ ९५६ ॥
 राजन्द्वादशवर्षाणि पुरुषादो भविष्यसि ।
 तच्छ्रुत्वा सोऽपि शापाम्बु कोपाज्जग्राह पाणिना ॥ ९५७ ॥

मदयन्ती तमवदद्भार्या क्रुद्धं महीपतिम् ।
 मुनिर्वसिष्ठः पूज्योऽयमस्माकं कुलदैवतः ॥ ९५८ ॥
 ततः पत्नीगिरा राजा तोयं जग्राह पादयोः ।
 निर्धौतपादो येनासौ ययौ कल्माषपादताम् ॥ ९५९ ॥
 तस्येयं यज्ञवसुधा सौदासस्य महीपतेः ।
 कथयित्वैव वाल्मीकिर्विरराम मुनीश्वरः ॥ ९६० ॥
 इति सौदासस्योपाख्यानम् ॥ ३७ ॥
 तस्मिन्नवसरे तत्र पुण्ये मुनितपोवने ।
 असूत सीता यमजौ कुमारावश्विनाविव ॥ ९६१ ॥
 ततः शिष्यैः प्रियाख्यानादाहूतः करुणानिधिः ।
 वाल्मीकिर्विदधे रक्षां कुशैर्बालकयोस्तयोः ॥ ९६२ ॥
 तौ रक्षता कुशलवैस्तेन तेजस्विना वने ।
 शिशू कुशलवावेव दिव्यरूपौ बभूवतुः ॥ ९६३ ॥
 रामस्य तनयौ जातौ श्रुत्वा प्रमदनिर्भरः ।
 निशां निनाय शत्रुघ्नः श्यामां प्रावृट्पयोधरैः ॥ ९६४ ॥
 प्रभाते मुनिमामन्त्र्य स गत्वा सप्तभिर्दिनैः ।
 अनयद्यमुनातीरे च्यवनस्याश्रमे निशाम् ॥ ९६५ ॥
 कथान्ते च्यवनं तत्र स पप्रच्छ कुतूहलात् ।
 दैत्यः स भूतभयकृल्लवणः किंपराक्रमः ॥ ९६६ ॥
 इति पृष्टो मुनिस्तेन बभाषे भृगुनन्दनः ।
 लवणस्याद्भुतं कर्म घोरं वक्तुं न पार्यते ॥ ९६७ ॥
 यौवनाश्वः पुरा राजा मान्धाता पृथिवीं वशे ।
 कृत्वा पराक्रमोदारश्चक्रे शक्रासने स्पृहाम् ॥ ९६८ ॥
 तं जेतुर्भुवतं वीरं सुरलोकं सुरेश्वरः ।
 उवाच पृथिवी पूर्णा न जिता भूपते त्वया ॥ ९६९ ॥

अजित्वैव महीं जाता किं ते स्वर्गजये मतिः ।
 अभयशासनस्याज्ञां लवणः कुरुते न ते ॥ ९७० ॥
 एतदाकर्ण्य मान्धाता हिया क्षिप्रमधोमुखः ।
 निरुत्तरो ययौ जेतुं लवणं दानवं भुवि ॥ ९७१ ॥
 ततो युद्धमभूद्धोरं चिरं दैत्यनरेन्द्रयोः ।
 अभूतां सर्वभूतानां येन संत्रासविस्मयौ ॥ ९७२ ॥
 ग्रहस्य लवणेनाथ प्रदीप्तं शूलमोजसा ।
 क्षिप्तं क्षितिपतिं चक्रे क्षणेन युधि भस्मसात् ॥ ९७३ ॥
 निर्दग्धे भूपतौ तस्मिन्समृत्यवलवाहने ।
 शूलं तत्कृतकृत्यस्य ययौ दैत्यपतेः करम् ॥ ९७४ ॥
 तस्मात्स शूलरहितो वध्यो युद्धेषु नान्यथा ।
 श्वो हन्तासि तमित्युक्त्वा संजहार गिरं मुनिः ॥ ९७५ ॥
 ततः प्रभाते शत्रुघ्नो गत्वा लवणकाननम् ।
 वहन्तं प्राणिनां भारं तं ददर्शागतं चिरात् ॥ ९७६ ॥
 आहूतस्तेन लवणः कोपादुत्पाद्य पादपम् ।
 गर्जत्पर्जन्यनिर्घोषमभ्यधावद्भुजोर्जितम् ॥ ९७७ ॥
 क्षिप्तं तेन जवाद्दृक्षं शत्रुघ्नः पत्रिभिर्दृढैः ।
 चकार पञ्चतां घोरैर्देहिदेहमिवान्तकः ॥ ९७८ ॥
 वृक्षेषु क्षीयमाणेषु क्षिप्तेषु बहुशः शनैः ।
 शत्रुघ्नं मूर्ध्नि चिक्षेप लवणस्तरुमाततम् ॥ ९७९ ॥
 वेगादभिहतस्तेन वज्रेणेव सुराचलः ।
 विकीर्णहेमकवचः पपात भरतानुजः ॥ ९८० ॥
 तदभून्मूर्च्छिते तस्मिन्हाहाकारो दिवौकसाम् ।
 संदेहदोलाकुलितं मुनीनां चाभवन्मनः ॥ ९८१ ॥
 हतं विज्ञाय शत्रुघ्नं न दैत्यः शूलमग्रहीत् ।
 नश्यतामवलेपो हि मणिमग्नौषधादिषु ॥ ९८२ ॥

लब्धसंज्ञोऽथ शत्रुघ्नः क्रूरमाकृष्य कार्मुकम् ।
 वितीर्णं रघुनाथेन तं दीप्तं संदधे शरम् ॥ ९८३ ॥
 प्रादुर्भूते शरे तस्मिञ्ज्वालीलीढनभस्तले ।
 बभूव सर्वभूतानां मोहः प्रलयसूचकः ॥ ९८४ ॥
 ततः पितामहं सिद्धसुरगन्धर्वकिंनराः ।
 ऊचुर्लोकक्षये सृष्टः शरो न लवणक्षये ॥ ९८५ ॥
 प्रजापतिस्तानवदन्मधुकैटभयोर्वधे ।
 मुरारिणा निर्मितोऽयं दुरितापहरः शरः ॥ ९८६ ॥
 पश्यन्तु दारिततनुं शरेणानेन दानवम् ।
 भवन्तो विगतायासा नास्ति वः सायकाद्भयम् ॥ ९८७ ॥
 इत्युक्ते पद्मगर्भेण स्वस्थे त्रिदशमण्डले ।
 शत्रुघ्नेनावृतो द्वारि शूलं न प्राप दानवः ॥ ९८८ ॥
 ततः स सायकः स्फारं निर्भिद्यौरःस्थलं जवात् ।
 लवणस्य प्रविश्य क्षमां पुनः शत्रुघ्नमाययौ ॥ ९८९ ॥
 इति लवणवधः ॥ ३८ ॥
 लवणे निहिते शूलं रुद्रस्यैव करं ययौ ।
 सुरसिद्धर्षिगन्धर्वाः शत्रुघ्नश्चाभ्यपूजयन् ॥ ९९० ॥
 स तद्वरात्पुरीं तत्र मथुरां नाम निर्ममे ।
 यमुनावेणिकां कान्तां हेमजालनितम्बिनीम् ॥ ९९१ ॥
 शूरसेने जनपदे निर्दिष्टा रुचिरा पुरी ।
 अर्धचन्द्रायुताकारा सा तोरणवती बभौ ॥ ९९२ ॥
 ततो द्वादशभिर्वर्षैः काकुत्स्थालोकनोत्सुकः ।
 शत्रुघ्नः प्रययौ सैन्यैरयोध्यां विपुलैर्वृतः ॥ ९९३ ॥
 स ब्रजत्रजनीमेकां वाल्मीकेराश्रमे वसन् ।
 शुश्राव रामचरितं गीयमानपदं सुरैः ॥ ९९४ ॥
 निशि तेनामृतेनेव पूरिताश्रवणं चिरम् ।

त्रिदिवस्थामिवात्मानं स मेने हर्षनिर्भरः ॥ ९९५ ॥
 इति मथुराप्रवेशः ॥ ३९ ॥
 गत्वा ततः कतिपयैर्वासरैर्भरतानुजः ।
 अयोध्यां राघवं द्रष्टुं प्रविवेश नृपालयम् ॥ ९९६ ॥
 प्रणम्य राघवं तत्र चरणालीनशेखरः ।
 प्रीत्या तेन परिष्वक्तो यथावृत्तं जगाद सः ॥ ९९७ ॥
 स्थित्वा तत्र प्रियतरैः पूज्यमानो महीभुजा ।
 कालेन मथुरामेव जगाम आतुराज्ञया ॥ ९९८ ॥
 ततः कदाचिदत्यन्तापूर्वदुःखार्दितो द्विजः ।
 स्कन्धे गृहीत्वा पृथुकं राजद्वारमुपाययौ ॥ ९९९ ॥
 सोऽवदत्पुत्रशोकेन महता पीडिताशयः ।
 अहो बतायं वृद्धस्य जीवितं क्व गतः सुतः ॥ १००० ॥
 न मया दुष्कृतं किञ्चित्कृतं धर्मानुवर्तिना ।
 व्यसुं पश्यामि च शिशुं कस्येदं कर्मणः फलम् ॥ १००१ ॥
 नाकालमृत्युर्न व्याधिर्न दुर्भिक्षं न तस्कराः ।
 भवन्ति सत्त्वसंपन्ने धर्मनित्ये महीपतौ ॥ १००२ ॥
 अकालमृत्युर्दुर्भिक्षः प्रभवः करुणध्वनिः ।
 न श्रूयते जनपदे नृपाणां पुण्यकर्मणाम् ॥ १००३ ॥
 क्रियाहीना द्विजन्मानः स्वैरिण्यः कुलयोषितः ।
 भवन्ति राशि दुर्वृत्ते जनाश्चाकालमृत्यवः ॥ १००४ ॥
 असम्यक्पालिता राज्ञा दुःसहक्लेशमागिनी ।
 अकालनिधनाक्रान्ता हा प्रजे क्व गमिष्यसि ॥ १००५ ॥
 राजा पापानि कुरुते दुर्बलः पीड्यते जनः ।
 अपथ्यमपरो भुङ्क्ते शीलेनायास्यतेऽपरः ॥ १००६ ॥
 कुराज्ये जीवितं नास्ति सुखं वरमराजकम् ।
 विधवैव वरं नारी न तु कापुरुषाश्रया ॥ १००७ ॥

जीर्णो जीवाम्यहं वृद्धः पञ्चवर्षः शिशुर्मृतः ।
 अहो नु राजदोषेण कष्टमापतितं मम ॥ १००८ ॥
 मृते सुते न जीवामि ब्राह्मणी निधनोद्यता ।
 अहो पापस्य नृपतेर्ब्रह्महत्यापरम्परा ॥ १००९ ॥
 एतदाकर्ण्य काकुत्स्थः क्षिप्रं संक्रान्ततद्व्यथः ।
 केदार इव केदारजलेनापूरितोऽभवत् ॥ १०१० ॥
 स सभायां समानाद्य सामात्यं मुनिमण्डलम् ।
 न शशाक क्षणं वक्तुं दुःखसंतापचिन्तया ॥ १०११ ॥
 ततो वसिष्ठजाबालिकौत्सगौतमनारदाः ।
 मार्कण्डेयात्रिमौद्गल्या वामदेवपुरोगमाः ॥ १०१२ ॥
 भृगुप्रभृतयश्चान्ये सकात्यायनकाश्यपाः ।
 तस्थुर्दुःखाकुले राज्ञि चित्रन्यस्ता इवाचलाः ॥ १०१३ ॥
 कारणं बालनिधने तेषु पृष्टेषु भूभुजा ।
 तमभाषत देवर्षिः क्षणं संचिन्त्य नारदः ॥ १०१४ ॥
 पुरा कृतयुगे राजन्नेकवर्णं समक्रियम् ।
 मृत्युहीनमनायासमभूद्ब्रह्ममयं जगत् ॥ १०१५ ॥
 ततस्त्रेतायुगे ब्रह्मक्षत्रं समतपोबलम् ।
 वैश्यशूद्रोपकरणं बभूवावभिजीवितम् ॥ १०१६ ॥
 अनृताख्यं ततः पादमधर्मो निदधे परम् ।
 त्रिपाद्बभूव धर्मश्च रागद्वेषाकुले जने ॥ १०१७ ॥
 अधर्मस्य ततः पादो द्वितीयः समपद्यत ।
 तेन द्वापरसंज्ञोऽसौ युगोऽधर्मस्तदा द्विपात् ॥ १०१८ ॥
 तस्मिन्युगे प्रवृत्ते तु वैश्यानां शनकैस्तपः ।
 तपो नास्त्येव शूद्रस्य नोपदेशं न च व्रतम् ॥ १०१९ ॥
 जुहोति शूद्रो यद्वाहिं शूद्रो यत्कुरुते तपः ।
 गुरुर्भवति शूद्रो यत्तत्पूर्णं लक्षणं कलेः ॥ १०२० ॥

जनः शूद्रप्रधानोऽयं ब्राह्मणः शूद्रसेवकः ।
 विमूढाः शूद्रशिष्याश्च कलौ प्रबलविप्लवे ॥ १०२१ ॥
 विषयान्ते च तीव्रस्ते शूद्रस्तपसि वर्तते ।
 तेन पापविपाकेन ब्राह्मणस्य मृतः सुतः ॥ १०२२ ॥
 [तस्मादन्विष्य राजेन्द्र स्वयं कुरु यथोचितम् ।
 चतुर्भागहरो राजा प्रजानां पुण्यपापयोः ॥ १०२३ ॥
 नारदेनेत्यभिहिते रामः सौमित्रिमब्रवीत् ।
 तैलद्रोण्यां शिशोरस्य संनिधानं विधीयताम् ॥ १०२४ ॥]
 इत्युक्त्वा पुष्पकं नाम स्मृतमात्रमुपस्थितम् ।
 आरुह्य प्रययौ व्योम्ना खङ्गवाणधनुर्धरः ॥ १०२५ ॥
 स प्रतीचीं दिशं पूर्वमवलोक्योत्तरां ततः ।
 पूर्वां च न जने किञ्चिद्दर्शं कुकृतं स्थितेः ॥ १०२६ ॥
 गत्वाथ दक्षिणामाशां गिरेरुत्तरपार्श्वतः ।
 ददर्श पङ्कजरजःपुञ्जपिञ्जरितं सरः ॥ १०२७ ॥
 तत्रापश्यत्तपः क्षामं लम्बमानमधोमुखम् ।
 पुरुषं तीव्रनिर्वन्धं साकारमिव दुर्ग्रहम् ॥ १०२८ ॥
 तमुवाच ततो रामः कस्त्वमुग्रतपोनिधिः ।
 ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा सत्यमुच्यताम् ॥ १०२९ ॥
 सत्यमेवामृतं लोके तपः सत्ये प्रतिष्ठितम् ।
 व्रतं हि सत्योच्छिष्टानां कायक्लेशाय केवलम् ॥ १०३० ॥
 इति पृष्टः स रामेण प्रोवाच व्रतनिश्चलः ।
 अधोमुखेन वपुषा वैपरीत्यं वदन्निव ॥ १०३१ ॥
 सशरीरो दिवं गन्तुं तपसा कृतनिश्चयः ।
 शूद्रोऽहं शम्बुको नाम प्रार्थये सुतरां विभो ॥ १०३२ ॥

१. कोष्ठकान्तर्गताः श्लोकाः क-ख-पुस्तकयोर्नोपलब्धाः. शारदालिपिपुस्तकतो
 लिखिताः.

एतदाकर्ण्य काकुत्स्थः कुपितस्तस्य विह्वलात् ।
 शिरश्चिच्छेद खड्गेन मूलं दुःखतरोरिव ॥ १०३३ ॥
 तत्र शक्रादयः प्रीत्या त्रिदशाः पुष्पवर्षिणः ।
 ऊर्ध्वरं गृहाणेति वराहं रघुनन्दनम् ॥ १०३४ ॥
 सोऽवदद्वरदा यूयं यदि मे पुण्यभागिनः ।
 तदसौ ब्राह्मणस्यैव पुत्रः प्राप्नोतु जीवितम् ॥ १०३५ ॥
 इत्युक्ते सत्त्वनिधिना रामेण त्रिदिवौकसः ।
 तमूचुस्त्यज संतापं संप्राप्तं तेन जीवितम् ॥ १०३६ ॥
 यदैव कृत्तं भवता शिरः शूद्रतपस्विनः ।
 सह त्वज्जयशब्देन तदैव शिशुरुत्थितः ॥ १०३७ ॥
 अगस्त्यस्याश्रमं राम गच्छामस्तत्र नस्त्वया ।
 नेत्रपात्रामृतस्यन्दी भविष्यति समागमः ॥ १०३८ ॥
 दीप्ता समाप्तिरथैव कुम्भयोनेस्तपोवनी ।
 स हि द्वादशभिर्वर्षैरुत्थितोऽन्तर्जलान्मुनिः ॥ १०३९ ॥
 इत्युक्त्वा तेषु यातेषु व्रजन् रामो व्यलोकयत् ।
 काननं कुसुमामोदमत्तालिवलयाकुलम् ॥ १०४० ॥
 इति शम्बुकवधः ॥ ४० ॥
 तत्रालयविवादेन संजातकलहौ मिथः ।
 गृध्रोलूकौ समभ्येत्य वृद्धौ राघवमूचतुः ॥ १०४१ ॥
 इन्द्रस्त्वं परमैश्वर्यात्सोमस्त्वममृतप्रदः ।
 पावकः पापदहनाद्दण्ड्यानां शासनाद्यमः ॥ १०४२ ॥
 सर्वदेवमयो देवो विष्णुस्त्वं सर्वतोमुखः ।
 अस्मिन्विवादसंदेहे प्रमाणं भूपते भवान् ।
 ममालयं हरत्येष हरत्येष ममालयम् ॥ १०४३ ॥
 इति तद्वचनं श्रुत्वा रामः पप्रच्छ तौ पृथक् ।
 वसतोरालये कालः प्रयातो युवयोः कियान् ॥ १०४४ ॥
 अथ गृध्रोऽवदद्भूमिर्मनुष्यैरूर्ध्वबाहुभिः ।

व्याप्ता यदाभून्निलयस्तदा प्रभृति मे प्रभुः ॥ १०४५ ॥
 उलूकोऽप्यवददृक्षैर्यदाभूद्भूमिरावृता ।
 तदा प्रभृति मे राजन्नालयोऽयमनावृतः ॥ १०४६ ॥
 एतत्तयोर्वचः श्रुत्वा वृद्धामात्यैः सह स्थितः ।
 विचार्य राघवः क्षिप्रं स्थितिज्ञः स्वयमभ्यधात् ॥ १०४७ ॥
 सर्गेऽस्मिन्पद्मनाभस्य नाभिपद्ममुखाकृतेः (?) ।
 विष्णुः स्वाङ्गमलोत्पन्नौ जघान मधुकैटभौ ॥ १०४८ ॥
 तन्मेदसा मेदिनी भूरभूत्पूर्वं द्रुमावृता ।
 पश्चान्मनुष्यैः संपूर्णा तस्माद्गृध्रः पराजितः ॥ १०४९ ॥
 इत्युक्ते कुपिते रामे वागुवाचाशरीरिणी ।
 त्वद्दर्शनान्तःशापोऽस्य गृध्रस्याद्य क्षयं गतः ॥ १०५० ॥
 नृपतिर्ब्रह्मदत्तोऽयं मासमालोक्य भोजने ।
 गौतमेन पुरा शप्तः प्रयातो गृध्रतामिमाम् ॥ १०५१ ॥
 एतदाकर्ण्य विरतप्रकोपे रघुनन्दने ।
 गृध्ररूपं परित्यज्य ब्रह्मदत्तो दिवं ययौ ॥ १०५२ ॥
 इति गृध्रोल्लङ्किकम् ॥ ४१ ॥
 अथागस्त्यं समभ्येत्य पूजयित्वा ययुः सुराः ।
 रामोऽपि प्राप्य सानन्दस्तं ववन्दे कृताञ्जलिः ॥ १०५३ ॥
 तस्मै मुनिवरः पूजां प्रीतः कृत्वा नृपोचिताम् ।
 तरुणार्कप्रभादीप्तं दिव्यमाभरणं ददौ ।
 तं राघवोऽब्रवीन्नायमुचितो नः प्रतिग्रहः ॥ १०५४ ॥
 शासनं च तवालङ्घ्यं भगवन्युक्तमुच्यताम् ।
 इत्युक्ते रघुनाथेन कुम्भयोनिरभाषत ॥ १०५५ ॥
 अराजके पुरा सर्गे तेजोभागैर्दिवौकसाम् ।
 क्षुतात्स्वयंभुवा सृष्टः क्षुप इत्यभवन्नृपः ॥ १०५६ ॥

शक्रांशो प्रभुता राज्ञो वरुणांशः स्वरूपतः ।
 धनदांशी धैनादानदाने दण्डे यमांशतः ॥ १०५७ ॥
 तस्मादैन्द्रेण भागेन रत्नान्यर्हन्ति पार्थिवाः ।
 इत्युक्तो मुनिना रामो गृहीत्वा तदभाषत ॥ १०५८ ॥
 इदमाभरणं दिव्यं पुरे मूर्तमिवाद्भुतम् ।
 सूर्यप्रभं कुतः कान्तं कस्यैतदभवत्पुरा ॥ १०५९ ॥
 इति पृष्ठो मुनिवरः काकुत्स्थेन तमब्रवीत् ।
 श्रूयतामिदमाश्चर्यं खयमालोकितं मया ॥ १०६० ॥
 पुराहं निद्रितखगे पुष्पिते निर्जने वने ।
 चित्रस्थ इव निःशब्दे फलाढ्ये शतयोजने ॥ १०६१ ॥
 भ्रान्त्वा मनोहरं खच्छमुत्फुल्लकमलोद्भवम् ।
 असंस्पृष्टमनाप्रातमपश्यं कौतुकाकुलः ॥ १०६२ ॥
 अदूरे सरसस्तस्मादृष्टः स्पष्टः शवो मया ।
 अनष्टचारुरूपत्वात्स जीव इव कान्तिमान् ॥ १०६३ ॥
 ऊतोऽहं विस्मयात्तत्र मुहूर्तं निश्चलः स्थितः ।
 अवश्यं रत्नरुचिरं विमानं हंससंयुतम् ॥ १०६४ ॥
 तस्मिन्विमाने पुरुषः श्रीमानप्सरसां गणैः ।
 सेवितो गीतवाद्येन मया दृष्टः शशिप्रभः ॥ १०६५ ॥
 अवरुद्ध विमानाग्राचारुकेयूरकुण्डलः ।
 विलोलहारः शनकैः प्रययौ स शवान्तिकम् ॥ १०६६ ॥
 यथाकामं ततो भुक्त्वा मांसं तस्यातिपीवरम् ।
 सलिलं सरसि स्पृष्ट्वा सोऽविशत्खं विमानगः ॥ १०६७ ॥
 पश्चादेत्य मया पृष्टः को भवान्दीप्तविग्रहः ।
 आहारो गर्हितः किं ते श्रुत्वैतत्सोऽप्युवाच माम् ॥ १०६८ ॥

१. 'भूपतेराज्ञा' क.ख. २. 'सुरूपता' शा०. ३. 'दया' शा०. ४. 'दण्डो' स्यात्.
 ५. 'परं' स्यात्. ६. 'सूत' क.ख. ७. 'त्पलम्' क.ख. ८. 'ततो' क. ९. 'भ्युवाच' क.

अहं विदर्भराजस्य सुदेवस्य यशोनिधिः ।
 पुत्रः श्वेत इति ख्यातः सुरथश्च ममानुजः ॥ १०६९ ॥
 भुक्त्वा वर्षसहस्राणि राज्यं निहतकण्टकम् ।
 अभिषिच्यानुजं काले यातोऽहं तपसे वनम् ॥ १०७० ॥
 त्रीणि वर्षसहस्राणि कृत्वाहं कानने तपः ।
 यातोऽथ ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम् ॥ १०७१ ॥
 संजातक्षुत्पिपासेन पृष्टस्तत्राशनं मया ।
 ब्रह्मावदत्तवाहारः कायोऽयं पीवरो निजः ॥ १०७२ ॥
 आश्रमे न त्वया दत्तं राजन्भोजनमर्थिने ।
 शरीरं पूरितं चेदं तद्भक्षय यथारुचि ॥ १०७३ ॥
 दत्तमासाद्यते सर्वमदत्तं लभ्यते कुतः ।
 भोगबीजमनुप्तं हि कर्मक्षेत्रे न जायते ॥ १०७४ ॥
 लोकैऽस्मिन्नित्यतृप्तेऽस्मिन्क्षुधा शुष्यसि भूपते ।
 भोजनार्थी क्षुधाक्रान्तो यतिस्ते विमुखो गतः ॥ १०७५ ॥
 कालेनाभ्येत्य कारुण्यादगस्त्यस्तपसां निधिः ।
 स्वमांसाशनबीभत्सात्कृच्छ्रात्त्वां तारयिष्यति ॥ १०७६ ॥
 इत्युक्तोऽहं भगवता स्वयं कमलयोनिना ।
 इदं पूर्वशरीरं तद्भक्षयामि नवं सदा ॥ १०७७ ॥
 सत्त्वं मयाद्य भगवन्दृष्टः किल्बिषसंक्षयात् ।
 दिव्यं मे प्रतिगृह्येदं भूषणं दुःखमुद्धर ॥ १०७८ ॥
 श्रुत्वाहमेतत्तेनोक्तं करुणाकूणिताशयः ।
 स्नेहादकरवं तस्य भूषणानां प्रतिग्रहम् ॥ १०७९ ॥
 विनष्टपूर्वदेहोऽथ दिव्येन वपुषान्वितः ।
 विमानेन ययौ राजा श्वेतः पुण्यार्जितां दिवम् ॥ १०८० ॥
 तदेतद्भूषणं तस्मान्मया प्राप्तं महीपते ।
 त्वमेवास्योचितं धाम प्रकाशस्येव भास्करः ॥ १०८१ ॥
 इति श्वेतोपाख्यानम् ॥ ४२ ॥

अगस्त्येनेति कथितं श्रुत्वा रामोऽब्रवीत्पुनः ।
 निर्मृगं तद्वनं कस्माद्भगवन्वर्जितं जनैः ॥ १०८२ ॥
 कौतुकादिति रामेण पृष्टस्तमवदन्मुनिः ।
 इक्ष्वाकोरभवहण्डः पुत्रः पुत्रशतानुगः ॥ १०८३ ॥
 दुराचारं विदित्वा तं विन्ध्यगह्वरभूमिषु ।
 पिता भूमिपतिश्चक्रे निर्जिताशेषभूपतिः ॥ १०८४ ॥
 स तत्र मधुमत्ताख्यं कृत्वा स्वर्गोपमं पुरम् ।
 पुरोहितं चोशनसं प्रजाकार्यरतोऽभवत् ॥ १०८५ ॥
 ततः कदाचित्कुसुमोल्लासहासविकासिनि ।
 मधौ मधुकरालापविनिवारितसंयमे ॥ १०८६ ॥
 बलानिलचलत्फुल्ललताहूतमनोभवे ।
 राजा चचार रुचिरे भार्गवाश्रमकानने ॥ १०८७ ॥
 तत्र कन्यामसामान्यलावण्यनलिनीं नवाम् ।
 ददर्श रतिसादृश्यलज्जया मलिनीकृताम् ॥ १०८८ ॥
 शुक्रात्मजां तामरजां राजा राजीवलोचनाम् ।
 विलोक्य मन्मथाविष्टो ययाचे रतिसंगमम् ॥ १०८९ ॥
 सावदद्रुपुत्री ते न गम्याहं महीपते ।
 रूपलुब्धः क्षयोत्सङ्गं पतङ्ग इव मा गमः ॥ १०९० ॥
 इति ब्रुवाणामरजां राजा रागरजोवृतः ।
 उवाच निर्जने लब्धां कथं त्वां त्यक्तुमुत्सहे ॥ १०९१ ॥
 जाने त्वां पितुरायत्तां किंतु प्राणपणो मम ।
 कार्याकार्यविचारोऽस्ति कस्य जीवितसंशये ॥ १०९२ ॥
 स्मरस्फारानिलोद्धूतं मानसं स्तम्भ्यते कथम् ।
 अदभ्रश्चअविभ्रष्टं कः पयो धर्तुमीश्वरः ॥ १०९३ ॥
 इत्युक्त्वा तां बलात्कन्यां विधूतकरपङ्कजाम् ।
 नलिनीमिव मातङ्गो दूषयित्वा जगाम सः ॥ १०९४ ॥

अथाश्रमं समभ्येत्य शुक्रः पुत्रीमधोमुखीम् ।
ददर्श साश्रुनयनामरजां रजसा छुताम् ॥ १०९५ ॥
शुक्रशापात्पपाताथ पुरे दण्डस्य भूपते ।
पांशुवृष्टिर्यया दग्धः स सराष्ट्रः क्षयं ययौ ॥ १०९६ ॥
उदभूद्दण्डकारण्यं दण्डशापाज्जनोज्झितम् ।
अरजायाः पदं तत्र पित्रादिष्टमभूत्सरः ॥ १०९७ ॥
इति दण्डशापः ॥ ४३ ॥

इत्याश्चर्यकथां श्रुत्वा पूजितः कुम्भयोनिना ।
प्रभाते तं समामन्त्र्य राघवः स्वपुरीं ययौ ॥ १०९८ ॥
राजधानीं प्रविश्याथ सभाभवनमेत्य सः ।
रत्नासनस्थितो द्वाःस्थं दिदेशानुजदर्शने ॥ १०९९ ॥
ततः प्रविश्य सोत्कण्ठौ नृपौ भग्नलक्ष्मणौ ।
प्रणम्य ब्राह्मणशिशोर्जीवितावाप्तिमूचतुः ॥ ११०० ॥
तौ कथान्ते रघुपतिर्बभाषे यशसां निधिः ।
राजसूयसमारम्भे वर्तते मे मनोरथः ॥ ११०१ ॥
अशेषविजयप्राज्यं राज्यं तदभिधीयते ।
यज्ञोपकरणे यस्मिन्प्रवृद्धा धनसंपदः ॥ ११०२ ॥
सुकृतोद्यानवल्लीभिः किमेताभिर्विभूतिभिः ।
यशोभिः पुष्पिता दिक्षु राजसूयोज्ज्वलैर्न या ॥ ११०३ ॥
श्रुत्वैतद्भरतो धीमात्राममूचे कृताञ्जलिः ।
अर्हस्त्वमेव भूपाल राजसूयस्य कोऽपरः ॥ ११०४ ॥
यज्ञानां प्रवरश्चासौ भवानिव महीभुजाम् ।
अन्ते तु राजसूयस्य भवत्येव जगत्क्षयः ॥ ११०५ ॥
सोमस्य राज्ञः संपूर्णे राजसूये सुधानिधेः ।
क्षयोऽभूज्ज्योतिषां घोरः संग्रामे तारकामये ॥ ११०६ ॥
वरुणस्यापि निर्वृत्ते तस्मिन्यज्ञे जलौकसाम् ।
दारुणः सर्वलोकानां संहारः संगरेऽभवत् ॥ ११०७ ॥

शतक्रतोरपि पुरा यस्मिन्यज्ञे महीयसि ।
 देवासुरमभूद्युद्धं चिरं विश्वक्षयक्षमम् ॥ ११०८ ॥
 यज्ञान्ते सर्वभूतानां हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः ।
 बभूवाडीवके युद्धे स्थावराणां च संक्षयः ॥ ११०९ ॥
 तस्मात्त्वं पृथिवीपाल सर्वसत्त्वहिते रतः ।
 त्रैलोक्यायासदं यज्ञं तं कथं कर्तुमर्हसि ॥ १११० ॥
 भरतेनेत्यभिहिते प्रशशंस सुहृत्पुत्रः ।
 अथयं सर्वभूतानां यज्ञः क्रतुशताधिकः ॥ ११११ ॥
 ततो जगाद सौमित्रिः प्रणतः पृथिवीपतिम् ।
 राजसूयसमो राजन्नश्वमेधो महामखः ॥ १११२ ॥
 बभूव विश्वविजयी वृत्रो नाम महासुरः ।
 शतयोजनविस्तीर्णो घनस्तद्विगुणोन्नतः ॥ १११३ ॥
 विष्णुनाप्यायतबलस्तं शक्रस्तपसि स्थितम् ।
 तदाविष्टेन वज्रेण जघान घनविक्रमम् ॥ १११४ ॥
 आलिलिङ्ग ततः शक्रं ब्रह्महत्या पिशाचिका ।
 अदृश्यः सर्वभूतानामाक्रान्तः सोऽभवद्यथा ॥ १११५ ॥
 ततो विष्णुगिरा देवाः शक्रं क्लिप्तपशान्तये ।
 अश्वमेधे कृतोद्योगास्तं गत्वा चक्रिरे स्फुटम् ॥ १११६ ॥
 संपूर्णे विधिवत्तस्मिन्नश्वमेधे शतक्रतोः ।
 स्रैश्चतुर्धा विन्यस्ता ब्रह्महत्या मुमोच तम् ॥ १११७ ॥
 जलस्थिता विशत्येव सा तैत्राशुचिकारणम् ।
 वृक्षेषु च स्थिता वृक्षच्छेत्तारं यातु पर्वसु ॥ १११८ ॥
 रजस्वलासु नारीषु स्थित्वा विशति तद्गतम् ।
 स्थिता चतुर्थेनांशेन सा ब्राह्मणवधे स्वयम् ॥ १११९ ॥

१. 'यथा' स्यात्, २. चतुर्मास्थां पूर्णोदनदीप्ता इत्यर्थः.

भागैश्चतुर्भिरायातं तस्यां द्वेवैः सुरेश्वरः ।
 प्रभावादश्वमेधस्य पुनः स्वपदमाययौ ॥ ११२० ॥
 इति वृत्रोपाख्यानम् ॥ ४४ ॥
 कथितं लक्ष्मणेनैतदाकर्ण्य रघुनन्दनः ।
 उवाच हर्षपेयूषं स्मृतकान्त्या सृजन्निव ॥ ११२१ ॥
 सत्यमेतद्यदेवोक्तं सुमित्रानन्दन त्वया ।
 अश्वमेधसमं लोके विद्यते न हि पावनम् ॥ ११२२ ॥
 श्रूयते किल पुत्रोऽभूत्कर्दमस्य प्रजापतेः ।
 इडो नाम क्षितिपतिर्बाहीकेषु यशोनिधिः ॥ ११२३ ॥
 स विश्वविजयो राजा प्रजासंरक्षणव्रतः ।
 सोमवत्सर्वभूतानां बभूव प्रियदर्शनः ॥ ११२४ ॥
 ततः कदाचित्पुष्पेषुमित्रे चैत्यमहोत्सवे ।
 स सैन्यकानने राजा चचार मृगयारसात् ॥ ११२५ ॥
 नानाकुसुमसंछन्ननवकाननकौतुकात् ।
 स स्कन्दजन्मवसुधां रौक्मं शरवणं ययौ ॥ ११२६ ॥
 श्रीकण्ठस्तत्र भगवान्शेखरेन्दुप्रभामृतैः ।
 जीवयन्निव पुष्पेषुं विजहार सतीसखः ॥ ११२७ ॥
 स्त्रैरिणः शासनात्तत्र देवस्य गिरिजापतेः ।
 स्त्रीत्वं प्रापुर्गणाः सर्वे खगवृक्षमृगैः सह ॥ ११२८ ॥
 सर्वभूतगणे तत्र स्त्रीभूते सचराचरे ।
 विललास विलासाङ्कः शशाङ्काभरणो भवः ॥ ११२९ ॥
 तं देशं भूपतिः प्राप्य सभृत्यबलबाहनः ।
 सहसा विस्मितमयः स्त्रीरूपः सम्पद्यत ॥ ११३० ॥
 स रुद्रशासनं ज्ञात्वा तमेव शरणं गतः ।
 उपोषितश्चिरं स्तोत्रजपध्यानरतोऽभवत् ॥ ११३१ ॥

तमुवाच ततो देवः प्रहस्य गिरिजापतिः ।
 पुरुषत्वं विना राजन्यदभीष्टं तदुच्यताम् ॥ ११३२ ॥
 एतदार्कण्यं भूपालः किञ्चिद्भ्रमनोरथः ।
 प्रत्याख्यातो भगवता भवानीं शरणं ययौ ॥ ११३३ ॥
 मासं भविष्यसि वधूः पुमान्मासं भविष्यसि ।
 मासि मासि निजं रूपमतीतं न स्मरिष्यसि ॥ ११३४ ॥
 इति देव्या वचः श्रुत्वा स्त्रीभूतैः सहितोऽनुगैः ।
 स गत्वान्यवनं दिव्यं ददर्श रुचिरं सरः ॥ ११३५ ॥
 तस्येशशासनात्त्यक्ततनोरिव मनोभुवः ।
 अभूदुच्चकुचाभोगजघनाभरणं वपुः ॥ ११३६ ॥
 सा नूपुररवाकृष्टकलहंसाकुला शनैः ।
 चचार सरसस्तीरे श्रीरिवाम्भोरुहोदरात् ॥ ११३७ ॥
 ततः सोमसुतः श्रीमान्विपुले तपसि स्थितः ।
 बुधो रूपनिधिः कान्तां तामपश्यत्सुलोचनाम् ॥ ११३८ ॥
 आताम्रपाणिनलिनां चरणारुणितावनिम् ।
 दृष्ट्वा जहर्ष बिम्बोष्ठीं स तां रागमयीमिव ॥ ११३९ ॥
 ततः स्मरशरासारपातपक्षानिलैरिव ।
 न बभूव धृतेः पात्रं बुधः प्रोद्धूतमानसः ॥ ११४० ॥
 अथाङ्गना तदनुगाः स जगाद प्रियं वचः ।
 किं नार्यः शैलकटके वासोऽस्मिन्नभिधीयते ॥ ११४१ ॥
 एष निर्झरझाङ्काररम्यपुष्पफलोचितः ।
 देशः किंपुरुषैस्तत्र कियतां प्रियसंगमः ॥ ११४२ ॥
 इति तस्य गिरा शैलतटे किंपुरुषाश्रिते ।
 किं नार्य इति तेनोक्ताः किंनार्यस्ता ययुः स्त्रियः ॥ ११४३ ॥
 ततः स तासु यातासु कान्तां तामेत्य सादरः ।
 उवाच नवलावण्यपण्यविक्रीतमानसः ॥ ११४४ ॥

आनन्दस्यन्दिनी कान्तिरियं तव सितस्मिते ।
 विभाति व्याहता लोके कीर्ति मन्ये मनोभुवः ॥ ११४५ ॥
 तस्य कीर्णसुधासिन्धोरिन्दोः शर्वशिरोमणेः ।
 स्मरमित्रस्य पुत्रोऽहं बुधः सुभ्रु भजस्व माम् ॥ ११४६ ॥
 एतदाकर्ण्य मधुरं सा बुधस्य सुमध्यमा ।
 मन्मथेन वशं नीता तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ११४७ ॥
 सौभाग्यभामिनी तेन रममाणा घनस्तनी ।
 सा मेने माधवं मासं नीतं क्षणमिव क्षणात् ॥ ११४८ ॥
 मासावसाने शयनादुत्क्षिप्ता सहसैव सा ।
 बभूव विस्मृतातीर्तस्त्रीभावः स महीपतिः ॥ ११४९ ॥
 सोऽपृच्छद्बुधमभ्येत्य राजाहं मृगयारसात् ।
 प्रविष्टः कानने सैन्यं न जाने तत्क मे गतम् ॥ ११५० ॥
 सैन्यहीनः क गच्छामि वनेऽस्मिन्निवसाम्यहम् ।
 राज्यं ममानुजो वीरः शशिविन्दुः करिष्यति ॥ ११५१ ॥
 इत्युक्ते भूभुजा तेन बुधस्तं प्रत्यभाषत ।
 शिलावर्षेण गहने भृत्यास्तव निसूदिताः ॥ ११५२ ॥
 त्वया सुप्तेन न ज्ञाता भविष्यन्त्यपरेषु नः ।
 कंचित्कालं प्रतीक्षस्व वनेऽस्मिन्पूजितो मया ॥ ११५३ ॥
 बुधेनेति ब्रुवाणेन स कुर्वन्बुधाः कथाः ।
 मासे प्रयाते कान्तैव साभूद्विस्मृतपौरुषा ॥ ११५४ ॥
 अथ मासं सिषेवे सा बुधं निधुवनैषिणी ।
 मासं च पुरुषो भूत्वा चक्रे पौराणिकाः कथाः ॥ ११५५ ॥
 ततः सा नवमे मासि पूर्णे पूर्णेन्दुसुन्दरम् ।
 असूत सूर्यसंकाशं पुरुरवसमात्मजम् ॥ ११५६ ॥
 तं जातमात्रं निक्षिप्य पुत्रं चन्द्रगृहे बुधः ।
 चकार भूपतेश्चिन्तां स्त्रीभावविनिवृत्तये ॥ ११५७ ॥

१. 'व्याहता' स्यात्.

स समानाप्य संवर्तच्यवनप्रमुखान्मुनीन् ।
 रुद्रप्रसादनोपाये क्रियां तां तामचिन्तयत् ॥ ११५८ ॥
 स्वेच्छागतः पिता राज्ञा कर्दमोऽथ प्रजापतिः ।
 तानुवाचाश्वमेधेन तुष्टोऽस्त्येव महेश्वरः ॥ ११५९ ॥
 ततो बुधाश्रमे तस्मिन्संपूर्णे नृपतेः क्रतौ ।
 तुतोष शर्वस्तद्वाक्यात्पुरुषश्चाभवन्नृपः ॥ ११६० ॥
 प्रतिष्ठानपुरे जातस्तत्पुत्रोऽभूत्पुरूरवाः ।
 तस्मान्नास्त्यश्वमेधस्य प्रभावे सदृशः क्रतुः ॥ ११६१ ॥
 राघवेनेत्यभिहिते हृष्टौ भरतलक्ष्मणौ ।
 अश्वमेधसमारम्भे जातोत्कण्ठौ ननन्दतुः ॥ ११६२ ॥
 इतीडापुरुषीयम् ॥ ४५ ॥

ततः समाययुः सर्वे मुनयो विनयावनेः ।
 यज्ञारम्भे नरपतेर्ब्रह्मलोकादिवो भुवः ॥ ११६३ ॥
 उत्सृष्टे लक्ष्मणोदारे ह्ये लक्ष्मणरक्षिते ।
 आहूते सारगैर्दूतैः सुग्रीवे सविभीषणे ॥ ११६४ ॥
 रामशासनमानेन प्राप्तेष्वखिलराजसु ।
 गोमत्यां नैमिषतटे कृते यज्ञनिवेशने ॥ ११६५ ॥
 राशिभिर्हेमरत्नानां पूरिते गिरिसंनिभैः ।
 पृथक्पृथग्मुनिवरैर्वाटेष्वध्यासितेषु च ॥ ११६६ ॥
 अवर्ततातिशक्रस्य राज्ञो यज्ञः सदोचितः ।
 नानार्थिसार्थसंपूर्णसर्वाशाकल्पपादपः ॥ ११६७ ॥
 सोमं स्वप्नेऽपि नायाति दूरे वरुणशक्रयोः ।
 सा श्रीः कुतः कुबेरस्य यज्ञे रामस्य याभवत् ॥ ११६८ ॥
 तत्र हेममयी सीता कुशलैः शिल्पिभिः कृता ।
 शुशुभे राघवप्रीत्या वनात्स्वयमिवागता ॥ ११६९ ॥
 तस्यौ शिष्यैर्वृतस्तत्र वाल्मीकिस्तेजसां निधिः ।
 द्रष्टुं मुनिसभां प्राप्तः साक्षादिव प्रजापतिः ॥ ११७० ॥

मुनेस्तस्याज्ञया तत्र कुमारौ कान्तविग्रहौ ।
 गन्धर्वाविव लोकेषु श्रवणामृतवर्षिणौ ॥ ११७१ ॥
 गातुं रामयशः प्राप्तौ कैलासादिव किंनरौ ।
 मूर्तौ पुष्पाकरस्येव मासौ षट्पदनादितौ ॥ ११७२ ॥
 बीणावेणुस्वनेनैव मीलितं मूर्च्छनाजुषा ।
 कलकण्ठौ कुशलवौ रामायणमगायताम् ॥ ११७३ ॥
 उद्धीतश्रवणाश्चर्यविस्मयालोलमौलयः ।
 ग्रीवा इवाभवन्सर्वे पूर्णमानानना जनाः ॥ ११७४ ॥
 राघवः सानुजो भूपा मुनयः कपिराक्षसाः ।
 चित्रन्यस्ता इव बभुः काव्ये गीते च विस्मिताः ॥ ११७५ ॥
 तौ वीक्ष्य विस्मयालोललोके सदसि सर्वतः ।
 बभूवानन्दसंकल्पमयौ जल्पः परस्परम् ॥ ११७६ ॥
 अहो गीतमहो काव्यमहो रूपं कुमारयोः ।
 न विद्वस्त्रिदिवे ब्रह्मभुवने वा ययोर्यथा ॥ ११७७ ॥
 रामस्य सदृशावेतौ दर्पणे बिम्बिता इव ।
 जटावल्कलमात्रेण वैलक्षण्यमुपागतौ ॥ ११७८ ॥
 रामस्य तनयावेव यदि विद्याधराविमौ ।
 तत्किं विद्याधरोत्सङ्गे श्रुतोऽस्माभिर्न भूपतेः ॥ ११७९ ॥
 ति तेषां कथयतां रामस्य चरितं सदा ।
 हर्मान्तरेषु यज्ञेषु सर्गबन्धमगायताम् ॥ ११८० ॥
 न तौ जगृहतुर्दत्तं बहु हेम महीभुजा ।
 धने पतति न स्निग्धा दृष्टिरुन्नतजन्मनाम् ॥ ११८१ ॥
 केनेदं विहितं काव्यमिति पृष्टौ महीभुजा ।
 गाल्मीकिना कृतमिति प्रणतौ तौ तमूचतुः ॥ ११८२ ॥
 ततस्तौ तनयौ ज्ञात्वा चक्षुषा हृदयेन च ।
 राघवः साश्रुनयनः प्रोवाच दयितां स्मरन् ॥ ११८३ ॥

हनुमत्प्रमुखाः सर्वे वाल्मीकिं तपसां निधिम् ।
 विज्ञापयन्तु वचसा मम निर्घृणचेतसः ॥ ११८४ ॥
 निर्दोषां भगवज्जाने जानकीं जनसंभवात् ।
 अपवादान्मया त्यक्त्वा कीर्तिलुब्धेन केवलम् ॥ ११८५ ॥
 सा ते सदसि पूर्णेऽस्मिन्नेकीभूते जगन्मये ।
 करोतु शपथं सीता प्रत्ययं यात्वयं जनः ॥ ११८६ ॥
 वचनं राघवस्यैतद्वाल्मीकेस्ते न्यवेदयन् ।
 वाल्मीकिरपि तत्सर्वं तथेति प्रत्यपद्यत ॥ ११८७ ॥
 ततः प्राप्ते मुनिमये व्याप्ते सदसि राजभिः ।
 जानक्याः शपथं द्रष्टुमेकीभूतोऽभवज्जनः ॥ ११८८ ॥
 अदृश्यत ततः सीता सास्त्रा किञ्चिदधोमुखी ।
 सरस्वतीव ब्रह्माणं वाल्मीकिमनुगामिनी ॥ ११८९ ॥
 हिया मुहुः करोत्सृष्टकषायायतलोचना ।
 दृष्ट्वा हेममयीं पत्नीमिव संजातमत्सरा ॥ ११९० ॥
 पूज्यमाना मुनिवरैरिक्ष्वाकुकुलपावनी ।
 भूभृत्समागमे तस्मिन्गङ्गेवाकुलतां गता ॥ ११९१ ॥
 ततो हालाहलाशब्दस्तां दृष्ट्वा सास्त्रलोचनाम् ।
 बभूव सर्वभूतानां साधुवादपुरःसरः ॥ ११९२ ॥
 जनमध्यमथासाद्य वाल्मीकिरवदन्मुनिः ।
 इयं सीता सती राम प्रत्ययं गन्तुमागता ।
 नभस्तटीव पङ्केन लिप्ता वितथवादिभिः ॥ ११९३ ॥
 यदि राम महीपाल मुनयो मुनयो वयम् ।
 असत्यं यदि नास्मासु तत्सीता शीलशालिनी ॥ ११९४ ॥
 इमौ ते तनयौ राम कामपुष्पाकराविव ।
 मनस्तत्रैव नेत्रे च वयं धर्मश्च साक्षिणः ॥ ११९५ ॥
 इत्युक्ते मुनिना तत्र कृतासनपरिग्रहे ।

देवगन्धर्वसिद्धानां बभूव गगने रवः ॥ ११९६ ॥
 ततो जगाद काकुत्स्थः शृण्वतां सर्वदेहिनाम् ।
 जानाम्यपापां वैदेहीं जानामि यमजौ सुतौ ॥ ११९७ ॥
 न ममाप्रत्ययो देव्या मनोवृत्तिरिवात्मनः ।
 करोतु शपथं सीता जनवादः प्रमृज्यताम् ॥ ११९८ ॥
 कुले जन्म यशः शुभ्रं कुलमानोज्ञतं मनः ।
 अपवादभयान्नित्यं हृदये शोकशङ्कवः ॥ ११९९ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथेन जानकी रचिताञ्जलिः ।
 उवाचाधोमुखी हर्षं वीक्ष्यमाने(णे)व हारितम् ॥ १२०० ॥
 यथा मे राघवादन्यो न संकल्पेन दैवतम् ।
 तेन सत्येन विवरं भूतधात्री ददातु मे ॥ १२०१ ॥
 मनोनयनवाक्चेष्टास्वमैरव्यभिचारिणी ।
 यद्यहं रघुनाथस्य तन्मे रन्ध्रं ददातु भूः ॥ १२०२ ॥
 इत्युक्ते रघुनाथस्य पत्न्या तूर्णं महीतलात् ।
 उदतिष्ठद्भृतं मूर्ध्ना भुजगैः काञ्चनासनम् ॥ १२०३ ॥
 उपविष्टा ततस्तस्मिन्वसुधा सर्वसाक्षिणी ।
 आदाय पाणिना सीतां पातालमविशत्पुनः ॥ १२०४ ॥
 अदर्शनं प्रयातायां तस्यां सर्वे सभास्थिताः ।
 बभूवुर्मोहविवशाः पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ १२०५ ॥

इति वसुधाप्रवेशः ॥ ४६ ॥

अथ दुःखामिसंतप्तः काकुत्स्थः साश्रुलोचनः ।
 शून्यं जगन्मन्यमानस्तनुहीन इवाभवत् ॥ १२०६ ॥
 स कोणदवदहेवी मही सीतां प्रयच्छतु ।
 श्वश्रूममैषा न रुषा जीवितं हन्तुमर्हति ॥ १२०७ ॥
 ममापि निवरं भूमिर्ददातु दयितार्थिनः ।
 पत्नीं वा भूमिरहितं करोमि जगदन्यथा ॥ १२०८ ॥

इत्युक्त्वा धनुषि क्रोधाद्वाणेषु च ददौ दशम् ।
 वसुधाभेदसंनद्धं ब्रह्मा तमवदद्विवः ॥ १२०९ ॥
 न कर्तुमर्हसि वृथा संतापं रघुनन्दन ।
 भवं स्मरस्व वक्तुं मे न युक्तं जनसंनिधौ ॥ १२१० ॥
 इत्युक्त्वान्तर्हिते व्योम्नि सह देवैः प्रजासृजि ।
 भूतलादुद्गता वाणी प्रोच्चचाराशरीरिणी ॥ १२११ ॥
 भ्रमं मिथ्यैव काकुत्स्थ मा कृथा मैथिलीकृते ।
 आयासः केवलं मुञ्चा गगनग्रहणग्रहः ॥ १२१२ ॥
 सा पितृणां स्वधा नित्यं सुधा तृप्तिर्दिवौकसाम् ।
 विष्णोर्वक्षसि सा लक्ष्मीः सिद्धानां मूर्ध्नि सा स्थिता ॥ १२१३ ॥
 तद्दर्शनरसः कोऽपि यदि ते न निवर्तते ।
 तदेतौ तद्वपुर्जातौ पुत्रौ पश्यामृतोपमौ ॥ १२१४ ॥
 एतदाकर्ण्य नृपतिर्वीरः संस्तम्भ्य विक्रमम् ।
 पुत्रौ गृहीत्वा यज्ञान्ते हेमपूर्णां महीं ददौ ॥ १२१५ ॥
 पुनर्यज्ञशतैरिष्ट्वा दत्त्वा च विपुलं वसु ।
 प्रशान्तोपप्लवे राज्ये स रराज जनेश्वरः ॥ १२१६ ॥
 इत्यश्वमेधः ॥ ४७ ॥

अथ रामाज्ञया गत्वा भरतो मातुलान्तिकम् ।
 गन्धर्वनगरे वीरान्गन्धर्वान्युधि दुर्मदान् ॥ १२१७ ॥
 त्रिकोटिसंख्यानुन्मथ्य कालाख्येण प्रमाथिना ।
 गान्धारविषयं चक्रे नगरीभ्यां विभूषितम् ॥ १२१८ ॥
 भरतस्तत्र विदधे स्वपुत्रौ तक्षपुष्कलौ ।
 तयोः पुर्योर्महीपालौ कृत्वा च स्वपुरीं ययौ ॥ १२१९ ॥
 प्राप्य तक्षशिलां तक्षः पुष्करः पुष्करावतीम् ।
 इक्ष्वाकुकुलतुल्येन यशसा तौ विरेजतुः ॥ १२२० ॥
 इति गान्धारविषयः ॥ ४८ ॥

ततः पुरीद्वयं रामश्चक्रे लक्ष्मणपुत्रयोः ।
 अङ्गदस्य च वीरस्य चन्द्रकेतोश्च भूपतेः ॥ १२२१ ॥
 अङ्गदस्याङ्गदीयाख्या साभूद्भूमिपतेः पुरी ।
 चन्द्रवत्यभिधा चन्द्रकेतोरप्यपराभवत् ॥ १२२२ ॥
 इति लक्ष्मणपुत्राभिषेकः ॥ ४९ ॥

ततः कदाचिदभ्येत्य कालस्तापसविग्रहः ।
 विवेश वेश्म रामस्य लक्ष्मणेन निवेदितः ॥ १२२३ ॥
 रामेण पूजितः सोऽथ कृतासनपरिग्रहः ।
 अवदन्निर्जने किञ्चिद्वक्तुकामोऽस्मि भूपते ॥ १२२४ ॥
 अस्मिन्यः प्रविशेन्मन्त्रे स वध्य इति संविदा ।
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते तयोः स्वैरमभूत्कथा ॥ १२२५ ॥
 ततो जगाद भूपालं तपसा प्रश्रयात्पुनः ।
 विसृष्टोऽहं भगवता स्वयं कमलजन्मना ॥ १२२६ ॥
 यः स ते नाभिजाज्जातः पद्मनाभसरोरुहात् ।
 कृतकृत्यं जगत्कार्यं त्वामाह स चतुर्मुखः ॥ १२२७ ॥
 कैटभारे जगद्भारं हरता रक्षितं त्वया ।
 विलुण्ठ्यमानं रक्षोभिर्देवानां विशदं यशः ॥ १२२८ ॥
 एकादशसहस्राणि वर्षाणां राज्यमूर्जितम् ।
 कृतं तद्वैष्णवं धाम निजमासाद्यते न किम् ॥ १२२९ ॥
 शक्तिर्विश्वपरित्राणे विश्वनिर्माणशालिनी ।
 सुरकार्यैकनिरता न त्वया रहितस्य मे ॥ १२३० ॥
 प्रजापतेरिति वचस्तुभ्यमावेदितं मया ।
 कालोऽहं पूर्वतनयस्तव मायासमुद्भवः ॥ १२३१ ॥
 एतत्कालवचः श्रुत्वा प्रहस्योवाच राघवः ।
 यदाहं भगवान्ब्रह्मा पुत्र सर्वं करोमि तत् ॥ १२३२ ॥
 इति कालवाक्यम् ॥ ५० ॥

एवं तयोः कथयतोर्दुर्वासाः कोपनो मुनिः ।
 अभ्येत्य भूपतिद्वारं तूर्णं लक्ष्मणमभ्यधात् ॥ १२३३ ॥
 राघवं द्रष्टुमिच्छामि कार्यमात्यन्तिकं मम ।
 श्रुत्वैतदूचे सौमित्रिव्यग्रः क्षितिपतिर्मुने ॥ १२३४ ॥
 भवान्मुहूर्तं क्षमतामित्युक्ते लक्ष्मणेन सः ।
 उवाचादर्शने राज्ञः पुरं सर्वं दहाम्यहम् ॥ १२३५ ॥
 एतदाकर्ण्य सौमित्रिर्निश्चित्यात्मवधं धिया ।
 मुनेरागमनं तूर्णं काकुत्स्थाय न्यवेदयत् ॥ १२३६ ॥
 विसृज्य कालं भूपालस्तं ददर्शादिरान्मुनिम् ।
 पूजितस्तेन विधिना स मुनिस्तमभाषत ॥ १२३७ ॥
 सहस्रं राम वर्षाणां प्रयातं भोजनस्य मे ।
 तूर्णं त्वत्तस्तदिच्छामि यथायुक्तं विधीयताम् ॥ १२३८ ॥
 उक्त्वेत्यत्रिसुतः सिद्धमुपनीतं महीभुजा ।
 पवित्रमन्नं भुक्त्वैव जगामाभिमतं दिशम् ॥ १२३९ ॥
 ततः सौमित्रिमालोक्य दुःखसंतप्तमानसः ।
 क्षणं रघुपतिर्देन्यान्नोचे किञ्चिदवाङ्मुखः ॥ १२४० ॥
 तं लक्ष्मणोऽवदद्देव प्रतिज्ञां मा वृथा कृथाः ।
 जहि मां स्नेहमुत्सृज्य लोके सत्यव्रतो ह्यसि ॥ १२४१ ॥
 स्नेहानुबद्धो मिथ्यैव सर्वत्रायं शरीरिणाम् ।
 एवंरूपैव कालस्य निःसारतरला गतिः ॥ १२४२ ॥
 लक्ष्मणेनेत्यभिहिते वसिष्ठप्रमुखैर्नृपः ।
 विचार्य सत्यसंदेहं(?) सास्त्रुस्तत्याज लक्ष्मणम् ॥ १२४३ ॥
 लक्ष्मणः सरयूं गत्वा निरुद्धसकलेन्द्रियः ।
 चिन्तयद्वैष्णवं धाम निरुच्छासोऽभवत्क्षणात् ॥ १२४४ ॥
 तं गृहीत्वा स्वयं शक्रः सानुगस्त्रिदिवं ययौ ।
 रामोऽपि तद्विरहितः शून्या मेने दिशो दश ॥ १२४५ ॥
 इति लक्ष्मणत्यागः ॥ ५१ ॥

अथ निश्चित्य मुनिभिर्महाप्रस्थानमात्मनः ।
 रामः कुशं कुशावत्यां तनयं विदधे नृपम् ॥ १२४६ ॥
 अभिषिच्य लवं धीरः श्रावस्यां वसुधाधिपम् ।
 शत्रुघ्नं शीघ्रगैर्दूतैरानिनाय सहानुगम् ॥ १२४७ ॥
 सुबाहुः शत्रुघाती च शत्रुघ्नतनयौ नृपौ ।
 बभूवतुः पितुर्वाक्यान्मथुराविदिशाधिपौ ॥ १२४८ ॥
 नृपस्ततः समादाय काषायवसनं व्रतम् ।
 उवाचानुव्रतारम्भौ वायुपुत्रविभीषणौ ॥ १२४९ ॥
 पृथिव्यां प्रथिता यावन्मत्कथा विचरिष्यति ।
 युवयोर्यशसा सार्धं तावदायुर्भविष्यति ॥ १२५० ॥
 इत्युक्त्वा राघवः सानुः प्रणयाद्विनिवर्त्य तौ ।
 मौनी कुशान्समादाय निर्ययौ गलितग्रहः ॥ १२५१ ॥
 सव्ये पार्श्वे बभूवास्य मूर्ता भूः श्रीश्च दक्षिणे ।
 वेदाः सर्वे द्विजाकाराः सावित्री च स्वरूपिणी ॥ १२५२ ॥
 ओंकारोऽथ वषट्कारो मुनयः कुलभूधराः ।
 सान्तःपुराः प्रकृतयः पौरजानपदैः सह ॥ १२५३ ॥
 सुग्रीवप्रभृत्खास्तेऽपिकृतकृत्याः प्लवंगमाः ।
 अनुजग्मुः प्रजानाथ भूतैः सह चराचरैः ॥ १२५४ ॥
 सरयूपुलिनं प्राप्ते शनै रामे प्रजापतिः ।
 अदृश्यत सुरैः सार्धं विमानोद्भासिताम्बरैः ॥ १२५५ ॥
 सोऽब्रवीद्भूपते दिष्ट्या पदं प्राप्तोऽसि शाश्वतम् ।
 भगवन्प्रविश व्यक्तां स्वाधीनां वैष्णवीं तनुम् ॥ १२५६ ॥
 इत्युक्ते ब्रह्मणा रामो वैष्णवीं तनुमाश्रितः ।
 तमभाषत कल्प्यन्तां लोका मदनुयायिनः ॥ १२५७ ॥
 ततः संतानका नाम लोका ब्रह्मविनिर्मिताः ।
 बभूवुः सर्वभूतानां रघुनाथानुर्गामिनाम् ॥ १२५८ ॥

रामे स्वपदमारूढे ते जनाः सरयूजले ।
 त्यक्तमोहाः प्रभालोलैर्विमानैस्त्रिदिवं ययुः ॥ १२५९ ॥
 सुग्रीवप्रमुखाः सर्वे त्रिदशांशाः ह्रवङ्गमाः ।
 तां तां मूर्तिं समाश्रित्य स्वं स्वं धाम प्रपेदिरे ॥ १२६० ॥
 शून्या वर्षशतान्यासीदयोध्या रामवर्जिता ।
 न यावदृषभो नाम बभूव भुवि भूपतिः ॥ १२६१ ॥
 कर्णे कृताश्च हृदये निहिताश्च सद्भि-
 र्मूर्ध्ना धृताश्च मणयो रुचिरा इवैते ।
 रामस्य चारुचरितामृतदुग्धसिन्धो-
 रानन्दचन्द्रजनकस्य गुणा जयन्ति ॥ १२६२ ॥
 इति दुरितविरामः कीर्तिकान्ताभिरामः
 सुजनहृदयरामः कोऽप्यभूद्यः स रामः ।
 प्रकृतमनुसरामः पापपाशं तरामः
 सुकृतभुवि चरामस्तस्य नाम स्सरामः ॥ १२६३ ॥
 इति स्वर्गारोहणम् ॥ ५२ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविगृह्यते रामायणकथासारे उत्तरकाण्डः समाप्तः ।

भोगार्हे नवयौवनेऽपि विपिने क्षीराम्बरोराघव-
 स्तत्राप्यस्य परेण दारहरणं क्लेशस्तदन्वेषणे
 संप्राप्तापि जनापवादरजसा त्यक्ता पुनर्जानकी
 सर्वं दुःखमयं तदस्तु भवतां श्लाघ्यो विवेकोदयः ॥ १ ॥
 स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः ।
 ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः ॥ २ ॥
 कश्मीरेष्वभवत्सिन्धुजन्मा चन्द्र इवापरः ।
 प्रकाशेन्द्रः स्थिरा यस्य पृथ्व्यस्य कीर्तिकौमुदी ॥ ३ ॥
 सदा दानार्द्रहस्तेन महता भद्रमूर्तिना ।
 साधु कुञ्जरिता येन प्राप्ता कीर्तिपताकिना ॥ ४ ॥

विद्वज्जनसपर्याप्तपर्याप्तस्वजनोत्सवः ।
 कथासारसुधासारं क्षेमेन्द्रस्तत्सुतो व्यधात् ॥ ५ ॥
 मुक्तात्मना रणत्तारहारनूपुरमेखला ।
 विलासलासिका यस्य वदनं भाति भारती ॥ ६ ॥
 लोभाभिमानमलिनानि धनानि नित्यं
 कान्ताकटाक्षचटुलानि च जीवितानि ।
 ज्ञात्वेति चन्द्रधवलानि यशांसि येन
 काव्यैः स्थिराणि भुवनेषु निवेशितानि ॥ ७ ॥
 आमोदयन्ति सरसान्यतिकोमलानि
 विप्रेण रामयशसा प्रणयार्थितानि ।
 येनानिशं प्रणयभूषणतां जनस्य
 नीतानि काव्यकुसुमान्यसितानि तानि ॥ ८ ॥
 गुणागुणतया भान्ति येषु दैस्तेषु विस्मयः ।
 निर्गुणेषु गुणानेव ये वदन्ति जयन्ति ते ॥ ९ ॥
 इति क्षेमेन्द्रविरचिता रामायणमञ्जरी समाप्ता ।

